॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

जगद्विजयी काश्मीरिक श्रीकेशवभट्टाचार्य

विरचिता-

क्रम दीपिका

प्रकाशक-

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा समिति

अ. भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ

(सलेमाबाद) अजमेर (राजस्थान)

❁ ग्रन्थ विमोचन ❁

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर जगद्-
जयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यजी महाराज द्वारा विरचित
मदीपिका" आगम शास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें अनेक ऐसे
रल प्रयोग हैं, मन्त्र हैं जिनमें से किसी एक का ही आश्रय लेने पर
धक समस्त सुखों को प्राप्त करते हुए पाप पुन्जों से मुक्त होकर
गवद्भावापत्ति-रूप मोक्ष का भागी हो जाता है। तथा इस ग्रन्थ में
से विविध प्रयोग हैं जिनमें से मन्त्र शक्ति द्वारा शत्रुओं का सहज में
परिहार हो जाता है।

"क्रमदीपिका" का यह द्वितीय संस्करण है, जिसका
वमोचन अनेक विशिष्ट महानुभावों की उपस्थिति एवं अपार जनसमूह
 मध्य राजस्थान सरकार के मुख्यमंत्री माननीय श्रीअशोकजी
गहलोत के द्वारा आज विक्रम संवत् २०५६ आषाढ़ शुक्ल एकादशी
निवार तदनुसार दिनांक २४ जुलाई १९९९ को प्रातः ११ बजे अ०
भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में सम्पन्न हो
हा है।

विमोचन-समारोह के इस पावन अवसर पर अनन्त श्रीविभू-
षित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवा-
चार्य श्री "श्रीजी" महाराज द्वारा आचार्यपीठ की ओर से देश की
कारगिल-सीमा पर हो रहे युद्ध में अपने वीर सैनिकों के पावन बलि-
दान पर राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में एक लाख एक हजार एक सौ एक
रुपये की राशि माननीय मुख्यमन्त्रीजी को प्रदान की गई। जिसे उन्होंने
जय ध्वनि के साथ सहर्ष प्राप्त की।

❀ श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ❀

—: श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः :—

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

जगद्विजयी काश्मीरिक श्रीकेशवभट्टाचार्य

विरचिता —

क्रमदीपिका

विद्याविनोद श्रीगोविन्दभट्टाचार्यकृत विवरण संहिता ''दीपिकार्थ प्रकाशिका'' नामक हिन्दी व्याख्या सहिता च

हिन्दी व्याख्याकार :

पं० श्रीहरिशरण उपाध्यायः, व्याकरण-वेदान्ताचार्यः

प्राचार्य—श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय

वृन्दावन जि० मथुरा (उ० प्र०)

प्रकाशक :

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा समिति

अ० भा० जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ

(सलेमाबाद) पुष्करक्षेत्र, अजमेर [राजस्थान]

द्वितीयावृत्ति
१०००

जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्य
पाटोत्सव—समारोह

द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ल ४ गुरुवार

दिनाङ्क
१७-६-१९९९

वि० सं० २०५६
श्रीनिम्बार्काब्द ५०९४-९५

न्यौछावर
५१) रुपये

मुद्रक :—
श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)
जि० अजमेर (राज०)

प्राप्ति स्थान :—
अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)
किशनगढ़, अजमेर [राज०]

।। श्री सर्वेश्वरो जयति ।।

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

अ० भा० श्री निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) का

शुभाशीर्वाद

अनादिवैदिक श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय की तन्त्र-वाङ्मय-परम्परा में अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जगद्विजयी श्रीकेशव-काश्मीरिभट्टाचार्य विरचित "श्रीक्रमदीपिका" ग्रन्थ का अन्यतम महत्व है। "श्रीगोपालमन्त्रराज" "श्रीमुकुन्दशरणागति मन्त्र" आदि मन्त्रों के विविध अनुष्ठानों, न्यासक्रमों, उपासनाविधि प्रभृति का साङ्गोपाङ्ग जो प्रतिपादन हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

जिस प्रकार आचार्यश्री ने वेदान्त दर्शन शास्त्र में श्रीनिम्बार्क भगवान् द्वारा प्रणीत 'वेदान्तपारिजात सौरभ" नामक वृत्त्यात्मक भाष्य पर श्रीनिवासाचार्यजी महाराज कृत "वेदान्त कौस्तुभ" भाष्य का बृहद् भाष्य "कौस्तुभ प्रभावृत्ति" नाम से जो रचना की है वह सम्प्रदाय जगत् में अनुपम कृति है। बड़े-बड़े मेधावी प्रकाण्ड महा-मनीषी पुरुष भी उसके अर्थावबोध में हतप्रभ हो जाते हैं। इसी प्रकार तन्त्र-ग्रन्थों में यह "क्रमदीपिका" ग्रन्थ आपश्री की अनुपम कृति है। श्रीगोपालमन्त्रराज के विविध अनुष्ठानों पुरश्चरणों का इस ग्रन्थ में जो विवेचन है वह सम्प्रदाय के तन्त्र साहित्य में सर्वोपरि है।

इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन सम्प्रदाय के परम वयोवृद्ध पण्डित प्रवर श्री किशोरदासजी महाराज वेदान्तनिधि वंशीवट-वृन्दावन द्वारा चौखम्बा संस्कृत सीरिज-मुद्रणालय बनारस से ७० वर्ष पूर्व हुआ था। कालक्रम से शनैः शनैः ग्रन्थ की प्रतियाँ दुर्लभ हो गईं। अभी विगत

आषाढ़ मास २०४७ में "श्रीक्रमदीपिका" ग्रन्थ के आचार्यपीठ से प्रकाशन की योजना बनाई गई तब श्रीधामवृन्दावन में हमने श्रीनिम्बार्क महाविद्यालय के प्राचार्य श्रीहरिशरणजी शास्त्री को इस प्रसङ्ग से अवगत कराया। उन्होंने अपना परामर्श देते हुए इसके सानुवाद प्रकाशन की भावना व्यक्त की। श्रीशास्त्रीजी के उचित परामर्शानुसार हमने अनुवाद का भार श्री शास्त्रीजी को ही सौंपा। उन्होंने भी सहर्ष स्वीकार कर अपने व्यस्त समय में से स्वल्पावधि में ही सुन्दर भाषानुवाद करके जो साहित्य-सेवा की है वस्तुतः वे परम धन्यवादार्ह हैं। भूमिका का आलेखन पं० श्री वासुदेवशरणजी उपाध्याय - प्राचार्य - श्रीसर्वेश्वर-संस्कृत महाविद्यालय, श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) ने करके ग्रन्थ की उपादेयता और भी अधिक सुन्दर बना दी है। आचार्यपीठस्थ श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय के व्यवस्थापक पं० भँवरलालजी शर्मा उपाध्याय एवं प्रेस-परिचारकों का परिश्रम भी सराहनीय है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में भक्तवर श्री अमरचन्दजी कासट, श्री लक्ष्मीनारायणजी रान्धड़, श्री मांगोलालजी राठी, श्री रामनिवासजी राठी, श्रीब्रजमोहनजी राठी द्वारा आर्थिक सेवा भी अनुकरणीय है। साधकों का कर्तव्य है कि उक्त ग्रन्थ के मनन से मन्त्रोपासना का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को कृतार्थ करें।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय

(एक परिशीलन)

किसी महापुरुष के, ग्रन्थ विशेष के, किंवा किसी तत्व विशेष के ऐतिहासिक तत्व के निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए मुख्यतः दो प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक बहिः साक्ष्य, दूसरा अन्तः साक्ष्य। कुछ लोग प्रमाण विचार से दूर रह कर रोचक बुद्धि ताच्छील्य से कुछ ऐसी सत्यवत् प्रतीति को पाठकबुद्धि तक उतारने का प्रयास भी करते हैं, जो वस्तुस्थिति से नितान्त विपरीत होता है। राजनैतिक इतिहास बहिः साक्ष्य प्रधान होता है। धर्माचार्यों, साहित्यिकों, ग्रन्थकारों का इतिहास अन्तः साक्ष्य प्रधान होता है। किन्तु सामान्यतः इतिहासकार बहिः साक्ष्य के आधार पर ही इतिहास लिखते हैं, अन्तः साक्ष्य उनसे कोसों दूर रह जाता है। कारण स्पष्ट है कि अन्तः साक्ष्य के धरातल तक पहुँचने के लिए ग्रन्थों के सर्वाङ्ग पूर्ण अध्ययन की आवश्यकता होती है। हम यहाँ श्रीनिम्बार्काचार्यजी के आविर्भाव का समय तथा नारदजी के शिष्यत्व होने के अन्तः साक्ष्य-प्रधान प्रमाणों के आधार पर निर्धारित करने का प्रयास करेंगे।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी से पूर्व इस सम्प्रदाय का नाम हंस सम्प्रदाय था, हंस एक चौबीस लीलावतारों में अन्यतम है "हंसः शुचिषद्" कह कर श्रुतियों ने उनके स्वरूप गुणों को बताया है। मिश्रित गुणों को, गुणों के साथ आत्मा के सम्बन्धों को, गुणों को आत्मा से अलग करने की विधियों को जानने वाले भगवान् का नाम ही हंस है। जैसे राजहंस क्षीरनीर विवेकी होता है, वैसे ही सदसद् विवेकी भगवान् हंस हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में सनकादिकों के प्रश्नों का समाधान ब्रह्माजी के द्वारा न हो सकने के कारण भगवान् हंस का प्रादुर्भाव हुआ और सनकादिकों की जिज्ञासा का यथार्थ रूप से समाधान किया। वहाँ पर भगवान् हंस ने सनकादिकों के वैदुष्य को बताते हुए अपने शिष्य होने का स्पष्ट उल्लेख भी किया है। "एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः" एतावता सिद्ध है कि सनकादिक श्रीहंस के पट्टशिष्य थे।

श्रीसनकादिकों के शिष्य श्रीनारद हैं। यह बात छान्दोग्योपनिषद् के षष्ठाध्याय में स्पष्ट है। श्रीनारद ने सनकादिकों के शिष्यत्व स्वीकार करते हुए अपने को जिज्ञासु शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया

है। इस बात की संपुष्टि श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने भी अपनी वेदान्त कामधेनु (दशश्लोकी) में की है।

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ।।

अखिल तत्व के साक्षी श्रीनारदजी को सनकादिक मुनियों ने अज्ञानानुवृत्ति निवारण के लिए श्रीराधाकृष्ण युगल तत्व की उपासना बताई है। यहाँ तक निम्बार्क सम्प्रदाय को हंस सम्प्रदाय के नाम से लोग जानते थे। समय पाकर श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने उक्त परम्परा का जगद्व्यापी प्रचार किया। अतः हंस सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय के नाम से पुकारने लगे। क्योंकि श्रीनारदजी के बाद परम्पराक्रम में श्री-निम्बार्काचार्यजी का नाम आता है। आज तक किसी भी गवेषक को यह पता नहीं लगा कि नारद और निम्बार्क के बीच में अन्य कोई आचार्य थे।

कुछ लोग अपुष्ट बहिः साक्ष्यों के आधार पर आठवीं शती से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक श्रीनिम्बार्काचार्यजी के आविर्भाव का समय मानने का दुःसाहस करते हैं। यह भी उनकी कोरी कल्पना है, तथ्यभूत कोई साक्ष्य नहीं है। इस पर हम अन्तः साक्ष्य के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करना चाहते हैं।

सम्प्रदाय वृद्धों का मानना है कि श्रीनिम्बार्क द्वापरान्त, और कलि के प्रारम्भ काल में हुए। इस सम्बन्ध में वे भविष्य पुराण के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्ञाप्तो जनिष्यति ।
निम्बादित्य इतिख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यति ।।

बारहवीं तेरहवीं शताब्दी मानने वाले इतिहासकार तथा आलोचकों का मत इसलिए खण्डित होता है कि तेरहवीं शताब्दी की हेमाद्रि संहिता के उद्धरण से सत्रहवीं शताब्दी के निर्णयसिन्धुकार धर्म-धुरन्धर श्रीकमलाकर भट्ट ने अपने निर्णय सिन्धु में—

"निम्बार्को भगवान् येषां वांछितार्थ फलप्रदः"

भविष्य पुराण का यह श्लोक उद्धृत किया है। निर्णय सिन्धु-कार ने एकादशी व्रत के कपाल वेध प्रकरण में निम्बार्क सम्बन्धी अन्य कई श्लोक उद्धृत किये हैं। यह तो बता चुके हैं कि अद्वैतवाद और द्वैतवाद के विवाद को समाप्त करने के लिए श्रीनिम्बार्क का धरातल पर आविर्भाव होने की निर्मूल कल्पना करने वालों की धारणा तो इस बात से कल्पित सिद्ध होती है कि श्रीनिम्बार्क ने किसी आचार्य विशेष

के सिद्धान्त को लेकर खण्डन-मण्डन नहीं किया है। श्रीनिम्बार्क ने तो सीधे-साधे शब्दों में स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है। जैसा कि आचार्य श्रीनिम्बार्क की प्रामाणिक रचना का श्लोक—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः ।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता ।।
(वेदान्त कामधेनु)

स्पष्ट है। यहाँ आचार्य का सिद्धान्त स्पष्ट है कि द्वैताद्वैतवाद किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है, बल्कि वेदवेत्ताओं का अव्यर्थ सिद्धान्त है।

सम्प्रदाय वृद्धों का ऐसा भी मानना है कि श्रीनिम्बार्क का द्वापरान्त किंवा कलि के आदि में मानने से ही श्रीनारदजी के शिष्य होजाना संगत पड़ेगा, इस विचार बिन्दु पर भी कुछ समीक्षा करना आवश्यक है।

हम शास्त्र को प्रमाण मानते हैं, शास्त्र के अन्तः साक्ष्य ही निष्कर्ष देने में समर्थ है। यद्यपि चिरंजीवी लोग आज भी यहाँ हैं, पुण्यात्मा लोग आज भी उनको देखते हैं। तथापि सामान्य रूप से इस धरातल पर ऋषि-मुनियों की उपस्थिति कब तक रही होगी, इस पर विचार करना है। श्रीमद्भागवत एक अपरिहार्य प्रमाण ग्रन्थ है। श्रीमद्भागवत के और अन्य सहयोगी ग्रन्थों के आधार पर हम तथ्य को प्रकाशित करने का प्रयास कर रहे हैं।

पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के पश्चात् कलियुग के तीस वर्ष से कुछ अधिक बीत जाने पर भाद्र शुक्ल नवमी से श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत की कथा सुनाई है और कलियुग के दो सौ वर्ष व्यतीत होने पर आषाढ शुक्ल नवमी से गोकर्णजी ने धुन्धु-कारी को श्रीमद्भागवत की कथा सुनाई। इसके बाद कलियुग के तीस वर्ष बीत जाने पर कार्तिक शुक्ल नवमी से सनकादिकों ने श्री नारदजी को कथा सुनाई। इसका मतलब हुआ कलियुग के दो सौ साठ वर्ष से भी अधिक बीत जाने पर सनकादिकों ने श्री नारद को कथा सुनाई, महात्म्य के अनुसार कलि के तीस वर्ष से भी अधिक बीत जाने पर शुक ने राजा को कथा सुनाई है। इसका सीधा तात्पर्य हुआ कि कलि के दो सौ वर्ष बीतने पर कथा हुई है।

शौनकादि ऋषि लोग एक हजार वर्ष से कम अवधि का कथा यज्ञ ही नहीं करते। प्रश्न उठता है कि—ऐसे एक हजार वर्ष के कई यज्ञ किए होंगे। क्या उतने वर्ष तक वे सब निरातङ्क जीवित रहे?

उत्तर स्पष्ट है कि ऋषि लोग अपने सदाचार से दीर्घजीवी तो होते ही थे, उसमें भी यज्ञ में वृत ऋषियों को धर्मराज कुछ न करें, एतदर्थ वे धर्मराज को भी वहीं वरण करके रख लेते थे। ऋषियों के यज्ञ में वे धर्मराज थे तो अन्य लोगों के लिए यम अन्तक ही थे। शौनकादिक हजार वर्ष के यज्ञ में वेद-वेदशाखा, उपनिषद् वेदाङ्ग प्रवचन पूर्वक यथापूर्व आविर्भूत पुराणों की कथा सुना करके अन्त में श्रीमद्भागवत की ही कथा सुनाते।

एक हजार कलि के बीतने तक शौनकादिकों का यह प्रथम सत्र था। दूसरे सत्र के सम्बन्ध में श्री शुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध अध्याय ४ श्लोक ४३ में स्पष्ट कहा है कि—

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ ! संपृष्टः शौनकादिभिः ॥४३॥

राजा परीक्षित को श्री शुकदेवजी ने कहा कि राजन् ! जो श्रीमद्भागवत की कथा मैंने आप को सुनाई है, यह कथा दीर्घ सत्र में बैठे शौनकादिकों द्वारा पूछे जाने पर सूतजी सुनाएंगे। एतावता शास्त्रोक्त अन्तः साक्ष्य से ऋषि मुनियों का दीर्घकाल तक जीवित रहना जैसे प्रमाण सिद्ध है उसी प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्यजी का द्वापरान्त में आविर्भूत होना और दीर्घकाल तक इस धराधाम पर विराजे रह कर सिद्धान्त तथा उपासना का सर्वतोमुखी प्रवर्तन करना भी युक्ति प्रमाण सिद्ध है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय परम्परा में अनेक यशस्वी भाष्यकार आचार्य हुए हैं जिनमें श्री श्रीनिवासाचार्य, श्रीपुरुषोत्तमाचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्रीसुन्दरभट्टाचार्य, जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य आदि प्रख्यात हैं। श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य जैसे दिग्विजयी आचार्य को पाकर सम्प्रदाय गौरवान्वित है। आपश्री न केवल ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार थे अपितु गीता, भागवत आदि के व्याख्याकार एवं वैष्णवागम (तन्त्र) के प्रणेता भी थे। प्रस्तुत "क्रमदीपिका" उन्हीं आचार्य प्रवर की कीर्ति पताका है।

हरिशरण उपाध्याय
व्याकरण वेदान्ताचार्य, निम्बार्क भूषण
प्राचार्य
श्री निम्बार्क संस्कृत स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, वृन्दावन
जि० मथुरा (उ० प्र०)

श्रीसर्वेश्वरो जयति

क्रमदीपिकाऽवधान

लेखक--अधि० व्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य पञ्चतीर्थ

संस्कृत के गद्य-पद्यात्मक अपार वाङ्मय में एक तन्त्रशास्त्र भी प्रसिद्ध है। शैव-शाक्त-गाणपत्य सौर वैष्णव आदि इसके अनेकों प्रभेद हैं। वैष्णव तन्त्रों में १०८ संहिताओं वाला नारदपंचरात्र डेढ़ करोड़ श्लोकों का बड़ा विस्तृत है। इसकी पूरी १०८ संहिताओं में केवल ३५ ही उपलब्ध हैं। मुद्रित संहिताओं में पाद्म, जयाख्य, परमागम आदि संहिताओं का दक्षिण भारत में प्रकाशन हुआ था, उनमें विद्वानों ने विशेष छान-बीन द्वारा, इसके समय विषय आदि पर अच्छा प्रकाश डाला था। उसके पश्चात् उत्तर भारत में चौखम्बा संस्कृत सीरीज आदि ने भी प्रकाशन करवाया।

लगभग अढ़ाईसौ या तीनसौ वर्ष पूर्व एक नारद पंचरात्र और निर्मित हुआ। इसमें संहितायें न होकर, प्रथमरात्र, द्वितीयरात्र इतना ही उल्लिखित है। इसका कलेवर छोटा है, केवल ३१०० (तीन हजार एक सौ) श्लोकों में ही यह पूर्ण हो जाता है। प्रथमरात्र के १५ अध्याय में १००० श्लोक। द्वितीय आठ अध्यायों में ५०३ श्लोक। तृतीयरात्र के १५ अध्यायों में ४९४ श्लोक। चतुर्थरात्र के ११ अध्यायों में ६१८ श्लोक हैं और पाँचवेंरात्र के ११ अध्यायों में ५५८ श्लोक हैं। इस प्रकार पाँचों-रात्रों में ३१७३ के लगभग श्लोक हो जाते हैं।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य प्रणीत क्रमदीपिका के पूरे ७०० श्लोक इसमें सम्मिलित किये हुए हैं। बाकी २४७३ श्लोक इधर-उधर से लेकर इस नये ग्रन्थ का किसी ने निर्माण कर लिया है।

बंगाल के प्रसिद्ध प्राड्विवेक, वकील बैरिस्टर श्रीताराकिशोर चौधरी जब उधर की ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज आदि समाजों के रहस्य का ज्ञान कर चुकने पर विक्रम सम्वत् १९७५ के लगभग "बाबा रामदासजी काठिया" से वैष्णवी-दीक्षा प्राप्त करके श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय में प्रविष्ट हो साम्प्रदायिक संस्कृत-ग्रन्थों का अनुशीलन करने लगे तब क्रमदीपिका के श्लोक उस नारदपंचरात्र में जहाँ-जहाँ मिले उनके चिह्न लगा दिये थे उन्होंने।

श्रीसन्तदास काठियाबाबाजी महाराज के परमधामवास होने पर उनके स्थानापन्न उत्तराधिकारी चतुःसम्प्रदायी व्रजविदेही श्रीमहन्त धनंजयदासजी महाराज हुए, उनका हमारे पर विशेष स्नेह रहा,

किन्तु ज्यादा वार्तालाप और विचार-विमर्श विक्रम सम्वत् २००१ से होने लगा।

उन्होंने अपने गुरुदेव द्वारा किए हुए नोट (चिह्नों) से अनुमान लगाया होगा कि क्रमदीपिका ग्रन्थ श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य की रचना न होकर इस नारदपंचरात्र (नवीन संकलन) में से ही छाँटकर उन्होंने क्रम की एक दीपिका के समान पुस्तक बना दी होगी, नामकरण कर दिया होगा। तब उनकी जिज्ञासानुसार हमने क्रमदीपिका का आलोडन करना आरम्भ किया। चौखम्बा संस्कृत सीरीज में मुद्रित गोविन्दानन्द विद्याविनोदभट्टाचार्य ने जिन-जिन टीकाकारों का नाम दिया है, उनकी पाण्डुलिपियाँ देखने कलकत्ता पहुँचे। बंगाल ऐसियाटिक सोसायटी और रायल ऐसियाटिक सोसायटी दोनों सरकारी संग्रहालय का सरकार ने एकीकरण कर दिया था। व्यवस्था भी सुन्दर थी। कार्यकर्त्ताओं का बर्ताव भी स्नेहपूर्ण था। पाण्डुलिपियों के आदि मध्य अन्तिम पुष्पिकाओं के चित्र लेने की भी सुन्दर व्यवस्था थी बीसों पाण्डुलिपियों के चित्र निगेटिवों सहित हम ले आये। क्रमदीपिका की बीसों टीकायें और उस नवसंकलित नारदपंचरात्र की टीका की तो क्या मूल की भी कहीं चर्चा नहीं मिली।

दीक्षा के सम्बन्ध में श्रीकेशवकाश्मीरिजी ने लिखा है—

प्रपंचसारे प्रथितातुदीक्षा (क्र० दी० ४ प० श्लोक ४)

इसमें ग्रन्थकार ने स्वीकार किया है कि प्रपंचसार में श्रीशङ्कराचार्य नेजैसादीक्षा का संविधान लिखा है उसी के अनुसार यहाँ मैंने लिखा है। इस प्रकार के १८-१९ हेतु श्रीकाठियाजी को हमने दर्शित किये। तब उन्हें हमारे कथन पर बहुत कुछ विश्वास जमा।

सर्वाधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उस नारदपंचरात्र में क्रमदीपिका का उपान्त्य ११६वाँ श्लोक भी अंकित था, जिसके सम्बन्ध में कई टीकाकारों ने लिखा है कि कदाचित् कोई व्यक्ति हमारी इस रचना को अपनी घोषित न कर दे (चुरा न ले) इसलिए ग्रन्थकार चक्रबन्ध रूप से स्वरचित पद्य में ग्रन्थ और ग्रन्थकार का नामोल्लेख कर देते हैं। यह चक्रबन्ध पृ० ३१२ पर दिया गया है।

पं० हरिशरणजी और डा० मालवीयजी हि०वि० काशी का प्रयास सर्वोपयोगी एवं सुन्दर है। मैं इन सभी विद्वानों के अभ्युदय की हार्दिक कामना करता हूँ।

●

॥ श्रीसर्वेश्वरो विजयते ॥

– प्रेरणा के स्रोत –

अखिल भारतीय जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य
श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

सम्वत् २०४७ श्रावण शुक्ल पक्ष में विश्व प्रसिद्ध दोलोत्सव के शुभ अवसर पर आचार्यश्री का श्रीधाम वृन्दावन में पदार्पण हुआ। उस समय आचार्यश्री ने अपने सैद्धान्तिक लक्ष्य के अनुरूप सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशन की उदार चर्चा करते हुए श्रीकेशव काश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका के मूल प्रकाशन की चर्चा की, श्रीचरणों में सविनय मैंने निवेदन किया कि यदि क्रमदीपिका को हिन्दी रूपान्तर कर प्रकाशन किया जाए तो महान् लोकोपकार होगा। आचार्यश्री ने मेरे प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर हिन्दी रूपान्तर करने का गुरुतर भार इस बालक के ऊपर सौंपा।

आचार्य चरणों की यदि सहज कृपा हो जाए तो अयोग्य भी योग्य हो सकता है, असमर्थ भी समर्थ हो सकता है, अतः मैंने इसी प्रेरणा को ही प्रतीक मानकर हिन्दी रूपान्तर करने का भार ले लिया।

आचार्यश्री सत्यसन्ध सत्य संकल्प हैं, और मूर्तिमान् प्रतिभा हैं यही कारण है कि आज निम्बार्क सम्प्रदाय विश्व में प्रतिष्ठित हो रहा है, ऐसे नक्षत्रधारी आचार्य बिरले ही होते हैं। जिसको सर्वांगपूर्ण विकास कहा जाता है, उस धरातल पर सम्प्रदाय को पहुँचाने का मानो आचार्यश्री ने प्रण कर रखा है। यही कारण है कि विभिन्न प्रवृत्तियों से सम्प्रदाय को उच्च शिखर पर प्रतिष्ठापित कराने के पुरोग हो रहे हैं।

१. यात्राओं, कुम्भ आदि विशेष पर्वों, विराट् सनातन धर्म सम्मेलनों, ऐसे ही समय-समय के विशिष्ट पर्वों महोत्सवों के माध्यम से अनादि वैदिक सनातन वैष्णव धर्म का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार, आचार्यश्री द्वारा हो रहे हैं।

२. सम्प्रदाय के विशिष्ट स्थानों मठों, आश्रमों का पुनर्व्यवस्थापनों, मूलभूत ऐतिहासिक स्थलों में स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने वाले नवनिर्माणों, जैसे निम्बार्क तपोभूमि निम्बार्क (गोवर्धन) का हृदयाकर्षक निर्माण, जो व्रजदर्शन का एक अभिन्न अंग माना जा रहा है, इसी प्रकार निम्बार्क जन्म स्थल पैठन (वैदूर्य पत्तन) महाराष्ट्र में निम्बार्क स्मारक निर्माण का सूत्रपात हो चुका है, ऐसे अनेकों निर्माणों के माध्यम से सम्प्रदाय को प्रख्यात करने का श्रेय आचार्यश्री को ही है।

३. विद्या ही सर्वधन प्रधान है, विद्या ही भुक्ति-मुक्ति का साधन है, इन बातों को अक्षरशः पालन करते हुए, राजस्थान में, श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, उत्तरप्रदेश में श्रीनिम्बार्क दर्शन महाविद्यालयों के माध्यम से धर्म. संस्कृति, परम्परा, सभ्यता, सदाचार, ज्ञान-विज्ञान के व्यापक प्रचारों से सम्प्रदाय को सुदृढ़ बनाने के उपाय किए जा रहे हैं।

४. आचार्यश्री ने अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रन्थों की स्वयं रचना कर न केवल सम्प्रदाय का अपितु भारतवर्ष के लोकोत्तर महत्व का दिग्दर्शन कराया है। आचार्यश्री का यह एक अनुकरणीय आदर्श है।

५. सभी सम्प्रदायों आचार्यों (शांकर वैष्णवों) सन्त महन्तों, विद्वानों का समान आदर से सम्मान कर आचार्यश्री ने जीवन में ऐसा समन्वयात्मक आदर्श प्रस्तुत किया है, जो आज तक न किसी में देखा गया है, नाहीं किसी में दिखाई पड़ने की आशा है। इस आदर्श से आपश्री सभी सम्प्रदायों सभी वर्गों के मानस पटल में आराध्य के रूप में प्रकट हैं।

६. धर्म-संस्कृति, सम्प्रदाय, सदाचार, सभ्यता और सिद्धान्त की आधारशिला है, तत्द्विषय ग्रन्थ-सम्पत्ति, वेदादिशास्त्रानुगत धर्म प्रचार का नाम सम्प्रदाय है। जो निराधार मनगढन्त है उसका नाम पन्थ है, अतः ग्रन्थ ही हमारे आदर्श हैं। इस बात को हृदयतः स्वीकार कर ग्रन्थ प्रकाशन को मुख्यता प्रदान करने वाले आचार्यश्री के "तत्त्व प्रकाशिका गीता" "स्वधर्मामृतसिन्धु" आदि के प्रकाशन किसी से परोक्ष नहीं हैं। आचार्यश्री ने कई अष्टकों की रचना की है जिनमें भारतीय आस्था प्रतिबिम्बित है। "भिन्न रुचिर्हिलोकः" मनुष्यों में रुचि में भिन्नता होती है, अपनी-अपनी रुचि तथा आस्था के अनुरूप साधक जिस देवता को चाहे आचार्यश्री रचित स्तोत्रों के माध्यम से आराधना कर सकता है। यह एक उदात्त भावना है।

इसी ग्रन्थ प्रचार के क्रम में क्रमदीपिका है। क्रमदीपिका की करीब नौ टीकाएं हैं। मैंने श्रीविद्याविनोद गोविन्दभट्टाचार्यकृत विवरण का आश्रय लिया है। किन्तु टीका की आनुपूर्वी व्याख्या नहीं की है। केवल मूल श्लोकों के हार्दभावों को प्रकट करने का प्रयत्न किया है। यत्र तत्र सम्प्रदाय सिद्धान्त के अनुरूप नई उद्भावना की है।

कुछ लोगों ने यह लिखने का भी दुःसाहस किया है कि क्रमदीपिका केशवकाश्मीरि कृत नहीं हैं, क्योंकि उसमें वशीकरण आदि कई प्रयोगों का वर्णन है। या तो दीक्षित होने के पूर्व की रचना हो सकती है। उपर्युक्त पंक्तियों से लगता है उन लोगों ने क्रमदीपिका पढ़ी नहीं है। गुरु के लक्षण में स्पष्ट उल्लेख है- कि "श्वेतोर्ध्वपुण्ड्ज्वलन्" जो सीधे निम्बार्क तिलक को बता रहा है।

तृतीय पटल में किया गया श्रीधाम वृन्दावन का लोकोत्तर वर्णन को देखकर कौन यह कहने का साहस करेगा कि काश्मीरि निम्बार्क वैष्णव नहीं थे। श्रीनिम्बार्ककृत प्रातःस्तव के अनुरूप ही तो वर्णन है।

रहा विभिन्न प्रयोगों के वर्णन का प्रसंग वह तो मन्त्र शक्ति प्रभाव परक है। मन्त्रों की शक्ति असीम है। साधक चाहे जिसके लिए भी मन्त्रों का विनियोग कर सकता है। इसलिए तो श्रीकाश्मीरिजी ने कहा है "अखिल मनुषु मन्त्रा वैष्णवा वीर्यवन्त."। जैसे श्रीकृष्ण शक्तिमान् हैं वैसे मन्त्र भी शक्तिमान् ही है। मन्त्र शक्ति प्रतिपादन करने में ही उनका विनियोग है।

सचमुच अपने आप में क्रमदीपिका एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जैसा कि ग्रन्थकार ने कहा है। क्रमदीपिका प्रत्येक साधक को सदैव मनन करना चाहिये।

मनुष्यों को दो वस्तु आवश्यक हैं। एक लौकिक अभ्युदय, दूसरी पारमार्थिक श्रेयः। क्रमदीपिका में ऐसे सरलतम प्रयोग हैं, साधक जो चाहे थोड़े परिश्रम से वह प्राप्त कर सकता है। जिस उपासना से लौकिक अभ्युदय होता है उसी से भगवत्प्राप्ति भी होती है, क्योंकि लौकिक अभ्युदय के लिए श्रीकृष्ण ही उपास्य हैं, परमार्थतत्व भी तो आखिर श्रीकृष्ण ही हैं। सकाम उपासना से ही निष्काम उपासना की सिद्धि होती है। यह ही इस ग्रन्थ की विशेषता है। जो कुछ भी इस हिन्दी व्याख्या में अच्छाई है, वह आचार्यों की है, जो त्रुटि है वह मेरी है। साधकों से निवेदन है कि एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

विनयावनत

हरिशरण उपाध्याय

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरुनिम्बार्काचार्य

श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी

महाराज विरचित–

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य-पञ्चश्लोकी

कृपाकोषसर्वेश्वरे दत्तचित्तं
व्रजे दिव्यकुञ्जे सदा शोभमानम् ।
श्रुतिज्ञान-विज्ञानविज्ञं रसज्ञं
भजे केशवाचार्यकाश्मीरिभट्टम् ।।१।।

प्रियं गाङ्गलाचार्यभट्टेशशिष्यं
प्रियाचार्यनिम्बार्कपीठाधिरूढ़म् ।
बुधैः शास्त्रविज्ञै र्हृदा सेव्यमानं
भजे केशवाचार्यकाश्मीरिभट्टम् ।।२।।

बुधं तन्त्रविद्याप्रवीणं प्रसन्नं
सुराराध्यराधामुकुन्दाङ्घ्रिमग्नम् ।
महाभाष्यरूपप्रभावृत्तिकारं
भजे केशवाचार्यकाश्मीरिभट्टम् ।।३।।

व्रजे भानुजायाश्च विश्रामकूले
महाम्लेच्छतन्त्रस्य संहारकारम् ।
असीमप्रभावं तमानन्दरूपं
भजे केशवाचार्यकाश्मीरिभट्टम् ।।४।।

पुराणार्थवेदान्तशास्त्रार्थदक्षं
वरं विश्वजेतारमाचार्यवर्यम् ।
स्वराष्ट्राऽऽर्तकल्याणसम्बद्धकक्षं
भजे केशवाचार्यकाश्मीरिभट्टम् ।।५।।

काश्मीरिकेशवस्तोत्रं सिद्धिदं मोदसंप्रदम् ।
राधासर्वेश्वराद्येन शरणान्तेन निर्मितम् ।।

श्रीसर्वेश्वरो जयति

– भूमिका –

यो वंशी कलनादमोहितजगत् स्वाधीन पुष्पायुधो
राधाप्रेमसुधाब्धिगाहनपटुर्यः कृष्ण आनन्ददः ।
गोविन्दः श्रुतितन्त्रवेद्यमहिमो यो गोपबालोहरि-
स्तं गोपीजनवल्लभं रसनिधिं सर्वात्मनाहं भजे ।।

जो वंशी के मनोहर निनाद से चराचर जगत् को मोहित करते हैं और त्रिभुवन विजयी कामदेव को जिन्होंने अपने वश में कर रखा है, (क्लीं) जो सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण अपनी प्रेमाधिष्ठात्री आह्लादिनी शक्ति श्रीराधिका के अनुरागसागर में अनवरत अवगाहनशील हैं, (कृष्णाय) निगम और आगम आदि शास्त्रों से हो जानने योग्य है महिमा जिनकी, जो नन्दगोप के पुत्ररूप में प्रकट होकर शरणागतजनों के पाप ताप सहित मन का हरण करते हैं, (गोविन्दाय) समस्त जीव समूह रूप गोपीजनों के प्रियतम उन रसात्मक परब्रह्म परमात्मा का मैं सर्वात्म भाव से भजन करता हूँ अर्थात् सर्मपित होता हूँ। (गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा)।

उपर्युक्त वाक्यों से गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्रराज का भाव व्यक्त किया गया है। "मन्त्रात्मा देवता" के अनुसार मन्त्र और आराध्य देव में ऐक्यभाव रखते हुए अपने अपने इष्टदेव की उपासना करनी चाहिए ऐसी आचार्यों की आज्ञा है।

निगम और आगमः–

निगम का अर्थ "वेद" तथा आगम का अर्थ "तन्त्र" है। वेदों में कर्म, उपासना, ज्ञान ये तीन काण्ड हैं। कर्मकाण्ड में अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुसोम आदि अनेकविध यज्ञों का सविधि वर्णन

है। उपासनाकाण्ड भक्तिपरक, और ज्ञानकाण्ड सिद्धान्तपरक है। इन तीन विषयों के कारण वेदों को "त्रयी" कहते हैं। वेद के उपासनाकाण्ड में देवाराधन की जो विधि संक्षिप्त रूप में वर्णित है उसी का आगम (तन्त्र) में विस्तार से विवेचन किया गया है। आगम शास्त्र वेद मूलक व क्रियात्मक होने से उनकी लोकोत्तर महिमा है। साध्योपलब्धि के लिए साधन की परमावश्यकता है। साध्य-साधन का तात्त्विक वर्णन तन्त्र शास्त्र में देखने को मिलता है। तन्त्रोक्त विधि से साधन करने पर व्यक्ति को अणिमादि सिद्धियां स्वतः प्राप्त होती हैं। पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के साथ निरवधि परम दिव्यानन्द की प्राप्ति करना तन्त्र विद्या का मूल उद्देश्य है।

मुख्यतः आगम तीन प्रकार के हैं—शाक्तागम, शैवागम और वैष्णवागम। प्रकारान्तर में सात्विक-राजस-तामस के भेद से इसकी त्रिविधता बताई गई है। वैष्णवागम सात्विक आगम है। प्रस्तुत प्रसङ्ग वैष्णवागम के अन्तर्गत है अतः उसी की चर्चा यहां पर की जा रही है। जिस प्रकार भगवान् श्री हरि के निःश्वास भूत अपौरुषेय वेद स्वतः प्रमाण हैं उसी प्रकार साक्षात् भगवदुपदिष्ट आगम शास्त्र भी परम प्रमाण हैं। अतः निगमागम का साजात्य सम्बन्ध है।

पञ्चरात्रः—

"पञ्चरात्र" आगम का मूर्तरूप माना गया है। स्वयं भगवान् नारायण ने पांच दिव्य रात्रियों में क्रमशः शेष, खगेश, विश्वक्सेन, ब्रह्मा और रुद्र को जो उपदेश दिया वही पञ्चरात्र है। वस्तुतः रात्र शब्द का अर्थ ज्ञान है, वह वैषयिक, यौगिक, भक्तिप्रद, मुक्तिप्रद, एवं तत्व के भेद से पांच प्रकार का है। (रात्रं तु ज्ञान वचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्) महाभारत मे पञ्चरात्र को सर्ववेदसमन्वित महोपनिषद् की संज्ञा दी है, (इदं महोपनिषदं सर्ववेद समन्वितम्)। इसके अतिरिक्त पञ्चरात्र के लिए शास्त्र, तन्त्र, आगम, संहिता आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

नारद पञ्चरात्र में ब्रह्म, शैव, वशिष्ठ, कपिल, गौतमीय, कौमार और नारद ये सात पञ्चरात्रों के नाम उल्लिखित हैं। देवों और ऋषियों की उपदेश परम्परा के विस्तार से तन्त्र शास्त्र का कलेवर अति विशाल हुआ। वैष्णव चतुःसम्प्रदाय में गौतमीय तन्त्र व नारद

पञ्चरात्र का विशेष समादर है। सम्प्रदायाचार्यों ने इन्हीं दो तन्त्र ग्रन्थों के आधार पर उपासना विधि, मन्त्रोद्धार न्यास, ध्यान जप, पूजा प्रयोग, चर्या आदि का मौलिक विवेचन किया है। "क्रमदीपिका" इसी कड़ी का एक प्रामाणिक तन्त्र ग्रन्थ है। इसके विषय वस्तु का निरूपण हम आगे करेंगे।

तन्त्र विद्या वेद मूलक होने से मोक्षसाधिका है, किन्तु आज उसका प्रयोग व उपयोग भौतिक सुख के निमित्त किया जाने लगा है। धन, वैभव, पद, प्रतिष्ठा और लौकिक ख्याति के लालच में अशास्त्रीय रीति से जो लोग मारणोच्चाटन वशीकरण आदि तान्त्रिक प्रयोगों को सिद्ध करते हैं वे ही आज सिद्ध तान्त्रिक बने हुए हैं। इन तान्त्रिकों से देश व समाज के अबोध व्यक्ति तो क्या प्रबुद्धजन भी प्रभावित हो जाते हैं, आखिर उन्हीं से ठगे भी जाते हैं। इस प्रकार वे अपना स्वार्थ तो सिद्ध कर ही लेते हैं, साथ ही अपने पीछे एक अनपेक्षित तान्त्रिक परम्परा छोड़ जाते हैं। इसी कारण "तान्त्रिक" शब्द आज गर्हित अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। एवं विध तन्त्र का तो क्या शक्त्युपासना में कौलाचार के अनुसार पशु बलि आदि का विधान शास्त्रीय होने पर भी मुमुक्षु के लिए तो वह शाक्तागम भी त्याज्य है।

यद्यपि क्रमदीपिका जैसे सात्विक वैष्णवागम में भी मारणोच्चाटन वशीकरण आदि का सविधि प्रयोग वर्णित है अतः मुमुक्षु को यह भी त्याज्य होना चाहिए, तथापि यहां पर ये प्रयोग भगवच्चिन्तन परक एवं आत्म रक्षार्थ विहित होने से त्याज्य नहीं हो सकते। जैसे मारण प्रयोगः—

"आत्मानं कंसमथनं ध्यात्वा मञ्चान्निपातितम्। कंसात्मानमरिं कर्षन् गतासुं प्रजपेन् मनुम्। अयुतं जुहुयाद् वास्य जन्मोरुतरुतर्पणैः। अपि सेवितपीयूषो म्रियतेऽरिर्न संशयः। इत्यादि

(क्र. दी. प. षष्ठ, श्लो. ६४-६५)

वैष्णव सम्प्रदायः—

सम्प्रदाय का अर्थ अनादि वैदिक सिद्धान्त व उपासना की अविच्छिन्न परम्परा है। अमरकोषकार ने सम्प्रदाय शब्द का पर्याय आम्नाय दिया है, अर्थात् सम्प्रदाय, आम्नाय ये दोनों शब्द एकार्थ वाचक हैं। आम्नायानुयायी शास्त्रज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु से विधिवत्

पञ्च संस्कार (उद्र्ध्वपुण्ड्र, शंखचक्र, तुलसीकण्ठी, भगवत्परकनाम एवं मन्त्रोपदेश) द्वारा दीक्षित होकर विष्णु की आराधना करने वाला व्यक्ति "वैष्णव" कहलाता है। दीक्षा शब्द का अर्थ भी गौरवमय है। (दीयते ऐश्वरं ज्ञानं क्षीयते पाप पञ्जरः। आप्यते वैष्णवं धाम तस्माद्-दीक्षोच्यते बुधैः) जिस विधि में सद्गुरु द्वारा शिष्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया जाता है, जिससे मुमुक्षु जीव के जन्म जन्मान्तरीय पाप-पुञ्ज नष्ट होते हैं और अन्त में भगवद् भावापत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। उस विधि को दीक्षा कहते हैं।

यदि किसी ने शास्त्रों का अनुशीलन करके पर्याप्त ज्ञान एवं भक्ति-भाव को प्राप्त कर लिया हो किन्तु सम्प्रदाय परम्परागत सद्गुरु से मन्त्रदीक्षा ग्रहण नहीं की हो तो वह भक्त होते हुए भी वैष्णव नहीं कहलायेगा "न मद्भक्तोऽपि वैष्णवः" कह कर भगवान् श्रीकृष्ण ने ही भक्त और वैष्णव का अन्तर बतलाया, अर्थात् केवल भक्त की अपेक्षा वैष्णव भक्त का उत्कर्ष दर्शाया है। 'सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मता" दीक्षारहित के मन्त्र फलदायक नहीं होते, अतः दीक्षा परमावश्यक है। "ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः। ये वै ललाटपटलेलसदूर्द्ध्व पुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति।" जिनके कण्ठ में तुलसी-मणियों की माला सुशोभित हो, जिनके भुजदण्ड भगवान् के दिव्यायुध शंखचक्र से अंकित हों, जिनके ललाट में गोपीचन्दन से हरिपादा कृति उद्र्ध्वपुण्ड्र तिलक विराजमान हो ऐसे उत्तम वैष्णवजन भूतल में जहां जहां भी विचरण करते हैं उसे पवित्र बनाते हैं। शास्त्रों में इस प्रकार वैष्णवों की लोकोत्तर महिमा वर्णित है।

जिस प्रकार गौ के चारों थनों से सुमधुर दुग्ध की अमृतमयीधारा समान रूप में निर्झरित होती है उसी प्रकार चारों वैष्णव सम्प्रदायाचार्यों के माध्यम से भक्ति भागीरथी की अजस्रधारा प्रवाहित होती रहती है। लोक जीवन को भक्तिमय बनाना इनका एकमात्र लक्ष्य है। वैष्णव परम्परा में श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनक ये चार सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक माने गये हैं।

श्रीब्रह्मरुद्रसनकाः सम्प्रदाय प्रवर्तकाः।
ततः कलौ भविष्यन्ति वैष्णवाः क्षितिपावनाः॥

सम्प्रदाय सिद्धान्त तथा उपासना के विस्तार हेतु समय समय में भूतल पर भगवत्पार्षदों का आचार्यरूप में आविर्भाव हुआ है। उन्होंने तत् तत्कालिक परिस्थिति एवं सामाजिक मान्यता को ध्यान में रखकर लोक मङ्गलकारी वैष्णव धर्म, सिद्धान्त, उपासना आदि का प्रवर्तन व प्रवर्धन किया है। प्रायः सभी आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी (ब्रह्म सूत्र, उपनिषद्-गीता) पर स्वस्व सिद्धान्तानुरूप भाष्यों की रचना की है।

उपर्युक्त सनक सम्प्रदाय को हंस सम्प्रदाय भी कहते हैं, क्योंकि श्रीहंस भगवान् ने ही महर्षि सनकादिकों को सर्वप्रथम ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था। 'नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः। सम्प्राप्तः सनकाद्यैस्तु – इत्यादि शास्त्र वचन प्रमाण है। एक बार सनकादि महर्षियों ने अपने पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया "गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि सम्भवाः। कथमन्योन्यसं त्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः" चित्त त्रिगुणात्म विषयों में प्रविष्ट (लिप्त) है और तीनों गुण चित्त में समुद्भूत होते हैं, इनका एक दूसरे से पृथक् भाव कैसे होगा? जब तक मन विषयों से अलग नहीं होगा तब तक संसार-बन्धन से मुक्त होकर साधक भगवद् भाव को प्राप्त नहीं हो सकेगा।

इस गूढ प्रश्न का उत्तर स्वयं न देकर प्रजापति ब्रह्मा ने श्रीहरि का स्मरण किया। प्रभु उसी समय हंस रूप में प्रकट हो गये। महर्षियों ने उनकी स्तुति की और अपनी जिज्ञासा प्रभु के समक्ष रखी। भगवान् ने उनके प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया। हे मुनीश्वरो! जिस प्रकार काष्ठ में छिपी हुई अग्नि अरणि मन्थन से प्रकट होकर उसी को भस्मसात् कर देती है, जिस प्रकार खान से निकला स्वर्ण रजत आदि धातु अग्नि संस्कार से देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार विषयों में संश्लिष्ट व लीन मन भी सत्संगति साधन युक्त गुरूपदिष्ट ब्रह्म विद्या के सतत चिन्तन से शनैः शनैः निर्विकार हो जाता है। भक्तिरस संसिक्त होने पर जीव भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रहस्यमय उत्तर पाकर सनकादिक कृतकृत्य हो प्रभु के शरणागत हुए। तदनन्तर उन्हें पञ्चपदी ब्रह्म विद्या का उपदेश देकर उनके व ब्रह्माजी के देखते-देखते श्रीहंस भगवान् अन्तर्हित हो गये। उसी ब्रह्म विद्या (गोपाल मन्त्र) का उपदेश सनकादिकों ने शरणागत देवर्षि नारदजी को दिया। श्रीनारदजी ने श्रीनिम्बार्काचार्य को मन्त्रोपदेश सहित श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्रदान की।

वैष्णव चतु:सम्प्रदाय में श्रीनिम्बार्काचार्य परम प्राचीन आचार्य हैं। आप सुदर्शन चक्र के अवतार रूप में भूतल पर प्रकट हुए। "सुदर्शन महाबाहो ! कोटिसूर्यसमप्रभ । अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय" हे महाबाहो सुदर्शन ! आप करोड़ों सूर्य के समान तेजो राशि हैं, अज्ञानरूपी अन्धकार से आवृत होने के कारण भगवत्तत्व से अनभिज्ञ जीवों को भक्ति ज्ञान के प्रकाश द्वारा मेरे दिव्य गोलोक धाम का निरापद मार्ग दिखाओ, ऐसी गोलोक विहारी भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर चक्रराज सुदर्शन दक्षिण भारत के गोदावरी तटस्थ वैदूर्य पत्तन (मूंगोपैठन) में मनुज रूप से आविर्भूत हुए। आपके पिता का नाम महर्षि अरुण और माता का नाम जयन्ती था। बाल्यावस्था का आपका नाम नियमानन्द था। आपके आविर्भाव का समय प्राच्य नव्य मतों से भिन्न-भिन्न माना गया है। प्राच्य मत में भविष्य पुराण के अनुसार युधिष्ठिर संवत् ६ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा निर्धारित है। जो इस समय लगभग पांच हजार नव्वे वर्ष होते हैं। सम्प्रदाय परम्परा से यही मान्यता चली आ रही है। नवीन मत में समालोचनात्मक ऐतिह्य के आधार पर ईस्वीय छठी शताब्दी मानते हैं। इस प्रकार वैष्णवाचार्यों में ही नहीं आद्य शंकराचार्य से भी आप पूर्ववर्ती हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य ने स्वरचित ग्रन्थों में कहीं भी श्रीशंकराचार्य के सिद्धान्त का उल्लेख नहीं किया जबकि परवर्ती आचार्यों ने शांकर मत की पर्याप्त रूप में समीक्षा की है। शांकर भाष्य में द्वैताद्वैत सिद्धान्त की समीक्षा की गयी है। प्राय: लोग कहते हैं शंकर ने अद्वैत और माध्व ने द्वैत मत का प्रतिपादन किया है श्रीनिम्बार्क ने दोनों से भिन्न मध्य मार्ग द्वैताद्वैत लिया। समय के पूर्वापर का विचार किये विना अटकलबाजी से कही हुई इन बातों पर पाठकों को ध्यान नहीं देना चाहिए। श्रीनिम्बार्काचार्य ने शास्त्रों में स्वत: स्फूर्त द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रवर्तन किया है।

श्रीनियमानन्दजी को जब तीर्थ यात्रियोंद्वारा व्रजभूमि का परिचय मिला तो आप अपने माता-पिता के साथ उत्तर भारत ब्रज में पधारे। भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन आदि को देखकर आप परम आह्लादित हुए। गोवर्धन की उपत्यका में रहकर आपने अध्ययन एवं तपश्चर्या आरम्भ की। यहीं पर देवर्षि नारदजी ने आपको वैष्णवी दीक्षा देकर शालग्राम स्वरूप श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्रदान की। जो आचार्य परम्परा से प्राप्त आज भी श्रीनिम्बार्काचार्य-

पीठ में पूजित हैं। आपकी तप:स्थली आज निम्बग्राम के नाम से विख्यात परम्परागत ऐतिहासिक स्थल है। जहां हाल ही में भव्य मन्दिर का निर्माण होकर श्रीनिम्बार्क राधाकृष्ण बिहारी भगवान् की सेवाराधना चल रही है।

आपकी अनुपम प्रतिभा से तत्कालीन शास्त्रार्थ जिज्ञासु विद्वान् आपके समक्ष पहुंचने पर हतप्रभ हो जाते थे। एक बार स्वयं ब्रह्मा ने दिवाभोजी यति के रूप में आश्रम में पादार्पण किया। शास्त्रचर्चा में समयातिक्रम होने से सन्ध्या हो चली थी, नियमानन्द ने यति से प्रसाद ग्रहण करने हेतु निवेदन किया तो यति ने कहा हम सूर्यास्त के बाद प्रसाद ग्रहण नहीं करते। नियमानन्द समझ गये यह मेरी परीक्षा ले रहे हैं। तत्काल अपने दिव्य स्वरूप सुदर्शन का आवाहन किया, आश्रमस्थ निम्बवृक्ष के ऊपर सूर्य का तेजो मण्डल दिखाई दिया सर्वत्र दिन का प्रकाश हुआ। यति ने भोजन कर जब आचमन किया तब पुन: अन्धकारपूर्ण रात्रि। इस अलौकिक प्रभाव को देखकर अपना वास्तविक रूप प्रगट करके ब्रह्माजी ने कहा मुनिवर ! आपने अर्कबिम्ब को निम्ब-वृक्ष पर दर्शाकर मेरा भ्रम दूर किया है, अत: आज से आपका नाम "निम्बार्क" रहेगा और आप द्वारा प्रतिपादित दर्शन व सम्प्रदाय श्रीनि-म्बार्क नाम से प्रसिद्ध होगा। ऐसा कह कर ब्रह्मदेव अर्न्तहित हो गये। इसी तप:स्थली में रहकर आपने शास्त्रों में स्वत: स्फूर्त स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रस्थानत्रयी के भाष्यों व मौलिक रचनाओं में प्रतिपादित किया। आप द्वारा रचित ग्रन्थ हैं:—

(१) वेदान्त पारिजात सौरभ (ब्रह्मसूत्र भाष्य)

(२) गीता वाक्यार्थ (अप्राप्य)

(३) प्रपन्न कल्पवल्ली (शरणागति मंत्रार्थ)

(४) मन्त्ररहस्य षोडशी (गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्रार्थ)

(५) सदाचार प्रकाश

(६) वेदान्त कामधेनु (दशश्लोकी)

अन्य प्रात: स्मरणादि स्तोत्र प्रसिद्ध हैं। आपके शिष्यों में वेदान्त कौस्तुभ भाष्यकार—श्री श्रीनिवासाचार्य, श्रीऔदुम्बराचार्य, श्रीगौर-मुखाचार्य ये तीन प्रसिद्ध हैं। आपने सम्पूर्ण भारत की यात्रा करते हुए वैष्णव धर्म का प्रचुर प्रचार किया।

सिद्धान्तः-

श्री निम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त स्वाभाविक द्वैताद्वैत अथवा स्वाभाविक भेदाभेद है। श्रुतियों में "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" "नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधातिकामान्" "अणोरणीयान् महतो महीयान्" इत्यादि वचनों से चर-अचर अर्थात् जीव जगत् की ब्रह्म से स्वाभाविक भिन्नता दिखाई देती है, इसी प्रकार "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "नेह नानास्तिकिञ्चन" "अयमात्मा ब्रह्म" "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि वचनों से चराचर विश्व प्रपञ्च की ब्रह्म से अभिन्नता भी प्रतीत होती है। सभी श्रुतियां अपने अपने विषयों में सबल एवं सार्थक हैं। उनमें बाध्य-बाधक भाव और अर्थवाद स्वीकार करना उचित नहीं है। अतः दोनों का समन्वय करके स्वाभाविक द्वैताद्वैत और भेदाभेद मानना शास्त्र सम्मत एवं युक्ति संगत भी है। इसी स्वतः स्फूर्त स्वाभाविक द्वैताद्वैत को स्वीकार करके ब्रह्म की स्वतन्त्र सत्ता तथा जीव को तदधीन स्थिति प्रवृतिक माना गया है। जीवात्मा का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए आपने कहा "ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीर संयोग-वियोग योग्यम्। अणु हिजीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्त माहुः।" ब्रह्म सूत्रों में "उभयव्यपदेशात्त्वहि कुण्डलवत्" "प्रकाशाश्रयवद् वा तेजस्त्वात्" इन सूत्रों द्वारा स्वाभाविक भिन्नाभिन्नत्व दर्शाया है। सूर्य और प्रकाश में अभिन्नता होते हुए भी भिन्नता स्वरूपतः प्रतीत होती है। सर्प कुण्डल में भी स्वरूपतः भिन्नता होते हुए कुण्डल की स्थिति प्रवृत्ति सर्पाधीन है। इसी प्रकार प्रपञ्च का ब्रह्म के साथ उभयविध सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" कह कर अंशांशी भाव से भेदाभेद स्पष्ट किया है। यही श्री निम्बार्काचार्यजी का दार्शनिक सिद्धान्त है। स्वरचित ग्रन्थों में किंवा परवर्ती आचार्यों ने अपने विस्तृत भाष्य एवं व्याख्या ग्रन्थों में इस सिद्धान्त का विपुल विवेचन किया है।

उपासनाः-

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में उपासना (भगवदाराधना) पर विशेष बल दिया जाता है। दिव्य वृन्दावन के निभृत निकुञ्ज में अनन्त सहचरी वृन्द (सखी वृन्द) से सुसेवित नित्य किशोर वय श्यामाश्याम

श्रीराधा कृष्ण युगल स्वरूप की स्वयं सहचरी भाव धारण कर उपासना करने का भगवन्निम्बार्काचार्य ने उपदेश दिया है। श्रीकृष्ण समस्त दोष रहित, निखिल कल्याण गुण राशि, व्यूहों व अवतारों के अङ्गी, कमल दल लोचन, सबके वरणीय परम मनोहर श्याम विग्रह परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। श्रीराधा गौर तेज से भिन्न प्रतीत होती हुई, अपने प्रतिबिम्ब रूप अनन्त सहचरियों से सेवित अनुरूप सौभाग्य से युक्त, देदीप्यमान, भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रेमाधिष्ठात्री आह्लादिनी शक्तिरूपा श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में अति प्रसन्न मुद्रा से विराजमान हैं।

"स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

श्रीराधा कृष्ण लीला विहार में दो (स्त्रीत्व-पुरुषत्व) रूप से पृथक् होने पर भी तत्वतः एक ही ब्रह्मरूप हैं। अतएव "एकं ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधव रूपकम्" "येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिः देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्" इत्यादि शास्त्र प्रमाणों से श्रीराधा कृष्ण में स्वाभाविक भिन्नाभिन्नत्व सिद्ध हो जाता है जो सम्प्रदाय का अत्यन्त गूढ़ विषय है। इसी उपास्यरूप साध्य की सिद्धि के लिए पूर्वोक्त गौतमीय तन्त्रादि आगम शास्त्र निर्दिष्ट पद्धति से विविध न्यासादि सहित साधन तत्त्व के प्रयोग, प्रस्तुत 'क्रमदीपिका' ग्रन्थ में आचार्य प्रवर श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यजी ने विशद रूप में निर्दिष्ट किये हैं। क्रमदीपिका के तृतीय पटल श्लोक सं. १-३ तक वृन्दावन का, श्लोक ४ में कल्पवृक्ष एवं श्लोक ५ में मणिमय योगपीठ का जो स्वरूप वर्णित है उसी का विस्तार आदिवाणीकार श्री श्रीभट्टदेव रचित युगल शतक एवं रसिक राजराजेश्वर श्रीहरिव्यास देवाचार्य विरचित महावाणी ग्रन्थों में है। इन वाणी ग्रन्थों के माध्यम से आचार्यों ने उपासना का जो महनीय रूप अभिव्यक्त किया है वह वस्तुतः आराध्य के अपरोक्ष साक्षात्कार द्वारा अनुभूत अन्तरङ्ग लीला विलास का मूर्तिमान् स्वरूप है। मानसिक रूप में भगवल्लीलाओं का निरन्तर चिन्तन करना इस उपासना का चरमोत्कर्ष है। तृतीय पटल के श्लोक ६ से ३१ तक श्रीकृष्ण के ध्यान का जो वर्णन है वह अनुपम व अत्यन्त मनमोहक है।

ग्रन्थकारः–

क्रमदीपिका ग्रन्थ के रचयिता जगद् विजयी श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्य का जन्म तैलङ्गदेशीय उसी मूंगी पैठण के ब्राह्मण कुल में हुआ जिसमें सुदर्शन चक्रावतार, आद्य निम्बार्काचार्य का आविर्भाव हुआ था। आपके माता-पिता एवं समय आदि का पूर्ण परिचय उपलब्ध नहीं होता। फिर भी ऐतिह्य के आधार पर आपके आविर्भाव का समय ईस्वी सन् की तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चय किया गया है। अलाउद्दीन खिलजी का शासन काल १२९६ से १३२० ई० तक माना गया है। कहते हैं उस समय तक आपकी ख्याति दिग्दिगन्त में व्याप्त हो चुकी थी। स्वयं बादशाह भी आपसे तरस खाता था। आपकी अप्रतिहत मेधा शक्ति, मन्त्र सिद्धि के समक्ष बड़े-बड़े विद्वान् व तान्त्रिक हतप्रभ हो जाते थे।

बाल्यावस्था से ही विद्याध्ययन के साथ भगवद् भक्ति की निर्मल धारा आपके अन्तर्मानस में अविरल प्रवाहित होने लगी थी। जिस प्रकार प्रभाव, उत्साह, मन्त्र इन तीन शक्तियों के बल पर चक्रवर्ती सम्राट् देश में अकण्टक राज्य करता है उसी प्रकार मेधा विद्या मन्त्र-सिद्धि के प्रभाव से विपक्ष का मुख मर्दन करते हुए, आपने सनातन वैदिक धर्म एवं सत्सम्प्रदाय सिद्धान्त का दिव्य प्रकाश आसेतु हिमालय प्रसारित किया।

प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा के पश्चात् आचार्य प्रवर ने देश भ्रमण के बहाने वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार प्रारम्भ किया। आप दक्षिण भारत के श्रीरङ्गम्, वैंकटाचल, तोताद्री, काञ्ची आदि तीर्थों से लेकर द्वारका, पुष्कर, कुरुक्षेत्र होते हुए, काश्मीर प्रदेश में पधारे। वहां पर दीर्घकाल तक निवास कर शास्त्रों की रचना की। अधिक समय काश्मीर में रहने से आपके नाम में काश्मीरि शब्द जुड़ गया। उस समय एक ओर तो सम्पूर्ण भारत राष्ट्र में मुगलों का प्रचण्ड शासन चल रहा था और दूसरी ओर बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आसाम आदि प्रदेशों में शाक्तमत का बाहुल्य था। जिससे सनातन औपनिषद् सिद्धान्त का ह्रास हो रहा था। मुसलमान फकीरों द्वारा अपनी तान्त्रिक सिद्धि के बल पर हिन्दु धर्मावलम्बी सन्त, महात्मा, विप्रजन सताये जा रहे थे। वैष्णवता लुप्त होती जा रही थी। यह देखकर आचार्य प्रवर ने नानाविध पैशाचिक

सिद्धियों को नष्ट करके विशुद्ध वैष्णव धर्म का सर्वत्र प्रचार करने का दृढ़ संकल्प लिया। वैष्णव तन्त्र के आधार पर एक ओर आपने चक्रराज सुदर्शन का आवाहन कर यावनी तन्त्र शक्ति का शमन किया। दूसरी ओर तीन बार समस्त देश में भ्रमण करके शास्त्रार्थ में, वैष्णव विरोधी जनों का परास्त करते हुए लोक मङ्गलकारी वैष्णव धर्म का प्रसार किया। एतदर्थ आप जगद् विजयी कहलाये।

एक बार मथुरा में किसी मुगल फकीर ने प्रधान द्वार पर ऐसा यन्त्र टांग दिया जिसके नीचे से निकलने वाले हिन्दु के शिखा सूत्र आदि चिह्न गायब हो जाते, शरीर में इस्लाम के चिह्न आ जाते। इससे हिन्दु जनता त्रस्त होने लगी। आचार्यश्री को जब यह विदित हुआ तब तुरन्त मथुरा पधारे। तत्कालीन शासनाधिकारियों को समझाया यह अत्याचार रोका जाय। किन्तु वे जब नहीं माने तो "शठे शाठ्यं समाचरेत्" की नीति से आपने उसी यन्त्र के ऊपर सूर्य यन्त्र स्थापित कर दिया। अब तो जो भी मुसलमान दरवाजे से निकलता उसके शरीर में आग लगती, उसके सम्पर्क में जो आवे उसको भी अग्नि सताने लगती, इससे सारे नगरवासी मुसलमान घबराये, त्राहि-त्राहि करते हुए आचार्यश्री के चरणों में गिरे। भविष्य में किसी को किसी प्रकार नहीं सताने की वचन बद्धता कराकर उन्हें क्षमा कर दी। ऐसे अनेक प्रभाव पूर्ण आपके चरित प्रसङ्ग हैं। मथुरा में आप ध्रुव टीला पर विराजते थे। गिरिराज की तलहटी में भी आपने वर्षों तक तपः साधन किया था। आपकी यात्रा में हजारों की संख्या में सन्त, महात्मा, विद्वान् भक्तजन साथ चलते थे। आपके रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—

१—वेदान्त कौस्तुभ प्रभावृत्ति (ब्रह्म सूत्र स्वसिद्धान्त परक भाष्य जो अत्यन्त वैदुष्य पूर्ण है)

२—गीता तत्व प्रकाशिका (श्रीभगद्भगवद् गीता पर द्वैताद्वैत सिद्धान्त परक व्याख्या)

३—भागवती व्याख्या (वेद स्तुति पर सैद्धान्तिक व्याख्या)

४—क्रमदीपिका (वैष्णवागम का मौलिक ग्रन्थ)

५—केशव शरणापत्ति स्तोत्र (भगवत्स्तुति) आदि

आपके शिष्यों में श्री श्रीभट्टदेवजी परम्परागत पीठ के उत्तराधिकारी आचार्य हुए। जिन्होंने निकुञ्जरस तथा व्रजरस परक आदिवाणी श्रीयुगल शतक की रचना की जिसका प्रथम पद है—

मदन गोपाल शरण तेरी आयो ।

एक अन्य शिष्य श्रीसङ्कर्षणशरणदेवजी भी परम प्रसिद्ध विद्वान् थे । इन्होंने "वैष्णवधर्म सुरद्रुम मञ्जरी" नामक ग्रन्थ की रचना की जो निम्बार्क सम्प्रदाय के व्रत, उपवास, सिद्धान्त आदि का बेजोड़ ग्रन्थ है । आपकी प्रशस्ति में कहा गया है ।

वागीशा यस्य वदने हृत्कञ्जे श्रीहरिः स्वयम् ।
यस्यादेशकरा देवा मन्त्रराजप्रसादतः ।

जिनके मुख में सरस्वती, हृदय में श्रीहरि विराजमान हैं और मन्त्रराज की कृपा से सूर्यादि देव भी जिनके आदेश का पालन करते हैं (उनकी सदा जय हो)।

आचार्य परम्परा में आप श्रीहंस भगवान् से ३३ वीं तथा श्री-निम्बार्क भगवान् से ३० वीं पीढ़ी में विद्यमान थे । पूर्व में बताया गया है कि आपका समय तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित है । इति-हासकारों ने "चैतन्य चरितामृत" के आधार पर पन्द्रहवीं शताब्दी के श्रीचैतन्य महाप्रभु के साथ किसी केशवभट्ट का शास्त्रार्थ होना व उनसे पराजित होने की घटना को जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य को १५ वीं शताब्दी का बताकर इनसे सम्बद्ध किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रम पैदा करने वाला है । स्व० आचार्य श्रीबलदेवजी उपा-ध्याय ने अपने "भारतीय दर्शन" ग्रन्थ के पृष्ठ ४०८ पंक्ति ५ पर "चैतन्य के साथ जिस केशवभट्ट के शास्त्रार्थ करने का वर्णन 'चैतन्य-चरितामृत' में दिया गया है वे ये ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं" लिखा है।

इसी पृष्ठ की पंक्ति ७ में लिखा है—"श्रीपुरुषोत्तमाचार्य निम्बार्क मत के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित विद्वान् आचार्य हैं । ये श्रीहरिव्यास-देवाचार्य के शिष्य थे ।"

वास्तविकता तो यह है कि-श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी श्रीनिम्बार्काचार्य से चौथी पीढ़ी के आचार्य हैं । जिन्होंने निम्बार्काचार्य प्रणीत वेदान्त दशश्लोकी पर वेदान्तरत्न मञ्जूषा नामक विस्तृत व्याख्या लिखी है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी श्रीनिम्बार्क से ३२ वीं पीढ़ी के आचार्य हैं। उधर श्रीकेशवभट्ट व चैतन्य में लगभग १२० वर्ष का अन्तराल है। इस प्रकार पूर्वापर की विसङ्गति से सम्प्रदायाचार्यों की ऐतिहासिक

क्रमबद्ध परम्परा उच्छिन्न हो जायेगी जो एक महान् विषाद का विषय है ।

विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि इस विसङ्गति की ओर ध्यान न देकर उन्हें आचार्यों की क्रमबद्ध अविच्छिन्न परम्परा का अनुसरण करना चाहिए । इस प्रकार प्रसङ्गवश आचार्य प्रवर के जीवनवृत्त का संक्षिप्त विवरण लिखा गया ।

क्रमदीपिकाः—

क्रमदीपिका वैष्णवागमका प्रामाणिक ग्रन्थ है । इसमें लगभग ७०० श्लोक हैं । विषय वस्तु की प्रस्तुति क्रमशः आठ पटलों में की है । ग्रन्थ में विविध छन्दों में आदि-मध्य-अन्त्य कुलक, अनेक युग्मकों द्वारा निर्दिष्ट वर्ण्य विषय की गम्भीरता से रचयिता के विलक्षण वैदुष्य का परिचय स्वतः प्राप्त होता है । क्रमदीपिका के आधार ग्रन्थ गौतमीय-तन्त्र, नारद पञ्चरात्र, गोपालतापिन्युपनिषद्, प्रपञ्चासार आदि हैं । चतुर्थ पटल में "प्रपञ्चसारे प्रथिता तु दीक्षा संस्मार्यते ...." अर्थात् प्रपञ्चसार नामक तन्त्र ग्रन्थ में जो दीक्षा विस्तार से वर्णित है उसी का यहां हम स्मरण कराते हैं वर्णित है ।

आपने इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों की सम्बद्धता एवं स्वयं की निरभिमानिता व्यक्त की है । कतिपय विद्वानों की धारणा है कि "क्रमदीपिका" श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य की रचना नहीं है । यह धारणा निर्मूल भी नहीं है, क्योंकि अनेक श्लोक नारदपञ्चरात्र से यथावत् मिलते हैं, किन्तु किसी आधार ग्रन्थ की वर्णावली की समानता मात्र से उसकी मौलिकता छिन्न नहीं होती है । यह आचार्यप्रवर की स्वयं की रचना है— इस बात का प्रबल प्रमाण निम्नाङ्कित पद्य है ।

"यश्चक्रन्निज केलिसाधनमधिष्ठानस्थितोऽपि प्रभु-
र्दत्तं मन्मथशत्रुणावनकृते व्यावृत्तलोकार्त्तिकम् ।
धत्ते दीप्तनवेन शोभनमघापेतात्तमायं ध्रुवं
वन्दे कायविम-र्दनं वधकृतां भुञ्जद्युकं यादवम् ।।"

यह "चक्रबन्ध" है । इसमें "केशवेन कृता क्रमदीपिका" अंकित है । यह इस बात का द्योतक है कि कोई अन्य सम्प्रदाय का विद्वान् इसे अपनी रचना बनाने का विफल प्रयास न करे ।

क्रमदीपिका पर श्री भैरव त्रिपाठी, रुद्रधराचार्य, विद्याधराचार्य विद्या विनोद श्रीगोविन्द भट्टाचार्य प्रभृति ८-९ विद्वानों ने संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं। प्रस्तुत प्रकाशन में श्रीगोविन्द भट्टाचार्य की विवरिणिका गृहीत है। श्रीगोविन्द भट्टाचार्य का कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। आपने अपना विवरण व्याख्या में भैरव, रुद्रधर विद्याधर आदि का उल्लेख किया है। कहीं-कहीं केवल लघुदीपिका आदि टीकाओं का उल्लेख है टीकाकार का नहीं। आप निरन्तर विद्याध्ययन में रत रहते थे अतः आपके नाम में विद्याविनोद शब्द जुड़ा हुआ है। विवरण व्याख्या में यत्र तत्र "शारदातिलकोद्योते द्रष्टव्यः" लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि "शारदातिलक" पर आपकी "उद्योत" नाम की विस्तृत व्याख्या है। प्रस्तुत ग्रन्थ की पटलवार विषय विवरण निम्न लिखित हैं—

प्रथमपटल—उपासना के क्रम को प्रकाशित करने वाले क्रमदीपिका नामक इस तान्त्रिक ग्रन्थ में आठ पटल हैं जिसमें प्रथमपटल में 'कलात्तमायेत्यादि०' मङ्गलाचरण और गुरु प्रणति के अनन्तर गोपाल मन्त्र का वैशिष्टच बतलाया है कि यह मन्त्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय के फल का देने वाला है और भगवान् विष्णु तथा मन्त्रदाता-गुरु में अभेद बुद्धि से भक्त शिष्य को अधिकारी मानकर दिया जाता है। पूजा के क्रम में सर्वप्रथम स्नान, शुद्धि निर्मल वस्त्र धारण कर पूर्व की ओर मुख कर स्वस्तिक या पद्मासन से बैठ स्वगुरु और गणपति को हाथ जोड़ वन्दना करे दुर्गा और क्षेत्रपाल की वन्दना करे। लिखा है—"वामे गुरुं दक्षिणतो गणेशं दुर्गांपुरः क्षेत्रपतिञ्च पश्चात्" इति। तदनन्तर भूत शुद्धि और उपासना मन्त्र के अनुसार अपने शरीर में मातृका न्यास करे। केशवादिमूर्ति सहित कीर्त्यादि शक्ति युक्त मातृकाक्षरों से ललाटादि स्थानों में न्यास करके ध्यान पूर्वक न्यास विशेष का प्रकार लिखा है। उपासक स्वयं देव रूप होकर ही इष्टदेव का भजन करे, शास्त्रों में यथा—'देवो भूत्वा देवं यजेत्' लिखा है तत्वों के नाम और न्यास स्थानों का निर्देश दिया है - सकलवपुषि जीवं. इत्यादि। तत्व न्यास करने पर ही सकल वैष्णव मन्त्रजपादि का अधिकारी होता है। मन्त्र के अनुसार ही आगे प्राणायाम का प्रकार भी विशद रूप से वर्णन

किया है। प्राणायाम के अनन्तर अपने शरीर में योगपीठ और पूजापीठ की कल्पना का विशद विवेचन किया है। नव पीठ शक्तियाँ स्पष्ट की हैं—

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना, क्रिया योगेति शक्तयः।
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा नवमी स्मृता ॥

द्वितीय पटल—द्वितीय पटल में श्रीगोपालमन्त्र में सर्वोत्कृष्ट दशाक्षर और अष्टादशाक्षर मन्त्रों का विशेष महत्त्व होने से इनकी संस्तुति तथा उद्धार प्रकार दर्शाया है। दशाक्षर मन्त्रराज यथा—

शार्ङ्गी सोत्तरदन्तः।
शूरो वामाक्षियुग्द्वितीयोऽर्णः ॥

इत्यादि—इस मन्त्रराज के ऋष्यादि के साथ पांचों अङ्गों और दशाङ्गों को स्पष्ट किया है। टीका में प्रयोग का प्रकार दर्शाया है। इसके बीज, शक्ति, अधिष्ठातृदेवता, प्रकृति और विनियोग का वर्णन किया है।

इसी प्रकार अष्टादशाक्षर मन्त्रराज के उद्धार और कृष्ण गोविन्द पदों के व्युत्पत्ति सहित विभिन्न अर्थों का निर्देश किया है। यथा—

कृष् शब्दः सत्तार्थो णश्चानन्दात्मकस्ततः कृष्णः।
भक्ताघकर्षणादपि तद्वर्णत्त्वाच्च मन्त्रमयवपुश्च ॥

गोविन्द पद का यथा—

गोशब्दवाचकत्वाज् ज्ञानं तेनोपलभ्यते गोविन्दः।
वेत्तीति शब्दराशिं गोविन्दो गोविचारणादपि च ॥

इस द्वितीय पटल में अष्टादशाक्षर मन्त्रराज का दशाक्षर मन्त्रराज के समान ऋष्यादि, न्यास, ध्यान आदि का सुविशद वर्णन किया हैं। मूर्त्तिपञ्जर न्यास विशेष है। द्वादशाक्षर मन्त्र का माहात्म्य भी इसमें दर्शाया है।

तृतीय पटल– तृतीय पटल में ध्यान का स्वरूप बहुत ही सुन्दर प्रकार से वर्णित है। ध्यानानन्तर पूजा के क्रम में आत्मपूजा क्रम और बहिः पूजा का विधान बताकर जप विधि आरम्भ की है।

चतुर्थ पटल—चतुर्थ पटल में जप विधि के लिये दीक्षित साधक को ही अधिकारी स्पष्ट किया है जिसके लिये गुरु के लक्षण और गुरु सेवा का प्रकार वर्णन कर दीक्षा विधि भली भांति दर्शायी है। इस पटल में दीक्षा में पूजा क्रम और भगवत्पूजा विधान बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से उल्लिखित हैं।

पूजा के क्रम में प्रसङ्ग वश मुद्राओं के प्रकार और लक्षण भी लिखे हैं पूजा के अनन्तर भावपूर्ण आत्मसमर्पण, अभिषेक प्रकार और गुरु शिष्य के कृत्य स्पष्ट किये हैं।

पञ्चम पटल—पञ्चम पटल में दीक्षित मन्त्र विधि, जप के योग्य स्थान जपकाल में आहार आदि के नियम, पुरश्चरण का विधान, और प्रातः मध्याह्न तथा सायंकालिक पूजा की विधियाँ रात्रि पूजा प्रकार समयानुसार ध्यान तथा नैवेद्य, तर्पण विधि का उल्लेख कर होमादि की विधि दर्शायी है। जप संख्या और उसका फल निर्देशित किया है। जप संख्या में पुरश्चरण के लिये जितने अक्षर का मन्त्र हो उतने ही लक्ष मन्त्रजप का विधान बतलाया है। स्त्री और शूद्र को भी पुरश्चरण के नियमों में स्थान दिया है, किन्तु भक्ति नम्र होना अत्यावश्यक है। जपान्त में दशांश होमादि कृत्य करने पर ही फलदायक माना है। "होमानुष्ठान पद्धति" नामक पुस्तक में पूर्ण विधान है। होमाशक्ति में लिखा है—

"होमाशक्तौ जपं कुर्याद् होमसंख्याचतुर्गुणम्" इत्यादि। इस पटल में पूजा कालिक ध्यान बड़े ही मनोरम भावपूर्ण उल्लिखित हैं। रास क्रीड़ा का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है यथा—

अतसीकुसुमाभतनुं तरुणं, इत्यादि—

अष्टादशाक्षर मुकुन्दमन्त्र के जपादि का विधान भी इसी पटल में लिखा है। जपान्त में गुरु द्वारा अभिषेक विधान दर्शाया है। काम्य तर्पण और उसका फल साथ हो यन्त्र विधान और उसके धारण से भूत प्रेतादिबाधाओं की शान्ति रूप फल सविधि उल्लिखित है।

षष्ठ पटल—षष्ठ पटल में दशाक्षर और अष्टादशाक्षर मन्त्रराज के नानाविध विधान और विविध प्रयोगों का उल्लेख है। मृत्युञ्जयविधि तथा बालरक्षा, गोरक्षा, विषहरण प्रयोग तथा कालियमर्दन मन्त्र इसकी पुरश्चरणविधि, विषघ्न प्रयोग तथा सन्तान गोपाल मन्त्र की

विधि जैसे काम्य प्रयोग हैं। जो सांसारिकों के लिये बहुत वाञ्छित हैं। मारण प्रयोग का भी उल्लेख है।

सप्तम पटल—सप्तम पटल में गोपाल रूप भगवान् का, पट्टरानियों और अन्य पत्नियों के ध्यान, अष्टनिधियों का वर्णन, विंशति अक्षरात्मक मन्त्र का रूप, ध्यान, न्यास और पूजा प्रकार पुरश्चरणविधि, होमविधि सहित है इसी प्रकार बत्तीस अक्षर के मन्त्र का तथा अन्य मन्त्रों का विधान, पुरश्चरण, पूजा प्रकार आदि बताये गये हैं। विशेषतः इस पटल में एकाक्षर मन्त्र से लेकर द्विपञ्चाशत् अक्षरात्मक मन्त्रों का विवेचन और पूर्ण विधि विधान उल्लिखित हैं।

अष्टम पटल—अष्टम पटल में वर्णानुसार प्रयोग, वशीकरण प्रयोग और नानाविध प्रयोगों का वर्णन है। उनकी पूर्ण विधि है। शक्तिपर्ण, सम्मोहन गायत्री मंत्र, और रुक्मिणीवल्लभ मंत्र का विशेष उल्लेख है। इसके न्यास, होम आदि पूर्ण विवरण के साथ विभिन्न प्रयोगान्तर भी दर्शाये हैं।

परिशिष्ट—अन्त में परिशिष्ट प्रकरण पृथक् से समाविष्ट किया गया है। इसमें शुद्ध, सानुस्वार, सविसर्ग, एवं सविसर्गानुस्वार के भेद से चार प्रकार के मातृका न्यास, केशवादिमातृकान्यास, तत्वन्यास, विभूतिपञ्जर, मूर्तिपञ्जर न्यास, गोपालदशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर मन्त्रों के विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अङ्गन्यास, पदन्यास, वर्णन्यास आदि—विविध न्यासों का प्रयोग उल्लिखित हैं। इस परिशिष्ट प्रकरण के कारण साधकों के लिए ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ गयी है।

हिन्दी व्याख्याकारः—

"क्रमदीपिका" का हिन्दी व्याख्या सहित प्रकाशन अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) द्वारा कराने की चर्चा पिछले ५-६ वर्षों से चल रही थी। उसकी क्रियान्विति के लिए आषाढ शुक्ल १५ (गुरु पूर्णिमा) वि. सं. २०४७ को अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज की सन्निधि में पीठस्थ विद्वत्परिषद् की बैठक हुई। उसमें सर्वसम्मत निर्णय लिया गया कि क्रमदीपिका की हिन्दी व्याख्या का कार्यभार परिषद् के वरिष्ठ सदस्य व्याकरणवेदान्ताचार्य पण्डित प्रवर श्रीहरिशरणजी शास्त्री (नेपाल) प्रधानाचार्य श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, बृन्दावन (मथुरा) को

दिया जाय। तदनुसार पूज्य महाराजश्री की श्राज्ञा से शास्त्रीजी ने इस कार्य को सहर्ष स्वीकार किया श्रौर गत वर्ष दीपावली से पूर्व ही व्याख्या पूर्ण करके श्राचार्यपीठ को भेज दी थी। मुद्रण कार्य श्रब सम्पन्न हो रहा है।

श्री शास्त्रीजी का जन्म वि. सं. १९८९ को नेपाल में गण्डकी श्रञ्चलान्तर्गत स्याङ्जा जनपद के कुलुङ्खोला ग्राम में हुश्रा था। श्राप ब्राह्मण कुलोचित यज्ञोपवीत संस्कार के बाद श्रल्पवय में ही नेपाल में निम्बार्क संस्थान श्रीराधादामोदर मन्दिर केलादीघाट के संस्थापक सार्वभौमाचार्य श्री १०८ श्रीभगवतशरणदेवाचार्यजी महाराज से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर श्रपने श्रग्रज व माता-पिताजी के साथ वृन्दावन श्राये। श्रापने प्रारम्भिक शिक्षा (प्रथमातक) श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन में, मध्यमा से श्राचार्य पर्यन्त की उच्चशिक्षा श्रीमाधव संस्कृत महाविद्यालय, गोवर्धन में प्राप्त की। व्याकरणाचार्य परीक्षोत्तीर्ण करने के तुरन्त बाद सन् १९६२ में गोवर्धन में ही प्राध्यापक पद पर श्रापकी नियुक्ति हुई। लगभग दो वर्ष बाद उसी पद पर श्रीनिम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन में श्रापका स्थानान्तरण हुश्रा। इस बीच श्रापने श्रीनिम्बार्क वेदान्त में भी श्राचार्य कर लो थी। तब से दीर्घ काल तक विभागाध्यक्ष पद पर, श्रब तीन वर्ष से प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत हैं। इस तीस वर्ष के श्रध्यापन काल में श्रापने श्रपने संरक्षण व शिक्षण से शतशः छात्रों को व्याकरण वेदान्तादि विषयों में प्रौढ़ विद्वान् बनाया है। श्रध्ययन श्रध्यापन के साथ भजन साधन एवं साहित्य सृजन में भी सतत निरत रहते हैं। श्राप निम्बार्क सम्प्रदाय के निष्ठावान् विद्वान् हैं। श्रापने संस्कृत में "सभ्यता प्रकाश" "शब्द ब्रह्म शतकम्" ये दो खण्ड काव्य लिखे हैं। नेपाली भाषा में "वैष्णवता" नामक निबन्ध, एवं (गुरुदेव) पूज्य महाराजजी का "जीवन वृत्त" लिखा है। पत्र पत्रिकाश्रों में श्रनेक प्रौढ़ लेख हिन्दो, संस्कृत, नेपाली तीनों भाषाश्रों में प्रकाशित है। संस्कृत में एक "श्रीनिम्बार्काभिधानम्" नामक नाटक भी लिखा है। जिसका समय-समय पर श्रभिनय भी किया गया है। व्याकरण एवं दर्शन के विद्वान् होते हुए श्राप एक सरस कवि भी है। प्रवचन में भी श्राप परम निपुण हैं। इस प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में जैसी श्रापकी बहुमुखो प्रतिमा है उसी प्रकार व्यावहारिक क्षेत्र व राजनीतिक क्षेत्र में भी

कुशल हैं। वर्तमान में श्रापका स्थायी निवास लुम्बिनी श्रञ्चल के श्रन्तर्गत जिला नवलपरासी गैंडाकोट (नारायणीतट) पर है।

श्रापके श्रग्रज परम पूज्य श्रीतुलसीशरणजी महाराज तपोनिष्ठ महात्मा हैं। श्रापने लगभग ३० वर्ष तक श्रीधाम वृन्दावन में निवास करके तपः साधन व भागवत का श्रध्ययन, श्रध्यापन किया है। तदनन्तर नेपाल के पूर्वाञ्चल विराट नगर श्रादि में जाकर वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार किया। श्रापने श्रनुयायो शिष्यों को प्रार्थना पर यहीं गैंडाकोट नारायणी तट पर भव्य मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें श्रीराधाकृष्ण युगल विग्रह की प्राण प्रतिष्ठा करायी।

श्राज यह स्थल वैष्णवों का श्राराधना केन्द्र बना हुश्रा है। इस मन्दिर के निर्माण व प्रतिष्ठा में श्रीशास्त्रीजी की प्रमुख भूमिका रही है। वर्तमान सञ्चालक समिति में श्राप उपाध्यक्ष पद पर हैं।

काठमाण्डू में श्रीराधाकृष्णदेव स्थान के श्राप प्रबन्ध संचालक हैं। श्रापने श्रपने विद्यार्थी जीवन में ही वृन्दावन में नेपाली छात्र संघ की स्थापना की। १०-१२ वर्ष श्राप उसके श्रध्यक्ष रहे। इस प्रकार श्राप एक कर्मठ, धर्मनिष्ठ, मूर्धन्य विद्वान हैं।

श्रापकी इसी सम्प्रदाय निष्ठा व साहित्य सेवा के लिए श्र. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) द्वारा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव के श्रवसर पर विद्वत्सम्मान की परम्परा में श्रापको "श्रीनिम्बार्क भूषण" पदवी से श्रलङ्कृत कर सम्मानित किया था।

प्रकृत में श्रापने सरल हिन्दी भाषा में "दीपिकार्थ प्रकाशिका" नामक व्याख्या लिखकर "क्रमदीपिका" जैसे दुरूह ग्रन्थ को सर्वजनोपयोगी बनाया, साथ हो परिशिष्ट प्रकरण में सर्वविध न्यासों का प्रयोगात्मक संकलन करके ग्रन्थ की उपादेयता में "सोने में सुगन्ध" वाली उक्ति को चरितार्थ किया है।

व्याख्या में श्रापने मुख्यतः मूल श्लोकों के भाव ही दर्शाये हैं। कहीं-कहीं विवरणकार के श्रभिप्राय के साथ श्रपनी मौलिकता का भावोद्बोधन भी किया है।

उदाहरणार्थ—"सुखोपविष्टम्" शब्द में सुखपद से श्राह्लादिनीशक्ति श्रीराधा, "कान्ताननम्" शब्द में कान्ता पद को श्लेष मानकर कान्त+श्राननम्, सुन्दर मुख वाले श्रौर कान्ता+श्राननम् श्रीराधा की श्रोर हैं मुख जिनका, ऐसा श्रर्थ करके चमत्कृति पैदा की है।

ग्रन्थ प्रकाशन में सम्पूर्ण अर्थ राशि का व्यय भार भक्त प्रवर श्री अमरचन्दजी कासट आकोला (महाराष्ट्र), श्रीलक्ष्मीनारायणजी राध मकराना वाले (नागपुर) श्री मांगीलालजी राठी, श्री रामनिवासजी राठी, श्री ब्रजमोहनजी राठी (इन्दौर) ने वहन किया है। एतदर्थ पीठस्थ परिषद् इन भक्तजनों को शतशः साधुवाद देती है। साधकों के समक्ष अब यह क्रमदीपिका सुख संवेद्य रूप में उपस्थित है। यह सब पूज्य आचार्य चरणों के अमोघ आशीर्वाद का सुमधुर फल है। जिसका समास्वादन कर रसिकजन परम प्रमुदित होंगे ऐसा दृढ़ विश्वास है।

कार्तिक शुक्ल १५ मंगलवार
(श्रीनिम्बार्क जयन्ती)

संवत् २०४९
दिनाङ्क १०-११-९२ ई०

विद्वद्विनेय—
वासुदेवशरण उपाध्याय
व्याकरण साहित्य वेदान्ताचार्य-
निम्बार्क भूषण
प्राचार्य
श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय
निम्बार्कतीर्थ—सलेमाबाद
जि. अजमेर—(राजस्थान)

विषय-सूची

अथ प्रथमः पटलः

अथ पञ्चमः पटलः

।। इति पञ्चमः पटलः ।। ५ ।।

अथ षष्ठः पटलः

॥ इति षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः पटलः

॥ इति सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमः पटलः

परिशिष्ट

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥
॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

अनन्तश्रीविभूषित-जगद्गुरुश्रीभगवन्निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
जगद्विजयी-काश्मीरिकश्रीकेशवभट्टाचार्य-विरचिता
विद्याविनोद श्रीगोविन्दभट्टाचार्यकृत-विवरणसहिता
"दीपिकार्थप्रकाशिका"—हिन्दीव्याख्योपेता च

क्रमदीपिका

श्रीमद्भगवत्श्रीकृष्णाराधननिरूपण-
प्रवण आगमनिबन्धः

प्रथमपटलम्

वेणुवादनविनोदलालसं दिव्यगन्धपरिलिप्तवक्षसम् ।
वल्लवीहृदयवित्तहारिणं भावये कमपि गोपनन्दनम् ॥ १ ॥

विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकप्रारिप्सितप्रतिबन्धकदुरितनिवृत्त्यसाधारणमिष्टदेवताऽनुस्मरणपूर्वकं मङ्गलमाशीर्व्याजेन कृतं शिष्यशिक्षार्थमादौ निबध्नाति—

कलात्तमायेत्यादिना ।

कलात्तमायालवकात्तमूर्तिः
कलक्वणद्वेणुनिनादरम्यः
श्रितो हृदि व्याकुलयंस्त्रिलोकीं
श्रियेऽस्तु गोपीजनवल्लभो वः ॥ १ ॥

गोपीजनवल्लभो युष्माकं श्रिये सम्पदेऽस्तु भूयादिति योजना, गोपीजनस्य गोपाङ्गनाजनस्य वल्लभः स्वामी तथा च गोपीजनस्यैवाविज्ञातविनयप्रकारस्यापि वल्लभः किं पुनः साधकस्याशेषपूजाविधानकोविदस्येति भावः, यद्वा गोपी प्रकृतिर्जनो महदादिः अनयोर्वल्लभः प्रेरक इत्यर्थः । कीदृशः कलायां ज्ञानस्वरूपे स्वस्मिन् आत्तायाः प्राप्ताया अध्यस्ताया मायाया लवकेन लेशेन विक्षेपात्मस्वभावेन आत्ता प्राप्ता मूर्तिर्येन स तथोक्तः, एतेन तस्य शरीरसम्बन्धेऽपि न स्वरूपानुसन्धान-

प्रच्युतिरावरणशक्तेरप्रामाण्यादिति भावः। अथवा कल बन्धने, तथा च बन्धनात्मकसंसारप्रवर्तनार्थं स्वीकृतमायालेशात्मकजलतत्त्वात्मनाऽङ्गीकृतमूर्तिरिति तोयेन जीवान् विससर्ज भूम्यामिति। अथवा संमोहनमन्त्ररूपकं कामबीजं सकलगोपालमन्त्राणां बीजमुद्धरति कलेति, कश्च लश्च कलौ ताभ्यामात्तौ गृहीतौ सम्बद्धौ मायालवकौ चतुर्थस्वरानुस्वारौ ताभ्यामात्ता स्वीकृता बीजरूपा मूर्त्तिर्येन स तथोक्तः कल इत्यत्राकारउच्चारणार्थः। पुनः कीदृशः कलमव्यक्तं मधुरं यथा स्यात्तथा क्वणन् शब्दायमानः वेणुर्वंशः कलक्वणंश्चासौ वेणुश्चेति कलक्वणद्वेणुः तस्य निनादेन रम्यः सर्वसुखप्रद इत्यर्थः। पुनः कीदृशः हृदि श्रितः हृत्पङ्कजे स्थितः हृदि ध्येय इत्यर्थः। यद्वा सर्वप्राणिनां हृदयेऽन्तर्यामिरूपेण स्थित इत्यर्थः। किं कुर्वन् त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी त्रैलोक्यं व्याकुलयन् कर्तव्येषु विचारशून्यं कुर्वन् मायया मोहयन्नित्यर्थः। तदुक्तं गीतायाम्—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया इति॥

अत्र लघुदीपिकाकारः "कलात्तमायेत्यादिना गोपीजनवल्लभ इत्यनेन च बीजसहितोऽत्र दशाक्षरः सूचितः, कलक्वणदित्यादिना ध्यानंसूचितं, त्रिलोकीं व्याकुलयन्नित्यनेन च वश्यादिप्रयोगाः सूचिताः"-इत्याह॥ १॥

स्वरूपतः शान्तिभराः स्वभावा-
दानन्ददाः सर्वफलप्रदाश्च।
संसारसन्तारणकारणानि
श्रीकृष्णमन्त्राः शरणानि सन्तु॥१॥

कृष्णस्वरूपा मनवः समस्ताः
मनुस्वरूपः खलु कृष्णदेवः।
लोकत्रयं मन्त्रमयं महीयो-
मन्त्रात्मकः श्रीहरिरस्तु भूत्यै॥२॥

श्रीराधाकृष्णभक्त्युज्ज्वलरसजलधौ मग्नधीर्धीरधन्यः
मन्त्रे तन्त्रे च यन्त्रेऽधिकृतमतिरसौ विश्वमान्यो वदान्यः।
नानाशास्त्रार्थवेत्ता प्रकटितपरमोत्कृष्टकार्यः सुचेताः
काश्मीरिः स्यात्सहाय्यो मम सकलविधौ देशिको दिग्विजेता॥३॥

काश्मीरिभट्टात्मविचारितायाः श्रीकृष्णमन्त्रक्रमदीपिकायाः।
संक्षेपतो हिन्द्यनुवादमस्याः करोमि जिज्ञासुजनोपकृत्यै॥४॥
मन्त्रोद्धारादिगूढार्थ-साध्यसाधनबोधिका।
क्रियते हरिणा व्याख्या दीपिकार्थप्रकाशिका॥५॥

क्ल् के साथ ईकार और अनुस्वार संयुक्त होने पर सकल कामनाओं का पूरक, जगन्मोहन मन्त्ररूप क्लीं बीज होता है, ऐसी क्लीं रूपा मूर्ति को स्वीकार करने वाले—किंवा ईकार पदवाच्या श्रीराधास्वरूप को धारण करने वाले, अत्यन्त मनोहर विधा से बजने वाली वंशी की सुमधुर ध्वनि से सबको सुखप्रदान करने वाले, भावुक भक्तों के हृदय कमल पर विराजमान होने वाले, और अपनी लोकोत्तर रूप माधुरी से इन्द्रादिदेव, किंवा त्रिलोकी को मुग्ध करने वाले, गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्ण आपको सुख सम्पत्ति प्रदान करें॥१॥

विशेषः—यह वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण है, इसमें दशाक्षर, तथा अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्रों का पूर्णस्वरूप दर्शाया गया है। श्लोक के प्रथम पाद में, सम्मोहन मन्त्र, तथा अष्टादशाक्षर मन्त्र का बीज क्लीं निर्दिष्ट है। द्वितीय पाद में वंशी के साहचर्य से कृष्ण पद का निर्देशन है। तृतीय पाद में इन्द्रादि देवता किंवा त्रिलोकी को व्यामुग्ध करने वाले गोविन्द पद का संकेत है। चतुर्थ पाद में स्पष्टतया गोपीजन वल्लभ पद, और स्वाहा पद भी संकेतित हैं। इसके साथ-साथ आगे बताए जाने वाले विभिन्न वश्यादि प्रयोगों का दिग्दर्शन भी है, जो "त्रिलोकीं व्याकुलयन्" पद से स्पष्ट है।

गुरुनमस्कारपूर्वकं कर्तव्यं प्रतिजानीते—
गुरुचरणेति।

गुरुचरणसरोरुहद्वयोत्थान्
महितरजःकणकान्प्रणम्य मूर्ध्ना।
गदितमिह विविच्य नारदाद्यै-
र्यजनविधिं कथयामि शार्ङ्गपाणेः॥ २॥

इह ग्रन्थे शार्ङ्गपाणेः श्रीकृष्णस्य यजनविधिं पूजाहोमादिकरणप्रकारं विविच्य विवेचनं कृत्वा कथयामि आसमाप्तेर्वर्तमानत्वात्, तथा च प्राचीनग्रन्थेभ्यः स्वग्रन्थस्योपादेयता दर्शिता कीदृशं नारदगौतमप्रभृतिभिर्गदितम् एतेन स्वोक्तेः स्वातन्त्र्यं निराकृतमिति भावः। किं कृत्वा मूर्ध्ना मस्तकेन महिताः पूजिता ये रजः-

कणिका धूलिलेशास्तान् प्रणम्य कीदृशान् गुरुचरणद्वयमेव पद्मद्वयं तदुत्थान् तदुद्भवान्, एतेन गुरुभक्त्यतिशयः सूचितः तथा गुरुध्यानं शिरसि कर्तव्यमित्यपि सूचितम् ॥ २ ॥

मैं गुरु के दोनों चरण कमलों के विन्यास से उड़ने वाली परम पावन चरण धूली को सिर से सश्रद्ध प्रणाम करके श्रीनारदादि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित श्रीकृष्ण पूजा पद्धति को क्रमशः कहता हूँ ॥२॥

मन्त्रान्तरेभ्यो गोपालमन्त्रस्यातिशयितं वक्तुं भूमिकां रचयति–क्षितीति ।

क्षितिसुरनृपविट्तुरीयजानां-
मुनिवनवासिगृहस्थवर्णिनां च ।
जपहुतयजनादिभिर्मनूनां-
फलति हि कश्चन कस्य चित्कथं चित् ॥३॥

हि यतः मनूनां गोपालमन्त्रव्यतिरिक्तानां मध्ये कश्चन मन्त्रो-राश्यादिना शोधितः क्षितिसुरप्रभृतीनां वर्णानां मध्ये मुनिवनवा-सिप्रभृतीनामाश्रमाणां चकारात् स्त्रीणां मध्ये कस्य चित्कथं चिज्-जनस्य भाग्यवशाज्जपहोमादिभिः आदिशब्देन तर्पणादेः परिग्रहः । फलति फलं ददातीति योजना, हि शब्दोऽत्रावधारण इति कश्चित् क्षितिसुरो ब्राह्मण , नृपः क्षत्रियः, विट् वैश्यः, तुरीयः शूद्रः, मुनिर्यतिः वनवासी वानप्रस्थः, गृहस्थः कृतदारपरिग्रहः, वर्णी ब्रह्मचारी ॥३॥

गोपाल मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य मन्त्र, जो जन्म-राशि के अनुसार मिलान कर दिए जाते हैं, वे ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ, ब्रह्मचारी, और स्त्री जाति आदिकों के द्वारा, जाप, हवन, पूजनादि विविध विधि से साधित होने पर भी कभी किसी के लिए भाग्यवशात् सिद्ध हों तो हों, सर्वथा सिद्ध हो जाएं यह प्रत्याभूति अर्थात् निश्चयात्मक नहीं है, किन्तु गोपाल मन्त्र तो सभी के लिए समान रूप से फलदायी होते हैं ॥३॥

अधुना गोपालमन्त्रस्य सर्वेषु सिद्धत्वमाह—
सर्वेष्विति ।

सर्वेषु वर्णेषु तथाऽऽश्रमेषु
नारीषु नानाह्वयजन्मभेषु ।
दाता फलानामभिवाञ्छितानां-
द्रागेव गोपालकमन्त्र एषः ॥ ४ ॥

सिद्धादिगणनानिरपेक्ष एवैष प्रथमोपस्थितो वक्ष्यमाणदशाक्षर-गोपालमन्त्रो न तु गोपालविषयको मन्त्रगणोऽतिप्रसङ्गात्

स्वाहाप्रणवसंयुक्तं मन्त्रं शूद्रे ददद् द्विजः ।
शूद्रो निरयगामी स्याद् द्विजश्शूद्रोऽभिजायते ॥

इत्यागमविरोधात्, लक्षणापत्तेश्च, वाञ्छितानां स्वाभिमतानां-फलानां द्रागेव झटित्येव दाता केषु सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणादिषु सर्वाश्रमेषु ब्रह्मचारिप्रभृतिषु नारीषु नानाह्वयजन्मभेषु नानाप्रकारनामसु तथा नानाप्रकारजन्मनक्षत्रेषु सत्स्वपीत्यर्थः ॥ ४ ॥

गोपाल दशाक्षरादि मन्त्र तो ब्राह्मणादि सभी वर्ण, ब्रह्मचर्यादि सभी आश्रम, नारी जाति, नानानाम, नानाराशि वाले व्यक्ति ही क्यों न हों सभी को समान रूप से मनोवाञ्छित फल देने वाले हैं । किन्तु यहाँ इतना अवश्य ध्यान रखना होगा कि प्रणव–स्वाहा युक्त मन्त्र, शूद्र जाति को नहीं देना चाहिए, शूद्रों को मन्त्र नमो ऽन्त पद वाला देना चाहिए ॥४॥

एवं सत्यपि गुरुचरणशूश्रूषापरोपस्थिताय मन्त्रो देय-इति व्यनक्ति —
नूनमिति ।

नूनमच्युतकटाक्षपातने
कारणं भवति भक्तिरञ्जसा ।
तच्चतुष्टयफलाप्तये ततो-
भक्तिमानधिकृतो हरौ गुरौ ॥ ५ ॥

यस्मान्नूनं निश्चितम् अच्युतकटाक्षपातने श्रीकृष्णकृपाऽवलोकने भक्तिरञ्जसा तत्त्वतः कारणं ततस्तस्मात्कारणात् तच्चतुष्टयफलाप्तये प्रसिद्धधर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयरूपफलप्राप्त्यर्थं हरौ विष्णौ गुरौ मन्त्र-दातरि च भक्तियुक्तपुरुषो दीक्षादावधिकृतोऽधिकारी भवतीत्यर्थः । एतेन गुरुदेवतयोरभेदेन ध्यानं कर्तव्यमिति सूचितम् ॥ ५ ॥

अधुना पूजाक्रममाह—
स्नात इत्यादिना ।

यह निश्चित है कि भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिए उनकी अनन्य भक्ति ही कारण है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप फल प्राप्ति के लिए गुरु और भगवान् श्रीकृष्ण में समान रूप से भक्ति होनी चाहिए । अर्थात् गुरु और

इष्टदेव को अभेदस्वरूप समभकर भक्ति करने वाला पुरुष ही मन्त्र दीक्षा प्राप्त करने का अधिकारी होता है। एतावता सिद्ध होता है कि मन्त्र दीक्षा गुरु से ही लेनी चाहिए, बिना दीक्षा के पुस्तकों से याद किए गए मन्त्र फलदायी नहीं होते हैं ।।५।।

स्नातो निर्मलशुद्धसूक्ष्मवसनो धौताङ्घ्रिपाण्याननः
स्वाचान्तस्सपवित्रमुद्रितकरः श्वेतोर्द्धपुण्ड्रोज्ज्वलः ।
प्राचोदिग्वदनो निबद्धच सुदृढं पद्मासनं स्वस्तिकं-
वाऽऽसीनःस्वगुरून् गणाधिपमथो वन्देत बद्धाञ्जलिः ।।६।।

स्नातः स्वगृह्योक्तविधिना आगमोक्तविधिनाऽपीति केचित्, निर्मले विशदे प्रक्षालिते सूक्ष्मे वस्त्रे यस्य स तथोक्तः, धौतेति प्रक्षालित-पाणिपादवदनः, स्वाचान्तः स्मृत्युक्तविधिना कृताचमनः, सपवित्रेति पवित्रसहितः मुद्रायुक्तहस्तः, सुपवित्रेतिपाठे अतिशोभनपवित्रेण मुद्रितः मुद्रासम्बद्धो हस्तो यस्येति, श्वेतेति श्वेतश्चासौ ऊर्ध्वश्चेति श्वेतोर्ध्वः एवम्भूततिलकेनोज्ज्वलः, प्राचीदिग्वदनः पूर्वाभिमुखः अत्र प्राग्वदनस्य कण्ठोक्तत्वात् प्राग्वदनं मुख्यं तदसम्भवे तूदङ्मुखत्वं रात्रौ तु सर्वपूजास्वेवोदङ्मुखत्वं पुराणे च तथैवाभिधानात्, अनन्तरं सुदृढं यथा स्यात्तथा पद्मासनं स्वस्तिकं वा कृत्वा, तत्र पद्मासनं प्रसिद्धं, स्वस्तिक लक्षणं तु—

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायसमासीनं स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।।

आसीन उपविष्टः स्वगुरून् गणेशं च वन्देत, अथोशब्दश्चार्थेऽनुक्तसमुच्चये तेनाग्रे दुर्गां पृष्ठे क्षेत्रपालं च वन्देत, तदुक्तं-गौतमीये—

वामे गुरुं दक्षिणतो गणेशं दुर्गां पुरः क्षेत्रपतिं च पश्चात् । इति ।

प्रयोगश्च गुं गुरुभ्यो नमः, गं गणपतये नमः, दुं दुर्गायै क्षें क्षेत्रपालाय नमः, बद्धाञ्जलिः कृताञ्जलिपुटः सन्नित्यर्थः अत्र शारदातिलकोक्तक्रमेणैतद् बोद्धव्यं दक्षिणे पूजाद्रव्यस्थापनं वामे जलकुम्भ-स्थापनं पृष्ठे करप्रक्षालनपात्रस्थापनं पुरतो दीपचामराद्युपकरण-स्थापनमिति ।। ६ ।।

शास्त्रोक्त विधि से स्नान करने के अनन्तर निर्मल, शुद्ध, सूक्ष्म दो वस्त्रों को धारण करके हाथ पैर मुख मण्डल को पुनः धोकर, पवित्री पहने, हाथ को मुद्रा युक्त बना करके आचमन पूर्वक श्वेत गोपीचन्दन से ऊर्ध्वपुंड्र तिलक धारण कर पूर्वाभिमुख हो, पद्मासन, अथवा स्वास्तिकासन से बैठकर अपने गुरु, श्रीगणेश, क्षेत्रपाल और मन्त्राधिष्ठातृ देवता दुर्गा आदि को हाथ जोड़कर वन्दना करें ।।६।।

भूतशुद्धेः पूर्वं कृत्यमाह —

ततोऽस्त्रमन्त्रेणेति ।

ततोऽस्त्रमन्त्रेण विशोध्य पाणी
त्रितालदिग्बन्धहुताशशालान् ।
विधाय भूतात्मकमेतदङ्गं-
विशोधयेच्छुद्धमतिः क्रमेण ।। ७ ।।

ततस्तदनन्तरं भूतात्मकं पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतमयमेतदङ्गं शरीरं शुद्धमतिः विशदमतिः विशोधयेद् देवताऽऽत्मकं कुर्यादित्यर्थः 'नादेवो देवमर्चयेदिति वचनात्, क्रमेण वक्ष्यमाणप्रकारेण, किं कृत्वा; अस्त्र-मन्त्रेणेत्र अस्त्राय फडित्यनेन तन्मन्त्राङ्गास्त्रमन्त्रेणैव वा गन्धपुष्पाभ्यां हस्तौ संशोध्य करन्यासं कृत्वाऽस्त्रमन्त्रेणैवोर्ध्वोर्ध्वन्तालत्रयं कुर्यात्, तदुक्तं शारदायाम् —

करन्यासं समासाद्य कुर्यात्तालत्रयं तत इति ।

अनन्तरमस्त्रमन्त्रेणैव छोटिकया दशदिग्बन्धनम्, अस्त्रमन्त्रेणैव वह्निप्राकारं जलेनात्मनः परिवेष्टनरूपं विधाय कृत्वा; अत्र सम्प्रदायः हृत्पद्मकर्णिकास्थं दीपशिखानिभं जीवात्मानं हंस इति मन्त्रेण सुषुम्णावर्त्मना मस्तकोपरि सहस्रदलकमलावस्थितपरमात्मनि संयोज्य पृथिव्यादिपञ्चविंशतितत्त्वानि तत्र विलीनानि विभाव्य भूतशुद्धि कुर्यात् ।।७।।

इसके बाद "अस्त्राय फट्" इस अस्त्र मन्त्र से हस्त शुद्धि करके अस्त्र मन्त्र से ही ऊपर की ओर तीन बार तालियाँ बजावे। पुनः इसी मन्त्र से दशों दिशाओं की ओर चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करे। और उसी अस्त्र मन्त्र द्वारा अग्निबुद्धि कृत जल से अपने को परिवेष्टित करे, इस प्रकार इस पञ्च भूतात्मक शरीर को क्रमशः शोधन करके देवमय बनाए, क्योंकि देवरूप होकर ही देवा-राधन किया जाना चाहिए ।।७।।

भूतशुद्धिमाह—

इडावक्त्र इति ।

इडावक्त्रे धूम्रं सततगतिबीजं सलवकं-

स्मरेत् पूर्वं मन्त्री सकलभुवनोच्छोषणकरम् ।।

स्वकं देहं तेन प्रततवपुषाऽऽपूर्य सकलं-

विशोष्य व्यामुञ्चेत्पवनमथ मार्गेण खमणेः ।।८।।

इडावक्त्रे वामनासापुटे सलवकं बिन्दुसहितं सततगतिबीजं- वायुबीजं यमितिरूपं पूर्वं प्रथमं मन्त्री साधकः स्मरेत् । किम्भूतं धूम्रं कृष्णवर्णं, पुनः किम्भूतं सकलेति पञ्चभूतमयदेहशोषकं तथा च वाम-नासापुटेन वायुमाकर्षन् षोडशवारं वायुबीजं जपेदिति भावः । अनन्तरं सकलं सर्वं स्वकीयं शरीरं तेन बीजमयेन वायुना प्रततवपुषा विस्तीर्ण-शरीरेणापूर्य पूरयित्वा देहस्थवायोर्बाह्यैनैक्यं विचिन्त्य विशोषं नीत्वा चतुःषष्टिवारं वायुबीजं कुम्भकेन जप्त्वा खमणेः सूर्य्यस्य मार्गेण पिङ्गलया दक्षिणनासापुटेन रेचनेनैव वायुबीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन् वायुं व्यामुञ्चेत् त्यजेदित्यर्थः ।।८।।

भूतशुद्धिः—सर्वप्रथम हृदय कर्णिका में रहने वाले ज्योति स्वरूप जीव को "हंसः" इस मन्त्र से मूर्ध्य स्थानस्थ सहस्र दल कमल पर विराजमान परमात्मा में संयुक्त करने के साथ ही पृथिवी आदि सम्पूर्ण तत्वों को भी परमात्मा में ही लीन करे । तदनन्तर बायीं नासिका के छिद्र में पञ्चभूतात्मक सम्पूर्ण संसार को भी शोषण करने की क्षमता रखने वाला, सतत गतिशील, धूम्रवर्णशाली अनुस्वार युक्त वायु बीज "यं" का स्मरण करे । इसके बाद बायें स्वर से ऊपर की ओर पूरक प्रणाली से वायु को खींचते हुए, सोलह वार यं बीज को जपे । फिर उसी वायु बीज से सम्पूर्ण वायु को खींचकर शरीर-वायु तथा बाह्य वायु को एकात्मक समझते हुए दोनों को ही शोषित हो जाने की भावना करते हुए दोनों नासिका स्वरों को कुम्भ प्रणाली से बन्द करके चौसठ वार यं बीज का जाप करे । इसके बाद पिंगला नाडी जो सूर्य नाडी भी कही जाती है उस दक्षिण-नासिका छिद्र से धीरे-धीरे रेचक प्रणाली से वायु का रेचन करते हुए बत्तीस वार यं बीज को जपना चाहिए ।।८।।

तेनेति ।

तेनैव मार्गेण विलीनमारुतं

बीजं विचिन्त्यारुणमाशुशुक्षणेः ।

आपूर्य देहं परिदह्य वामतो-

मुञ्चेत्समीरं सह भस्मना बहिः ।।९।।

तेनैव खमणेः सूर्यस्य मार्गेण दक्षिणनासापुटेन विलीनः सम्बद्धो मारुतो वायुर्यत्र तद् आशुशुक्षणेर्वन्हेर्बीजं रमिति अरुणमरुणवर्णं विचिन्त्य वायुनाऽऽपूर्य तद्बीजस्य षोडशवारजपेन पूरकं कृत्वाऽनन्तरं कुम्भकेन चतुर्गुणं रं बीजं जपन् देहं परिदह्य तदूर्ध्वरमिति द्वात्रिंशद्वारं जपन् वामत इडामार्गेण वामनासापुटेन भस्मना सह बहिः समीरं वायुं मुञ्चेदित्यर्थः ।।९।।

जिसमें वायु सम्बद्ध है, अर्थात् जहाँ से वायु निकाली गई है उसी सूर्यनाडी (दक्षिण नासिका पुट) से लालवर्णशाली अग्नि बीज रं का चिन्तन करते हुए पूरक प्रणाली से वायु को ऊपर खींचकर सोलह वार "रं" बीज का जाप करे । पुनः कुम्भ प्रणाली से दोनों स्वरों को बन्द कर चौसठ वार उक्त बीज को जपे । और यह समझे कि पापात्मक भौतिक शरीर गत परमाणु भस्म हो गए । तदनन्तर बायें स्वर से बत्तीस वार अग्नि बीज को जपते हुए, उस वायु का रेचन करे—जिसमें देहगत पाप परमाणुओं की भस्म है ।।९।।

उत्पत्तिं दर्शयति—

टपरमिति ।

टपरमतीव शुद्धममृतांशुपथेन विधुं

नयतु ललाटचन्द्रममुतस्सकलार्णमयीम् ।

लपरजपान्निपात्य रचयेच्च तया सकलं

वपुरमृतौघवृष्टिमथ वक्त्रकराङ्घ्रिमिदम् ।।१०।।

टस्य परष्टपरः ठकारस्तमतीव शुद्धं श्वेतं विधुं चन्द्रबीजरूपम् अमृतांशुपथेन वामनासापुटेन षोडशवारजपेन ललाटचन्द्रं ब्रह्मरन्ध्रस्थ-चन्द्रं नयतु प्रापयतु, ननु सर्वशरीरस्य दग्धत्वात् कथममृतांशुपथेन चन्द्रबीजनयनमिति चेन्न, पूर्वोक्तस्य भावनाऽऽत्मकत्वात्, अथानन्तरम् अमुतः अमृतांशोर्ललाटचन्द्राद्ब्रह्मरन्ध्रस्थशशाङ्कात् सकलार्णमयी मातृ-कामयीम् अमृतसमूहवृष्टिं लपरो वकारः वरुणबीजमिति यावत् तज्जपेन कुम्भकेन चतुःषष्टिवारजपेन निपात्य उत्पाद्य तया मातृकामय्या वृष्ट्या

इदं सकलं शरीरं रचयेदारचयेत्, कीदृशं वपुर्वक्त्रकराङ्गं वक्त्रं च करश्च अङ्गम् अवयवरूपं यत्र तत्तथा वक्त्रकराढ्यमिति पाठे वक्त्राढ्यं कराढ्यं चेत्यर्थः, अनन्तरं दक्षिणनासापुटेन वायुं रेचयेत् लमिति पृथ्वीबीजं पीतवर्णं द्वात्रिंशद्वारं जपन् तत् शरीरं सुदृष्टं चिन्तयेत् तदनु सोऽहमित्यात्ममन्त्रेण ब्रह्मरन्ध्राज्जीवं हृदयाम्भोजमानयेदिति सम्प्रदायः ॥१०॥

अति शुद्ध श्वेत वर्णशाली चन्द्र बीज ठं को सोलह वार जप कर बायी नासिका के छिद्र से ललाटस्थ चन्द्रमा को ब्रह्म रन्ध्र स्थित अमृतमय चन्द्रमण्डल तक पहुंचावे। वहाँ से मातृकामयी अमृतधारा को वर्षण करने वाला वरुण बीज वं को कुम्भान्त प्रणाली द्वारा चौसठ वार जप कर मातृकामयी अमृत वृष्टि से विभिन्न अंग प्रत्यङ्ग रूप दिव्य शरीर निष्पन्न हो जाने की भावना करे। उसके बाद पीतवर्णशाली पृथिवी बीज लं को बत्तीस वार जपते हुए, दक्षिण स्वर से वायु का रेचन करे। साथ ही यह भी भावना करे कि मेरा मातृकामय दिव्य शरीर पृथिवी के समान सुदृढ़ हो गया ! इस प्रकार दिव्य शरीर निष्पन्न होने पर मस्तकस्थ सहस्र दल कमल में संयोजित जीव को "सोऽहं" इस आत्म मन्त्र से हृदयस्थ कमल पर लावे ॥१०॥

अधुना मातृकान्यासं दर्शयति —

शिरोवदनेति।

शिरोवदनवृत्तदृक्श्रवणघोणगण्डोष्ठदद्-
द्वये च सशिरोमुखेऽच इति च क्रमाद्विन्यसेत्।
हलश्च करपादसन्धिषु तदग्रकेष्वादरात्
सपार्श्वयुगपृष्ठनाभ्युदरकेषु याद्यानथ ॥११॥
हृदयकक्षककुत्करमूलदोः-
पदयुगोदरवक्त्रगतान् बुधः।
हृदयपूर्वमनेन पथाऽन्वहं
न्यसतु शुद्धकलेवरसिद्धये ॥१२॥

अत्र शिरःशब्दो ललाटस्योपलक्षकः ललाटमुखमावृतेति शारदादर्शनात्, एकत्राक्षरद्वयस्यापि न्यासापाताच्च, वदनवृत्तं मुखमण्डलं दृक्श्रवणघोणगण्डोष्ठदन्तानां द्वयमिति समासः द्वयमिति दृगादावपि सर्वत्र सम्बध्यते घोणा नासिका, दद्द्वये दन्तपङ्क्तिद्वये, इत्युक्तेषु स्थानेषु अचः षोडश स्वरान् क्रमेणैकाक्षरक्रमेण विन्यसेत् तथा हलश्च कादीनि व्यञ्जनानि च तत्र कादीनि विंशत्यक्षराणि आदरात् आदरपूर्वकं करपादसन्धिषु तदग्रकेषु च विन्यसेद् अनन्तरं यकारादीनि पञ्चाक्षराणि सपार्श्वयुगपृष्ठनाभ्युदरकेषु पार्श्वयुगेन सह वर्तते यत् पृष्ठनाभ्युदरन्तत्र विन्यसेत् तथाऽनन्तरमनेन वक्ष्यमाणमार्गेण याद्यान् वर्णान् हृदयादिस्थानगतान् अत्रापि करपद्युगयोरुदरवक्त्रयोश्च हृदयपूर्वं यथा स्यात्तथा अन्वहं प्रतिदिनं न्यसतु करपद्युगादीनां पूर्वैः पदैः समस्तानामपि हृदयपूर्वमिति क्रियाविशेषणेन सह सम्बन्धः सापेक्षत्वादत्रासमास इति तु तुल्यप्रधानसापेक्षविषयं द्रष्टव्यं, किमर्थं शुद्धकलेवरसिद्धये शुद्धशरीरसम्पादनार्थमित्यर्थः ॥११॥ ॥१२॥

मातृ का न्यास प्रकरणः—सोलह स्वरों के एकाक्षर क्रम से ललाट, मुखवृत्त, दोनों नेत्र, श्रोत्र, नासिका, गण्डस्थल, दोनों ओष्ठ, दोनों दन्त पंक्तियों पर न्यास करे। उसके बाद हल वर्णों से करपादादियों की सन्धियों में तथा उनके अग्रभागों में न्यास करे। और य आदि पाँच वर्णों से दोनों पार्श्व, पृष्ठ, नाभि, उदर पर न्यास करे ॥११॥

इसी प्रकार हृदय, कुक्षिद्वय, ककुद् (सिर के पृष्ठ भाग से नीचे का स्थान) दोनों बाहुमूल, बाहु, पाद, उदर, आदि स्थानों में हृदय से आरम्भ कर उपर्यंध: कर पाद मुख पर्यन्त क्रम से न्यास करना चाहिए। न्यास विधान शरीर शुद्धि के लिए है। उक्त न्यास को अन्तर्मातृका न्यास कहते हैं ॥१२॥

इत्यारचय्येति।

इत्यारचय्य वपुरर्णशतार्द्धकेन
सार्द्धं क्षपेशसविसर्गकसोभयैस्तैः।
विन्यस्य केशवपुरस्सरमूर्त्तियुक्तैः
कीर्त्यादिशक्तिसहितैर्न्यसतु क्रमेण ॥ १३ ॥
अथ कथयाम्यर्णानां मूर्तीः शक्तीः समस्तभुवनमयीः।
केशवकीर्तो नारायणकान्ती माधवस्तथा तुष्टिः ॥१४॥

इत्युक्तप्रकारेण वपुः शरीरम् अर्णशतार्द्धकेन पञ्चाशद्वर्णैः आरचय्य रचयित्वा अनन्तरं तैरेव पञ्चाशद्वर्णैः सार्द्धं क्षपेशसविसर्गकसोभयैः अर्द्धं क्षयेशेन सह वर्तन्त इति सार्द्धं क्षपेशाः अर्द्धं चन्द्रसहिताः सानुस्वारैरित्यर्थः सविसर्गकैः विसर्गसहितैः सोभयैरनुस्वारविसर्गसहितैः विन्यस्य तथा आदौ शरीरसम्पादनार्थं शुद्धैर्मातृकाक्षरैर्विन्यस्य

तदनन्तरं तेष्वेव ललाटादिषु मातृकास्थानेषु अं नम इत्यादीन् क्ष नम इत्यन्तान् तथा अः नम इत्यादीन् क्षः नम इत्यन्तान् तथा अंः नम इत्यादीन् क्षंः नम इत्यन्तान् वर्णान् विन्यसेदित्यर्थः, एवं चतुर्विधो मातृकान्यास उक्तः। ननु कथमर्णशतार्द्धकेनेत्युक्तं वर्णानामेकपञ्चाशत्त्वादित्युच्यते क्षकारेणाक्षरद्वयस्यैकोकरणात् लत्वेन लकारद्वयस्यैकीकरणाद्वा लोकप्रसिद्धेर्वा प्रकरणेनैकपञ्चाशत्सख्यायास्तात्पर्येऽधिगते पञ्चाशद्वर्णं एवैकपञ्चाशत्सख्यापर इति प्रपञ्चसारविवरणे श्रीप्रेमानन्दभट्टाचार्यशिरोमणयः। वस्तुतस्तु अर्णशतार्द्धं च कं चार्णशतार्द्धकं। असमविभागे वा अर्द्धशब्दः। तेनाक्षराणामेकपञ्चाशत्त्वमायातम्। प्रथमोयासां मूर्तीनां केशवन्यासमाह विन्यस्य केशवेति, केशवः पुरःसरः ताः तथा च केशवादिमूर्तिसहितैः कीर्त्यादिशक्तियुक्तैश्च मातृकाक्षरैर्ललाटादिषूक्तस्थानेषु यथाक्रमं न्यासः कार्यः ॥ १३ ॥ १४ ॥

पूर्वोक्त न्यास विधि अनुसार, अमृतमय पचास मातृकाक्षरों से दिव्य शरीर का निर्माण कर उस पर पचास मातृकाक्षरों से जिनमें अर्ध चन्द्राकार अनुस्वार लगा हो, ललाटादि मातृ का स्थानों में न्यास करने के उपरान्त कीर्ति आदि शक्तियों के सहित केशवादि न्यास भी करे। शुद्धमातृका, अनुस्वार मातृका, अनुनासिक मातृका, सविसर्गानुनासिक मातृका भेद से मातृकाक्षर चार प्रकार के हैं। अतः मातृका न्यास भी चार प्रकार के ही होंगे ॥१३॥

अब मैं समस्तभुवन व्यापी मातृकाक्षरों की मूर्तियों तथा शक्तियों को कहता हूं। अं मातृकाक्षर की मूर्ति, केशव हैं, केशव की शक्ति कीर्ति है। इसी प्रकार क्रमशः अन्य मातृकाक्षरों की मूर्ति तथा शक्ति को समझना चाहिए। नारायण की शक्ति कान्ति है तो माधव की शक्ति तुष्टि है। इनका न्यास भी ललाट आदि क्रम से किया जाता है ॥१४॥

गोविन्दः पुष्टियुतो विष्णुधृती सूदनश्च मध्वाद्यः।
शान्तिस्त्रिविक्रमश्च क्रियायुतो वामनो दयायुक्तः ॥१५॥

सूदनश्च मध्वाद्यः मधुसूदन इत्यर्थः ॥१५॥

गोविन्द की शक्ति पुष्टि, विष्णु की धृति, मधुसूदन की शान्ति, त्रिविक्रम की क्रिया वामन की शक्ति दया है ॥१५॥

श्रीधरयुता च मेधा हृषीकनाथश्च हर्षया युक्तः।
अम्बुजनाभश्रद्धे दामोदरसंयुता तथा लज्जा ॥१६॥

हृषीकनाथो हृषीकेश इत्यर्थः, अम्बुजनाभः पद्मनाभः ॥१६॥

श्रीधर की शक्ति मेधा, हृषीकेश की हर्षा, पद्मनाभ की श्रद्धा, और दामोदर की शक्ति लज्जा है ॥१६॥

लक्ष्मीः सवासुदेवा
संकर्षणकः सरस्वतीयुक्तः।
प्राद्यो द्युम्नः प्रीतिसमेतोऽ-
निरुद्धको रतिरिमाः स्वरोपेताः ॥१७॥

प्राद्यो द्युम्नः प्रद्युम्नः ॥१७॥

श्रीवासुदेव की शक्ति, लक्ष्मी, संकर्षण की सरस्वती, प्रद्युम्न की प्रीति, अनिरुद्ध की शक्ति रति है। अकारादि सोलह स्वरों की केशवादि मूर्ति हैं, केशवादि सोलह मूर्तियों की कीर्ति आदि सोलह शक्तियाँ हैं। यहाँ तक स्वर मूर्ति तथा शक्तियों से किया जाने वाला न्यास है ॥१७॥

चक्रिजये गदिदुर्गे
शार्ङ्गी प्रभयाऽन्वितस्तथा खड्गी।
सत्या शङ्खीचण्डा
हलिवाण्यौ मुसलियुग्विलासिनिका ॥१८॥

शूली विजया पाशी विरजा विश्वान्वितोऽम्बुशोर्भूयः।
विमदा मुकुन्दयुक्ता नन्दजसुनन्दे स्मृतिश्च नन्दियुता ॥१९॥

नरऋद्धी नरकजिता
समृद्धिरथ शुद्धियुग्घरिः कृष्णः।
बुद्धियुतः सत्ययुतभुक्ति-
र्मतियुक्तः स्यात्ततः शौरिः ॥२०॥

॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

अब यहाँ से हल् मातृकाक्षरों की मूर्तियों, तथा शक्तियों का विवरण बताया जाएगा। क मातृकाक्षर की मूर्ति चक्री, और चक्री की शक्ति जया है। इसी प्रकार सभी मातृकाक्षरों की मूर्ति तथा शक्तियों को क्रमशः समझ लेना

चाहिए गदी की शक्ति दुर्गा, शार्ङ्गी की प्रभा, खड्गी की सत्या, शंखी की चण्डा, हली की वाणी, मुसली की विलासिनी शक्ति है। न्यास प्रयोग—"चक्रिजयाभ्यां नमो दक्षिण बाहौ" आदि है ॥१८॥

शूली की शक्ति विजया, पाशी की विरजा, अंकुशी की विश्वा, मुकुन्द की विमदा, नन्दज की सुनन्दा, नन्दी की स्मृति, शक्ति है ॥१९॥

नर (नारायण) की शक्ति ऋद्धि, नरकजित् की समृद्धि, हरि की शुद्धि, कृष्ण की बुद्धि, सत्य की भुक्ति, सात्वत की शक्ति मति है ॥२०॥

क्षमया शूरो रमया जनार्द्दनो मेचभूधरः क्लेदी ।
विश्वाद्यमूर्त्तियुक्ता क्लिन्ना वैकुण्ठयुक्तथा वसुदा ॥२१॥

क्लेदी क्लेदिनीत्यर्थ; छन्दोभङ्गभयात्तथोक्तः। विश्वादिमूर्त्तिरिति विश्वमूर्त्तिरित्यर्थः ॥२१॥

पूर्वोक्त–बीसवाँ श्लोकगत शौरि की शक्ति क्षमा, शूर (परशुराम) की शक्ति रमा, जनार्दन की उमा, भूधर की क्लेदिनी, विश्वाद्य मूर्ति की क्लिन्ना, और वैकुण्ठ की शक्ति वसुदा है ॥२१॥

पुरुषोत्तमश्च वसुधा बलिना च वरा बलानुजोपेता ।
भूयः परायणाख्या बालः सूक्ष्मा वृषघ्नसंध्ये च ॥२२॥

॥ २२ ॥

पुरुषोत्तम की वसुधा, बली की परा, बलानुजा की परायणा, बल की सूक्ष्मा, पृषघ्न की शक्ति सन्ध्या है ॥२२॥

सवृषा प्रज्ञा हंसः प्रभा वराहो निशा च विमलोऽमोघा ।
नरसिंहविद्युते च प्रणिगदिता मूर्तयो हलां शक्तियुताः ॥२३॥

अमोघेतिच्छेदः ॥२३॥

वृष की शक्ति प्रज्ञा, हंस की प्रभा, वराह की निशा, विमल की अमोघा, नरसिंह की विद्युत् शक्ति है। इस प्रकार हल् मातृकाक्षरों की मूर्तियाँ तथा शक्तियाँ बताई गयी है ॥२३॥

पूर्वोक्तकेशवादिमूर्त्तिकीर्त्यादिशक्तिन्यासप्रकारं दर्शयति—

वर्णानुक्त्वा सार्धचन्द्रान् पुरस्तान्-
मूर्तीः शक्तीर्ङेऽवसाना नतिं च ।

उक्त्वा न्यस्येत् यादिभिः सप्तधातून्
प्राणं जीवं क्रोधमप्यात्मनेऽन्तान् ॥२४॥

पुरस्तात् प्रथम वर्णान् अकारादिक्षकारान्तान् उक्त्वा कथंभूतान् वर्णान् सार्धचन्द्रान् सबिन्दून् अनन्तरं मूर्तीः केशवाद्याः शक्तीः कीर्त्याद्याः ङेऽवसानाः इत्युभयेन सम्बध्यते तत्र हृदयग्राहि प्रत्यासत्तेः लाघवाच्च अं केशवाय कीर्त्यै नम इति प्रयोगे केशवायेत्यत्र नमःपदस्य योगाभावाच्चतुर्थ्यनुपपत्तिः न हि विष्णवे सूर्याय नम इति भवति, भवति च विष्णवे नम सूर्याय नमः इति तथा च केशवाय नमः कीर्त्यै नम इति प्रयोगापत्तिः उभयत्र वा चकारो देयः समुच्चयख्यापनार्थः, स श्रिये चामृताय चेति वत् तथा मातृकाक्षराणामपि उभयसम्बन्धार्थं द्विः प्रयोगापत्तिः, अं केशवकीर्तिभ्यां नम इति प्रयोगे तु नैते दोषाः पतन्ति तत्र द्वन्द्वसमासवशात् सहितावस्थितयोरेवोपस्थितौ चतुर्थ्यर्थान्वयसम्भवात् वर्णान्वयसम्भवाच्च अग्नीषोमयोरिव सहितावस्थितयोर्देवतात्वं, कथं तर्हि यादिषु त्वगादिप्रयोगः कार्य इत्युच्यते यं त्वगात्मने पुरुषोत्तम-वसुधाभ्यां नमः रं असृगात्मने बलिपराभ्यां नम इत्येवंरूप इति, मन्त्र-मुक्तावलिकारेण तथैवाभिधानात् आत्मने इत्यस्य सुबन्तप्रतिरूपकनि-पातत्वेनादोषादिति तु प्रपञ्चसारविवरणे परमानन्दभट्टाचार्य्याः तथा च अं केशवकीर्तिभ्यां नमः इति प्रयोगः मन्त्रमुक्तावलीकारलघुदीपिका-कारत्रिपाठिरुद्रोपाध्यायविद्याधराचार्यपरमानन्दभट्टाचार्यसंमतः, अं केशवाय कीर्त्यै नम इति प्रयोगः पद्मपादाचार्यप्रभृतीनां संमत इति, ज्ञात्वा यथागुरुसम्प्रदायं व्यवहर्तव्यमिति । अत्रैव न्यासविशेषमाह–यादिभिरिति यकाराद्यैर्दशभिरक्षरैः सह सप्त धातून् त्वगसृङ्मांसमेदो-ऽस्थिमज्जशुक्राख्यान् आत्मनेऽन्तान् आत्मने इतिशब्दः अन्ते येषान्ते तथा प्राणं जीवं क्रोधंच आत्मनेऽन्तं हृदयादिषु यथास्थानेषु विन्यस्येदित्यर्थः, प्राणंशक्तिमित्यपि पाठान्तरम् ॥२४॥

केशवादि न्यास प्रकरणः—पहले सानुनासिक अकारादि मातृकाक्षरों को क्रमशः उच्चारण करते हुए तथा उनकी मूर्तियों, शक्तियों की भी क्रमशः चतुर्थ्यन्त विभक्ति से उच्चारण करते हुए अन्त में नमः पद बोलकर न्यास करना चाहिए। प्रयोग इस प्रकार है, "अं केशव कीर्तिभ्यां नमो ललाटे" इत्यादि। इसी प्रकार सभी मातृकाक्षरों से तत्तत् शरीर के अवयवों में न्यास करके सप्त

धातु त्वक्, असृक्, माँस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र तथा प्राण, जीव, क्रोध आदि पदों से, जिनके अन्त में आत्मने शब्द लगा हो, हृदयादि स्थानों में न्यास करना चाहिए ।।२४।।

केशवादिन्यासे ध्यानमाह—

उद्यदिति ।

उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम् ।
नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं
विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ।।२५।।

अहं विष्णुं वन्दे कीदृशम् उद्यन्नुदयं गच्छन् प्रद्योतनः सूर्यः तस्य यच्छतं तस्येव रुचिर्दीप्तिर्यस्य तं, पुनः तप्तेति—वह्निमध्यनिक्षिप्तकाञ्चनवद्गौरं, पुनः कीदृशं पार्श्वद्वन्द्वे इति—दक्षिणवामपार्श्वद्वये जलधिसुतया लक्ष्म्या तथा विश्वधात्र्या पृथिव्या जुष्टं सेवितं, पुनः किम्भूतं नानाविधरत्नेन शोभितो नाना बहुप्रकार आकल्पो भूषणं यस्य, पुनः कीदृशम् आपीतेति—आसम्यक् प्रकारेण पीते वस्त्रे यस्य तं, पुनः कीदृशंदरः शङ्खः पद्मं कमलं कौमोदकी गदा चक्रम् एतानि पाणौ यस्य तम्, अत्र ऊर्ध्वाधः क्रमेण वामभागे शङ्खपद्मे दक्षिणभागे गदाचक्रे इति बोध्यम् ।।२५।।

ध्यानः—युगपद् उदीयमान शताधिक सूर्य की तेजोमय कान्ति के समान चमकने वाले, अग्नितप्त सुवर्ण के समान गौरवर्णशाली, दोनों बगलों में लक्ष्मी तथा विश्व को धारण करने वाली धरित्री शक्ति के द्वारा सेव्यमान, विभिन्न रत्न जटित दिव्य आभूषणों को धारण करने वाले पीताम्बर धारी, और शंख चक्र गदा पद्म को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण रूप विष्णु की वन्दना करता हूं ।।२५।।

ध्यानन्यासयोः फलमाह—

ध्यात्वैवमिति ।

ध्यात्वैवं परमपुमांसमक्षरैर्यो—
विन्यस्येद्दिनमनु केशवादियुक्तैः ।
मेधाऽऽयुःस्मृतिधृतिकीर्तिकान्तिलक्ष्मी-
सौभाग्यैश्चिरमुपबृंहितो भवेत्सः ।।२६।।

एवमुक्तप्रकारं परमपुमांसं विष्णुं ध्यात्वा योऽनुदिनं प्रत्यहं केशवादिसहितैर्मातृकाक्षरैर्विन्यस्येत् स पुरुषः मेधादिभिश्चिरं बहुकालम् उपबृंहितउपचितो भवति मेधा धारणावती बुद्धिः आयुर्जीवनं स्मृतिः स्मरणं धृतिर्धैर्यं कीर्तिरुत्कृष्टकर्मकथा कान्तिः सौन्दर्यं लक्ष्मीरैश्वर्यं सौभाग्यं सर्वप्रियत्वम् ।।२६।।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके केशवादि मूर्ति कीर्ति आदि शक्तियों के सहित नमः पद से युक्त, मातृकाक्षरों से प्रतिदिन न्यास करने वाला पुरुष मेधा, आयु, स्मरण शक्ति, धैर्य, कीर्ति, कान्ति लक्ष्मी, सौभाग्य आदि गुणगणों से भरपूर हो जाता है ।।२६।।

न्यासविशेषमाह—

अमुमिति ।

अमुमेव रमापुरःसरं प्रभजेद्यो मनुजो विधिं बुधः ।
समुपेत्य रमां प्रथीयसीं पुनरन्ते हरितां व्रजत्यसौ ।।२७।।

यः पण्डितो मनुष्यः अमुमेव विधिं केशवादिन्यासप्रकारं रमापुरःसरं श्रीबीजमादौ दत्वा प्रभजेत् करोति असौ पुमान् इह लोके प्रथीयसीं महतीं रमां लक्ष्मीं समुपेत्य प्राप्य पुनरन्ते अवसाने हरितां विष्णुत्वं व्रजति प्राप्नोतीत्यर्थः ।।२७।।

जो साधक आदि में श्रीं बीज लगाकर विधिपूर्वक यह केशवादि न्यास करता है, वह विपुल रूप से लक्ष्मी को प्राप्त कर अन्त में भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष का भी भागी होता है ।।२७।।

तत्त्वन्यासं दर्शयति—

इत्यच्युतीत्यादि ।

इत्यच्युतीकृततनुर्विदधीत तत्त्व-
न्यासं मपूर्वकपराक्षरनत्युपेतम् ।
भूयः पराय च तदाह्वयमात्मने च
नत्यन्तमुद्धरतु तत्त्वमनून् क्रमेण ।।२८।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण अच्युतीकृततनुः सम्पादितविष्णुशरीरः तत्त्वन्यासं वक्ष्यमाणप्रकारं विदधीत कुर्यात्, प्रकारं दर्शयति-मः पूर्वो यस्य स मपूर्वः कः परो यस्य सः कपरः नत्युपेतं नमःशब्दसहितं तथा च मकारादिव्युत्क्रमेण ककारपर्यन्तमेकैकाक्षरं नमःपदसहितं कृत्वा भूयोऽ-

नन्तरं परायेतिपदं दत्वा अनन्तरं तदाह्वयं तेषां तत्त्वानामाह्वयं वक्ष्यमाणं नाम दत्वा अनन्तरम् आत्मने इतिपदं दत्वा अनन्तरं नत्यन्त नमःपदमन्ते दत्वा क्रमेण तत्त्वमनून् तत्त्वमन्त्रानुद्धरतु ।।२८।।

तत्व न्यास प्रकरणः—पूर्वोक्त केशवादि न्यास से अपने शरीर को अच्युत (भगवन्मय) बनाकर मकाराक्षर से आरम्भ करके एकाक्षर क्रम से ककार पर्यन्त, नमः शब्द का प्रयोग करते हुए, उसके आगे पराय, तथा तत्व नाम के बाद आत्मने पद जोडकर अन्त में भी नमः पद बोलते हुए क्रम से तत्व-न्यास करे ।।२८।।

अधुना तत्त्वानां नामानि न्यासं स्थानं च दर्शयति—

सकलवपुषि जीवं प्राणमायोज्य मध्ये
न्यसतु मतिमहङ्कारं मनश्चेति मन्त्री ।
कमुखहृदयगुह्याङ्घ्रिष्वथोशब्दपूर्वं
गुणगणमथ कर्णादिस्थितं श्रोत्रपूर्वम् ।।२९।।

सकलवपुषि सर्वाङ्गव्यापके जीवं प्राणं च मन्त्रे आयोज्य तेन न्यस्यतु तथा च मं नमःपराय जीवात्मने नमः भं नमःपराय प्राणात्मने नमः इति द्वयं सर्वशरीरे विन्यस्येदित्यर्थः इति, तत्त्वपदं दत्वा मं नमः पराय जीवतत्त्वात्मने नमः इति के चित्तत्प्रयोगान्कुर्वन्ति तन्न प्रमाणाभावात् मूर्तिपञ्जरन्यासेऽपि मूर्त्तिपदप्रमोगापत्तेः, अत्र मकारादीनां बिन्दुसाहित्यं सम्प्रदायावगतं बोद्धव्यं, मध्ये हृदये मतिम् अहङ्कारं मनश्च मन्त्रे आयोज्य तेन मन्त्री न्यस्यतु तथा बं नमः पराय मत्यात्मने नमः फं नमः पराय अहंकारात्मने नमः पं नमः पराय मनआत्मने नमः इति त्रयं हृदि विन्यस्येदित्यर्थः। अथोऽनन्तरं कमुखहृदयगुह्याङ्घ्रिषु पञ्चसु स्थानेषु शब्दपूर्वं गुणसमुदायं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकं मन्त्रे आयोज्य तेन न्यस्यतु तथा च नं नमः पराय शब्दात्मने नमः इति शिरसि, धं नमः पराय स्पर्शात्मने नमः इति मुखे, दं नमः पराय रूपात्मने नमः इति हृदये, थं नमः पराय रसात्मने नमः इति गुह्ये, तं नमः पराय गन्धात्मने नमः पादयोः विन्यस्येदित्यर्थः। अथानन्तरं श्रोत्रत्वग्दृक्जिह्वाघ्राणात्मकं कर्णादिस्थितं कर्णत्वक्दृक्जिह्वाघ्राणेषु स्थितं यथा स्यात्तथा न्यस्यतु तथा च णं नमः पराय श्रोत्रात्मने नमः इति श्रोत्रयोः, ढं नमः पराय त्वगात्मने नमः इति त्वचि, डं नमः पराय

दृगात्मने नमः इति नेत्रयोः, ठं नमः पराय जिह्वात्मने नमः इति जिह्वायां, टं नमः पराय घ्राणात्मने नमः इति घ्राणयोरिति विन्यस्येत् ।।२९।।

यहाँ तत्वों के नाम तथा न्यास स्थानों का निर्देश है। पूर्वोक्त श्लोक निर्दिष्ट पराय आदि पदों को जोडकर और उसमें जीव और प्राण पद को मन्त्र मध्य में रखकर न्यास करना चाहिए। प्रयोग इस प्रकार है। "मं पराय जीवात्मने नमः भं पराय प्राणात्मने नमः" कहकर सर्वशरीर पर न्यास करे। फिर साधक को बुद्धि, अहंकार, मन को मन्त्र मध्य में रखकर हृदय पर न्यास करना चाहिए। एवं सिर, मुख, हृदय, गुह्य, पादों पर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पदों को पूर्वोक्त प्रकार से मन्त्र के बीच में रखकर न्यास करे, इसी प्रकार श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण पदों को आयोजित करके क्रमशः कर्ण त्वगादि स्थानों पर न्यास करे ।।२९।।

वागादीति।

वागादीन्द्रियवर्गमात्मनिलयेष्वाकाशपूर्वं गणं
मूर्धन्यास्ये हृदये शिवे चरणयोर्हृत्पुण्डरीके हृदि ।
बिम्बानि द्विषडष्टयुग्दशकलाव्याप्तानि सूर्योडुराड्-
वह्नीनां च यतस्तु भूतवसुमुन्यक्ष्यक्षरैर्मन्त्रवित् ।।३०।।

वागादीन्द्रियवर्गं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं मन्त्रे आयोज्य आत्मनिलयेषु मुखपाणिपादपायूपस्थेषु न्यस्यतु तथा च त्रं नमः पराय वागात्मने नमः इति मुखे, भं नमः पराय पाण्यात्मने नमः इति पाण्योः, जं नमः पराय पादात्मने नमः पादयोः, छं नमः पराय पाय्वात्मने नमः इति पायौ, चं नमः पराय उपस्थात्मने नमः इत्युपस्थे विन्यस्येदित्यर्थः, आकाशपूर्वं गणमाकाशवाय्वग्निजलपृथिव्यात्मकं मन्त्रे आयोज्य मूर्धन्यास्ये हृदये शिवे लिङ्गे चरणयोर्न्यस्यतु तथा च ङं नमः पराय आकाशात्मने नम इति शिरसि, धं नमः पराय वाय्वात्मने नमः इति मुखे, गं नमः परायाग्न्यात्मने नम इति हृदये, खं नमः पराय जलात्मने नम इति लिङ्गे, कं नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति पादयोर्न्यस्येदित्यर्थः। हृत्पुण्डरीकमित्यादेरयमर्थः हृत्पुण्डरीके तथा सूर्योडुराड्वह्नीनां बिम्बानि सूर्यचन्द्राग्नीनां मण्डलानि त्रीणि द्विषडष्टयुग्दशकलाव्याप्तानि द्वादशषोडशदशकलायुक्तानि यतस्तु भूतवसुमुन्यक्ष्यक्षरैः यतो यकारात् यो भूतवर्णः पञ्चमवर्णः शकारः

वसुवर्णोऽष्टमार्णो हकारः मुनिवर्णः सप्तमः सकारः अक्षिवर्णो द्वितीयवर्णो रेफः एतैश्च सहितानि मन्त्रे आयोज्य हृदि न्यस्यतु तथा च शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमः हं नमः पराय द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः सं नमः पराय षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः रं नमः पराय दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः इति चतुष्टयं हृदये न्यस्यतु ।।३०।।

वाक्, पाणि पाद पायु उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियों को मन्त्र में सम्मिलित कर मुख, कर, चरण, पायु (गुदा) उपस्थ इन्द्रियों के स्थानों पर न्यास करे। पुनः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी ये पञ्चमहाभूतों को मन्त्रों में जोडकर सिर, मुख, हृदय, लिग, चरणों में न्यास करे।

इसके बाद सूर्य, चन्द्र, अग्नि जो क्रमशः द्वादशकलात्मक, षोडशकलात्मक, दशकलात्मक हैं, उनको मन्त्र में संयुक्त कर यकार अक्षर से पञ्चम अक्षर शकार अष्टम हकार, सप्तम सकार, द्वितीय रकार, अक्षरों से हृदय में न्यास करे। न्यास प्रकार "शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमः" हं नमः पराय द्वादशकला व्याप्त सूर्य मण्डलात्मने नमः इत्यादि है ॥३०॥

अथ परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृत्तो च सर्वइत्युपनिषदः ।
न्यस्येदाकाशादिस्थाने षोपरवलार्णैः सलवकैः ।।३१।।

अथानन्तरं परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृती सर्वइत्युपनिषदो रहस्यान् षोपरवलार्णैरिति षकारः रेफस्य उप समीपं तेन रेफसमीपवर्त्तिनौ यकारलकारौ लक्ष्येते वकारो लकारश्च एतैः सलवकैः बिन्दुसहितैः सहितान् आकाशादिस्थाने न्यस्येद् आकाशादि न्यासस्थानेषु मूर्ध्न्यास्ये हृदये लिङ्गे चरणयोर्न्यस्येत् ।।३१।।

इसके बाद उपनिषदों के रहस्यभूत, परमेष्ठी, पुरुष, विश्व, निवृत्ति, सर्व, इन पदों को मन्त्र में जोडकर अनुस्वार युक्त ष य ल व ल वर्णों से जिनके आगे वासुदेवादि पर लगाए जाएंगे सिर, मुख, हृदय, लिंग और चरणों में न्यास करे ।।३१।।

अत्रैव विशेषमाह—
वासुदेवइति ।

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।
नारायणश्च क्रमशः परमेष्ठ्यादिभिर्युताः ।।३२।।

क्रमशः क्रमेण परमेष्ठ्यादिभिः सहिता वासुदेवादयो न्यसनीया तथा च षं नमः पराय वासुदेवाय परमेष्ठ्यात्मने नमः इति शिरसि, यं नमः पराय संकर्षणाय पुरुषात्मने नमः इति मुखे, लं नमः पराय प्रद्युम्नाय विश्वात्मने नम इति हृदये, वं नमः पराय अनिरुद्धाय निवृत्यात्मने नमः इति लिङ्गे, लं नमः पराय नारायणाय सर्वात्मने नमः इति हृदये, विन्यस्येदित्यर्थः, केचित्तु परमेष्ठ्यादेरनन्तरं वासुदेवादेः प्रयोगं कुर्वन्ति ।।३२।।

क्रमशः उपनिषदों के रहस्यभूत परमेष्ठी आदि के सहित वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण आदि शब्दों से पूर्वोक्त सिर आदि स्थानों में न्यास करे ।।३२।।

ततः कोपतत्त्वं क्षरौ बिन्दुयुक्तं—
नृसिंहं न्यसेत्सर्वगात्रेषु तज्ज्ञः ।
क्रमेणेति तत्त्वात्मको न्यास उक्तः
स्वसांनिध्यकृद्विश्वमूर्त्यादिषु द्राक् ।।३३।।

ततस्तदनन्तरं क्रमेण गुरूपदेशक्रमेण तज्ज्ञः नृसिंहबीजज्ञः क्षरौ क्षकाररेफऔकारइतिमिलितस्वरूपं बिन्दुयुक्तं तथा कोपतत्त्वं नृसिंहं च मन्त्रे आयोज्य सर्वगात्रेषु न्यस्येत् तथा च क्ष्रौं नमः पराय नृसिंहाय कोपात्मने नमः इति सर्वगात्रेषु न्यस्येदित्यर्थः तत्त्वन्यासमुपसहरति इत्युक्तप्रकारेण तत्त्वात्मको न्यासः कथितो भवति कीदृशः विश्वमूर्त्यादिषु स्वसांनिध्यकृत्कृष्णसांनिध्यकृत् बिम्बादिष्विति के चित् बिम्बं प्रतिमा मूर्तिः शरीरम् आदिपदेन मणिमन्त्रादिसकलस्य परिग्रहः एतेषु हरेः सान्निध्यं करोतीत्यर्थः, क्व चिन्मूर्त्यादिष्विति पाठः ।।३३।।

इसके बाद गुरु के उपदेश अनुसार मन्त्र और नृसिंह बीज क्ष्रौं को समझने वाला साधक को कोपतत्वात्मक नृसिंह को मन्त्र मध्य में रखकर क्ष्रौं इस नृसिंह बीज से सम्पूर्ण शरीर में न्यास करना चाहिए। यह पूर्वोक्त न्यास का नाम तत्व न्यास है, जो विश्व मूर्ति आदि प्रतीक प्रतिमाओं में श्रीकृष्ण का तत्वतः आधान कराने वाला है। अर्थात् प्रतीक मूर्तियों में श्रीकृष्ण का सन्निधान होता है ।।३३।।

एतन्न्यासप्रयोजनमाह—
इति कृत इति ।

इति कृतेऽधिकृतो भवति ध्रुवं-
सकलवैष्णवमन्त्रजपादिषु ।

पवनसंयमनं त्वमुना चरे-

द्यमिह जप्तुमसौ मनुमिच्छति ।।३४।।

तत्त्वन्यासे कृते ध्रुवं निश्चितमधिकृतो भवति न केवलं गोपालविषयमन्त्रकथनादत्रैव अपि तु सकलवैष्णवमन्त्रजपादिष्वपीत्यर्थ, अधुना प्राणायामप्रकारमाह पवनसयमनमिति, असौ साधकः यं मनुम् इह व्यवहारभूमौ जप्तुमिच्छति अमुना मन्त्रेण पवनसंयमनं प्राणायामं चरतु कुर्यादित्यर्थः ।।३४।।

प्राणायामं प्रकरणः—इस प्रकार पूर्वोक्त मातृका न्यास और तत्व न्यास करने पर साधक सम्पूर्ण वैष्णव मन्त्र जपने का अधिकारी होता है। और साधक जिस मन्त्र को अपनी व्यवहार भूमि पर उतारना चाहता है, उसी मन्त्र से प्राणायाम भी करे।।३४।।

अत्रैव प्रकारान्तरमाह—

अथवेति ।

अथवाऽखिलेषु हरिमन्त्र

जपविधिषु मूलमन्त्रतः ।

संयमनममलधीर्मरुतो-

विधिनाऽभ्यसंश्चरतु तत्त्वसंख्यया ।।३५।।

मूलमन्त्रतो मूलमन्त्रेण, वक्ष्यमाणदशाक्षरेणेति केचिद्, वस्तुतस्तु सप्ताक्षरगोपालवल्लभमन्त्रेण तस्यैव मूलमन्त्रत्वेनाभिधानात्तद्वचनस्य प्रयोजनान्तराभावात् तत्त्वसङ्ख्यया‌ऽष्टाविंशतिवार चतुर्विंशतिवारमिति केचित् ।।३५।।

अथवा सम्पूर्ण गोपाल मन्त्रों के जप के आरम्भ में मूल मन्त्र गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्र अथवा उसका मूल बीज क्लीं से ही चौबीस वार प्राणायाम करे ।।३५।।

पुरतो जपस्य परतोऽपि

विहितमथ तत्त्रयं बुधैः ।

षोडश य इह समाचरेद्दिनशः

परिपूयते स खलु मासतोंऽहसः ।।३६।।

पुरतो जपादौ पश्चाच्च तत्त्रयं बुधैर्विहितं प्राणायामत्रयं, रेचकादित्रयमिति केचिद्, एतेन जपाङ्गत्वाच्च तत्राद्यन्तेऽयंदर्शितः ।।३६।।

जप के आदि और अन्त में तीन वार प्राणायाम करना चाहिए। यदि कोई साधक प्रतिदिन सोलह प्राणायाम करे तो वह एक मास के अन्दर ही सब पापों से मुक्त हो जाएगा ।।३६।।

अत्रैव प्रकारान्तरमाह—

अथवेति ।

अथवाऽङ्गजन्ममनुना सुसंयमं-

सकलेषु कृष्णमनुजापकर्मसु ।

सहितैकसप्तकृतिवारमभ्यसं-

स्तनुयात्समस्तदुरितापहारिणा ।।३७।।

कृतीति कृतिच्छन्दसो विंशत्यक्षरत्वात् सहितमेकं यत्र तादृशसप्तकृतिवारं अथवा सहितानि मिलितानि एक सप्तकृतयः उभयत्राष्टाविंशतिवारमित्यर्थः सर्वेषु कृष्णमनुजापकर्मसु अङ्गजन्ममनुना कामबीजेन प्राणायाममभ्यसंस्तनुयात् प्रथममेकं ततः सप्त ततो विंशति ततोऽभ्यासपाटवेऽष्टाविंशतिवारमित्यर्थः, कश्चित्तु प्रथमं सप्त ततो विंशतिस्तत एकं ततोऽष्टाविंशतिवारमभ्यासक्रमेणेति तात्पर्यमाह तत्र प्रमाणं स एव प्रष्टव्यः ।।३७।।

प्राणायाम के सम्बन्ध में दूसरा प्रकार यह है कि सम्पूर्ण श्रीकृष्ण मन्त्र जाप में क्लीं बीज से ही प्राणायाम करना चाहिए। पहले एक वार, कुछ अभ्यास के बाद सात वार, पुनः बीस वार, पूर्ण अभ्यास की स्थिति में अट्ठाईस वार प्राणायाम करना चाहिए। श्लोक गत कृति शब्द का अर्थ बीस संख्या है, एक, सात, बीस, योग अट्ठाईस होती है ।।३७।।

मन्त्रविशेषप्राणायामप्रकारमाह—

अष्टाविंशतीति ।

अष्टाविंशतिसंख्यमिष्टफलदं मन्त्रं दशार्णं जप-

न्नायच्छेत्पवनं सुसंशितमतिस्त्वष्टादशार्णेन चेत् ।

अभ्यस्यन् रविवारमन्यमनुभिर्वर्णानुरूपं जपन्

कुर्याद्रेचकपूर्वकर्मनिपुणः प्राणप्रयोगं नरः ।।३८।।

सुसंशितमतिः विमलबुद्धिः अष्टाविंशतिसंख्यं दशार्णं दशाक्षरमन्त्रं जपन् प्रायच्छेत्प्राणायामं कुर्यात्कीदृशं दशार्णम् इष्टफलदं स्वाभिमतफलदं तत्र दशाक्षरमन्त्रस्य वारचतुष्टयं जपेन रेचकम् अष्टवारजपेन

पूरकं षोडशवारजपेन कुम्भकं कुर्य्यादिति गुरुसम्प्रदायः अष्टादशार्णे चेत्प्राणायामः क्रियत इति शेषः तदा रविवारं द्वादशवारमभ्यस्यन् प्राणायामं कुर्यादिति गुरुसंप्रदायः, अन्यमनुभिरन्यमन्त्रैश्चेत्प्राणायामः क्रियते तदा वर्णानुरूपं मन्त्रवर्णानांतारतम्येन जपं कुर्वन् कुर्यात्, अत्र स्वल्पाक्षरैर्मन्त्रैर्बहुवारम् अनल्पाक्षरैर्मन्त्रैः स्वल्पवारं जपेदित्यर्थः कीदृशः साधकः रेचकपूरककुम्भकाख्यकर्मकुशलइत्यर्थः, रेचकस्य त्यागस्य पूर्वकर्मणी पूरककुम्भके तत्र निपुण इति रुद्रधरः, तच्चिन्त्यम् एवमपि रेचके नैपुण्यालाभात् प्रपञ्चसारानुसारिणोऽस्य ग्रन्थस्य शारदाग्रन्थानुयायित्वाच्च ।।३८।।

स्थिर बुद्धि वाले साधक को मनोवान्छित फल देने वाला दशाक्षर मन्त्र को अट्ठाईस बार जप कर प्राणायाम करना चाहिए। क्रम यह है कि दशाक्षर मन्त्र को आठ बार जप कर पूरक, सोलह बार जप कर कुम्भक, चार बार जप कर रेचक प्राणायाम किया जाएगा। यदि गोपालाष्टाक्षर मन्त्र से साधक प्राणायाम करना चाहे तो मन्त्र को बारह बार जप कर प्राणायाम करे। बारह संख्या से ही तीनों प्रणाली की पूर्ति करनी चाहिए। मन्त्र प्राणायाम का नियम यह है कि अल्पाक्षर मन्त्र हो तो अधिक संख्या से, और बहु अक्षर मन्त्र हो तो स्वल्प संख्या से प्राणायाम किया जाता है। पूरक, कुम्भक, रेचक प्रणाली को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए ।।३८।।

अधुना प्राणायामप्रकारं दर्शयति-

रेचयेन्मारुतमिति ।

रेचयेन्मारुतं दक्षया दक्षिणः
पूरयेद्वामया मध्यनाड्या पुनः ।
धारयेदीरितं रेचकादित्रयं-
स्यात्कलादन्तविद्याख्यमात्रात्मकम् ।।३९।।

दक्षिणो विचक्षणः पुरुषः दक्षया दक्षिणनाड्या मारुतं वायुं रेचयेत् तथा वामया वामनाड्या त्यक्तवायुं पूरयेद् मध्यया सुसुम्णया नाड्या मारुतं वायुं धारयेद् इत्युक्तप्रकारेण रेचकादित्रयं रेचकपूरककुम्भकाख्यत्रितयम् ईरितं कथितं रेचकादिष्ववधिकालमाह-कलादन्तेति, कलाः षोडश, दन्ता द्वात्रिंशद्, विद्याः चतुः षष्टिरूपाः एतत्संख्याकमात्रात्मकमित्यर्थः, अत्र भैरवत्रिपाठिनः यत्र मन्त्रगणनया प्राणायामः तत्र कुम्भककाल एवोक्तः श्वासाभ्यासक्रमेण प्राणायामसंख्यया मन्त्रजपः

कार्यो निर्गमप्राणायामे तु रेचकादिगणना कार्येत्याहुः, मात्रशब्देन च वामाङ्गुष्ठे कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां प्रत्येकं पर्वत्रयस्पर्शकालः कथ्यते वामहस्तेन वामजानुमण्डलस्य प्रादक्षिण्येन स्पर्शकालश्च, यदत्र रुद्रोपाध्यायैरुक्तं यद्यप्यत्र रेचकं प्रथममुक्तं तदनन्तरं पूरकं तथाऽपि प्रथमं पूरकमनन्तरं कुम्भकं ज्ञेयं यतो गृहीतधृतस्य त्यागो भवति यत्पुनर्व्यत्यासेन कथनं तद्गोपनाय एव कलादन्तेत्याद्यपि व्यत्यासेन बोद्धव्यम्, इडयोत्कर्षयेद्वायुमित्यादिशारदादर्शनाद् एवं च गृहीतचतुर्गुणेन धारणे तदर्द्धेन त्याग इत्यपि दर्शितं भवतीति, तन्न, प्रपञ्चसारानुसारिणो ग्रन्थस्यास्य शारदानुयायित्वात् प्रपञ्चसारे रेचकादित्वस्यैवोक्तत्वात् पूरकादित्वस्याष्टाङ्गयोगान्तर्भूतप्राणायामविषयत्वाद् यदुक्तं गृहीतस्य त्यागो भवति तत्रोच्यते स्वाभाविकवायुधारणस्यात्रापि सत्त्वादन्यथा शरीरपातापत्तेः यदुक्तं व्यत्यासेन गोपनार्थे कथनमिति तदयुक्तं मन्त्रभिन्नस्यानुष्ठानभागस्य ऋजुमार्गेणैव वक्तुं युक्तत्वाद् यदुक्तं गृहीतचतुर्गुणेनैव धारणं तदर्द्धेन त्याग इति तदप्ययुक्तं प्रमाणाभावाद् दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् अङ्गुलीनियमोऽपि प्राणायामे कथितो यथा—

कनिष्ठाऽनामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विनेति ।।३९।।

प्राणायाम तत्त्व को समझने वाले साधक को चाहिए कि दक्षिण स्वर से वायु का रेचन करे। बायें स्वर से वायु को ऊपर खींचे, (पूरक करे) सुषुम्णा-मध्यमा नाडी से कुम्भक करे, रेचन की मन्त्र जप संख्या बत्तीस, कुम्भक की चौसठ, पूरक की सोलह है। यद्यपि श्लोक में पहले वायु रेचन की प्रणाली कही गई है। कुछ लोग इसी को ही मुख्य क्रम मानते हैं, तथापि पहले पूरक, तदनन्तर कुम्भक, अन्त में रेचक प्रणाली से ही प्राणायाम करना चाहिए, इससे दूषित वायु का रेचन हो जाता है ।।३९।।

प्रकृतमुपसंहरन्नात्मयागार्थं देहे पीठकल्पनां दर्शयति—

प्राणायाममित्यादिना ।

प्राणायामं विधायेत्थ निजवपुषाकल्पयेद्यागपीठं
न्यस्येदाधारशक्तिप्रकृतिकमठशेषक्ष्माक्षीरसिन्धून् ।

श्वेतद्वीपं च रत्नोज्ज्वलमहितमहामण्डपं कल्पवृक्षं-
हृद्देशेंऽशद्वयोरुद्वयवदनकटीपार्श्वयुग्मेषु भूयः ।।४०।।

धर्माद्यधर्मादि च पादगात्र-
चतुष्टयं हृद्यथ शेषमब्जम् ।
सूर्येन्दुवन्हीन्प्रणवांशयुक्तान्
स्वाद्यक्षरैः सत्त्वरजस्तमांसि ।।४१।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण प्राणायामं विधाय कृत्वा अथानन्तरं निजवपुषा निजशरीरेण यागपीठं पूजापीठङ्कल्पयेत् कल्पनाप्रकारमाह-न्यस्येदिति हृद्देशे हृदि आधारशक्त्यादिकल्पवृक्षान्तं न्यसेत् कमठः कूर्मः शेषोऽनन्तः क्षीरसिन्धुः क्षीरसमुद्रः रत्नेन उज्ज्वलः महितो यः महामण्डपः रत्नमण्डपः इति यावत् तथा चाधारशक्तये नमः प्रकृत्यै नम इति नवकं न्यसेद् हृदीत्यर्थः, भूयोऽनन्तरम् अंसद्वयोरुद्वयवदनकटीपार्श्वयुग्मेषु धर्माद्यधर्मादिपादगात्रचतुष्टयं विन्यस्येत् पादगात्रयोश्चतुष्टयं पादगात्रचतुष्टयमित्युभयत्र सम्बध्यते पादचतुष्टयं गात्रचतुष्टयं धर्मादि धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यरूपपादचतुष्टयम् अंसद्वयोरुद्वये च धर्माय नमः दक्षिणांसे, ज्ञानाय नमः वामांसे, वैराग्याय नमः वामोरौ, ऐश्वर्याय नमः दक्षिणोरौ, इत्येवं प्रादक्षिण्यक्रमेण विन्यसेत् शारदायां प्रादक्षिण्येनेत्यभिधानात् तत्रानुष्ठानक्रमकथनाच्च अन्यथा शारदायाम् अंसोरुयुग्मयोरित्यत्रांसोरुयुगेत्यनेनैव क्रमप्राप्तेः प्रादक्षिण्येत्यस्य वैयर्थ्यं स्यात्, तथाऽधर्मादि अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यरूपं गात्रचतुष्टयं वदनकटीपार्श्वयुग्मेषु अधर्माय नमः मुखे, अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे, अवैराग्यायनमः कट्यां स्वाधिष्ठानप्रदेशे, अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे इत्येवं क्रमेण न्यसेत् शारदायां मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्विति क्रमदर्शनात्, एतच्च भैरवत्रिपाठिनोऽपि संमतम्, एतेषु यथाश्रुतक्रमेणैवेति विद्याधराचार्याः, अथानन्तरं शेषमनन्तम् अब्जं पद्मं सूर्येन्दुवह्नीन् सूर्यसोमाग्निमण्डलानि कीदृशान् तान् प्रणवांशयुक्तान् प्रणवस्योङ्कारस्यांशाः अवयवा अकारोकारमकारास्तैर्युक्तान्सहितान् तत्रादौ सबिन्दुप्रणवांशादिसाहित्यं सम्प्र-

दायतो बोद्धव्यं, स्वाद्यक्षरैः सबिन्दुस्वीयस्वीयप्रथमाक्षरैः सहितानि सत्त्वरजस्तमांसि तथा च हृत्पद्मे अनन्ताय नमः पद्माय नमः अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः उं षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः सं सत्त्वाय नमः रं रजसे नमः तं तमसे नमः ।।४०।।४१।।

इस प्रकार प्राणायाम करने के बाद अपने शरीर में पूजा पीठ की कल्पना करे। और उस कल्पित पीठ रूप शरीर के हृदय देश में आधार शक्ति, मूल प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीर समुद्र, श्वेत द्वीप, रत्नोज्ज्वलमहामणि मण्डप, और कल्पवृक्ष, ये चतुर्थी विभक्त्यन्त नौ मन्त्रों से न्यास करे। फिर धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य इन मन्त्रों से अंसद्वय, ऊरुद्वय, मुख, कटि, पार्श्व द्वय में प्रादक्षिण्य क्रम से न्यास करे। इसके बाद अनन्त, पद्म, सूर्य, सोम, अग्नि मण्डलों से जो प्रणव के अंशभूत अ. उ. म. से युक्त हों न्यास करे, तथा तीनों गुणों के आद्य अक्षर को बीज बनाकर सत्वादि गुणों से हृदय में न्यास करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

आत्मादित्रयमादिबीजसहितं व्योमाग्निमायालवं-
ज्ञानात्मानमथाष्टदिक्षु परितो मध्ये च शक्तीर्नव ।
न्यस्येत् पीठमनुं च तत्र विधिवत्तत्कर्णिकामध्यग-
नित्यानन्दचितिप्रकाशममृतं संचिन्तयेद्धाम तत् ।।४२।।

आत्मादित्रयम् आत्माऽन्तरात्मा परमात्मेति लक्ष्यं कीदृशम् आदिबीजसहितं सबिन्दुं स्वीयस्वीयप्रथमाक्षर रूपबीजसहितमिति विद्याधराचार्याः, आदिः प्रणवस्तत्सहितमिति त्रिपाठिनः, व्योम हकारः, अग्निः रेफः, माया दीर्घई:, लवो बिन्दुः, एतैः सह ज्ञानात्मानं भुवनेश्वरीबीजसहितं हृत्पद्मे न्यसेदिति पूर्वेणान्वयः तथा च आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, इतिहृदि विन्यसेद्, अथानन्तरम् अष्टदिक्षु परितः प्रादक्षिण्येन मध्ये च कर्णिकायां नवशक्तीर्विमलोत्कर्षिण्याद्या न्यस्येत्पद्मस्य पूर्वादिकेसरेषु प्रादक्षिण्येन विमलायै नमः, उत्कर्षिण्यै नमः, ज्ञानायै नमः क्रियायै नमः, योगायै नमः, प्रह्व्यै नमः, सत्यायै नमः, ईशानायै नमः, कर्णिकायां अनुग्रहायै नमः, इति न्यसेत्, पीठमन्त्र च तत्र न्यस्यः एतस्योपरि

वक्ष्यमाणं पीठमन्त्रं ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति मन्त्रं न्यसेत् तत उक्तरूपे पीठे विधिवद् गुरूपदिष्टमार्गेण तत् सर्वोपनिषत्प्रसिद्धम् धाम ब्रह्मचैतन्यं चिन्तयेत् कीदृशं तत्कर्णिकामध्यगं हृत्पद्मकर्णिकामध्यस्थमित्यर्थः एतद् ध्यानोपयोगि रूपमुक्तं स्वाभाविकरूपमाह कीदृशं नित्येति अविनाशिचैतन्यं स्वतःप्रकाशस्वरूपं पुनः कीदृशम् अमृतं शुद्धस्वरूपमित्यर्थः, तत्राधारशक्त्यादयः सर्वे मन्त्राः प्रणवादिचतुर्थीनमोऽन्ताः सम्प्रदायतो बोद्धव्याः ॥४२॥

आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्माओं के आद्य अक्षरों को सानुस्वार बीज बनाकर और ह्रीं बीज के सहित चतुर्थ्यन्त ज्ञानात्मा से हृदय में न्यास करे। आं आत्मने नमः अं अन्तरात्मने नमः पं परमात्मने नमः ह्रीं ज्ञानात्मने नमः यह प्रयोग विधि है। इसके बाद की आठों दिशाओं में प्रादक्षिण्य क्रम से अर्थात् पूर्व से आरम्भ कर विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशानादि शक्तियों से न्यास करे, कणिका में अनुग्रहा शक्ति से न्यास करना चाहिए। उसी पीठ में ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्म संयोग योग पद्म पीठात्मने नमः इस पीठ मन्त्र से व्यापक न्यास करके उस पीठ में विराजमान नित्यानन्द-ज्ञान स्वरूप स्वाभाविक अनन्त गुण शक्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥४२॥

पीठशक्तीर्दर्शयति—

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगेति शक्तयः ।
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा नवमी स्मृता ॥४३॥

विमलेति ॥४३॥

विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा प्रह्वी सत्या ईशाना, अनुग्रहा में नौ पीठ शक्तियां है ॥४३॥

पीठमन्त्रमुद्धरति—
तारमित्यादिना ।

तारं हृदयं भगवान् विष्णुः सर्वान्वितश्च भूतात्मा ।
ङेऽन्ताः सवासुदेवाः सर्वात्मयुतश्च संयोगः ॥४४॥

योगावधौ च पद्मं पीठात्मा ङेयुतो नतिश्चान्ते ।
पीठमहामनुरुक्तः पर्याप्तोऽयं सपर्यासु ॥४५॥

तारः प्रणवः, हृदयं नमः, भगवानिति च विष्णुरिति च सर्वान्वितः सर्वपदसहितः भूतात्मा सर्वभूतात्मेति, एते त्रयः सवासुदेवाः वासुदेवेन सह चत्वारः प्रत्येकं ङेऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः कार्याः सर्वात्मयुतश्च संयोगः सर्वात्मसंयोगइति स्वरूपं योगावधौ योगशब्दान्ते पद्मपद्मेति स्वरूपं ङेयुतः पीठात्मा चतुर्थ्यन्तः पीठात्मा एतस्यान्ते नतिर्नमः शब्दः, उपसहरति पीठेति अयं पीठमहामनुरुक्तः कथितः कीदृशः सपर्यासु पूजासु पर्याप्तः समर्थः ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

"ॐ नमो भगवते विष्णवे, सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्म संयोग योग पद्म पीठात्मने नमः" यह योगपीठ मन्त्र है। पूजा सिद्धि के लिए यह मन्त्र ही पर्याप्त माना जाता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

करशोधनं दर्शयति—
करयोरित्यादिना ।

करयोर्युगलं विधाय मन्त्रा-
त्मकमाभ्यामभिधास्यमानमार्गात् ।
सकलं विदधीत मन्त्रवर्णैः
परमं ज्योतिरनुत्तमं हरेस्तत् ॥४६॥

इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
प्रथमः पटलः ॥१॥

करयोर्युगलम् अभिधास्यमानमार्गाद्, व्यापय्येत्यारभ्य विधिः समीरितः करे इत्यन्तं वक्ष्यमाणप्रकारेण मन्त्रवर्णैर्मन्त्रात्मकं मन्त्रस्वरूपं विधाय कृत्वा आभ्यां कराभ्यां सकलं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च न्यासपूजादिकं विदधीत कुर्याद् मन्त्रवर्णकरणककरशोधने हेतुमाह परममित्यादिना यस्मात्तन्मन्त्रवर्णे हरेः कृष्णस्य परमं तेजः स्वरूपमित्यर्थः, कीदृशं पुनः अनुत्तमं नास्त्युत्तमं यस्मात्तथेत्यर्थः, सकलं विदधीतेति परत्रापि

काकाक्षिगोलकन्यायेन योजनीयं तथा च तद् हृदयपङ्कजस्थं हरेरनुत्तमं ज्योतिस्तेजः सकलं विदधीत षडङ्गन्यासेन सावयवं कुर्यादिति लघु-दीपिकाकारः ।।४६।।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे प्रथमः पटलः ।।१।।

द्वितीय पटल के पच्चीसवें और छब्बीसवें श्लोकों में वर्णित क्रम से दोनों करों को मन्त्रात्मक बनाकर उन मन्त्रमय करों द्वारा तत्-तत् मन्त्राक्षरों से न्यास तथा भगवत्पूजा करे, क्योंकि मन्त्रमय कर श्रीकृष्ण के तेज पुञ्ज को धारण करने में समर्थ होते हैं ।।४६।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत "दीपिकार्थ प्रकाशिका"
नामक हिन्दी व्याख्या का प्रथम पटल पूर्ण हुआ ।।१।।

द्वितीयपटलम्

करयोर्युगलं विधायेत्यादिना सूचितं मन्त्रमुद्धर्तुमादौ गोपाल-मन्त्रेष्वपि मौलीभूतौ दशाक्षराष्टादशाक्षरौ प्रथमं संस्तौति—वक्ष्ये मनुमिति ।

वक्ष्ये मनुं त्रिभुवनप्रथितानुभाव-
मक्षीणपुण्यनिचयैर्मुनिभिर्विमृग्यम् ।
पक्षीन्द्रकेतुविषयं वसुधर्मकाम-
मोक्षप्रदं सकलकार्मणकर्मदक्षम् ।। १ ।।

मन्त्रं वक्ष्ये उद्धरिष्यामि कीदृशं त्रिभुवनेति त्रिभुवने त्रैलोक्ये प्रथितः ख्यातोऽनुभावः प्रभावो यस्य तथा तं पुनः कीदृशं मुनिभिर्मुमुक्षुभिर्विमृग्यम् अन्वेषणीयं किंभूतैर्मुनिभिः अक्षीणेति अक्षीणः संपूर्णः पुण्यनिचयः सुकृतसमूहो येषां तथा तैः पुनः कीदृशं पक्षीति पक्षीन्द्रो गरुडः स एव केतुः चिन्हं यस्य सः पक्षीन्द्रकेतुः श्रीकृष्णः तद्विषयं तत्प्रतिपादकं पुनः कीदृशं वस्विति वसु-धनन्तथा च पुरुषार्थचतुष्टयप्रदमित्यर्थः पुनः कीदृश सकलेति अशेषवश्यकर्मकुशलम् ।। १ ।।

तीनों लोकों में प्रख्यात प्रभाव वाले जिनके पुण्य पुञ्ज अक्षीण हैं ऐसे महर्षियों के द्वारा भी अन्वेषणीय, गरुड वाहन श्रीकृष्ण को प्राप्त कराने वाले, धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को देने वाले सम्पूर्ण वशीकरण सम्बन्धी विषयों का अव्यर्थ साधक गोपालदशाक्षर, और गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्रों की व्याख्या करूँगा, अर्थात मन्त्राक्षरों का उद्धरण करूँगा ।।१।।

अतिगुह्यमबोधतूलराशि
ज्वलनं वागधिपत्यदं नराणाम् ।
दुरितापहरं विषापमृत्यु
ग्रहरोगादिनिवारणैकहेतुम् ।। २ ।।

पुनः कीदृशम् अतिगुह्यं पुनः कीदृशम् अबोधेति अबोधो मिथ्या-ज्ञानरूपः स एव तूलप्रचयः तत्र ज्वलनो वह्निरिव तं समस्ताज्ञाननाशकमित्यर्थः पुनः कीदृशं नराणां साधकानां वागधिपत्यदं वागैश्वर्यप्रदं पुनः कीदृशं दुरितापहरं दुःखप्रापकानिष्टनिवारकं पुनः कीदृशं विषं

स्थावरं जङ्गमं च अपमृत्युरकालमरणं ग्रहो नवग्रहजनितानिष्टं रोगो वातपित्तादिजनितशरीरदौस्थ्यम् एवमादीनामशुभादीनां निवारणे एको-ऽद्वितीयो हेतुः कारणम् ।।२।।

यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय है और अज्ञान रूप तूल राशि को भस्म करने वाला, साधकों को वाक्सिद्धि देने वाला सम्पूर्ण पाप नाशक, विष, अकाल मृत्यु अनिष्ट ग्रह रोगादि जन्य उपद्रवों को हटाने वाला मन्त्रराज का उद्धरण करता हूँ ।।२।।

पुनः कीदृशम्—

जयदं प्रधनेऽभयदं विपिने
सलिलप्लवने सुखतारणदम् ।
नरसप्तिरथद्विपवृद्धिकरं
सुतगोधरणीधनधान्यकरम् ।। ३ ।।

प्रधने संग्रामे जयदं, विपिनेऽभयदं भयहरं, सलिलप्लवने तोयसन्तरण सुखसन्तरणदातारं, सप्तिर्हयः तथा च मनुष्याणांहयरथद्विपादीना-मुपचयकरं तथा सुतादिप्रदम् ।। ३ ।।

संग्राम में विजयश्री देने वाला वीहड जंगल में भय को हटाने वाला, नदियों में डूबने से बचाकर पार करने वाला, साधक के लिए घोड़ा, रथ, हाथी, पुत्र, पौत्र, गौ, भूमि, धन धान्य को समृद्धि करने वाला मन्त्रराज का उद्धार करूँगा ।।३।।

पुनः कीदृशम्—

बलवीर्यशौर्यनिचयप्रतिभा-
स्वरवर्णकान्तिसुभगत्वकरम् ।
क्षुभिताण्डकोटिमणिमादिगुणा-
ष्टकदं किमत्र बहुनाऽखिलदम् ।। ४ ।।

बलं शरीरसामर्थ्यं, वीर्यं शुक्रं प्रभावो वा, शौर्यं पराभिभावकं-तेजः, एतेषां निचयः समूहः, प्रतिभा बुद्धिः स्फूर्तिरूपा स्वरोध्वनिः, वर्णो गौरत्वादिः, कान्तिर्दीप्तिः प्रतिभास्वरवर्णकान्तिरित्येकपदं तथा च प्रतिभास्वरवर्णकान्तिर्देदीप्यमानवर्णशोभेति कश्चित् सुभगत्वं समस्त-लोकादरकत्वम् एतेषां कर्तारं दातारमित्यर्थः पुनः क्षुभिता संमोहिताऽ-ण्डकोटिर्ब्रह्माण्डकोटिर्येन तथा तं संसारमोहकमित्यर्थः, पुनः अणिमादि-

गुणाष्टकदम् अणिमलघिमगरिम-महिमेशित्ववशित्वप्राकाम्यप्राप्त्याख्य-गुणाष्टकप्रदमित्यर्थः, पुनः किंबहुना ? अत्र जगति, अखिलदं समस्ता-भीष्टप्रदमित्यर्थः ।। ४ ।।

शारीरिक शक्ति, वर्ण कान्ति, सौभाग्य कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड को भी मुग्ध करने की शक्ति रखने वाला, अणिमादि अष्ट सिद्धियों को सहज में ही देने वाला, किंवा सर्व फलप्रद मन्त्र का उद्धार करता हूँ ।।४।।

अथ दशाक्षरमन्त्रराजमुद्धरति—
शार्ङ्गीत्यादिना ।

शार्ङ्गी सोत्तरदन्तः शूरो वामाक्षियुग्द्वितीयोऽर्णः ।
शूली शौरिर्बालोबलानुजद्वयमथाक्षरचतुष्कम् ।। ५ ।।
शूरतूरीयः साननवृत्तः स्यात्सप्तमोऽष्टमोऽग्निसखः ।
तद्दयिताऽक्षरयुग्मं तदुपरिगं त्वेवमुद्धरेन्मन्त्रम् ।। ६ ।।

शार्ङ्गी गकारः कीदृशोऽयं सोत्तरदन्त उत्तरदन्तपङ्क्तौ न्यस्यमानः उत्तरदन्त ओकारस्तेन सहित एतेन प्रथमाक्षरमुद्धृतं, शूरः पकारः कीदृशोऽयं वामाक्षियुक् वामाक्षि चतुर्थस्वरः तेन सहित एतेन द्वितीया-क्षरमुद्धृतम् अक्षरचतुष्कं क्रमेण पुनः कथ्यते शूलो जकारः शौरिर्नकारः बालो वकारः बलानुजद्वयं संयुक्तलकारद्वयं ललइतिस्वरूपमित्यक्षरचतु-ष्कमुद्धृतं शूरतुरीयः शूरस्य पकारस्य चतुर्थः कीदृशोऽयं साननवृत्तः आननवृत्तेनाकारेण सह वर्त्तत इति साननवृत्तः अयं च सप्तमः स्याद् मन्त्रस्य सप्तमोभवतीत्यर्थः अष्टमोऽग्निसखो वायुः यकार इति यावत् तथा च मन्त्रस्याष्टमो वर्णो य इति बोद्धव्यः तदुपरिगं पूर्वोक्तवर्णा-नन्तर्यविशिष्टं तद्दयिताऽक्षरयुगलं स्वाहेति स्वरूपमित्यक्षरद्वयमुद्धृतम् ।। ५ ।। ६ ।।

दशाक्षर मन्त्र का उद्धार किया जाता है। शार्ङ्गी—ग, सोत्तर दन्तः—ओकार सहित गो, वामाक्षियुक् शूरः—दीर्घ ईकार के सहित प,—पी, शूली—ज, शौरिः—न, बालः—व, बलानुज द्वयं—संयुक्त ल्ल, आननवृत्तः शूरतुरीयः—आकार के सहित भ—भा यह सप्तम अक्षर हुआ, अष्टम अक्षर है अग्नि सखः—य, तद्दयिता—अग्नि जाया—स्वाहा इस प्रकार "गोपीजनवल्लभायस्वाहा" यह दशाक्षर मन्त्र उद्धृत हुआ ।। ५ ।। ६ ।।

प्रकाशितइति—

प्रकाशितो दशाक्षरो मनुस्त्वयं मधुद्विषः ।
विशेषतः पदारविन्दयुग्मभक्तिवर्धनः ।। ७ ।।

मधुद्विषः श्रीगोपालकृष्णस्यायं दशाक्षरो मन्त्र उद्धृतः । कीदृशो ? विशेषतो विशेषेण पदारविन्दयुग्मभक्तिवर्धनः श्रीगोपालकृष्णचरणाब्जयुगले या भक्तिराराध्यत्वेन ज्ञानं तत्समृद्धिकारक इत्यर्थः ।। ७ ।।

मधु दैत्य के अरि भगवान् श्रीकृष्ण का यह दशाक्षर मन्त्र प्रकाशित किया गया है, जो विशेष करके श्रीकृष्णपादारविन्द में भक्ति वर्धन करने वाला है ।।७।।

मन्त्रस्य ऋष्यादिकं दर्शयति –

नारद इति ।

नारदो मुनिरमुष्य कीर्तितः छन्दउक्तमृषिभिर्विराडिति ।
देवता सकललोकमङ्गलो नन्दगोपतनयःसमीरितः ।।८।।

अमुष्य पूर्वोक्तमन्त्रस्य मुनिः ऋषिर्नारदः कीर्तितः कथितः, ऋषिभिर्गौतमादिभिर्विराट्छन्द उक्तं देवता नन्दगोपतनयः श्रीगोपालकृष्ण उक्तः, कीदृशः ? सकललोकमङ्गलः सर्वजनकल्याणहेतुः एतेन ऋष्यादीनां शिरसि रसनायां हृदि क्रमेण न्यासः कार्यइति सूचितं प्रपञ्चसारे तथा विधानात्, प्रयोगश्च दशाक्षरगोपालमन्त्रस्य नारदऋषये नमः शिरसि, विराट्छन्दसे नमो मुखे श्रीगोपालकृष्णाय देतायै नमः हृदि इत्येवम्भूतः । अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिः, एवं छन्दोदेवतयोरपि योज्यमिति केचित् ।। ८ ।।

उपर्युक्त दशाक्षर मन्त्र के ऋषि नारद हैं । गौतम आदि ऋषियों ने इसका छन्द विराट् बताया है । मन्त्र के देवता लोकमंगलकारी नन्दगोपतनय श्रीगोपाल कृष्ण हैं ।।८।।

अधुनाऽस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गानि दर्शयति—

अङ्गानीत्यादिना—

अङ्गानि पञ्च हुतभुग्दयितासमेतै-
श्चक्रैरमुष्य मुखवृत्तविसूपपन्नैः ।
त्रैलोक्यरक्षणयुजाऽप्यसुरान्तकाख्य-
पूर्वेण चेह कथितानि विभक्तियुक्तैः ।। ९ ।।

हृदये नतिः शिरसि पावकप्रिया
सवषट् शिखा हुमपि वर्मणि स्थितम् ।
सफडस्त्रमित्युदितमङ्गपञ्चकं-
सचतुर्थि बौषडुदितं दृशोर्यदि ।। १० ।।

अमुष्य इह शास्त्रे अङ्गानि पञ्च कथितानि कानि तानि तत्राह हृदये नतिरिति हृदये नतिर्नमःपदं शिरसि पावकप्रिया स्वाहेति सवषट् वषट्पदसहिना शिखेत्यर्थः हुमपि वर्मणि स्थितं वर्मणि कवचे हुमपि पदं स्थितमित्यर्थः सफडस्त्रं फट्पदसहितमस्त्रमित्यर्थः, इत्यनेन प्रकारेण सचतुर्थि यथा स्यात्तथैवमङ्गपञ्चकमुदितं कथितं चतुर्थ्या च हृदयादीनां योगः कार्यः कैः सह चक्रैश्चक्रशब्दैः कीदृशैः मुखवृत्तविसूपपन्नैर्मुखवृत्तमाकारः वि इति सु इति स्वरूपमेतैः प्रत्येकमुपपन्नैः सम्बद्धैः त्रैलोक्यरक्षणयुजाऽपि त्रैलोक्यरक्षणं युनक्तीति तद्युग् एतादृशेन चक्रेण अपिशब्दाच्चक्रैरिति विभिद्यान्वयः कार्यः तथा च चक्रेणेति असुरान्तकाख्यपूर्वेण चक्रेणेत्यर्थः चः समुच्चये पुनः कीदृशैः ? विभक्तियुक्तैः चतुर्थीयुक्तैः तस्या एव प्रकृतत्वात् एतस्यापि पदस्य विभिद्यान्वयः कार्यः दृशोर्यदि इति यदि क्वचिन्मन्त्रे दृशोर्न्यासोऽस्ति तदा तत्र वौषडिति उदितं कथितम् अत्र ज्वालाचक्रायेत्यपि योज्यमिति लघुदीपिकाकारः । प्रयोगश्च आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट् त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं ज्वालाचक्राय स्वाहा नेत्रद्वयाय वौषट् असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फडिति अङ्गुलीष्वङ्गमन्त्रन्यासे तु तत्तदङ्गमन्त्रान्ते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि योज्यम् आगमान्तरे ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यान्नमः ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा ततइत्यादिदर्शनात् तेनाङ्गुष्ठादिषु हृदयाय नमः इत्यादिप्रयोगाश्चिन्त्याः असमवेतार्थकत्वाद् मानाभावाच्चेति केचित् । अन्ये तु यथाश्रुताङ्गमन्त्रस्यैव न्यासैरङ्गुलीष्वतिदेशानाहुराचार्याः ।। ९ ।। १० ।।

गोपालदशाक्षर मन्त्र के पांच अंग हैं । इन पांचों अंगन्यास में स्वाहापद को साथ लेकर आ. वि. सु. त्रैलोक्यरक्षण, असुरान्तक तथा ज्वाला पद के अव्यवहित उत्तर में चतुर्थी विभक्ति युक्त चक्र शब्द को लगाकर न्यास करना चाहिए। न्यास क्रम में हृदय के साथ नमः पद, सिर के साथ स्वाहा, शिखा के साथ वषट, कवच के साथ हुम्, अस्त्र के साथ फट् शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

न्यास प्रयोग इस प्रकार है। "आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्य रक्षण चक्राय स्वाहा, कवचाय हुंम्, ज्वाला चक्राय स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट असुरान्तक चक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्, है। कुछ लोग इसी से करन्यास भी करते हैं ॥९॥१०॥

दशाङ्गानि दर्शयति —

मन्त्रार्णैर्दशभिरुपेतमिन्द्रखण्डे-
रङ्गानान्दशकमुदीरितन्नमोऽन्तम् ।
हृत्शीर्षं तदनु शिखा तनुत्रमस्त्रं-
पार्श्वद्वन्द्वं सकटिपृष्ठमूर्द्धयुक्तम् ॥११॥

मन्त्रार्णैर्मन्त्राक्षरैर्नमोऽन्त यथा स्यादेवम् अङ्गानां दशकमुदीरितं-कथितं कीदृशैः ? उपेतचन्द्रखण्डैः सानुस्वारैः स्थानान्याहुः हृदयं शीर्षं मस्तकं तत्पश्चात् शिखा प्रसिद्धा तनुत्रं कवचम् अस्त्रं दशदिक्षु पार्श्व-युगलकटिपृष्ठमूर्द्ध सहितं पूर्वोक्तमित्यर्थः कटिर्नाभिरधइति त्रिपाठिनः । प्रयोगस्तु गों हृदयाय नम इति पीं शिरसे स्वाहा इत्यादि ॥ ११ ॥

अनुस्वार युक्त मन्त्रगत दशों अक्षरों से हृदय, सिर, शिखा, कवच दिगस्त्र, पार्श्वद्वय, कटि, पृष्ठ, मूर्ध इन दश अङ्गों में नमः पदयुक्त न्यास करना चाहिए। गों हृदयाय नमः पीं शिरसे स्वाहा, आदि न्यास प्रयोग है ॥११॥

अधुनाऽस्य मन्त्रस्य बीजशक्त्यधिष्ठातृदेवताप्रकृतिविनियोगान् दर्शयति—

वक्ष्यइत्यादिना ।

वक्ष्ये मन्त्रस्यास्य बीजं सशक्ति चक्री शक्री वामनेत्रप्रदीप्तः ।
सप्रद्युम्नो बीजमेतत्प्रदिष्टं मन्त्रप्राद्युम्नो जगन्मोहनोऽयम् ॥१२॥

अस्य मन्त्रस्य पूर्वोक्तस्य सशक्ति शक्त्यादिसहितं बीजं वक्ष्ये बीजमाह चक्रीति ककारः कीदृशोऽयं शक्रो लकारः तद्युक्तः पुनः कीदृशः? वामनेत्रप्रदीप्तः वामनेत्रं चतुर्थस्वरस्तत्सहितः पुनः कीदृशः ? सप्रद्युम्नः प्रद्युम्नो बिन्दुः तत्सहितः तथा च क्लींमिति सिद्धम्भवति एतदस्य बीजं प्रदिष्टं कथितम् अयमेव प्राद्युम्नो मन्त्रइत्यर्थः किम्भूतः जगन्मोहनो विश्ववश्यकरः ॥१२॥

अब पूर्वोक्त मन्त्र का बीज बताऊंगा, चक्री—क, शक्री—ल, वामनेत्र—ई, प्रद्युम्न—अनुस्वार, मिलकर मन्त्र बीज क्लीं होता है, जो विश्ववश्यकर प्राद्युम्न मन्त्र कहाता है ॥१२॥

शक्तिमाह —

हंसइति ।

हंसो मेदोवक्त्रवृत्ताभ्युपेतः पोत्री नेत्राद्यन्वितोऽसौ युगार्णा ।
प्रोक्ता शक्तिः सर्वगीर्वाणवृन्दैर्वन्द्यस्याग्नेर्वल्लभा कामदेयम् ॥१३॥

हंसः सकारः किम्भूतः मेदो वकारः वक्त्रवृत्तमाकारः आभ्यामुपेतः सम्बद्धः तथाः पोत्री हकारः किम्भूतः नेत्रादिराकारस्तेनान्वितः तथा च स्वाहेति सिद्धमसौ युगार्णा वर्णद्वयात्मिका शक्तिः प्रोक्ता तथेयं वह्नेर्व-ल्लभा किम्भूता ? कामदा आकाङ्क्षितप्रदा कथंभूतस्य वह्नेर्गीर्वाण-वृन्दैर्वन्द्यस्य सर्वदेवसमूहैः पूज्यस्य ॥१३॥

यहां मन्त्र की शक्ति बतायी जाएगी। हंस—स, मेदः—व, वक्त्रवृत्त—आ, पोत्री—ह, नेत्रादि—आ, ये सब मिलकर देवताओं से भी वन्दनीय अग्नि की प्रिया "स्वाहा" शक्ति सम्पन्न होती है, जो सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली है ॥१३॥

विनियोगमाह—

विनियोग इति ।

विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये ।
कृष्णःप्रकृतिरित्युक्तो दुर्गाऽधिष्ठातृदेवता ॥१४॥

अस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टयसाधनाय विनियोग इत्यर्थः, प्रकृति-र्मूलकारणं मन्त्रोत्पादकः मन्त्रस्वरूपइत्यर्थः, अधिष्ठातृदेवतामाह दुर्गा-ऽधिष्ठातृदेवतेति ॥१४॥

मन्त्र के देवता मन्त्र के वाच्यार्थ प्रकृति मूलकारण मन्त्रस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, मन्त्र की अधिष्टातृ देवता दुर्गा है। धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप पुरुषार्थ साधन के लिए इसका विनियोग होता है। विनियोगः—अस्य श्री गोपालदशाक्षरमन्त्रस्य नारद ऋषि विराट् छन्दः मन्त्र प्रकृति श्रीकृष्ण परमात्मा देवता क्लीं बीजं स्वाहा-शक्तिः ह्लीं कीलकं दुर्गाधिष्ठातृ देवता पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः॥१४॥

मन्त्रार्थमाह—

गोपायतीत्यादिना ।

गोपायति सकलमिदं गोपयति परं पुमांसमिति गोपी प्रकृतिः ।
तस्या जातं जन इति महदादिकं पृथिव्यन्तम् ॥१५॥

इदं सकलं नामरूपाभ्यां व्याकृतं जगद् गोपायति रक्षति तत्कार-णत्वात् स्वार्थे आयः, तथा परं पुमासं नित्यशुद्धबुद्धमुक्ताऽऽनन्दाऽद्वया-

त्मकं ब्रह्मस्वरूपं गोपयति गुप गोपनकुत्सनयोः अज्ञातत्वेन विषयी-करोतीतिव्युत्पत्त्या गोपी प्रकृतिरविद्येति यावत् तस्याः प्रकृतेर्जातमिति व्युत्पत्त्या महदादि पृथिव्यन्तं महत्तत्त्वादि पृथिवीपर्यन्तं सकलङ्कार्यजातं जनउच्यते ॥१५॥

दशाक्षर मन्त्र के पदों की व्युत्पत्ति करते हुए अर्थ बताते हैं। नाम रूप से अभिव्यक्त सकल प्रपञ्च की रक्षा करने वाली शक्ति का नाम गोपी है। वह ही गोमाया की आवरण शक्ति के रूप में आत्मस्वरूप को आच्छादन करती है। और जन शब्द का अर्थ है उस मूल प्रकृति से उत्पन्न होने वाले महत्तत्व से लेकर पृथिवी पर्यन्त का जड प्रपञ्च। उक्त श्लोक के पदों के अर्थ को सीधे अभिधा से कहा जाये तो गोपी पद वाच्या आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा है, वह ही संसार की संरक्षिका और साधकों के पुरुषार्थों को सुरक्षित रखने वाली है। मूल रूप में श्रीराधा तत्व ही संसार के कारण है, जन शब्द का अभिधार्थ स्पष्ट है कि श्रीराधा की अनन्त सेविकाएं जनपद वाच्य हैं ॥१५॥

अनयोर्गोपीजनयोः समीरणादाश्रयत्वतो व्याप्त्या।
वल्लभ इत्युपदिष्टं सान्द्रानन्दं निरञ्जनं ज्योतिः ॥१६॥
स्वाहेति स्वात्मानं गमयामीति स्वतेजसे तस्मै।
यः कार्यकारणेशः परमात्मेत्यच्युतैकताऽस्य भवेत् ॥१७॥

अनयोः गोपीजनयोरविद्यातत्कार्ययोः समीरणादन्तर्यामित्वेन स्वस्य कार्ये प्रेरणाद् नियमनादिति यावद् आश्रयत्वतो अधिष्ठातृत्वेन व्याप्त्या व्यापकत्वेन वल्लभः स्वामीत्युपदिष्टं कथितं परं ज्योतिर्ब्रह्मचैतन्यङ्कीदृशं ज्योतिः ? सान्द्रानन्दं निरतिशयानन्दैकस्वरूपं पुनः कीदृशं ? निरञ्जनं मायाकालुष्यरहितं स्वाहेति तस्मै स्वतेजसे स्वप्रकाशचिद्रूपाय परमात्मने स्वात्मानं जीवैकस्वरूपं गमयामि समर्पयामि तदात्मकतां प्रापयामीति स्वाहाशब्दार्थः, प्रथम इतिशब्दः स्वाहाशब्दोपस्थापकः द्वितीयस्तु प्रकारप्रदर्शकः, तस्मै कस्मै तत्राह य इति। यः कार्यकारणयो-र्जनप्रकृत्योरीशः स्वामी अधिष्ठाता तथा परमात्मा निरुपाधिचैतन्य त्वाच्चेत्यनेन प्रकारेणास्योपासकस्याच्युतैकताऽच्युतेन सहाभिन्नता भवति ॥१७॥

गोपीपद वाच्य प्रकृति से उत्पन्न होने वाले जनपद वाच्य महतत्व से लेकर पृथिवी पर्यन्त के तत्वों के प्रतिपादन से सिद्ध होता है कि उनका नियन्ता भी कोई होना चाहिए, अतः उनका प्रेरक, अन्तर्यामी तत्व, निरतिशय आनन्द स्वरूप

मायालेशशून्य स्वयं प्रकाश ज्योतिः स्वरूप वल्लभ पद वाच्य श्रीकृष्ण हैं। स्वाहा पद समर्पण वाची है। अतः स्वयं प्रकाश श्रीकृष्ण के लिए जो सर्व वल्लभ (प्रिय) हैं, अपने को सर्वथा समर्पण करना चाहिए। यह स्वाहा शब्द का अर्थ है। श्लोक में दो बार इति शब्द का प्रयोग है। प्रथम इति शब्द स्वाहा पद का उपस्थापक है जो सर्वतम समर्पण को बताता है। द्वितीय इति शब्द प्रकार वाची है, अतः इसका अर्थ है, अपनी आह्लादिनी शक्ति रूप तेज श्रीराधा से युक्त श्रीकृष्ण में अपने को तद्भावापत्ति रूप में समर्पण करे। श्रीकृष्ण कार्यकारण रूप प्रपञ्च के स्वामी हैं नियन्ता हैं, साधक जीव उनके अधीन है ॥ १६ ॥ १७ ॥

प्रकारान्तरेणार्थमाह—
अथ वेति।

अथ वा गोपीजन इति समस्तजगदवनशक्तिसमुदायः।
तस्य स्वानन्यस्य स्वामी वल्लभ इति ह निर्दिष्टः ॥१८॥

अथ वा गोपीजन इतिशब्देन सकलविश्वरक्षणशक्तिसमुदायः कथ्यते। तत्र गोपीपदेन शक्तिरुच्यते। जनपदेन तस्याः समूहः तस्य शक्ति-समूहस्य स्वानन्यस्य स्वाभिन्नस्य शक्तिशक्तिमतोरभेदविवक्षया स्वामी नियन्ता आश्रयो वल्लभ इति हस्य स्फुटं निर्दिष्टउदितइत्यर्थः। स्वाहा-शब्दार्थस्तु पूर्वोक्त एव बोद्धव्यः। लघुदीपिकाकारस्तु:—अवनशक्तिसमु-दायः अवनं स्थितिः तत्र कारणभूतानां शक्तीनां समुदायः समूहः जग-त्पालिन्यादिगणः। उक्तं च महद्भिः जगत्पालिनीत्याद्याः प्रोक्तास्ताः स्थितये कला इति तस्य स्वामी नायक इत्यर्थः ॥ १८॥

प्रकारान्तर से यह भी अर्थ होता है कि गोपी शक्ति है, जन, उस शक्ति का समुदाय है, क्योंकि श्रीकृष्ण की अनेक शक्तियां हैं। संवित्, सन्धिनी, आह्लादिनी आदि शक्तियों को लेकर ही श्रुति कहती है कि "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" उन स्वाभिन्न शक्तियों के स्वामी वल्लभ पद वाच्य श्रीकृष्ण हैं ॥१८॥

प्रकारान्तरेणार्थमाह—
अथ वेति।

अथ वा व्रजयुवतीनां दयिताय जुहोमि मां मदीयमपि।
इत्यर्पयेत्समस्तं ब्रह्मणि सगुणे समस्तसम्पत्त्यै ॥१९॥

गोपीजनो गोपाङ्गनाजनस्तस्य वल्लभो निरतिशयप्रेमविषयः तस्मै व्रजयुवतीनां गोपरमणीनां दयिताय हृदयानन्ददायिने स्वाहा जुहोमि। किं

मां स्वात्मानं मदीयमपि आत्मीयसुहृदादिकमपि इत्यनेन प्रकारेण सगुणे ब्रह्मणि संसारप्रवर्त्तके परमेश्वरेश्वरे सर्वं समर्पयेत्। किमर्थं? समस्तसंपन्मयं सर्वैश्वर्याय ॥१९॥

अथवा गोपीजन पद के वाच्यार्थ व्रजाङ्गनाओं के निरवधि प्रेम के आश्रय परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण में स्व-स्वातीय वर्ग को समर्पण करना ही दशाक्षर मन्त्र का वास्तविक अर्थ है। सर्वैश्वर्य के स्वामी श्रीकृष्ण में उक्त प्रकार से समर्पण करने पर साधक को लौकिक ऐश्वर्य तथा पारामर्थिक निःश्रेयस की प्राप्ति होती है ॥१९॥

अष्टादशाक्षरमन्त्रोद्धाराय तदन्तर्भूतौ कृष्णगोविन्दशब्दौ प्रथमतो विविच्य दर्शयति—

कृष्शब्दइति।

कृष्शब्दः सत्ताऽर्थो णश्चानन्दात्मकस्ततः कृष्णः।
भक्ताघकर्षणादपि तद्वर्णत्वाच्च मन्त्रमयवपुषः ॥२०॥
गोशब्दवाचकत्वाज् ज्ञानं तेनोपलभ्यते गोविन्दः।
वेत्तीति शब्दराशिं गोविन्दो गोविचारणादपि च ॥२१॥

कृषशब्दः सत्ताऽर्थः तत्र शक्तः, कृष् सत्तायामित्यत्र विवबन्तः सत्तावाचक इति कश्चित्, कृट् णश्च णकारश्च आनन्दात्मक आनन्दवाची, नन्द आनन्द इति धातोरेकदेशग्रहणादिति कश्चित, ततो द्वन्द्वे कृतेऽत्रार्श आद्यचि कृते च कृष्णः सदानन्द इत्यर्थः। प्रकारान्तरेण कृष्णशब्द व्युत्पादयति भक्तेति भक्तानामघकर्षणात् पापपरिमार्जनात् कृष्णइत्यर्थः, भक्तादिकर्षणादिति पाठे आदिशब्देनाभक्तग्रहणं भक्तस्य कर्षणं स्वस्थाननयनम् अभक्तस्य कर्षणं नरकनयनमित्यर्थः। प्रकारान्तरेण व्युत्पत्तिमाह-तद्वर्णेति। कृष्णवर्णशरीरत्वात् कृष्णः मन्त्रमयशरीरस्य वाच्यवाचकयोरभेदेन विवक्षया। गोइत्यादि-गौर्ज्ञानं गोशब्दस्य वाचकत्वात् ज्ञानवाचकत्वात् तेन ज्ञानेनोपलभ्यते प्राप्यते ज्ञायते इति गोविन्दः, विद्लृ लाभे इत्यस्य धातोः, प्रकारान्तरमाह-वेत्तीति। गोशब्दः शब्दवाची, विद ज्ञाने धातुः, गां शब्दराशिं शब्द समुदायं मातृकां वेत्तीति गोविन्दः। प्रकारान्तरमाह-गोविचारणादपि चेति, गोशब्दो गोशब्दवाचक एव, विद विचारणे धातुः गोविचारणाद् गोशब्दविचारणाद् गोविन्दः, अथ वा गाव इन्द्रियाणि तेषांविचारणाद् विशेषेषु प्रतिनियतविषयेषु प्रवर्तनाद् गोविन्दः, अथ वा गावः पशुविशेषा इति। तथा च

श्रुतिः "पशवो द्विपादश्चतुष्पादश्चे" तितेषां विशेषेषु पुण्यपापेषु चारणात् प्रवर्त्तनाद् गोविन्दः, अथ वा गावः पशुविशेषाः तेषां रक्षणाद् गोविन्दः। अपि शब्दः चार्थे ॥२०॥२१॥

अब यहां अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्रराज के उद्धरण के प्रसंग में कृष्ण-गोविन्द पदों की व्युत्पत्ति बताई जा रही है। इससे पूर्व दशाक्षर मन्त्र और बीज का उद्धार हो चुका है, उसके अतिरिक्त कृष्ण-गोविन्द पद जो अष्टादशाक्षर मन्त्र के लिए आवश्यक है, उनकी व्युत्पत्ति दिखाई जा रही है। कृष्ण पद में जो कृष् शब्द है, वह त्रिकालाबाधित तत्व को बताने वाला सत्तार्थक है, कृष्ण पद में जो णकार है, वह निरतिशय आनन्द का वाचक है। इस तरह सत्ता और आनन्द की जो पुञ्जीभूत समष्टि है, वह ही श्रीकृष्ण हैं। अथवा कृष्ण शब्द की व्युत्पत्ति है कि "कर्षतीति कृष्णः" अर्थात् भक्तों के पापों को खींचने वाले, अपि शब्द से अभक्तों के पापों को भी खींचकर स्वोन्मुख बनाने वाले, किंवा भक्तों के उद्धार करने वाले, अभक्तों को नरक की ओर ही धकेलने वाले हैं, अतएव श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण वर्णतः शब्दतः अर्थतः स्वरूपतः किंवा सर्वतः श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण ही हैं। जो कृष्ण हैं वह मन्त्र है, जो मन्त्र है वह श्रीकृष्ण है। मन्त्र और श्रीकृष्ण में किसी प्रकार का भेद नहीं है ॥२०॥

गोविन्द पद की व्युत्पत्ति और अर्थ इस प्रकार है। गो शब्द, ज्ञान का वाचक है, विन्द पद का अर्थ है लाभ, अर्थात् जो ज्ञान के द्वारा लभ्य हो, वह गोविन्द हैं। अथवा गो शब्द का अर्थ है शब्द राशि = मातृकाक्षर, उनको समझने वाले, किंवा मातृकाक्षरों के एक मात्र वाच्य गोविन्द हैं। अथवा गो शब्द का अर्थ है इन्द्रिय, इन्द्रियों के जो प्रेरक हैं वे गोविन्द हैं। गायों की रक्षा करने वाले गोविन्द हैं ॥२१॥

इदानीं मन्त्रमुद्धरति—

एते अभिख्ये अनुक्रमत-
स्तुर्यविभक्त्या मन्त्रात् पूर्वं मन्मथबीजादथ पश्चात्।
स्यातां चेदष्टादशार्णो
मनुर्यो गुह्याद्गुह्यो वाञ्छितचिन्तामणिरेषः ॥२२॥

एते अभिख्ये नामनी कृष्णगोविन्दाख्ये अनुक्रमेण तुर्यविभक्त्या प्रत्येकं चतुर्थीविभक्त्या सह मन्त्रात् पूर्वोक्तदशाक्षरगोपालमन्त्राद् आदौ मन्मथबीजात् पश्चात् कामबीजानन्तरम् अथ चेद् यदि स्यातां भवतः तदा एषोऽष्टादशार्णो मन्त्रश्रेष्ठो भवति। एतस्य बलादेव दशाक्षरेऽपि

कामबीजसाहित्यं केचिदिच्छन्ति, कीदृशः ? गुह्याद् गुह्यः गुह्यादपि गुह्यः, पुनः कीदृशः ? वाञ्छितस्य चिन्तामात्रेणाभीष्टप्रदइत्यर्थः ॥२२॥

कृष्ण और गोविन्द पदों के चतुर्थी विभक्ति लगाकर दशाक्षर मन्त्र से पूर्व, और बीज के अनन्तर निवेश करने पर गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्र सम्पन्न होता है जो अत्यन्त गोपनीय और वाञ्छाचिन्तामणि है, जो चाहे सो फल देने वाला है। मन्त्रस्वरूप "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा" है ॥२२॥

ऋष्यादिकमप्याह—
पूर्वेति ।

पूर्वप्रदिष्टे मुनिदेवतेऽस्य छन्दस्तु गायत्रमुशन्ति सन्तः ।
अङ्गानि मन्त्रार्णचतुश्चतुष्कैर्वर्मावसानानि युगार्णमस्त्रम् ॥२३॥

अस्य मन्त्रस्य पूर्वप्रदिष्टे प्रथममन्त्रसंबन्धितया कथिते मुनिदेवते वोद्धव्ये । पुनः सन्तो गायत्रं छन्द उशन्ति वदन्ति, अङ्गानीति मन्त्रार्णचतुश्चतुष्कैः मन्त्रसंबन्धिवर्णानां चतुर्भिश्चतुर्भिरक्षरैः कृत्वा षोडशाक्षरैर्वर्मावसानानि कवचान्तानि चत्वार्यङ्गानि भवन्ति । अवशिष्टं युगार्णं वर्णद्वयम् अस्त्राख्यमङ्गं भवति । प्रयोगश्च क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, गोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुं, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥२३॥

इस गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्र के ऋषि और देवता, जो दशाक्षर मन्त्र के हैं वे ही हैं, अर्थात् ऋषि नारद, देवता श्रीकृष्ण हैं। किन्तु इस मन्त्र का छन्द गायत्री है । मन्त्र के चार-चार वर्णों के क्रम से हृदय, सिर, शिखा, कवच पर्यन्त न्यास करना चाहिए, इस प्रकार सोलह वर्ण होते हैं। अवशिष्ट दो वर्णों से अस्त्राय फट् द्वारा रक्षा करे। प्रयोग क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः इत्यादि है ॥२३॥

बीजादिकमाह—
बीजमिति ।

बीजं शक्तिः प्रकृतिर्विनियोगश्चापि पूर्ववदमुष्य ।
पूर्वतरस्य मनोरथ कथयामि न्यासमखिलसिद्धिकरम् ॥२४॥

अमुष्यास्य मन्त्रस्य बीजं शक्तिः प्रकृतिर्विनियोगः पूर्वमन्त्रे यानि बीजादीनि कथितानि तान्यत्रापि ज्ञातव्यानीत्यर्थः, पूर्वतरस्येति अथानन्तरं पूर्वतरस्य मनोर्दशाक्षरगोपालमन्त्रस्याखिलसिद्धिकरं समस्तसिद्धिदायकं न्यासं कथयामीति प्रतिज्ञा ॥२४॥

इस मन्त्र के बीज, शक्ति, प्रकृति (प्रतिपाद्य) विनियोग दशाक्षर मन्त्र के समान ही हैं। अब पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्र के न्यास जो सर्वसिद्धि प्रद हैं, बताता हूँ ॥२४॥

अधुना न्यासक्रमं दशार्णस्य कथयति—
व्यापय्येति ।

व्यापय्याथो हस्तयोर्मन्त्रमन्तर्बाह्ये पार्श्वे ताररुद्धं बुधेन ।
न्यासो वर्णैस्तारयुग्मान्तरस्थैर्बिन्दूत्तंसैर्हार्दहृद्यैर्विधेयः ॥२५॥

अथोऽनन्तर बुधेन पण्डितेन वर्णैर्मूलमन्त्राक्षरैर्न्यासो विधेयः कार्यः । किं कृत्वा ? मूलमन्त्रं हस्तयोरन्तर्मध्ये तथा हस्तयोरेव बाह्ये पृष्ठे तथा हस्तयोरेव पार्श्वे व्यापय्य व्यापकतया विन्यस्येत्यर्थः । कीदृशं मन्त्रं ? ताररुद्धं प्रणवपुटितं कीदृशैर्वर्णैः तारयुग्मान्तरस्थैः प्रणवद्वयमध्यगतैः पुनः कीदृशैः बिन्दूत्तंसैः बिन्दुः शिरोऽलंकारो येषां ते तथा सानुस्वारैरित्यर्थः । पुनः कीदृशैर्हार्दहृद्यैः हार्देन नमः पदेन हृद्यैर्मनोज्ञैः सहितैरित्यर्थः । प्रयोगश्च ॐगों ॐनमः दक्षाङ्गुष्ठपर्वत्रये ॐपीं ॐनमः तर्जन्याम् इत्यादि । ॐल्लं ॐनमो वामकनिष्ठिकायामित्यादि ॥२५॥

विद्वान् साधक को दोनों हाथों के भीतर बाहर, दोनों बगलों में मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके प्रणवपुटित सानुस्वार नमः पयुक्त मन्त्राक्षरों से हस्ताङ्गुलियों के पर्वों में न्यास करना चाहिए। प्रयोग ॐगों ॐनमो दक्षाङ्गुष्ट पर्वत्रये ॐपीं ॐनमः तर्जन्याम् इत्यादि है ॥२५॥

उक्तवर्णन्यासस्थानमाह—
शाखास्वित्यादिना ।

शाखासु त्रीणि पर्वाण्यधि दशसु पृथग्दक्षिणाङ्गुष्ठपूर्वं
वामाङ्गुष्ठावसानं न्यसतु विमलधीः सृष्टिरुक्ता करस्था ।
अङ्गुष्ठद्वन्द्वपूर्वा स्थितिरुभयकरे संहृतिर्वामपूर्वा
दक्षाङ्गुष्ठान्तिकेतत्त्रयमपि सृजतिस्थित्युपेतं च कार्यम् ॥२६॥

दशसु शाखासु अङ्गुलीषु पृथक्कृत्वैकं त्रीणि पर्वाणि अधि पर्वत्रयं व्याप्य, त्रिपाठिनस्तु त्रीणि पर्वाणि इति पर्वत्रये अधीति उपरि अङ्गुल्यग्रे च पृथग् एकैकशः । तथा च प्रथमपर्वणि ॐ द्वितीये ॐ तृतीये ॐ अङ्गुल्यग्रे नमः इति एवमन्यत्रापीत्याहुः । दक्षिणाङ्गुष्ठपूर्वं प्रथमन्यासादौ यथा स्यात्तथा वामाङ्गुष्ठावसानं वामाङ्गुष्ठोऽवसाने न्यासान्ते

यथा स्यादेवं विशदधीर्विमलबुद्धिर्न्यसतु । एवं च करस्था सृष्टिरुक्ता करे सृष्टिन्यासप्रकार उक्त इत्यर्थः, अङ्गुष्ठद्वन्द्वपूर्वा स्थितिरुभयकरे हस्तद्वये, दक्षिणकरेऽङ्गुष्ठादिकनिष्ठासु विन्यस्य वामकरेऽप्यङ्गुष्ठादिकनिष्ठा-स्वङ्गुलीषु न्यसेदयंस्थितिन्यास उक्तः । संहृतिर्वामपूर्वा दक्षेति संहृतिः संहारः वामाङ्गुष्ठपूर्वा दक्षिणाङ्गुष्ठावसाना अयं च संहारन्यास उक्तः एतत्त्रयमपि सृष्टिस्थितिसंहारात्मकं त्रयमपि सृजतिस्थित्युपेतं कार्यं । एतन्न्यासकरणानन्तरमपि पुनरपरं सृष्टिस्थितिन्यासद्वयं कार्यं च सृष्ट्-यादिन्यासपञ्चकं कार्यमित्यर्थः ।।२६।।

निर्मल बुद्धि वाले साधक को दशों अंगुलियों के अलग-अलग पर्वों पर अर्थात् एक अंगुली के तीनों पर्वों को व्याप्त कर न्यास करना चाहिए । इसी प्रकार प्रत्येक अंगुलियों के अग्रभागों पर पृथक्-पृथक् न्यास करे । दक्षिण अंगुष्ठ के तीनों पर्वों से आरम्भ कर वामाङ्गुष्ठ पर्यन्त किए जाने वाले न्यास को कर सृष्टि न्यास कहा जाता है । और दक्षिणाङ्गुष्ठ से दक्षिण कनिष्ठिका तक, तथा वामाङ्गुष्ठ से वामकनिष्ठिका तक किए जाने वाले वर्णक्रम न्यास को करस्थिति न्यास कहते हैं । वामाङ्गुष्ठ पर्व से आरम्भ कर दक्षिणाङ्गुष्ठ पर्व तक जो न्यास किया जाता है उसे संहृति न्यास कहते हैं । उक्त तीनों न्यास करने के बाद पुनः सृष्टि, और स्थिति न्यास करना चाहिए । इस प्रकार यह न्यास पांच प्रकार का होता है ।।२६।।

ततः स्थितिक्रमाद् बुधो दशाङ्गकानि विन्यसेत् ।
तदङ्गपञ्चकं तथा विधिः समीरितः करे ।।२७।।

तत इति । ततस्तदनन्तरं स्थितिक्रमात् स्थितिन्यासक्रमेण दश-स्वङ्गुलीषु बुधः पण्डितः दशाङ्गकानि पूर्वोक्तमन्त्रदशाङ्गानि विन्यसेत् । तदङ्गपञ्चकं तथेति तथा तेन प्रकारेण स्थितिक्रमेण तदङ्गपञ्चकं पूर्वो-क्तपञ्चकं पूर्वोक्ताङ्गपञ्चकं दशसु अङ्गुलीषु विन्यसेत् । करन्यासजात-मुपसंहरति विधिरिति । एवं चायं विधिः प्रकारः करे हस्तद्वये समीरितः कथित इत्यर्थः ।।२७।।

इसके बाद स्थिति न्यास के क्रम से अर्थात् दक्षिणाङ्गुष्ठ से दक्षिण कनि-ष्ठिका, और वामाङ्गुष्ठ से वामकनिष्ठका पर्यन्त दशाङ्ग न्यास करना चाहिए, यह ही कर न्यास का प्रकार है ।।२७।।

मातृकान्यासविशेषं दर्शयन् तत्त्वन्यासं च क्रमेणाह—

पुटितैरिति ।

पुटितैर्मनुनाऽथ मातृकार्णैरभिविन्यस्य सबिन्दुभिः पुरोवत् ।
अनुसंहृतिसृष्टिमार्गभेदाद्दशतत्त्वानि च मन्त्रवर्णभाञ्जि ।।२८।।

अथानन्तरं मनुना दशार्णेन पुटितैर्मातृकाक्षरैः सबिन्दुभिः सानुस्वारैः पुरोवत् पूर्ववद्यथा पूर्वं ललाटादिषु न्यास एवमभिविन्यस्य अनु पश्चा-न्मातृकान्यासविशेषकरणानन्तरं वक्ष्यमाणानि दशतत्त्वानि विन्यसेत् । कीदृशानि ? मन्त्रवर्णभाञ्जि मन्त्राक्षरयुक्तानि । कथं दशतत्त्वानि विन्य-सेत्तत्राह संहृतिसृष्टिमार्गभेदात् प्रथमं संहारक्रमेण तदनन्तरं सृष्टि-क्रमेणेत्यर्थः ।।२८।।

दशाक्षर मन्त्र से संपुटित अनुस्वार युक्त मातृकाक्षरों से पूर्ववत् ललाटादि स्थानों पर न्यास करके वक्ष्यमाण दश तत्वों पर जो मातृकाक्षरों के प्रतीक हैं, संहृति तथा सृष्टि न्यास क्रम से न्यास करना चाहिए ।।२८।।

संहारसृष्टिप्रकारं दर्शयति—

संहृताविति ।

संहृतावनुगतो मनुवर्यः सृष्टिवर्त्मनि भवेत्प्रतियातः ।
उद्धृतिः खलु पुरोक्तवदेषां न्यासकर्म कथयाम्यधुनाऽहम् ।।२९।।

असौ मनुवर्यः मनुश्रेष्ठः संहृतौ संहारन्यासे अनुगतो यथैवास्ति तथैव सृष्टिमार्गे सृष्टिकरन्यासे प्रतियातो भवेत् तद्विपरीतो भवेद् । उद्धारप्रकारमाह-उद्धृतिरिति । एषां तत्त्वानां खलुनिश्चयेन उद्धृतिरु-द्धारः पूर्वोक्तवद् यथा पूर्वमुक्ततत्त्वन्यासे "नत्युपेतं भूयः पराय च तदा-ह्वयमात्मने च नत्यन्तमुद्धरतु तत्त्वमनून् क्रमेण" इत्येवंप्रकारेणेत्यर्थः, अधुना न्यासं कथयामीति सांप्रतं न्याससंबन्धितत्त्वनामकथनं तत्स्थान-कथनं च करोमीत्यर्थः ।।२९।।

इस दशाक्षर मन्त्र को संहृति क्रम से सृष्टि न्यास पद्धति तक बोलते हुए न्यास करना चाहिए । प्रथम पटलोक्त तत्व न्यास की रीति के अनुसार शब्दोद्धार करते हुए न्यास करने की विधि बताता हूँ ।।२९।।

तत्त्वनामान्याह—

महीति ।

महीसलिलपावकानिलवियन्ति गर्वो महान्
पुनः प्रकृतिपूरुषौ पर इमानि तत्त्वान्यथ ।

पदान्धुहृदयास्यकान्यधि तु पञ्च मध्ये द्वयं-
त्रयं सकलगं ततो न्यसतु तद्विपर्यासतः ।।३०।।

मही पृथिवी, सलिलं जलं, पावकः तेजः, अनिलो वायुः, वियदाकाशः, गर्वोऽहङ्कारः, महान् महत्तत्त्व, प्रकृतिः, पुरुष, परश्च इमानि पृथिव्यादीनि तत्त्वानि तत्त्वपदवाच्यानि, न्यासस्थानमाह अथेति, अथानन्तरं पञ्च तत्त्वानि पृथिव्यादीनि न्यसतु । कुत्र पदान्धुहृदयास्यकान्यधि, पादयोः, अन्धौ लिङ्गे, हृदये, आस्ये मुखे, के शिरसि, अधि सप्तम्यर्थे मध्ये हृदये तत्त्वद्वयं, त्रयं सकलगं, सकलाङ्गव्यापकं ततस्तदनन्तरं तद्विपर्यासतः उक्तसंहारविपरीतरीत्या न्यसतु । प्रयोगश्च ओङ्गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति पादद्वये इत्यारभ्य ओं हां नमः पराय परमात्मने नमः इत्यन्तः संहारः, ॐ हां नमः पराय परमात्मने नमः इत्यारभ्य ॐ गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः पादद्वये इति सृष्टिन्यासः, सृष्टिन्यासे त्रय सर्वशरीरे, महदहङ्कारौ हृदि, आकाशः शिरसि, वाय्वग्निसलिलमह्यः मुखहृदयलिङ्गपादद्वयेषु, ज्ञयाः । के चित्तु तत्त्वपदान्तर्भावेण न्यासमिच्छन्ति तच्चिन्त्यम् ।।३०।।

तत्वों के नाम बताते हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्व, मूलप्रकृति, पुरुष, परमेश्वर ये दश तत्व हैं, जो दशाक्षर मन्त्र वर्णों के प्रतीक हैं। पृथिवी आदि पांच तत्वों का न्यास क्रमशः पादद्वय, लिंग, हृदय, मुख, सिर पर करना चाहिए। हृदय पर अहंकार, और महत्तत्व का, सम्पूर्ण अंग में प्रकृति पुरुष, परमेश्वरों का न्यास करे। यह संहृति क्रम है। ठीक इसके विपरीत सृष्टि न्यास होता है। न्यास प्रकार यह है—ॐ गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः पादद्वये, इस क्रम से आरम्भ करके ॐ हां नमः पराय परमात्मने नमः सर्वाङ्गे, इत्यादि संहृति क्रम का न्यास है। सृष्टि न्यास उक्त क्रम से ठीक विपरीत है। जैसे—ॐ हां नमः पराय परमात्मने नमः सर्वाङ्ग से आरम्भ करके ॐ गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः पादद्वये इत्यादि तक है ।।३०।।

गुप्ततमोऽयं न्यासः संप्रोक्तस्तत्त्वदशकपरिक्लृप्तः ।
कार्योऽन्येष्वपि सद्भिर्गोपालमनुषु झटिति फलसिद्धयै ।।३१।।

गुप्ततमोऽयमिति । अयं प्रोक्तः कथितो न्यासः सद्भिः पण्डितैः अन्येष्वपि गोपालमन्त्रेषु उद्धृतदशाक्षरव्यतिरिक्तेष्वपि कार्य्यः। कीदृशः? गुह्यतमः अतिशयेन गुप्तः। पुनः कीदृशः ? तत्त्वदशकपरिक्लृप्तः तत्त्वानां दशकं तत्त्वदशकं तेन परिक्लृप्तः उद्घाटित इत्यर्थः । किमर्थं झटिति फलसिद्धयै शीघ्रफलप्राप्त्यै ।।३१।।

दश तत्वात्मक यह न्यास अत्यन्त गोप्य और सद्यः—सिद्धिप्रद है। दशाक्षर से अतिरिक्त अन्य गोपाल मन्त्रों में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है ।।३१।।

न्यासान्तरमाह—

आकेशादिति ।

आकेशादापादन्दोर्भ्यां
ध्रुवपुटितमथ मनुवरं न्यसेद्वपुषि ।
त्रिशो मूर्द्धन्यक्षणोः श्रुत्योर्घ्राणे
मुखहृदयजठरशिवजानुपत्सु तथाऽक्षराणि ।।३२।।

अथानन्तरं दोर्भ्यां हस्ताभ्यां ध्रुवपुटितं प्रणवपुटितं मनुवरं मन्त्रश्रेष्ठं दशाक्षरं गोपालमन्त्रम् आकेशादापादं केशादिपादपर्यन्तं त्रिशः त्रिवारं वपुषि देहे न्यसेत्, पादादारभ्य केशपर्यन्तं त्रिशः स्वदेहे विन्यसेदिति विद्याधराचार्यत्रिपाठिप्रभृतयः। एतेषां मत आकेशादापाद्दादिति पाठः। अधुना सृष्टिस्थितिसंहारक्रमेण मन्त्राक्षरन्यासमाह—मूर्द्धनीत्यादि तथा दशाक्षराणि प्रणवपुटितानि मूर्द्धादिवक्ष्यमाणस्थानेषु विन्यसेत्। न्यासस्थानान्याह-मूर्द्धनीति। मूर्धिन चक्षुषोः उभयनेत्रे एकमेवाक्षरं श्रुतयोः कर्णयोः अत्राप्येकमेव घ्राणे नासायुग्मे तत्राप्येकमेव मुखं, हृदयं, जठरं, शिवं लिङ्गं, जानुद्वये एकम्, पादद्वये एकम्, एतेषु दशसु स्थानेषु दशाक्षराणि विन्यसेदित्यर्थः ।।३२।।

इसके बाद दोनों करों से प्रणवपुटित दशाक्षर या अष्टादशाक्षर द्वारा सिर से पादपर्यन्त, पाद से सिर पर्यन्त सर्वशरीर पर व्यापक न्यास करे। तदनन्तर सृष्टि—स्थिति—संहृति न्यास क्रमानुसार प्रणवपुटित मन्त्राक्षरों को सिर, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासिकाद्वय, मुख, हृदय, उदर, लिङ्ग, जानु, पादद्वय, पर न्यास करे ।।३२।।

उक्ता सृष्टिः शिष्टैरेषा स्थितिरपि
मुनिभिरभिहिता हृदादिमुखान्तिका ।
संहारोऽङ्घ्र्यादिमूर्द्धान्तस्त्रितयमिति
विरचयेच्च सृष्टिमनु स्थितिम् ।।३३।।

शिष्टैः आगमज्ञैः एषा सृष्टिरुक्तेत्यर्थः, स्थितिरपि स्थितिन्यासोऽपि मुनिभिर्नारदादिभिर्हृदयादिमुखान्तिका अभिहिता हृदयामारभ्य मुखपर्यन्तं कथिता, तत्र क्रमः हृदयजठरलिङ्गजानुपादमूर्द्धाक्षिश्रवणघ्राणमुखानीति संहारोऽङ्घ्र्यादिमूर्द्धान्तः कार्यः। तत्र मन्त्राक्षराणि प्रतिलोमेन देयानीतीदन्त्रितयं विरचयतु अनु पश्चादेतत्त्रितयकरणानन्तरं पुनः सृष्टि स्थितिं च विरचयतु। तथा च पञ्चन्यासाः कार्य्या इत्यर्थः। प्रयोगस्तु गों नमः पीं नमः इत्यादि ॥३३॥

इस प्रकार मन्त्रतत्व वेत्ता नारदादि ऋषियों ने सृष्टि, स्थिति, संहृति न्यासों को बताया है। हृदय से लेकर मुख पर्यन्त किया जाने वाला सृष्टि न्यास है। क्रम इस प्रकार है–जठर, लिङ्ग जानु, पाद, सिर, नेत्र, श्रवण, घ्राण, मुख। इसी न्यास को स्थिति न्यास भी कहते हैं। संहृति न्यास पाद से आरम्भ कर सिर पर्यन्त किया जाता है। भेद इसमें यह भी है कि सृष्टि आदि न्यास में मन्त्राक्षरों को अनुलोम क्रम से, संहृति न्यास में विलोम क्रम से उच्चारण किया जाएगा ॥३३॥

येषामाश्रमिणां यदन्तो न्यासस्तद्दर्शयति—

न्यास इति।

न्यासः संहारान्तो मस्करिवैखानसेषु विहितोऽयम्।
स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्टयन्तो वर्णिनामिति प्राहुः ॥३४॥

अयं न्यासः मस्करिवैखानसेषु संहारान्तो विहितः मस्करी संन्यासी, वैखानसो वानप्रस्थः, तथा ताभ्यां न्यासत्रयंकार्यमित्यर्थः। गृहमेधिषु गृहस्थेषु अयं न्यासः स्थित्यन्तो विहितः, तथा गृहस्थैः पञ्च न्यासाः कार्य्या इत्यर्थः। वर्णिनां ब्रह्मचारिणामयंन्यासः सृष्टयन्तो विहितः तथा च ब्रह्मचारिभिर्न्यासचतुष्टयकार्यमित्यर्थः इति पूर्वोक्तमर्थजातं प्राहुः प्राचीना आगमज्ञा इति शेषः ॥३४॥

ये सृष्टि, स्थिति, संहृति न्यास, संन्यासी और वानप्रस्थों को करने चाहिए। गृहस्थों को उक्त न्यासत्रय के बाद पुनः सृष्टि–स्थिति न्यास करना चाहिए। ब्रह्मचारियों को तो उक्त न्यासत्रय के बाद सृष्टि न्यास करना चाहिए। इस प्रकार क्रमशः तीन, पांच, चार न्यास आश्रम भेद से किए जाने चाहिए ॥३४॥

वैराग्येति।

वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारं केचिदाहुराचार्य्याः।
सहजानौ वनवासिनि स्थितिं च विद्यार्थिनां सृष्टिम् ॥३५॥

केचिदाचार्याः वैराग्ययुक्तगृहस्थे संहारान्तं न्यासमाहुः। किंच सहजानौ वनवासिनि सपत्नीके वानप्रस्थे स्थितिं स्थित्यन्तं न्यासमाहुः, तथा ब्रह्मचारिभिन्नानां विद्यार्थिनामपि सृष्टिं सृष्टयन्तं न्यासमाहुरित्यर्थः ॥३५॥

कुछ आचार्यों का मत है कि वैराग्य युक्त गृहस्थ को सृष्टि, स्थिति, संहार न्यास, ये तीन ही करने चाहिए। सपत्नीक वानप्रस्थों को सृष्टि और स्थिति दो न्यास करना चाहिए। ब्रह्मचारियों के लिए केवल एक सृष्टि न्यास ही विहित है ॥३५॥

विशेष—दक्षिणाङ्गुष्ठ से वामाङ्गुष्ठ तक किया जाने वाला न्यास सृष्टि है, और वामाङ्गुष्ठ से दक्षिणाङ्गुष्ठ तक का संहृति है। दो हाथों के अंगुष्ठ से कनिष्ठिका तक का न्यास स्थिति न्यास है।

टिप्पणीः—दक्षिणाङ्गुष्ठ वामान्तं न्यासः स्यात्सृष्टिरीरितः वामाङ्गुष्ठादि दक्षान्तं संहृतिः परिकीर्तिता, उभयोः करयो र्ज्येष्ठा पूर्विका स्थितिरिष्यते।

उक्ताक्षरन्यासाङ्गुलिनियमं दर्शयति—

शिरसीत्यादिना।

शिरसि विहिता मध्या सैवाक्ष्णि तर्जनिकाऽन्विता
श्रवसि रहिताङ्गुष्ठा ज्येष्ठाऽन्वितोपकनिष्ठिका।
नसि च वदने सर्वाः सज्यायसी हृदि तर्जनी
प्रथमजयुता मध्या नाभौ श्रवोर्विहिता शिवे ॥३६॥

ता एवाङ्गुलयो जान्वोः साङ्गुष्ठास्तु पदद्वये
स्थानार्णयोर्विनिमयो भवेन्नास्त्यङ्गुलिस्थानयोः ॥३७॥

मध्या मध्यमाङ्गुलिः शिरसि मूर्ध्नि विहिता न्यासकरणत्वेन तथा च मध्यमाङ्गुल्या न्यासः शिरसि कार्य इत्यर्थः, सैव मध्या तर्जनिकाऽन्विताऽक्ष्णि नयनयुगले विहिता तथा च मध्यमातर्जनीभ्यामक्ष्णोर्न्यासः कार्यः, श्रवसि श्रोत्रयुगले रहिताङ्गुष्ठा अङ्गुष्ठरहिता सर्वाङ्गुलयो विहिताः, नसि नासायुगले ज्येष्ठाऽन्विता अङ्गुष्ठयुक्ता उपकनिष्ठिका अनामिका विहिता, वदने सर्वाङ्गुलयो विहिताः, हृदि सज्यायसी ज्येष्ठासहिता साङ्गुष्ठतर्जनी विहिता, नाभौ जठरे नाभिपदेन जठरमुपलक्षितमिति विद्याधरः। नाभिपदस्य मुख्य एवार्थ इति

लघुदीपिकाप्रभृतयः । प्रथमजयुता अङ्गुष्ठयुक्ता मध्यमा विहिता, शिवे लिङ्गे तथा विहिता यथा जठरे साङ्गुष्ठा मध्या तथेत्यर्थं इति केचित् । अवोविहिता शिव इति पाठे श्रोत्रयुगले या अङ्गुष्ठरहितास्ताः शिवे विहिता इत्यर्थः । जान्वोस्ता एवाङ्गुलयः अङ्गुष्ठेन रहिताः सर्वाङ्गुलय इत्यर्थः, पदद्वये साङ्गुष्ठाः सर्वाङ्गुलयो विहिताः । स्थानार्णयोरित्यादिना स्थानाक्षरयोर्विनिमयो विपर्ययो भवति । यथा गों सृष्टौ मूर्ध्नि, स्थितौ हृदये, संहृतौ पादयोर्न्यास इति एवमङ्गुलीस्थानयोर्विपर्ययो नास्ति, किं तु सृष्टौ स्थितौ संहृतौ वा यत्र स्थाने याऽङ्गुलिर्विहिता तयैवाङ्गुल्या तत्र स्थाने न्यासः कार्य इत्यर्थः ।।३६।।३७।।

न्यासों में अंगुलियों का नियम बताते हैं। सिर में मध्यमा अंगुली से, नेत्रों में तर्जनीयुक्त मध्यमा से, कर्णों में अंगुष्ठ रहित सभी अंगुलियों से, नासिका में अनामिका अंगुष्ठों से, मुख में सभी अंगुलियों से, हृदय में अंगुष्ठ-तर्जनी से, नाभि में, अंगुष्ठ मध्यमा से, लिंग पर अंगुष्ठ रहित सभी अंगुलियों से, जानु में भी सभी अंगुलियों से, पादों में अंगुष्ठ सहित सभी अंगुलियों से न्यास करना चाहिए।

यहाँ इतना और समझना आवश्यक है कि सृष्टि आदि अंग न्यासों में स्थान और अक्षरों का विनिमय होता है, किन्तु अंगुली तथा स्थान का विनिमय नहीं होता। जैसे सृष्टि न्यास में ॐ गों नमो, मूर्ध्नि, होता है तो स्थिति न्यास में ॐ गों नमो हृदये, तथा संहृति न्यास में ॐ गों नमः पादयोः, से आरम्भ होता है। जिन अंगुलियों से जिन स्थानों पर न्यास विहित है उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होगा ।।३६।।३७।।

इदानीं विभूतिपञ्जरन्यासमाह—
वच्मीति ।

वच्म्यपरं न्यासवरं भूत्यभिधं भूतिकरम् ।
मन्त्रदशावृत्तिमयं गुप्ततमं मन्त्रिवरैः ।।३८।।

अपरं भूत्यभिधं भूतिरिति नाम यस्य तं भूतिनामकं वच्मि कथयामि । कीदृशं ? न्यासश्रेष्ठमित्यर्थ । पुनः भूतिकरम् ऐश्वर्य्यकरं, पुनः मन्त्रदशावृत्तिमयं मन्त्रस्य दशावरणघटितं पुनः मन्त्रिवरैः साधकश्रेष्ठैर्गुप्ततममतिगुह्यम् ।।३८।।

अब ऐश्वर्य को देने वाला, मन्त्रज्ञों द्वारा भी गोपनीय भूतिनामक अर्थात् विभूति पञ्जर न्यास को बताता हूँ, जो मन्त्र से दशावरण घटित है, अर्थात् मन्त्राक्षरों से दशावृत्ति न्यास किया जाता है ।।३८।।

न्यासस्थानमाह—
आधारेत्यादिना ।

आधारध्वजनाभिहृद्गलमुखांसोरुद्वये कन्धरा-
नाभ्योः कुक्षिहृदोरुरोजयुगले पार्श्वापरश्रोणिषु ।
कास्याक्षिश्रुतिनःकपोलकरपत्सन्ध्यग्रशाखासु के
तत्प्राच्यादिदिशासु मूर्ध्नि सकले दोष्णोश्च सक्थ्नो-
स्तथा ।। ३९ ।।

शिरोऽक्ष्यास्यकण्ठाख्यहृत्तुन्दकन्दा-
न्धुजानुप्रपत्स्वित्थमर्णान्मनूत्थान् ।
न्यसेच्छ्रोत्रगण्डांसवक्षोजपार्श्व-
स्फिगूरुस्थलीजानुजङ्घाङ्घ्रियुक्षु ।।४०।।

आधारो वृषणस्याधस्त्रिकोणं मूलाधारस्थानं, ध्वजो लिङ्गं, नाभिः, हृदयं, गलः, मुखम्, अंसोरुद्वयम्, एतेष्वेकावृत्तिः । कन्धरा घाटा, कंधरा कण्ठ इति लघुदीपिकाकारः । नाभिकुक्षिहृदयम् उरोजयुगलं स्तनद्वयं, पार्श्वेति पार्श्वयुगम्, अपरं पृष्ठदेशः श्रोणिर्जघनदेशः, श्रोणिः कटिः, अपरं श्रोण्याः अपरभाग, इति त्रिपाठिनः, एतेषु द्वितीयावृत्तिः । कं शिरः, आस्यं मुखम्, अक्षिणी नेत्रयुगलं, श्रुती श्रवणद्वय, न इति नासिकाद्वयम्, कपोलद्वयमेतेषु तृतीयावृत्तिः । करपदेति करपदयोः प्रत्येकं सन्धिचतुष्टयं सन्धिष्वङ्गुल्यग्रेषु अङ्गुलीषु च, अत्र दक्षिणकरे चतुर्थावृत्तिः, एवं वामकरे पञ्चमावृत्तिः । इति पक्षद्वय च, विद्याधरस्तु करयोरेकावृत्तिः पादयोरेकावृत्तिरित्याह । तच्चिन्त्यं, मूलग्रन्थात्तथाऽप्रतीतेः । पादयोः सन्धिष्वङ्गुल्यग्रेष्वङ्गुलीषु च, अत्रापि दक्षिणपादे षष्ठावृत्तिः । वामपादे सप्तमावृत्तिः । अत एव हस्तपादयोर्न्यासचतुष्टयमिति त्रिपाठिनः । के मस्तकमध्ये तत्प्राच्यादिदिशासु मस्तकपूर्वादिचतुर्दिक्षु सकले मूर्ध्नि सकले मस्तके प्रादक्षिण्येन व्यापकतया दोष्णोश्च बाहुयुगे तथा सक्थ्नोरूरुमूलस्याधिष्ठानयोर्मध्यप्रदेशयोः एतेष्वष्टमावृत्तिः । मस्तकस्य पूर्वादिदिशास्वेकावृत्तिः, एकावृत्तिर्मूर्द्धादिष्विति विद्याधराचार्य्याः । तच्चिन्त्यं, तथापदस्वरसात् शिर प्रभृतिष्वेकावृत्तिप्रतीतेः । शिरो मस्तकम्, अक्षीति नेत्रयुगलम्, आस्यं मुखं, कण्ठं,

हृदयं, तुन्दमुदरं, कन्दो मूलाधारः, स्वाधिष्ठानमिति त्रिपाठिनः, अंधु लिङ्गं, जानु, प्रपदिति पादयुगलं तेषु, एतेषु नवमावृत्तिः। श्रोत्रयुगले गण्डयुगले, अंसयुगले, स्तनयुगले, पार्श्वयुगले, स्फिग्युगले, नितम्बयुगले, एवमूरुजानुजङ्घाङ्घ्रियुगले. एतेषु दशमावृत्तिः। इत्थमनेन प्रकारेण मनूत्थान् मन्त्रसम्बन्धिनो वर्णान् न्यसेत्। प्रयोगश्च-गों नमः मूलाधारे, पों नमः लिङ्गे, जं नमः नाभौ, इत्यादि ।।३९।।४०।।

यहां न्यास स्थान बताया जाता है। मूलाधार, लिंग, नाभि, हृदय, गला, मुख, स्कन्ध द्वय, उरुद्वय, इनमें प्रथमावृत्ति न्यास होता है।

कण्ठ, नाभि, कुक्षिद्वय, स्तनद्वय, पार्श्वद्वय, पृष्ठदेश, जघन इनमें द्वितीयावृत्ति।

सिर, मुख, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासिकाद्वय, कपोलद्वय, इनमें तृतीयावृत्ति।

दक्षिण कर की चारों अंगुलियों की सन्धियों में तथा अंगुलियों के अग्रभागों में चतुर्थावृत्ति।

इसी प्रकार वाम कर की अंगुली सन्धियों तथा अंगुलियों के अग्रभाग में पञ्चमावृत्ति।

दक्षिण पाद की अंगुलियों की सन्धि तथा अग्रभागों में षष्ठावृत्ति।

वाम पाद की अंगुलियों की सन्धि तथा अग्रभागों में सप्तमावृत्ति।

सिर के पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण, चारों दिशाओं में प्रादक्षिण्य क्रम से सम्पूर्ण सिर, सम्पूर्ण मस्तक पर भी व्यापक न्यास करना चाहिए। बाहुद्वय, सक्थिद्वय इनमें अष्टमावृत्ति न्यास होता है।

सिर, नेत्रद्वय, मुख, कण्ठ, हृदय, उदर, मूलाधार, लिंग, जानु, पादद्वय, इनमें नवमावृत्ति।

श्रोत्रद्वय, गण्डद्वय, अंसद्वय, स्तनद्वय, पार्श्वद्वय, नितम्बद्वय, उरु, जानु, जंघा, पादद्वय, इनमें दशमावृत्ति न्यास होता है।

दशाक्षर मन्त्र के दश वर्णों से दशविध न्यास किए जाते हैं। प्रयोग-गों नमो मूलाधारे इत्यादि है ।।३९।।४०।।

न्यासफलमाह—

इतीति।

इति कथितं विभूतिपञ्जरं सकलसुखार्थधर्ममोक्षदम्।
नरतरुणीमनोऽनुरञ्जनं हरिचरणाब्जभक्तिवर्द्धनम् ।।४१।।

अनेन प्रकारेण विभूतिपञ्जरं कथितं। कीदृशं? सकलसुखार्थधर्ममोक्षदं पुरुषार्थचतुष्टयप्रदं, पुनः नरतरुणीमनोरञ्जनं पुरुषनारीचित्ताह्लादकं न केवलं सर्वानुरञ्जनम्, अपि तु हरिचरणाब्जे भक्तिवर्द्धनम् ।।४१।।

यह विभूति पञ्जर न्यास, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को देने वाला, नव तरुणियों के मन को रञ्जित करने वाला, श्रीकृष्ण पादारविन्दों में प्रेमा भक्ति बढ़ाने वाला है ।।४१।।

मूर्त्तिपञ्जरन्यासमाह—

स्फूर्त्तय इति।

स्फूर्त्तयेऽथास्य मन्त्रस्य कीर्त्यते मूर्त्तिपञ्जरम्।
आर्त्तिग्रहविषारिघ्नं कीर्त्तिश्रीकान्तिपुष्टिदम् ।।४२।।

अथानन्तरम् अस्य दशाक्षरमन्त्रस्य स्फूर्त्तये उद्दीपनाय मूर्त्तिपञ्जरं कीर्त्यते। किम्भूतम्? आर्त्तिः पीडा, ग्रहो ग्रहजनितमशुभं, विषं स्थावरं जङ्गमं च, अरिः शत्रुः, तान् हन्तीत्यर्थः। पुनः कीदृशङ्कीर्त्यादिदं? कीर्त्तिः प्रख्यातिः, श्रीः सम्पत्तिः, सौन्दर्यं, पुष्टिः, बलं प्रददातीति तथा ।।४२।।

अब दशाक्षर मन्त्र के उद्दीपन के लिए मूर्ति पञ्जर न्यास बताया जाता है, जो पीडा, ग्रहारिष्ट, विष, और शत्रुओं को नाश करने वाला, और कीर्ति, लक्ष्मी, कान्ति, और पुष्टि को देने वाला है ।।४२।।

अधुना न्यासमुद्धरति—

केशवादीति।

केशवादियुगषट्कमूर्त्तिभि—
र्धातृपूर्वमिहिरान्नमोऽन्तकान्।
द्वादशाक्षरभवाक्षरैः स्वरैः
क्लीबवर्णरहितैः क्रमान्न्यसेत् ।।४३।।

केशवादिभिः पूर्वोक्तयुगषट्कमूर्त्तिभिः सह धातृपूर्वमिहिरान् धाता पूर्वं आदौ येषु मिहिरेषु आदित्येषु वक्ष्यमाणेषु ते धातृपूर्वमिहिरास्तान् क्रमेण न्यसतु। कीदृशान्? नमोऽन्तकान् नमःपदान्तान् पुनः कैः सह? द्वादशाक्षरभवाक्षरैर्वक्ष्माणद्वादशाक्षरमन्त्रसम्बन्धिभिर्द्वादशाक्षरैः सह, तथा क्लीबवर्णरहितैः ऋॠऌॡएतच्चतुष्टयरहितैः स्वरैरकारादिभिः सह, एतदुक्तं भवति–आदौ स्वराः, ततो द्वादशाक्षरभवाक्षराणि, ततः केशवादिमूर्त्तयः, ततः धातृप्रभृतयः, ततो नमःपदमिति। प्रयोगस्तु–ॐ अं ॐ केशवधातृभ्यां नमः, ॐ अं ॐ केशवधात्रे नम इति त्रिपाठिनः ॥४३॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वादशाक्षरों से, जिनके आदि में क्लीव वर्णऋॠऌॡ रहित स्वर अक्षर हों अर्थात् पहले क्लीव रहित स्वर वर्ण, उसके बाद क्रमशः द्वादशाक्षर मन्त्र के वर्ण हों, उसके बाद केशवादि मूर्ति हो, उसके बाद धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशुभग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु ये द्वादश सूर्यवाची पद हों, अन्त में नमः पद लगाकर न्यास करना चाहिए। इसको मूर्ति पञ्जर न्यास कहते हैं। प्रयोग ॐ अं ॐ केशव धातृभ्यां नमः इत्यादि है ॥४३॥

अथ मूर्त्तिपञ्जरन्यासे न्यासस्थानमाह—

भालोदरेति।

भालोदरहृद्गलकूपतले वामेतरपार्श्वभुजान्तगले।
वामत्रयपृष्ठककुत्सु तथा मूर्द्धन्यनु षड्युगवर्णमनुम् ॥४४॥

भाले ललाटे, उदरे हृदये, गलकूपतले कण्ठे, वामेतरेति वामादितरद् दक्षिणं दक्षिणपार्श्वे भुजान्ते गले चेति, वामत्रये वामपार्श्वे वामभुजान्ते गले च, पृष्ठे ककुदि, अथानन्तरम्, अन्वितिपाठेऽप्ययमेव बोद्धव्यः। तथा तेन प्रकारेण मूर्ध्नि षड्युगवर्णमनुं द्वादशाक्षरमन्त्रं न्यसेदित्यर्थः ॥४४॥

न्यास स्थान इस प्रकार है। ललाट, उदर, हृदय, कण्ठ, दक्षिण पार्श्व दक्षिणभुज, दक्षिणग्रीवा, और वामपार्श्व, वामभुज, वामग्रीवा, पृष्ठदेश, ककुद् में न्यास करे, तथा सिर में पूरे मन्त्र से व्यापक न्यास करे ॥४४॥

मस्तके सम्पूर्णमन्त्रन्यासस्य प्रयोजनमाह—

चैतन्येति।

चैतन्यामृतवपुरर्ककोटितेजा-
मूर्द्धस्थो वपुरखिलं सवासुदेवः।
औधस्यं सुविमलपाथसीव सिक्तं
व्याप्नोति प्रकटितमन्त्रवर्णकीर्णम् ॥४५॥

स प्रसिद्धो वासुदेवो मूर्द्धस्थो मस्तकस्थः सन् अखिलं समस्तं वपुः शरीरं व्याप्नोति स्वतेजसेत्यर्थः। किम्भूतो वासुदेवः? चैतन्यामृतं तदेव वपुर्यस्य स तथा, यद्वा चैतन्यं स्वप्रकाशम् अमृतं सुखं तथा च स्वप्रकाशानन्दरूप इत्यर्थः, अथवा चैतन्यं ज्ञानं तेन यदमृतं मोक्षस्तदेव वपुर्यस्य स तथा। पुनः कीदृशः? अर्ककोटिरिव तेजो यस्य सः, तथा वपुः किम्भूतं? प्रकटितमन्त्रवर्णकीर्णं प्रकटिता ये मन्त्रवर्णा द्वादशाक्षरोद्गताः तैराकीर्णं व्याप्तं, किमिव? सुविमलपाथसि सुनिर्मले जले सिक्तं निक्षिप्तमौधस्यं दुग्धमिव ॥४५॥

सिर में विन्यस्त भगवान् वासुदेव अपने दिव्य तेज से सर्व शरीर को व्याप्त करते हैं। भगवान् वासुदेव स्वप्रकाशानन्दस्वरूप करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी अमृत स्वरूप हैं, इन मस्तकस्थ वासुदेव की अमृतधारा, जिसमें द्वादशाक्षर मन्त्रवर्णों की स्पष्टतः अभिव्यक्ति है वह उसी तरह साधक के सर्व शरीर के परमाणुओं में व्याप्त होती है जिस तरह निर्मल जल शाली सरोवर पर कामधेनु गौ की दुग्धधारा पड़ने पर सर्वतः व्याप्त होता है ॥४५॥

शरीरन्यासजातमुपसहरति—

सृष्टिस्थिती इति।

सृष्टिस्थिती दशपञ्चाङ्गयुग्मं
मुन्यादिकत्रितयं कास्यहृत्सु।
विन्यस्यतु ग्रथयित्वा च मुद्रां
भूयो दिशां दशकं बन्धनीयम् ॥४६॥

मूर्त्तिपञ्जरस्य पूर्वकृत्यन्दर्शयति सृष्टिस्थिती इत्यादि इति रुद्रधरः, तच्चिन्त्यं, तत्र प्रमाणाभावात्। मूर्द्धन्यक्ष्णोरित्यादिना पूर्वमुक्ते सृष्टिस्थिती पुनः स्वदेहे विन्यस्य तथा दशपञ्चाङ्गयुग्मं दशाङ्गं पञ्चाङ्गं च विन्यस्य; ऋष्यादित्रितयं कास्यहृत्सु विन्यसेदित्यर्थः।

वक्ष्यमाणमुद्रां ग्रथयित्वा बद्ध्वा भूयः पुनरपि दिशां दशकं बन्धनीयम् ॐ सुदर्शनायास्त्राय फट् इत्यनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणेत्यर्थः ॥४६॥

पूर्वोक्त सृष्टि स्थिति न्यास, पञ्चाङ्ग दशाङ्ग न्यास करके ऋष्यादि न्यास, सिर, मुख, हृदय पर करे। धेनु मुद्रा आदि दिखाकर सुदर्शनाय अस्त्राय फट् इस मन्त्र से दिग्बन्धन करे ॥४६॥

द्वादशाक्षरमन्त्रोद्धारमाह—

तारमित्यादिना।

तारं हार्दं विश्वमूर्त्तिश्च शार्ङ्गी
मांसान्तस्ते वायमध्ये सुदेवाः।
षड्द्वन्द्वार्णो मन्त्रवर्य्यः स उक्तः
साक्षाद् द्वारं मोक्षपुर्याः सुगम्यम् ॥४७॥

तारं प्रणवं, हार्दं हृदयं नमः इति यावद्, विश्वमूर्त्तिर्भकारः शार्ङ्गी गकारः, मांसान्तो मांसो लकारः तस्यान्तो वकार इति, ते इति स्वरूपं, वा इति स्वरूपं, य इति स्वरूपं, तयोर्वाययोर्मध्ये सुदेवाः सुदेवेत्यक्षरत्रयं, तथा च ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति प्रसिद्धः षड्द्वन्द्वार्णो मन्त्रवर्यः द्वादशाक्षरो मन्त्रश्रेष्ठ उक्तः कथितः। कीदृशः ? मोक्षपुर्याः साक्षादव्यवधानेन सुगम्यं द्वारं सुगम उपाय-इत्यर्थः ॥४७॥

द्वादशाक्षर मन्त्र का उद्धार किया जाता है। तार=ॐ हार्द=नमः, विश्वमूर्ति=भ, शार्ङ्गी=ग, मांसान्त=व उसके बाद ते, वाय के मध्य में सुदेवा पद देने पर ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, यह द्वादशाक्षर मन्त्र सम्पन्न होता है, जो मोक्ष फा अव्यवहित द्वारभूत है ॥४७॥

द्वादशाक्षरादित्यान् दर्शयति—

धात्रर्यमेत्यादिना।

धात्रर्यममित्राख्या वरुणांशुभगा विवश्वदिन्द्रयुताः।
पूषाह्वयपर्जन्यौ त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः ॥४८॥

धाता, अर्यमा, मित्रः, वरुणः, अंशुः, भगः, विवश्वान्, इन्द्रः, पूषाः, पर्जन्यः, त्वष्टा, विष्णुरेते द्वादश भानवः प्रोक्ताः कथिताः ॥४८॥

द्वादशाक्षर मन्त्र के द्वादशाक्षरों के अधिष्ठातृ देव द्वादशादित्य के नाम क्रमशः धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु ये १२ हैं ॥४८॥

अधुनाऽष्टादशाक्षरमन्त्रन्यासमाह—

अथ तु युगेत्यादि।

अथ तु युगरन्ध्रार्णस्याहं मनोर्न्यसनं ब्रुवे
रचयतु करद्वन्द्वे पञ्चाङ्गमङ्गुलिपञ्चके।
तनुमनुमनु व्यापय्याथ त्रिशः प्रणवं सकृन्-
मनुजलिपयो न्यास्या भूयः पदानि च सादरम् ॥४९॥

अनन्तरं पुनर्युगरन्ध्रार्णस्य युगरन्ध्रे राजदन्तत्वाद् रन्ध्रशब्दस्य परनिपातः, युगरन्ध्रम् अक्षराणां यत्र स युगरन्ध्रार्णः तस्य, रन्ध्रं नव, तथा चाष्टादशाक्षरस्य मनोर्मन्त्रस्याहं न्यसनं न्यासं ब्रुवे कथयामीति प्रतिज्ञा। करद्वये अङ्गुलीपञ्चके पञ्चाङ्गं पूर्वोक्तं मन्त्राक्षरैः परिकल्पं करन्यासं कुर्यात्। कनिष्ठायाम् अस्त्रन्यासो द्रष्टव्यः। अथानन्तरं तनुम् अनु अनुलक्षीकृत्य त्रिशः त्रिवारं मन्त्रं व्यापय्य व्यापकतया विन्यस्य पुनः प्रणवं सकृदेकवारं विन्यस्य अनन्तरं मनुजलिपयो न्यास्या मन्त्राक्षराणि न्यसतु। भूयोऽनन्तरं सादरं यथा स्यादेवं पदानि पञ्च पदानि न्यास्यानि ॥४९॥

यहां गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्र के न्यास प्रकार बताए जाते हैं। दोनों हाथ और हाथों की अंगुलियों में पूर्वोक्त मन्त्राक्षरों से न्यास करने के बाद पूरे मन्त्र से तीन वार सर्वशरीर में व्यापक न्यास करना चाहिए। पुनः प्रणव से एक वार न्यास करके मन्त्र के सभी अक्षरों से यथास्थान न्यास करे ॥४९॥

मन्त्राक्षरन्यासस्थानमाह—

कचभुवीति।

कचभुवि ललाटे भ्रूयुग्मान्तरे श्रवणाक्षिणो-
र्युगलवदनग्रीवाहृन्नाभिकटय्युभयान्धुषु।
न्यसतु शितधीर्जान्विङ्घ्रयोरक्षरान् शिरसि ध्रुवं
नयनमुखहृद्गुह्याङ्घ्रिष्वर्पयेत् पदपञ्चकम् ॥५०॥

कचस्य केशस्य भूरुत्पत्तिस्थानं शिरः तत्र, ललाटे, भ्रूयुग्मान्तरे भ्रूमध्ये, श्रवणाक्ष्णोर्युगले, नो नासिकायुगले च वदने, ग्रीवायां, हृदि, नाभौ, कटचुभये, वामकटिर्दक्षिणकटिश्च, अन्धौ लिङ्गे, एतेषु तथा जान्वङ्घ्रचोश्च शितधिर्निर्मलमतिः अक्षराणि मन्त्रसम्बन्धीनि न्यसतु। अत्र जान्वोरेकमक्षरं न्यसेत् अङ्घ्रचोरेकमक्षरं न्यसेत्, तथा शिरसि मस्तके ध्रुवं न्यसेत्। पदपञ्चकन्यासस्थानान्याह नयनेति, नयनयुगलं मुखं हृदयं गुह्यमङ्घ्रिश्च-एतेषु मन्त्रसम्बन्धि पदपञ्चकं क्लीमित्येकम्, अन्यानि स्पष्टानि अर्पयेद् न्यसेत् ॥५०॥

गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्र के वर्णों से किए जाने वाले न्यासों के स्थान बताते हैं। सिर, ललाट, भ्रूमध्य, कर्णद्वय, नेत्रद्वय, नासिकाद्वय, मुख, ग्रीवा, हृदय, नाभि, कटिद्वय, लिग, जानु, अंघ्रियों में मन्त्राक्षरों से न्यास करे। इसके अतिरिक्त नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य, अङ्घ्रि इन स्थानों में मन्त्रगत पांच पदों से न्यास किया जाता है ॥५०॥

पञ्चाङ्गानीति।

पञ्चाङ्गानि न्यस्येद् भूयोमुन्यादीनन्यन्यत्सर्वम्।
तुल्यं पूर्वेणाथो वक्ष्ये मुद्रा बन्ध्या मन्वोर्याः स्युः ॥५१॥

पञ्चाङ्गानि भूयः पुनरपि शरीरे न्यसेत्, तथा मुन्यादीन् ऋष्यादीन्, अन्यत्सर्वं केशवादिजातं पूर्वेण तुल्यं समानमेव। अत्र दशतत्त्वादिन्यासेषु मन्त्रस्य द्विरावृत्तिविशेष इति लघुदीपिकाकारः। अथोऽनन्तरं मन्वोर्दशाक्षराष्टादशाक्षरयोर्या मुद्रा बन्ध्या बन्धनीयाः स्युर्भवेयुस्ता मुद्रा वक्ष्ये कथयामि ॥५१॥

पुनः ऋष्यादि द्वारा पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिए। और सभी न्यास पूर्वोक्त न्यास के समान ही हैं। अब आगे गोपालदशाक्षर, और गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्रों की मुद्रा बताता हूँ ॥५१॥

हृदयाद्यङ्गन्यासमुद्राः प्रदर्शयति—
अनङ्गुष्ठा इत्यादि।

अनङ्गुष्ठा ऋजवो हस्तशाखा-
भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षके च।

अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां
करद्वन्द्वाङ्गुलयो वर्मणि स्युः ॥५२॥
नाराचमुष्टचुद्गतबाहुयुग्म-
काङ्गुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु।
विष्वग्विषक्तः कथिताऽस्त्रमुद्रा
यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे तु ॥५३॥

अनङ्गुष्ठा अङ्गुष्ठरहिता ऋजवोऽवक्रा हस्तशाखाः हस्ताङ्गुलयः हृदये मुद्रा भवेत्, शीर्षके च शिरसि ता एव मुद्रा ज्ञेयाः, खलु निश्चये अधोऽङ्गुष्ठा मुष्टिः अधोऽङ्गुष्ठो यस्यां मुष्टौ एवं कृता मुष्टिः शिखायां मुद्रा भवेद्, वर्मणि कवचे करद्वन्द्वाङ्गुलयः स्युः मुद्रापदवाच्याः भवन्ति। ध्वनिः शब्दोऽस्त्रमुद्रा कथिता। किंभूतो ध्वनिः? नाराचवद्बाणवद् मुष्टयुद्गतो यो बाहुस्तस्य युग्मकं द्वयं तस्याङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां करणाभ्यामुदितः। पुनः कीदृशः? विष्वग् दशदिक्षु विषक्तः विस्तीर्णः यत्र मन्त्रेऽक्षिणी भवतः नेत्राङ्गमस्ति तत्र तर्जनीमध्यमे मिलिते मुद्रा ॥५२॥५३॥

हृदयादि न्यासों में किस मुद्रा से न्यास करना चाहिए, उसका विवरण बताते हैं—हृदय, और सिर पर न्यास करते समय अंगुष्ठ को छोडकर सभी सीधी अंगुलियों से न्यास करना चाहिए। और अंगुठे को दबाकर मुष्टिवद्ध अंगुलियों से शिखा न्यास करें, दोनों हाथों की सभी अंगुलियों से कवच न्यास किया जाता है ॥५२॥

बाण के समान मुष्ठि से दृढ़ हुए दोनों हाथों के अंगुष्ठ और तर्जनी रूप करण से दशों दिशाओं में व्याप्त होने वाली ध्वनि जिस मुद्रा से उत्पन्न होती है, उसे अस्त्र मुद्रा कहते हैं। अस्त्र मुद्रा का केन्द्र बिन्दु नेत्र माना जाता है। नेत्र स्पर्शन में अंगुष्ठ तर्जनी मध्यमायुक्ता मुद्रा होती है ॥५३॥

वेणुमुद्रामाह—
ओष्ठ इति।

ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ॥५४॥

तर्जनीमध्यमाऽनामाः किञ्चित्संकुच्य चालिताः ।
वेणुमुद्रेह कथिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥५५॥

वामहस्ताङ्गुष्ठोऽधरे लग्न इति संबन्धः कार्यः, तस्य वामहस्तस्य या कनिष्ठिका पञ्चमी अङ्गुली सा दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठे संबद्धा कार्या । तत्कनिष्ठिका दक्षिणहस्तकनिष्ठिका प्रसारिता अकुटिला कार्या । उभयहस्ततर्जनीमध्यमाऽनामिकाः किंचित्संकुच्य चालिताश्चालनीया । इत्थमिह शास्त्रे वेणुमुद्रा कथिता सुगुप्ता ग्रन्थान्तरेऽत्यन्तगुप्ता । यतो हरेः परमेश्वरस्य श्रीकृष्णस्य प्रेयसी वल्लभा ॥५४॥५५॥

वेणु मुद्रा बताते हैं । अधर पर वामाङ्गुष्ठ संलग्न हो, और वामकनिष्ठिका को दक्षिणाङ्गुष्ठ से सम्बद्ध करके दक्षिण कनिष्ठिका को सीधी उठावे, दोनों हाथों की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका को कुछ सिकोड कर धीरे-धीरे चलाने, पर जो मुद्रा होती है, उसे वेणु मुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा ग्रन्थान्तरों में भी गुप्त ही रखी गई है, भगवान् श्रीकृष्ण के लिए यह अत्यन्त प्रिय है ॥५४॥५५॥

नोच्यन्त इति ।

नोच्यन्तेऽत्र प्रसिद्धत्वान्मालाश्रीवत्सकौस्तुभाः ।
उच्यतेऽच्युतमुद्राणां मुद्रा बिल्वफलाकृतिः ॥५६॥

मालाश्रीवत्सकौस्तुभमुद्राः प्रसिद्धत्वान्नोच्यन्ते मया ग्रन्थकर्त्राऽप्रसिद्धमिह प्रकाश्यत इति शेषः । अत एव गले वनमालाऽभिनयनं वनमालामुद्रा, उत्तानितवामतर्जनीकनिष्ठोपरि अधोमुखदक्षिणकरकनिष्ठिकातर्जनीके संयोज्य दक्षिणकरानामिकामध्यमाङ्गुलीद्वयं वामकराङ्गुष्ठोपरि कृत्वा वामकरमध्यमोपकनिष्ठिके दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठस्याधः कुर्यादेषा श्रीवत्समुद्रा । वामकनिष्ठिकया दक्षिणकनिष्ठिकां निष्पीड्य वामानामिकया दक्षिणतर्जनीं निष्पीड्य शिष्टवामाङ्गुलीत्रयम् उपरि कृत्वा वामतर्जनीसहितदक्षिणहस्ताङ्गुलित्रयमुखमेकत्र योजयेदेषा कौस्तुभमुद्रा ॥५६॥

प्रसिद्ध होने के कारण वनमाला, श्रीवत्स, कौस्तुभ मुद्रा का विवरण देने की आवश्यकता नहीं है, तथापि गले में दोनों हाथों से वनमाला का अभिनय करने पर वनमाला मुद्रा होती है । उठाई हुई वाम तर्जनी और कनिष्ठिका के ऊपर अधोमुख की गई दक्षिण तर्जनी और कनिष्ठिका को संयुक्त करके दक्षिणकर

की मध्यमा और अनामिका को वामाङ्गुष्ठ के ऊपर चढाकर वामकर की मध्यमा और अनामिका को दक्षिणाङ्गुष्ठ के नीचे करने पर श्रीवत्स मुद्रा होती है ।

वामकनिष्ठिका से दक्षिण कनिष्ठिका को दबाकर और वामअनामिका से दक्षिण तर्जनी को दबाकर बांकी वामाङ्गुलीत्रय को ऊपर करके वामतर्जनी के साथ दक्षिण कर की तीनों अंगुलियों के अग्रभाग को एकत्र करने पर कौस्तुभमुद्रा सम्पन्न होती है । इसके बाद श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाली मुद्राओं में जो बिल्व मुद्रा है, उसका स्वरूप बताया जाएगा ॥५६॥

बिल्वमुद्रामाह—

अङ्गुष्ठमिति ।

अङ्गुष्ठं वाममुद्दण्डितमितरकराङ्गुष्ठकेनाथ बध्वा
तस्याग्रं पीडयित्वाऽङ्गुलिभिरपि तथा वामहस्ताङ्गुलीभिः ।
बध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधीर्व्याहरन्मारबीजं
बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह कथिता गोपनीया विधिज्ञैः ॥

वामाङ्गुष्ठम् उद्दण्डितं दण्डाकारम् ऊर्ध्वं कृत्वाऽधः कर्तव्यं तथाऽनन्तरम् इतरकराङ्गुष्ठेन बद्ध्वा तस्य च पीठे दक्षिणकराङ्गुष्ठस्तिर्यङ्कार्य इत्यर्थः । तस्याग्रं दक्षिणकराङ्गुष्ठाग्रमङ्गुलिभिः पीडयित्वा धृत्वा ता अपि दक्षिणकराङ्गुलयोऽपि वामहस्ताङ्गुलीभिर्गाढं यथा स्यादेवं बद्ध्वा विमलधीः शुद्धबुद्धिः हृदि हृदये स्थापयेत् । मारबीजं कामबीजं व्याहरन् उच्चारयन् । इत्थं बिल्वाख्या एषा स्फुटं व्यक्तं यथास्यादेव मिह शास्त्रे कथिता विधिज्ञैः प्रकारज्ञैर्गोपनीया ॥५७॥

बिल्व मुद्रा का स्वरूप बताया जाता है । वामाङ्गुष्ठ को सीधा खड़ा करके उसको दक्षिणाङ्गुष्ठ से बांधकर, दक्षिणाङ्गुष्ठ को वामाङ्गुष्ठ के पीठ पर कुछ टेढा करके स्थापित करे, उस दक्षिणाङ्गुष्ठ के अग्रभाग को वामाङ्गुलियों से दबाते हुए उन्हीं अंगुलियों से दक्षिणांगुलियों को गाढ रूप में गूंथकर सम्पन्न होने वाली बिल्व मुद्रा को काम बीज जपते हुए हृदय पर स्थापित करे । यह विधिज्ञों ने अत्यन्त गोप्य मुद्रा बताई है ॥५७॥

एतस्याः फलमाह—

मन इति ।

मनोवाणीदेहैर्यदिह च पुरा वाऽपि विहितं-
त्वमत्या मत्या वा तदखिलमसौ दुष्कृतिचयम् ।
इमां मुद्रां जानन् क्षपयति नरस्तं सुरगणा-
नमन्त्यस्याधीना भवति सततं सर्वजनता ।।५८।।

असौ नरः मनुष्यः इमां मुद्रां जानन् तदखिलं संपूर्णं दुष्कृतिचयं पापराशिं क्षपयति दूरीकरोति यन्मनसा वाचा देहेनाऽमत्याऽज्ञानेन मत्या ज्ञानेन वा दिवारात्रिविहितं दिवसे रात्रौ वा कृतं। "यदिह च पुरा वापि विहितं" इति, पाठे इह जन्मनि जन्मान्तरे वा विहितमित्यर्थः। न केवलं पापं दूरीकरोति अपि तु सुरगणा देवा नमन्ति तथा अस्य मुद्राकर्तुः सततं सर्वदा सर्वजनसमूहो वश्यो भवतीत्यर्थः ।।५८।।

इस परम पावन बिल्व मुद्रा को जानने वाला साधक, मन, वचन, कर्म से किए हुए, ज्ञान अज्ञान से किए हुए, दिन वा रात्रि में किए हुए सभी प्रकार के पापों को दूर करता है। ऐसे महापुरुष का नमन देवगण भी करते हैं। सम्पूर्ण जनसमूह तो उसके वश में हो ही जाता है ।।५८।।

अस्त्रमन्त्रमाह—

प्रणवेति ।

प्रणवहृदोरवसाने सचतुर्थिं सुदर्शनं तथाऽस्त्रपदं च ।
उक्त्या फडन्तममुना कलयेन्मनुनाऽस्त्रमुद्रया दशहरितः ।।५९।।

प्रणव ॐकारः हृत् नमः एतयोरवसानेऽन्ते सचतुर्थिसुदर्शनं चतुर्थीविभक्तिसहितं सुदर्शनमिति पदम् एतस्यान्ते तथाऽस्त्रपदं चतुर्थ्यन्तमस्त्रपदं पुनः कीदृक् ? फडन्तम् फट्शब्दान्तमुक्त्वाऽमुना मनुना अनेन मन्त्रेण अस्त्रमुद्रया दश हरितः कल्पयेत् दशदिग्बन्धनं कुर्यादित्यर्थः ।। ५९ ।।

प्रणव और नमः पद के अन्त में चतुर्थी विभक्ति युक्त सुदर्शन पद तथा अस्त्र पद जोडकर फट् शब्द का उच्चारण करते हुए दश दिग्बन्धन करे। मन्त्र स्वरूप--ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट् है ।।५९।।

प्राक्कृतं न्यासजातमुपसंहरन् अग्रिमपटले वक्ष्यमाणं ध्यानं सूचयति--

इतीति ।

इति विधाय समस्तविधिं जग-
ज्जनिविनाशविधानविशारदम् ।
श्रुतिविमृग्यमजं मनुविग्रहं-
स्मरतु गोपवधूजनवल्लभम् ।।६०।।

इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
द्वितीयः पटलः ।। २ ।।

इत्यनेन प्रकारेण समस्तविधिं पूर्वोक्तमखिलन्यासादिकं विधाय निर्वर्त्य गोपवधूजनवल्लभं कृष्णं स्मरतु चिन्तयतु। कीदृशं ? कृष्णं ? जगदुत्पत्तिस्थितिविनाशकरणदक्षं, पुनः कीदृशं ? श्रुतिविमृग्यमुपनिषद्गम्यं, पुनः कीदृशं ? अजम् उत्पत्तिरहितम्। पुनः कीदृशं ? मनुविग्रहं मनुशरीरमित्यर्थः ।।६०।।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे द्वितीयः पटलः ।। २ ।।

इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से समस्त न्यास विधि करके जगत् उत्पत्ति स्थिति विनाश के कारण, श्रुति विमृग्य, अजन्मा मन्त्र स्वरूप गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।६०।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत "दीपिकार्थ प्रकाशिका"
नामक हिन्दी व्याख्या का द्वितीय पटल पूर्ण हुआ ।। २ ।।

तृतीयपटलम्

इदानीं मन्त्रद्वयसाधारणं देवताध्यानमाह—

अथेति ।

अथ प्रकटसौरभोद्गलितसन्मधूत्फुल्लस-
त्प्रसूननवपल्लवप्रकरनम्रशाखैर्द्रुमैः ।
प्रफुल्लनवमञ्जरीललितवल्लरीचेष्टितैः
स्मरेच्छिशिरितं शिवं शितमतिस्तु वृन्दावनम् ॥१॥

अथानन्तरं शितमतिर्निर्मलमतिः वृन्दावनं स्मरेच्चिन्तयेत् । किम्भूतं ? द्रुमैर्वृक्षैः शिशिरित शीतलीकृतं द्रुमैः, कीदृशैः ? प्रकटेति उद्भटसौरभम् । अथ च उद्गलितो माध्वीको मधु यस्मिन् तत् अथ च उत्फुल्लं प्रफुल्लं अथ च सद्देदीप्यमानमेतादृशं प्रसूनं पुष्पं तथा नवपल्लवः अनयोर्यः प्रकरः समूहस्तेन नम्राः शाखा येषां ते तथा तैः । प्रकटसौरभाकुलितमत्तभृङ्गोल्लसत्प्रसूनेति पाठे प्रकटसौरभेणाकुलितं सर्वतो व्याप्तम् । अथ च मत्तभृङ्गोल्लसन्मत्तभ्रमरेण शोभमानमेतादृशं यत्प्रसूनमित्यर्थः । पुनः कीदृशैः प्रफुल्ला विकसिता या नवमञ्जरी तया ललिता मनोहरा या वल्लरी लताग्रशाखा तस्याश्चेष्टितं चलनं येषु तैः, पुनः कीदृशं ? शिवं कल्याणप्रदम् ॥ १ ॥

यहाँ पर पूर्वोक्त मन्त्रद्वय दशाक्षर, तथा अष्टादशाक्षर के इष्टदेव का ध्यान बताया जा रहा है ।

प्रथम द्वितीय पटलों में प्रोक्त विधि से पूर्वांग करने के बाद शुद्धमति साधक को श्रीधाम वृन्दावन का स्मरण करना चाहिए । जिस वृन्दावन के परिसर में प्रकट रूप से आमोदित होने वाले उत्कृष्ट सौरभ के कारण मधुमयी धारा को उडेलने वाली प्रफुल्ल कुसुमावली, तथा नवराग रञ्जित नवपल्लवों के समूहों से विनम्र हो गई हैं दिव्य शाखाएं जिनकी और उन स्वयं विकसित द्रुमों पर आलिंगित जो तुरन्त विकसित नयीं कुसुम मञ्जरियों से मनोहर लगने वाली मल्लिकादि लताओं की स्पन्दन क्रिया है जिनमें, ऐसे सघन छाया वाले मनोहर द्रुमों से सम्पूजित आनन्दघन श्रीधाम वृन्दावन का स्मरण करना चाहिए ॥१॥

विकासीति—

विकासिसुमनोरसास्वदनमञ्जुलैः सञ्चर-
च्छिलीमुखमुखोद्गतैर्मुखरितान्तरं झङ्कृतैः ।
कपोतशुकसारिकापरभृतादिभिः पत्रिभि-
र्विराणितमितस्ततो भुजगशत्रुनृत्याकुलम् ॥ २ ॥

पुनःकीदृशं वृन्दावनं ? झङ्कृतैः शब्दविशेषैर्मुखरितान्तरं शब्दायमानाभ्यन्तरं, कीदृशैः झङ्कृतैः ? विकाशिन्याः प्रफुल्लायाः सुमनसः पुष्पस्य यो रसः मधु तस्य यदास्वादनम् अवलेहनं तेन मञ्जुलैर्मनोहरैः, पुनःकीदृशैः ? सञ्चरेति सञ्चरन्तो भ्रमन्तो ये शिलीमुखा भ्रमरास्तेषां मुखेभ्य उद्गतैः समुत्थितैः, पुनः कीदृशं वृन्दावनं ? कपोतेति पारावतशुकसारिकाकोकिलप्रभृतिभिः पक्षिभिरितस्ततो विराणितं शब्दायितं, पुनःकीदृश ? भुजगशत्रुर्मयूरस्तस्य नृत्येनाकुलं व्याप्तम् ॥२॥

पूर्ण विकास को प्राप्त हुए विभिन्न उद्यान लताओं के पुष्प पुञ्जों के रसास्वादन में तल्लीन, विभिन्न पुष्परसों की मधुरिमा की परीक्षा हेतु इतस्तत उडने वाले सुन्दर भ्रमरों के मुख से होने वाली झङ्कृतियों से मुखरित है अन्तरभाग जिसका, और कपोत, शुक, सारिका, कोकिल प्रभृति पक्षियों के कलरवों से शब्दायमान, तथा पन्नगारि पक्षिसुन्दर मयूर के लोकोत्तर नृत्य से शोभायमान श्रीधाम वृन्दावन का स्मरण करना चाहिए ॥२॥

कलिन्देति—

कलिन्ददुहितुश्चलल्लहरिविप्रुषां वहिभि-
र्विनिद्रसरसीरुहोदररजश्चयोद्धूसरैः ।
प्रदीपितमनोभवव्रजविलासिनीवाससां
विलोलनपरैर्निषेवितमनारतं मारुतैः ॥३॥

पुनः कीदृशं ? मारुतैर्वायुभिः अनारतं सर्वदा निषेवितं, कीदृशैर्मारुतैः ? कलिन्देति कलिन्ददुहितुर्यमुनायाः चलन्त्यो या लहर्य्यः तासां या विप्रुषो जलबिन्दवः तासां वाहिभिः, एतेन वायोः शैत्यमुक्तं । पुनः कीदृशैः ? विनिद्रेति विनिद्रं प्रफुल्लं यत्सरसीरुहं पद्मं तस्य यदुदरम् अभ्यन्तरं तत्र यो रजश्चयो धूलीसमूहः तेन उद्धूसरैः, एतेन सौरभ्य-

मुक्तं । पुनःकीदृशैः ? प्रदीपितेति प्रदीपितोऽतिशयितो मनोभवः कामो यासां व्रजविलासिनीनाङ्गोपसुन्दरीणां तासां यानि वासांसि वस्त्राणि तेषां विलोलनपरैः चालनाशक्तैः, एतेन मान्द्यमुक्तम् ।। ३ ।।

कलिन्दतनया श्रीयमुना की चञ्चल तरंगों की बिन्दुओं को वहन करने के कारण शीतल, सदा विकसित रहने वाले कमलों के अन्तस्तल पर विद्यमान मकरन्द परमाणुओं से धूसरित होने के कारण सुगन्ध, और श्रीकृष्ण के लोकोत्तर सौन्दर्य से आकृष्ट अतएव उद्दीप्तकामा व्रज सीमन्तिनियों के बसनों को धीरे-धीरे स्पन्दित करने के कारण मन्द, ऐसी मन्द, सुगन्ध, शीतल वायु से सदा संसेवित श्रीधाम वृन्दावन का स्मरण करना चाहिए ।।३।।

प्रवालेति—

प्रबालनवपल्लवं मरकतच्छदं वज्रमौ–
क्तिकप्रकरकोरकं कमलरागनानाफलम् ।
स्थविष्ठमखिलर्तुभिः सततसेवितं कामदं
तदन्तरपि कल्पकाङ्घ्रिपमुदञ्चितं चिन्तयेत् ।।४।।

तदन्तरपि वृन्दावनमध्ये कल्पकाङ्घ्रिपमपि चिन्तयेत् । कीदृशं ? उदञ्चितम् उच्छ्रितं, पुनः कीदृशं ? स्थविष्ठं स्थूलतरं पुनःकीदृशं ? प्रवालोविद्रुमः स एव नवपल्लवः किसलयं यस्य तं, पुनः कीदृशं ? मरकतो यो मणिविशेषः स एव छदं पत्र यस्य तं, पुनः कीदृशं ? वज्रं हीरकं मौक्तिकं मुक्ता—

अनयोर्यः प्रकरः समूहः स एव कोरकः पुष्पकलिका यत्र तं, पुनः कीदृशं ? कमलरागः पद्मरागमणिः स एव नाना बहुविधं फलं यत्र तं, पुनः कीदृशम् ? अखिलैर्ऋतुभिः षड्भिरपि ऋतुभिः सततं सेवितं सदापरिगृहीतम्, एतेन सर्वपुष्पान्वितत्वं दर्शितं, पुनः कीदृशं ? कामदम् आकाङ्क्षितप्रदम् ।। ४ ।।

ऐसे दिव्य वृन्दावन के मध्य भाग में उच्च और विशाल कल्पवृक्ष का चिन्तन करे । जिस कल्पवृक्ष के नव पल्लव मूगा हैं, मरकत मणियाँ ही पत्ते हैं, हीरा और मुक्ता मणि ही कलिका हैं, पद्म राग मणियाँ ही विभिन्न प्रकार के फल हैं, विना क्रम की छहों ऋतुओं से सदा सेवित, जो सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है ।।४।।

सुहेमेति ।

सुहेमशिखराचलेऽप्युदितभानुवद्भास्वरा–
मधोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः ।
प्रदीप्तमणिकुट्टिमां कुसुमरेणुपुञ्जोज्ज्वलां–
स्मरेत्पुनरतन्द्रितो विगतषट्तरङ्गां बुधः ।।५।।

बुधः पण्डितः अतन्द्रितः निरालस्यः आलस्यरहितः सन् अस्य कल्पवृक्षस्याधस्तात् कनकस्थलीं सुवर्णमयीं भूमिं पुनः स्मरेत् चिन्तयेत् । किम्भूतां ? सुहेमेति शोभमाना सुवर्णशृङ्गपंक्तिर्यस्य । तथा तस्मादुदयाचलादुदितभानुवत् प्रकटितसूर्यवत् भास्वरां देदीप्यमानां सुहेमशिखराचलेप्युदितेति पाठे शोभनं हेमशृङ्गं यत्र अचले पर्वते तस्मिन् अपिशब्दो भिन्नक्रमः कनकस्थलीमित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यम् । अस्य कीदृशस्य अमृतेति ? अमृतस्य यः शीकरः कणस्तस्यासारो यः समूहः पतनं तच्छालि यथा स्यात्तथा तस्यामृतकणसमूहसंवर्षिणः, कीदृशीं ? प्रदीप्तैः दीप्यमानमणिभिः पद्मरागादिभिः बद्धभूमिं, पुनः कीदृशीं ? कुसुमेति कुसुमरेणुपुञ्जैरुज्ज्वलां, पुनः कीदृशीं ? विगतेति विगता दूरीभूता षट्तरङ्गाः कामक्रोधादयः अशनायापिपासाशोकमोहजरामृत्यवो वा यस्यास्तां ।। ५ ।।

निरालस साधक, सदा पीयूषधारा प्रवाहित करने वाले कल्पवृक्ष के नीचे ऐसी स्वर्णमयी भूमिका चिन्तन करे, जो सुवर्णमय उदयाचल पर्वत से उदित होने वाले सूर्य के समान चमचमाती हो, और स्वभावतः प्रदीप्त होने वाले पद्मरागादि मणियों से देदीप्यमान हो, तथा विभिन्न पुष्प परागों की महक से सुवासित हो, जिस भूमि पर काम क्रोधादि मनोविकार शोक, मोह आदि शत्रुभावों का अभाव हो ।।५।।

तद्रत्नेति ।

तद्रत्नकुट्टिमनिविष्टमहिष्ठयोग–
पीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य ।
उद्यद्विरोचनसरोचिरमुष्य मध्ये
सञ्चिन्तयेत्सुखनिविष्टमथो मुकुन्दम् ।।६।।

तस्याः कनकस्थल्याः यद्रत्नकुट्टिमं रत्नबद्धभूभागः तत्र निविष्टं स्थितं महिष्ठं महद्योगपीठं तत्राष्टपत्रम् अष्टौ पत्राणि यत्र तत्तथाऽरुणं लोहितम्, अत एवोद्यतादित्यसन्निभम् एवंभूतं पद्मं विचिन्त्य अथानन्तरम् अमुष्यारुणवर्णाष्टदलकमलस्य मध्ये मुकुन्दं कृष्णं चिन्तयेत् । कीदृशं ? सुखनिविष्टं सुखासीनम् आदिकुलकमत आरभ्य ।।६।।

उस रत्न जटित कनक स्थली के मध्य भाग में विद्यमान महान् योगपीठ पर नव उदीयमान सूर्य के समान चमकने वाले अष्टदल कमलाकार लाल वर्ण के सिंहासन का स्मरण करते हुए उस दिव्य सिंहासन के बीचोंबीच सुखपद वाच्या आह्लादिनी शक्ति के साथ विराजमान श्रीकृष्ण का आनन्दपूर्वक चिन्तन करे ।।६।।

सुखेन निविष्टं सुखनिविष्टं यहां सुखशब्द से आह्लादिनी शक्ति को लेना चाहिए ।

सूत्रामेति—

सुत्रामरत्नदलिताञ्जनमेघपुञ्ज-
प्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम् ।
सुस्निग्धनीलघनकुञ्चितकेशजालं-
राजन्मनोज्ञशितिकण्ठशिखण्डचूडम् ।।७।।

पुनः कीदृशं ? सुत्रामरत्नम् इन्द्रनीलमणिः दलिताञ्जनं भिन्नाञ्जनं घृष्टकज्जलमिति मेघपुञ्जो मेघसमूहः प्रत्यग्रनीलजलजन्म नवीननीलपद्मम् एषां समाना भा दीप्तिर्यस्य तं, पुनः कीदृशं ? सुस्निग्धेति सुस्निग्धाः सुचिक्कणाः नीलाः श्यामा घना निविडाः कुञ्चिताः कुटिलाः ये केशास्तेषां जालं समूहो यत्र तं, पुनः कीदृशं ? राजन्निति राजत् शोभमानं मनोज्ञं मनोहरं यच्छितिकण्ठशिखण्डं मयूरपिच्छं तदेव चूडायां यस्य तम् ।।७।।

इन्द्र नीलमणि, घृष्ट कज्जल, जलद मेघ समूह, नवविकसित नीलकमल के समान नील आभा वाले, स्निग्ध, श्यामायमान घने घुंघराले रमणीय दिव्य केशों को धारण करने वाले, मयूर पुच्छ (मोर पंख) से सुशोभित केश चूडा शाली सुखोपविष्ट भगवान् युगलरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।७।।

रोलम्बलालितसुरद्रुमसूनकल्पि-
तोत्तंसमुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम् ।

लोलालकस्फुरितभालतलप्रदीप्त-
गोरोचनातिलकमुच्चलचिल्लिमालम् ।।८।।

पुनः कीदृशं ? रोलम्बेति रोलम्बो भ्रमरस्तेन लालितं प्रीत्या सेवितं यत् सुरद्रुमप्रसूनं पारिजातपुष्प तेन कल्पितः रचित उत्तंसः शिरोभूषणं येन स तथा तं, पुनःकीदृशं ? उत्कचं विकसितं यन्नवोत्पलं तदेव कर्णाभरणं यस्य स तथा तं, पुनःकीदृशं ? लोलाश्चञ्चला अलकाः केशविशेषास्तैः स्फुरितं शोभमानं यद्भालतलं ललाटतलं तत्र प्रदीप्तं गोरोचनातिलकं यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशं ? उच्चलचिल्लिमालञ्चञ्चलभ्रूलताकम् ।।८।।

भ्रमरों द्वारा प्रीतिपूर्वक परिचुम्बित पारिजात पुष्पावली से निर्मित शिरोभूषण को धारण करने वाले, नवीन विकसित कमल को कर्णाभूषण के रूप में अलंकृत करने वाले फिरफिराने वाली घुंघराली अलकावलियों से शोभायमान भालस्थल है जिनका ऐसे गोरचनातिलक बिन्दु से विभूषित चञ्चल भ्रूलता शाली श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।८।।

आपूर्णेति—

आपूर्णशारदगताङ्कशशाङ्कविम्ब-
कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम् ।
रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलरश्मिदीप्त-
गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम् ।।९।।

पुनः कीदृशम् ? आपूर्णः शारदः शरत्सम्बन्धी गताङ्कः कलङ्करहितः एवम्भूतो यः शशाङ्कविम्बश्चन्द्रमण्डलस्तद्वत् कान्तं मनोहरम् आननं मुखं यस्य तथा तं, पुनः कीदृशं ? कमलपत्रवद्विशाले विस्तीर्णे नेत्रे यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशं ? रत्नेति रत्नैः स्फुरच्छोभमानं यन्मकरकुण्डलं मकराकारकुण्डलं तस्य ये रश्मयः तैः प्रदीप्ता शोभमाना गण्डस्थली स एव मुकुरो दर्पणो यस्य तथा तं, पुनः कीदृशं ? उन्नतेति उन्नता मनोहरा नासा यस्य स तथा तम् ।।९।।

शरद् ऋतु के पुष्कल पूर्ण चन्द्र विम्ब के समान कान्तिमय मुख मण्डल है जिनका अथवा शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्र के समान गौर वर्ण शालिनी कान्ता—

श्रीराधा की ओर है आनन (मुखारविन्द) जिनका, ऐसे कमल पत्र के समान विशाल सुन्दर नेत्र वाले, तेजोमय रत्न जटित मकराकृति कुण्डलों की किरणों से सुशोभित गण्ड स्थल ही है दर्पण जिनका, ऐसे लम्बी सुन्दर नासिका वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।९।।

विशेषः—कान्तानन पद में जो कान्ता है वह श्रीआह्लादिनी शक्ति का संकेत करता है। क्योंकि सुखोपवेशन आह्लादिनी शक्ति के विना नहीं हो सकता।

सिन्दूरेति—

सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्द-
मन्दारमन्दहसितद्युतिदीपिताशम् ।
वन्यप्रबालकुसुमप्रचयावक्लृप्त-
ग्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बुकण्ठम् ।।१०।।

पुनः कीदृशं ? सिन्दूरवन्मनोहरो अधरो यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशम् ? इन्दुकुन्देति इन्दुश्च कुन्दं कुन्दपुष्पं मन्दरः शुक्लमन्दारः अर्कपुष्पं वा तद्वन्मन्दहसितम् ईषद्धास्यं तस्य द्युति र्दीप्तिः तया दीपिता शोभिता आशा दिशो येन स तथा तं, पुनः कीदृशं ? वन्येति वन्यं वनोद्भवं यत्प्रबालकुसुमं नवपल्लवपुष्पं तस्य यः समूहस्तेनावक्लृप्तं सम्पादितं यद् ग्रैवेयकं कण्ठाभरणं तेन उज्ज्वलो देदीप्यमानो मनोहरः कम्बुकण्ठः त्रिरेखाङ्कितः कण्ठो यस्य स तथा तम् ।।१०।।

सिन्दूर के समान लाल सुन्दर अधरोष्ठ वाले, चन्द्र ज्योत्स्ना कुन्दपुष्प श्वेत मन्दार पुष्प के समान खिलने वाले मन्दस्मित की कान्ति से शोभित की हैं दश दिशाओं को जिन्होंने, ऐसे वनलताओं के कोमल कुसुमों की लरी से निर्मित कण्ठाभरण से उज्ज्वल शंखाकृति कण्ठ वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।१०।।

मत्तेति—

मत्तभ्रमद्भ्रमरजुष्टविलम्बमान-
सन्तानकप्रसवदामपरिष्कृतांसम् ।
हारावलीभगणराजितपीवरोरो-
व्योमस्थलीलसितकौस्तुभभानुमन्तम् ।।११।।

पुनः कीदृशं ? कृतमधुपाना भ्रमन्तश्चरन्तो ये भ्रमरास्तैः जुष्टं सेवितम् अथ च विलम्बमानम् एवंभूतं यत्सन्तानकप्रसवदाम कल्पवृक्षपुष्पदाम तेन दाम्ना परिष्कृतः स्वलंकृतो अंसो यस्य स तथातम्, पुनः कीदृशं ? हारावल्येव भगणो नक्षत्रसमूहः तेन राजितं शोभित पीवरं मांसलं यदुरो हृदयं तदेव व्योमस्थली आकाशभूमिः तया लसितः शोभितः कौस्तुभ एव भानुः सूर्यस्तेन युक्तम् । अत्र रूपकालङ्कार एव नोपमालङ्कारः नक्षत्रगणसूर्ययोरसम्बन्धत्वात् । एवं च सत्येककाले द्वयोः शोभा लभ्यत इति भावः ।।११।।

मधुपान करके मत होकर भ्रमण करने वाले मधुकरों से सेवित, लम्बे-लम्बे कल्पवृक्ष के पुष्पों से निर्मित माला से अलंकृत है स्कन्ध भाग जिनका, हारावली-रूपी तारागणों से सुशोभित विशाल वक्षस्थलरूपी आकाश भूमि में कौस्तुभमणि रूप सूर्य को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।११।।

श्रीवत्सेति—

श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुन्नतांस-
माजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुम् ।
आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभि-
भृङ्गाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम् ।।१२।।

पुनः कीदृशं ? श्रीवत्ससंज्ञं यल्लक्षणं चिह्नं तेन सुलक्षितः प्रव्यक्तः तम्, पुनः कीदृशम् ? उन्नतौ ऊर्द्ध्वौ अंसौ स्कन्धौ यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशम् ? आजान्विति जानुव्यापिनौ पीनौ मांसलौ परिवृत्तौ क्रमवलितौ सुजातौ दोषरहितौ बाहू यस्य स तथा तम् पुनः कीदृशम् ? आबन्धुरोदरं निम्नोन्नतोदरम् आ इषन्मुष्टिग्राह्यं बन्धुरं रम्यमुदरं यस्य तमितिवा, पुनः कीदृशं ? उदारा विख्याता गम्भीरा नाभिर्यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशं ? भृङ्गाङ्गना भ्रमरस्त्री तस्याः यः समूहः तद्वन्मञ्जुला मनोहरारोमराजी रोमपङ्क्तिर्यस्य स तथा तं मङ्गलेति क्व चित् पाठः । मङ्गला शुभदात्रीति तथा तम् ।।१२।।

श्रीवत्सचिह्न से शोभित, उन्नत स्कन्धशाली, आजानु व्यापी पुष्ट लम्बी-लम्बी भुजा वाले, थोडी कृशता से युक्त उदर वाले विशाल नासिका वाले, सुन्दर

भ्रमरियों की क्रमबद्ध पंक्ति के समान सुन्दर रोमावली को धारण करने वाले जिनकी नाभि गम्भीर है ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।१२।।

नानेति —

नानामणिप्रघटिताङ्गदकङ्कणोर्मि-
ग्रैवेयसारसननूपुरतुन्दबन्धम् ।
दिव्याङ्गरागपरिपिञ्जरिताङ्गयष्टि-
मापीतवस्त्रपरिवीतनितम्बविम्बम् ।।१३।।

पुनः कीदृशं ? नानामणिभिरिन्द्रनीलादिभिर्घटिताः सम्बद्धाः अङ्गदाः बाहुवलयाः तथा कङ्कणाः उर्मिर्मुद्रिका ग्रैवेयं ग्रीवालङ्कारः रसनया क्षुद्रघण्टिकया सह आसमन्तात् वर्त्तेते यौ नूपुरौ तुन्दबन्धः उदरबन्धनार्थम् सुवर्णडोरकम् एते अलङ्कारा यस्य स तथा तम् ? पुनः कीदृशं ? दिव्यः परमोत्कृष्टो योऽङ्गरागः सुगन्धिचूर्ण तेन पिञ्जरिता नानावर्णा अङ्गयष्टिरङ्गलता यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशम् आपीतम् अतिशयेन पीतं यद्वस्त्रं तेन परितो वीतो वेष्टितो नितम्बविम्बो येन स तथा तम् यद्यपि स्त्रीकटयां नितम्बपदप्रयोगः कोशे दृश्यते तथापि तद्वन्मनोहरतया पुंस्कटयामपि प्रयोगो न विरुद्धः ।।१३।।

इन्द्रनील, पद्मराग आदि मणियों से संघटित वलय, कङ्कण, मुद्रिका, कण्ठाभरण क्षुद्र घण्टिका, नूपुरों से शोभायमान और कटि पर विलसित होने वाली स्वर्ण रश्मि से सुशोभित और जिनका विग्रह विभिन्न अंगरागों से पिञ्जरित (नाना वर्णयुक्त) अंगों से विलसित हैं, तथा अत्यन्त पीत कौशेयवस्त्र से चमत्कृत है नितम्ब भाग जिनका ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।

विशेषः—यह प्रसिद्ध है कि नितम्ब शब्द का प्रयोग स्त्रीकटी के लिए होता है, एतावता सिद्ध है कि तथा भूत कटीशालिनी शक्ति के साथ श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।१३।।

चारूरुजान्विति—

चारूरुजानुमनुवृत्तमनोज्ञजङ्घं
कान्तोन्नतप्रपदनिन्दितकूर्मकान्तिम् ।

माणिक्यदर्पणलसन्नखराजिराज-
द्रक्ताङ्गुलिच्छदनसुन्दरपादपद्मम् ।।१४।।

पुनः कीदृशं ? कान्तौ कमनीयौ उन्नतौ उच्चौ यौ प्रपदौ पादाग्रौ ताभ्यां निन्दिता तिरस्कृता कूर्मस्य कच्छपस्य कान्तिः दीप्तिर्येन स तथा तं, पुनः कीदृशं ? माणिक्यघटितो यो दर्पणस्तद्वल्लसन्ती शोभमाना नखपङ्क्तिः तया राजन्त्यः शोभमाना या रक्ताङ्गुलयस्ता एव च्छदनानि पत्राणि तैः सुन्दरं पादपद्मं यस्य स तथा तम् ।।१४।।

सुन्दर उरु और जानु के अनुरूप जंघा वाले, उन्नत पदाग्रभागों से निम्न किया है कूर्मपीठ की उच्चता जिन्होंने, माणिक्य संघटित दर्पण के समान चमकने वाली नख पंक्तियों से शोभायमान, और लाल-लाल अंगुलियाँ ही हैं पत्र जिनके ऐसे सुन्दर चरण कमल वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।१४।।

मत्स्येति—

मत्स्याङ्कुशारिदरकेतुयवाब्जवज्र-
संलक्षितारुणतराङ्घ्रितलाभिरामम् ।
लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्ग-
सौन्दर्य्यनिर्जितमनोभवदेहकान्तिम् ।।१५।।

पुनः कीदृशं ? मत्स्यो मीनः अङ्कुशो अस्त्रविशेषः अरिश्चक्रं दरः शङ्खः केतुध्वजः यवः प्रसिद्धः अब्जं पद्मं वज्रः कुलिशाकारस्त्रिकोणः एतैः सुलक्षितं सम्यक् विहितं यदरुणतराङ्घ्रितलं लोहिततरचरणतलं तेनाभिरामः सर्वजनप्रियस्तं, पुनः कीदृशं ? लावण्यस्य सौन्दर्यस्य यः सारसमुदायः उत्कृष्टभागसमुदायः तेन विनिर्मितं घटितं यदङ्गसौन्दर्य्यं तेन निन्दिता तिरस्कृता मनोभवस्य कामदेवस्यकान्तिः शरीरशोभा येन स तथोक्तम् ।।१५।।

जिनके चरणतल में मत्स्य, अंकुश, चक्र, शंख, ध्वज, यव, कमल, वज्र आदि चरण चिह्न समलंकृत हैं, चरणतल की अरुणिमा अति रमणीय है सौन्दर्यसार सर्वस्व, दिव्याङ्ग सौन्दर्य से कामदेव की सौन्दर्य कान्ति को भी फीकी करने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करे ।।१५।।

आस्येति ।

आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध्र-
लोलत्कराङ्गुलिसमीरितदिव्यरागैः ।
शश्वद् द्रवीकृतविकृष्टसमस्तजन्तु-
सन्तानसन्ततिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ॥१६॥

पुनः कीदृशं ? शश्वन्नित्यं द्रवीकृता ऽनायतीकृता विकृष्टा आकृष्टासमस्तजन्तोः प्राणिनः सन्तानसन्ततिः सन्तानपरम्परा येन स तथा तं, कैः ? आस्यमेवारविन्दं पद्मं तेन परिपूरितं यद्वेणुरन्ध्रं वंशीरन्ध्रम् अत्र लोलन्ती चञ्चला या कराङ्गुलिस्तया समीरिताः समुत्पादिता ये दिव्या उत्कृष्टा रागा ध्वनयः स्वरास्तैरित्यर्थः । पुनः कीदृशम् ? अनन्तेति अपरिमितानन्दसमुद्रम् ॥१६॥

मुखारविन्द से वंशी के मुख्य छिद्र को पूरित करते हुए, अन्य छिद्रों पर चञ्चलता (शीघ्रता) से चलने वाली अंगुलियों के विन्यास से उत्पन्न होने वाले लोकोत्तर मधुर रागों द्वारा समस्त प्राणी को, किंवा चराचर जगत् को आकृष्ट करने वाले आनन्द सिन्धु भगवान् श्रीकृष्ण का सदा स्मरण करे ॥१६॥

गोभिरिति ।

गोभि र्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभि-
रूधोभरस्खलितमन्थरमन्दगाभिः ।
दन्ताग्रदष्टपरिशिष्टतृणाङ्कुराभि-
रालम्बिवालधिलताभिरथाऽभिवीतम् ॥१७॥

पुनः कीदृशम् ? अथानन्तरं गोभिरभिवीतं सर्वतोवेष्टितं किम्भूताभिः ? मुखाम्बुजे परमेश्वरमुखपद्मे विलीने सम्बद्धे लोचने यासान्तास्तथा ताभिः, पुनः किम्भूताभिः, ऊधोभरेति स्तनगौरवस्खलनसालसाल्पगमनशीलाभिः, पुनः किंभूताभिः ? दन्ताग्रेण दष्टः परिशिष्टतृणाङ्कुरो भक्षणावशिष्टतृणाङ्कुरोयाभिस्ताः तथा ताभिः, पुनः किम्भूताभिः ! आलम्बेति आलम्बिनी लम्बमाना वालधिलता पुच्छलता यासां तास्तथा ताभिः ॥१७॥

श्रीकृष्ण के मुखार विन्द की माधुरी के दर्शन के लिए तल्लीन कर दिए हैं नेत्र जिन्होंने, ऐसे भरपूर दूध भरे ऐन की विशालता से अलसाती हुई धीरे-धीरे चलने वाली, और वंशी की मधुर तान से आकृष्ट होकर अर्धचर्वित घासों को

भी न निगल कर मुख पर ही रखने वाली, लम्बी-लम्बी पूंछों वाली गौओं से परिगत श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥१७॥

सप्रस्नवस्तनविचूषणपूर्णनिश्च-
लास्यावटक्षरितफेनिलदुग्धमुग्धैः ।
वेणुप्रवर्तितमनोहरमन्दगीति-
दत्तोच्चकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥१८॥

पुनः कीदृशम् ? तर्णकैश्चैकवार्षिकैश्चाभिवीतमिति पूर्वेणान्वयः कीदृशैः ? प्रस्रवेन क्षरद्दुग्धेन सह वर्तते यत् स्तनाविचूषणं दन्तोष्ठेन स्तनाकर्षणं तेन परिपूर्णो निश्चलः स्थिरश्च य आस्यावटः मुखविवरं ततः क्षरितङ्गलितं यत् फेनिलं सफेनं दुग्धं तेन मुग्धैर्मनोहरैः, पुनः कीदृशैः ? वेणिवति वेणुर्वंशी तेन प्रवर्त्तिता चालिता मनोहरा आह्लादकारिणी मन्द्राऽनल्पा या गीतिर्गानं तत्र दत्तम् उच्चं कर्णयुगलं यैः तथा तैः ॥१८॥

श्रीकृष्ण के द्वारा मधुर ध्वनित वंशी की मनोहर गीतियों की मञ्जुल ध्वनि की ओर कानों को लगाकर स्वतः वहने वाले मातृस्तनों को चूसते हुए मुग्ध होकर दूध से भरे मुखों से फेन युक्त दूध बिखेरने वाले छोटे-छोटे सुडोल बछड़ों से घिरे श्रीकृष्ण का प्रेमपूर्वक स्मरण करना चाहिए ॥१८॥

प्रत्यग्रेति ।

प्रत्यग्रशृङ्गमृदुमस्तकसम्प्रहार-
संरम्भवल्गनविलोलखुराग्रपातैः ।
आमेदुरैर्बहुलसास्नगलैरुदग्र-
पुच्छैश्चवत्सतरवत्सतरीनिकायैः ॥१९॥

पुनः कीदृशं ? वत्सतरः त्रैवार्षिको वलीवर्दः वत्सतरी त्रैवार्षिकी गौः एतयोः निकायैः समूहैः प्रत्यग्रं नवीनं शृङ्गं यस्मिन्नेवम्भूतं यत् मृदु मस्तकं तत्र यः संप्रहारः अभिघातः अन्यवत्सतरस्य युध्यतः तेन यः संरम्भः क्रोधातिशयस्तेन यद्वलगनमितस्ततोविचलनं तेन विलोलः अनवस्थितः खुराग्रपाती येषां ते तथा तैः. पुनः कीदृशैः ? आमेदुरैः सुस्निग्धैः पुष्टैरिति वा पुनः कीदृशैः ? बहुलातिशयिता सास्नायत्र

स एवम्भूतो गलो येषां ते तथा तैः सास्ना च गलकम्बलः. पुनः कीदृशैः? उदग्रपुच्छैः ।।१९।।

नवोदित सींग वाले बछड़ों के कोमल मस्तक पर दूसरे बछड़ों के प्रहार से उत्पन्न हुए संरम्भ (क्रोध) को सहन न कर सकने के कारण इधर-उधर दौड़ते समय अस्थिर हुए हैं खुर जिनके, ऐसे अत्यन्त मनोहर सास्ना (गलमाला) वाले, पूंछ को उठाए हुए, करीब तीन वर्ष के बछड़े, बछियों से परिवेष्टित श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिए ।।१९।।

हम्बारवेति ।

हम्बारवक्षुभितदिग्वलयैर्महद्भि-
रप्युक्षभिः पृथुककुद्भरभारखिन्नैः ।
उत्तम्भितश्रुतिपुटीपरिपीतवंश-
ध्वानामृतोद्धृतविकाशिविशालघोणैः ।।२०।।

पुनः कीदृशं ? महद्भिरुक्षभिर्वलीवर्दैरप्यभिवीतं कीदृशैः हम्बारवेण स्वरविशेषेण क्षुभितः क्षोभं प्रापितो दिग्वलयो दिक्समूहो यैस्ते तथा तैः. पुनः कीदृशैः ? पृथुरतिशयितो यः ककुद्भरः अपरगलभरः स एव भारस्तेन खिन्नैः अलसैः. पुनः कीदृशैः ? उत्तम्भितेतिऊर्द्ध्वं स्तम्भिता उत्थापिता या श्रुतिपुटी तया परिपीतमतिशयेन श्रुतं यद्वंशस्य ध्वानामृतं शब्दरूपामृतं तेनोद्वृत्ता ऊर्द्ध्वं प्रापिताविकाशिनी प्रस्फुटा विशाला दीर्घा घोणा नासा येषां ते तथा तैः ।।२०।।

हम्बा शब्द के हुंकार से शुद्ध या क्षुब्ध कर दिया है दशों दिशाओं को जिन्होंने, ऐसे विशाल ककुद् के भार से अलसता को प्राप्त हुए, और खड़े कानों के छिद्रों से श्री कृष्ण द्वारा निनादित वंशी की अमृतमय ध्वनि को समग्रतया पान करने की मुद्रा में बड़े-बड़े नाकों के छिद्रों को ऊपर किए हुए, महान् बैलों से परिवेष्टित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।२०।।

गोपैरिति ।

गोपैः समानगुणशीलवयोविलास-
वेशैश्च मूर्छितकलस्वरवेणुवीणैः ।
मन्द्रोच्चतानपटुगानपरैर्विलोल-
दोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ।।२१।।

पुनः कीदृशं ? गोपैश्चाभिवीतं. कीदृशैः ? समानेति गुणउदयादिः शीलं धैर्यादि वयो बाल्यादि विलासः क्रीडनं वेशः संस्थानविशेषः समानाः तुल्या गुणशीलादयो येषां ते तथा तैः. पुनः कीदृशैः ? मूर्छा प्रापितः कलो ऽव्यक्तमधुरः स्वरोरागोयत्र वेणुश्च वीणा च वेणुवीणे मूर्छितकलस्वरे वेणुवीणे येषां तैः तथा, तदुक्तं—

स्वरः संमूर्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते ।
मूर्छनामिति तां प्राहुः कवयो ग्रामसम्भवाम् ।
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।

पुनः कीदृशैः ? मन्द्रोच्चेति मन्द्रं नीचैः उच्चमतिशयितं तारोयतिविशेषस्तेन पटु स्पष्टं यद्गानं तत्परैस्तदासक्तैः. पुनः कीदृशैः ? विलोलेति विलोला या दोर्वल्लरी बाहुलता तया यल्ललितं मनोहरं लास्यं नृत्यन्तस्य विधानं करणं तत्र दक्षैः कुशलैः ।।२१।।

समान गुण, समान शील, समान वय, समान क्रीड़ा, समान वेशभूषा वाले, मूर्छना विशेष मधुर स्वर लहरी को बिखेरने वाली वंशी तथा वीणा बजाने वाले, आरम्भ-विराम के क्रम में मन्द उच्च मध्य रागों को अलापते हुए, नृत्य विलास के प्रसंग में हस्त लताओं को नृत्य नियम के अनुसार यथायोग्य प्रयोग करने में निपुण गोप बालों से परिवेष्टित श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।२१।।

जङ्घान्तेति ।

जङ्घान्तपीवरकटीरतटीनिबद्ध-
व्यालोलकिङ्किणिघटारटितैरटद्भिः ।
मुग्धैस्तरक्षुनखकल्पितकण्ठभूषै-
रव्यक्तमञ्जुवचनैः पृथुकैः परीतम् ।।२२।।

पुनः कीदृशं ? पृथुकैर्बालकैः परीतं वेष्टितं, कीदृशैः ? जङ्घासमीपे पीवरा मांसला या कटीरतटी कटीस्थली तस्यां निबद्धा व्यालोला चञ्चला या किङ्किणिघटा काञ्चीसमूहः तस्य रटितैः शब्दैरटद्भिः सञ्चरद्भिः, पुनः कीदृशैः ? मुग्धैर्मनोहरैः, पुनःकिम्भूतैः ? तरक्षुनखेन व्याघ्रनखेन कल्पिता सम्पादिता कण्ठभूषा कण्ठालंकारोयैः ते तथा तैर्बालकानां रक्षार्थं कण्ठेव्याघ्रनखबन्धनं क्रियते यतः । पुनः कीदृशैः ? अव्यक्तमस्पष्टम् अथ च मञ्जुलं मनोहरम् एवंभूतं वचनं येषान्ते तथा तैः ।।२२।।

जंघाओं के समीप स्थूल कटि के तट पर बँधे हुए चञ्चल किंकिणि (आभूषण विशेष) के शब्दानुसार पाद विक्षेप (नृत्य) करने वाले व्याघ्र नखों को आभूषण के रूप में धारण करने वाले जिनकी तोतली मधुर वाणी है, ऐसे गोप बालकों से परिवेष्टित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥२२॥

अथेति ।

अथ सुललितगोपसुन्दरीणां
पृथुनिबिरीसनितम्बमन्थराणाम् ।
गुरुकुचभरभङ्गुरावलग्न-
त्रिवलिविजृम्भितरोमराजिभाजाम् ॥२३॥

पुन: कीदृशम् ? अथा ऽनन्तरं मनोहरगोपस्त्रीणामालिभि: पङ्क्तिभि: समन्तात्सर्वत: सततं नित्यं सेवितमित्यष्टमश्लोकेनान्वय: ।

किम्भूतानाम् ? पृथुर्बृहन्निबिरीसोनिविडो यो नितम्ब: कटिपश्चाद्भाग: तेन मन्थराणां गमनाशक्तानां, पुन: किम्भूतानां ? गुरुरतिशयितो य: कुचभर: स्तनगौरवं तेन भङ्गुरमीषन्नम्रं यत् अवलग्नं मध्यप्रदेश: तत्र यद्वलित्रयं तत्र विजृम्भिता वितता रोमपङ्क्तिर्यासा-न्तासाम् ॥२३॥

विशाल नितम्ब भाग की गुरुता से मन्दगति से चलने वाली, विशाल स्तन-भाग के गौरव के कारण थोड़ा झुका सा प्रतीत होने वाले मध्यभाग पर स्वभावत: तीन रेखाएं हैं जिनकी, त्रिवली रेखाओं में रोमावली चमत्कृत हो रही है जिनकी, ऐसी निरतिशय सुन्दर ब्रज सीमन्तिनियों की पंक्ति से सतत संसेवित श्रीकृष्ण का स्मरण करे ॥२३॥

तदिति ।

तदतिमधुरचारुवेणुवाद्या-
मृतरसपल्लविताङ्गजाङ्घ्रिपाणाम् ।
मुकुलविसररम्यरूढरोमो-
द्गमसमलंकृतगात्रवल्लरीणाम् ॥२४॥

पुन: कीदृशीनां ? तस्य श्रीकृष्णस्यातिमधुरम् अतिप्रीतिदायकं चारु मनोहरं यद्वेणुवाद्यं वंशीरव: स एवामृतरस: अमृतरूपजलं तेन पल्लवितो वृद्ध्युन्मुख: अङ्गजाङ्घ्रिप: कामवृक्षो यासां तास्तथा

तासाम् अङ्गजाङ्घ्रिपस्येति पाठ:, पुन: किंभूतानां ? मुकुलविसर: कलिकासमूह: तद्वद्रम्यो मनोहरो यो रूढ उपचितो रोमोद्गमो रोमोत्थानं तेन समलङ्कृता गात्रवल्लरी देहलता यासां तास्तथा तासाम् ॥२४॥

श्रीकृष्ण के निरतिशय मधुर वेणुनादरूपी पीयूषधारा से पल्लवित, पुष्पित हुआ है काम वृक्ष जिनका, ऐसी कलिका समूह के समान रमणीय प्रतीत होने वाली अञ्चित रोमावलियों से अलंकृत है शरीररूपीलता जिनकी, ऐसी गोपवनिताओं से संसेवित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥२४॥

तदिति ।

तदतिरुचिरमन्दहासचन्द्रा-
तपपरिजृम्भितरागवारिराशे: ।
तरलतरतरङ्गवारिविप्रुट्
प्रकरसमश्रमबिन्दुसंततानाम् ॥२५॥

पुन: किंभूतानां ? तस्य कृष्णस्यातिमनोहरो य: ईषद्धास: स एव चन्द्ररश्मिस्तेन परिजृम्भित उच्छलितो यो रागसमुद्रस्तस्यातिचञ्चलो यस्तरङ्ग: कल्लोल: तदीया ये जलकणा: तेषां य: समूहस्तेन समस्तुल्यो य: श्रमबिन्दुर्धर्मजलबिन्दु: तेन सन्ततानां व्याप्तानाम् ॥२५॥

भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दहासरूपी पूर्णचन्द्र ज्योत्स्ना से उच्छलित प्रेम समुद्र के अति चञ्चल तरंगों से निकलने वाली जल बिन्दुओं के समान है श्रम बिन्दु जिनकी ऐसी प्रेमस्वरूपा ब्रजाङ्गनाओं के समूह से सेवित श्रीकृष्ण का स्मरण करे ॥२५॥

तदतीति ।

तदतिलसितमन्दचिल्लिचाप-
च्युतनिशितेक्षणमारबाणवृष्ट्या ।
दलितसकलमर्मविह्वलाङ्ग-
प्रविसृतदु:सहवेपथुव्यथानाम् ॥२६॥

पुन: किंभूतानां ? तस्य कृष्णस्यातिमनोहर: मन्द: अनतिदीर्घो यश्चिल्लिचापो भ्रूलता सैव धनुस्तस्मादुद्गतन्तीक्ष्णं यदीक्षणं कटाक्ष: सएव कामबाणस्तस्य वृष्ट्याऽत्यन्तपातेन दलितं चूर्णितं यत्सकलं मर्म

तेनाऽनायत्तं यदङ्गं तत्र प्रसृता व्याप्ता दुःसहा कम्पवेदना यासां तास्तथा तासाम् ।।२६।।

भगवान् श्रीकृष्ण के अतिमनोहर भ्रूलतारूपी दिव्य वाण के मन्द प्रहार से निर्गत अत्यन्त तीक्ष्ण कटाक्षरूपी काम बाण की वृष्टि ने मर्दित कर दिया है सकल मर्मस्थान जिनके, अतएव विह्वल होती हुई, मर्मस्पर्शी काम कम्पन व्यथा वाली गोपियों के समूह से संसेवित भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।२६।।

तदतिरुचिरकर्मरूपशोभा-
मृतरसपानविधानलालसाभ्याम् ।
प्रणयसलिलपूरवाहिनीना-
मलसबिलोलविलोचनाम्बुजाभ्याम् ।।२७।।

पुनः किम्भूतानां ? प्रणयेनैव प्रेम्णैव यो जलप्रवाहस्तं वहन्ति यास्तथा तासां, काभ्यां ? लज्जादिनाऽर्धनिमीलितपद्मलोचनाभ्यां सविलासचञ्चलितनेत्रपद्माभ्यामित्यपिपाठः । किंभूताभ्यां ? तस्य परमेश्वरस्यातिरुचिरं यत्कर्म शृङ्गारचेष्टाविशेषः रूपशोभा कामिनीमनोनुरञ्जिका कान्तिः ते एवामृतरसौ तयोर्यत्पानम् अत्यन्तचक्षुर्व्यापारस्तत्करणे साकाङ्क्षाभ्यां । सुभगकम्रेति पाठान्तरं । सुभगः सुन्दरः कम्रः कमनीयः सुभगकमनीययोरेकपर्यायियोर्ग्रहणम् अद्भुतत्वाद्रूपस्येति त्रिपाठिनः ।।२७।।

भगवान् श्रीकृष्ण के अति सुन्दर श्रृंगार चेष्टा विशेष कर्म, और रूप-माधुरीरूपी अमृतयान क्रिया के लिए सुतरां लालायित प्रकाश रूपी जल प्रवाह को वहाने वाली गोपियों की चञ्चल नेत्र कमलों द्वारा आस्वादित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।२७।।

विश्रंसदिति ।

विश्रंसत्कवरीकलापविगलत्फुल्लप्रसूनश्रवत्-
माध्वीलम्पटचञ्चरीकघटया संसेवितानां मुहुः ।
मारोन्मादमदस्खलन्मृदुगिरामालोलकाञ्च्युच्छ्वस-
न्नीवीविश्लथमानचीनसिचयान्तार्विनितम्बत्विषाम् ।।२८।।

पुनः किम्भूतानां ? विश्रंसन् स्खलन् यः केशपाशस्तस्मात्प्रभ्रश्यद्यद्विकसितं पुष्पं तस्माद्गलन्ती या माध्वी पुष्परसः तत्रात्यन्तासक्तो यश्चञ्चरीको भ्रमरस्तस्य समूहेन मुहुर्वारं वारं संसेवितानाम् ।

पुनः किम्भूतानां मारेति ।

कामकृतोन्मादेन या मत्तता तया स्खलन्ती अस्पष्टा मृद्वी कोमला मनोहरा गीर्वाणी यासां तास्तथा तासाम् उन्मादमदौ शृङ्गारविशेषौ, तदुक्तं शृङ्गारतिलके—

श्वासप्ररोदनोत्कम्पैर्बहुधालोकनैरपि ।
व्यापारो जायते यत्र स उन्मादः स्मृतो यथा ।

एवं मदस्यापिलक्षणं बोद्धव्यमिति केचित् । पुनः कीदृशीनाम् ? आलोला चञ्चला या काञ्चीरसना तया उच्छ्वसन्ती दृढा भवन्ती या नीवी वस्त्रग्रन्थिः "नीवी स्त्रीवसनग्रन्था" ।वेति कोषात्, तया विश्लथमानं चीनसिचयं चीनदेशोत्पन्नं सूक्ष्मवस्त्रं तस्यान्ते मध्ये आविः प्रकटा नितम्बत्विट् नितम्बकान्तिर्यासां तास्तथा तासाम् ।।२८।।

शृंगार शोभा के लिए केश पाशों पर लगाए हुए सौरभ मय प्रफुल्ल पुष्पों के अग्रभाग से बहने वाले मकरन्द रस के आस्वादन में लम्पट भ्रमर समूहों से सेवित, कामकृत उन्माद और मद से विह्वल होने के कारण स्खलित सी हो रही कोमल भाषा जिनकी, चीन में अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुओं से निर्मित सिल्क साडी, फिर फिराने वाली सुवर्ण करधनी से परिवद्ध होने पर भी स्निग्धता वश फिसल जाने के कारण प्रतिविम्बित हो रही है नितम्ब कान्ति जिनकी, ऐसी गोपियों के समूह से सेवित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।२८।।

स्खलितेति ।

स्खलितललितपादाम्भोजमन्दाभिघात-
क्वणितमणितुलाकोटयाऽऽकुलाशामुखानाम् ।
चलदधरसुधानां कुड्मलत्पक्ष्मलाक्षि-
द्वयसरसिरुहाणामुल्लसत्कुण्डलानाम् ।।२९।।

पुनः किंभूतानां ? स्खलितमनायत्तं ललितं मनोहरं यत्पादपद्मं तस्य यो मन्द ईषदभिघातः पतनं तत्कृतशब्दयुक्तेन मणिमयनूपुरेणाकुलं शब्दायमानं दिगन्तरं याभिस्तास्तथा तासां, पुनः किम्भूतानां ?

चलत् स्फुरत् अधरदलमोष्ठपत्रं यासां तास्तथा तासां, पुनः किम्भूतानां? कुड्मलत् मुकुलीभवत् पक्ष्मलम् उत्कृष्टपक्ष्मयुक्तं यदक्षिद्वयं तदेव पद्मं यासां, पुनः किम्भूतानाम् ? देदीप्यमाने कुण्डले यासां तास्तथा तासाम् ॥२९॥

कुछ लड़खड़ाते से पद कमलों के विन्यास से ध्वनित मणिमय नूपुरों की झङ्कृतियों से गुञ्जित हैं दिशा मुख जिनसे ऐसी चञ्चल अधरों वाली, घनीभूत रोमावली युक्त नेत्र कमलों वाली, देदीप्यमान कर्ण कुण्डलों वाली गोपियों से सेवित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥२९॥

द्राघिष्ठेति—

द्राघिष्ठश्वसनसमीरणाभिताप-
प्रम्लानीभवदरुणोष्ठपल्लवानाम् ।
नानोपायनबिलसत्कराम्बुजाना
मालिभिः सततनिषेवितं समन्तात् ॥३०॥

पुनः किम्भूतानां ? दीर्घो यः श्वासवायुस्तेनयोऽभितापः तेन प्रम्लानीभवन् रक्तौष्ठपल्लवो यासां तास्तथा तासां, पुनः किंभूतानां ? विविधोपायनेन शोभमानानि हस्तकमलानि यासान्तास्तथा तासाम् ॥ ३० ॥

दीर्घ श्वास चलने के कारण किञ्चित् स्थगित हुई सी, अतएव म्लान से हुए हैं अधरौष्ठ रूपी वल्लव जिनके, और विभिन्न उपहारों से शोभित हैं करकमल जिनके ऐसी गोपियों के समूह से निरन्तर संसेवित श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥३०॥

तासामिति—

तासामायतलोलनीलनयनव्याकोश नीलाम्बुज-
स्रग्भिः संपरिपूजिताखिलतनुं नानाविलासास्पदम् ।
तन्मुग्धाननपङ्कजप्रविगलन्माध्वीरसास्वादिनीं
बिभ्राणं प्रणयोन्मदाक्षिमधुकृन्मालां मनोहारिणीम् ॥३१॥

पूनः कीदृशं मुकुन्दं ? तासां गोपसुन्दरीणाम् आयतं दीर्घं लोलञ्चञ्चलं नीलं श्यामं यन्नयनं तदेव व्याकोशं नीलोत्पलं प्रफुल्लं नीला-

म्बुजं तेषां स्रग्भिर्मालाभिः सम्परिपूजिता अधिकतरमर्चिता सकला तनुर्यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशं ? विविधविलासस्थानं पुनः कीदृशं ? तन्मुग्धाननेति तासां यन्मनोहरं मुखं तदेव पद्मसमूहस्तस्मात् विगलन् स्रवन् यो माध्वीरसो मकरन्दः तमास्वादयितुं शीलं यस्याः तां प्रणयेन प्रीत्या उद्गतमदं यदक्षियुगलं सैव भ्रमरमाला पङ्क्तिः तां मनोहारिणीं बिभ्राणम् ॥३१॥

व्रज गोपियों के विशाल, चञ्चल नीलनयन रूपी नील कमलों की मालाओं से संपूजित है श्यामतनु जिनकी, और विविध विलास लीलाओं के आश्रय, मुग्ध गोपियों के मुखारविन्द से निसृत मकरन्द पान परायण, प्रणय से उद्भूत है काम मद जिनके ऐसे मनोहर नेत्र रूपी मधुकरमाला को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥३१॥

अधुना परमेश्वरध्यानानन्तरमुपासकामरप्रभृतीनां ध्यानमाह।

गोपीगोपेति –

गोपीगोपपशूनां बहिः स्मरेदग्रतोऽस्य गीर्वाणघटाम् ।
वित्तार्थिनीं विरञ्चित्रिनयनशतमन्युपूर्विकां स्तोत्रपराम् ॥३२॥

अस्य परमेश्वरस्याऽग्रतो गोपीगोपपशूनां बहिर्गीर्वाणघटां देवसमूहं स्मरेत् यद्यपि बहिः शब्दयोगे पञ्चमी ज्ञापिता तथापि ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्रेति षष्ठीप्रयोगे ऽपि न दोषः। किं भूतां ? वित्तार्थिनीं ज्ञानार्थिनीं वा धनार्थिनीं यद्वा परमेश्वरचित्तापहरणपरां यद्वा धर्मकाममोक्षार्थिनीम्, पुनः किम्भूताम् ? विरञ्चिर्ब्रह्मा ईशः शक्रः तत्प्रमुखां, पुनः किम्भूतां ? स्तवनपराम् ॥३२॥

भगवान् श्रीकृष्ण के आगे जहाँ पर गोपियाँ, गोप और गाय हैं उनके ठीक बाहर विभिन्न स्तोत्रों द्वारा स्तुति करने वाले वित्तार्थी ब्रह्मा, शंकर इन्द्रादि प्रमुख देव समूहों का स्मरण करना चाहिए ॥३२॥

तद्दक्षिणत इति।

तद्दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढधर्मवाञ्छमाम्नायपरम् ।
योगीन्द्रानथ पृष्ठे मुमुक्षमाणान्समाधिना सनकाद्यान् ॥३३॥

तस्य परमेश्वरस्य दक्षिणतो दक्षिणभागे तद्वदिति पाठे तेनैव प्रकारेण मुनिनिकरं मुनिसमूहं स्मरेत्। कीदृशं ? आम्नायपरं वेदाध्य-

यनपरं, पुनःकीदृशं ? निश्चला धर्मवाञ्छा यस्य तं यत्तु मननात् मुनि-रित्यभिधानात् एषां धर्मवाञ्छा न युक्ता तेन मुनिशब्दोऽत्रऋष्युपलक्षक इति तन्न, धर्मशब्देनात्राऽऽत्मज्ञानाभिधनात् ।

तदुक्तं याज्ञवल्क्येन ।

अयं तु परमो धर्मोयद्योगेनात्मदर्शनमिति ।

अथानन्तरं परमेश्वरस्य पश्चाद्भागे सनकाद्यान् योगेश्वरान् स्मरेत् । किम्भूतान् ? मोक्षैकपरान्, पुनः किंभूतान् ? समाधिनोपविष्टान् ।। ३३ ।।

भगवान् श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में वेद पाठ परायण दृढधर्म वाले मुनियों का ध्यान करे, और भगवान् के पृष्ठ भाग में मुमुक्षा परायण समाधिनिष्ठ श्रीसनकादिकों का स्मरण करे ।।३३।।

सव्यइति—

सव्ये सकान्तानथ यक्षसिद्ध-
गन्धर्वविद्याधरचारणांश्च ।
सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्याः
कामार्थिनो नर्तनगीतवाद्यैः ।।३४।।

अथानन्तरं देववामभागे सस्त्रीकान् यक्षादीन् स्मरेत् । किंभूतान् ? किंनरसहितान्, पुनः किम्भूतान् ? सर्वनर्तनगीतवाद्यैः करणभूतैर्वाञ्छितार्थिनः । तथा प्रधानभूता अप्सरसः उर्वशीमुख्याःस्मरेत् ।।३४।।

भगवान् के वाम भाग में वाञ्छित फल प्राप्त करने की इच्छा से गान वादन नृत्य करने वाले किन्नर सहित, सपत्नीक यक्ष, सिद्ध गर्धव, विद्याधर, चारण, उर्वशी आदि प्रमुख अप्सराओं का स्मरण करे ।।३४।।

शङ्खेन्द्विति—

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं
सौदामनीततिपिशङ्गजटाकलापम् ।
तत्पादपङ्कजगतामचलाञ्च भक्ति-
वाञ्छन्तमुज्झिततरान्यसमस्तसङ्गम् ।।३५।।

नभसि आकाशे धातृसुतं ब्रह्मपुत्रं स्मरेत् । कथंभूतं ? शङ्खादिवत् श्वेतं निर्मलं पुनः कीदृशं ? संपूर्णागमवेत्तारं, पूनः कीदृशं ? सौदामनी

विद्युत्तस्यास्ततिः दीप्तिस्तद्वत् पिशङ्गा कपिला या जटा तस्याः कलापः समुदायो यत्र तं, पुनः कीदृशं ? भक्तिमिच्छन्तं किम्भूतां ? स्थिरां, पुनः कीदृशम् ? अत्यन्तपरित्यक्तपरमेश्वरभिन्नसकलसम्बन्धम् ।।३५।।

भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर विद्यमान आकाश मण्डल पर शंख, चन्द्र, कुन्द पुष्प के समान धवल कान्ति वाले सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता विद्युन्माला की कान्ति के समान पीले-पीले जटाओं से शोभित सांसारिक वासनाओं से निर्मुक्त होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों में अचल भक्ति की कामना करने वाले ब्रह्मपुत्र श्रीनारदजी का चिन्तन करे ।।३५।।

नानेति ।

नानाविधश्रुतिगणान्वितसप्तराग-
ग्रामत्रयीगतमनोहरमूर्च्छनाभिः ।
संप्रीणयन्तमुदिताभिरमुं महत्या
सञ्चिन्तयेन्नभसि धातृसुतं मुनीन्द्रम् ।।३६।।

पुनः कीदृशम् ? अमुं नानाप्रकारः षट्त्रिंशद्भेदात्मको यः श्रुति-गणः नादसमूहस्तेनान्विता ये सप्त रागाः निषादर्षभगान्धारषड्जमध्य-मधैवतपञ्चमाख्याः स्वराः तत्र त्रयाणां ग्रामाणां समाहारो ग्रामत्रयी तत्र ग्रामत्रय्यां गताः प्राप्ताः या मूर्छनाः मनोहरा एकविंशतिप्रकाराः ताभिः सम्प्रीणयन्तम् ।

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
संमूर्छितः स्वरो यत्र रागतां प्रतिपद्यते ।
मूर्छनामिति तां प्राहुः कवयो ग्रामसम्भवाम् ।

किंभूताभिः ? महत्या सप्ततन्त्रीयुक्तया नारदवीणया उदिताभि-रुद्गताभिः ।।३६।।

महती वीणा से गुञ्जित होने वाले अनेक प्रकार के नादों से युक्त निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज मध्यम, धैवत, पञ्चम ये सात स्वरों के क्रम से जागृत होकर तीनों ग्रामों तक पहुंचने वाली इक्कीस प्रकार की मुर्च्छनाओं से भगवान् को प्रसन्न करने वाले ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदजी का आकाश मण्डल पर चिन्तन करे ।।३६।।

अधुना प्रकृतमुपसंहरन् आत्मपूजाक्रममाह—
इतीत्यादिना ।

इति ध्यात्वाऽत्मानं पटुविशदधीर्नन्दतनयं
पुरो बुद्धयैवाऽर्घ्यप्रभृतिभिरनिन्द्योपहृतिभिः ।
यजेद्भूयो भक्त्या स्ववपुषि बहिष्ठैश्चविभवै-
र्विधानं तद्ब्रूमो वयमतुलसांनिध्यकृदथ ।।३७।।

इति पूर्वोक्तध्यानप्रकारेण पटुविशदधीः समर्था विचारक्षमा अथ च निर्मला एवंभूता बुद्धिर्यस्य स तथा आत्मानं नन्दतनयं गोपालकृष्ण-रूपं ध्यात्वा आत्मनन्दतनययोरभेदं चिन्तयित्वा पुरः प्रथमतो बुद्धयैव ऽर्घ्यप्रभृतिभिः अर्घ्यपाद्यादिभिरुपहृतिभिरनिन्दितोपचारैः यथोपदेशं पूजयेत् । त्रिपाठिनस्तु अभिनन्द्येतिपाठे धृत्वा पूजयेदित्यर्थमाहुः । भूयः पुनरपि स्वशरीरे साक्षाद्बाह्योपचारैरर्घ्यादिभिः पूजयेत् । अथानन्तरं तद्विधानं बहिष्ठविभवार्चनप्रकारं वयं ब्रूमः । कीदृश ? परमेश्वरात्यन्तसान्निध्यदातारम् ।।३७।।

इस प्रकार अपने इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके निर्मल बुद्धि वाले साधक को सर्वप्रथम अनिन्द्य उपहारों से युक्त अर्ध्यादि विधि से श्रीराधा-कृष्ण की मानसी पूजा करनी चाहिए । उसके बाद बाह्य उपचारों से अपने शरीर को पवित्र बनाकर श्रीराधा कृष्ण की विधिवत् पूजा करे । आगे हम भगवत्सान्निध्य कराने वाले पूजा विधान बताएंगे ।।३७।।

शङ्खपूरणविधिं दर्शयति—

आरचय्येति—

आरचय्य भुवि गोमयाम्भसा
स्थण्डिलं निजममुत्र विष्टरम् ।
न्यस्य तत्र विहितास्पदोऽम्भसा-
शङ्खमस्त्रमनुना विशोधयेत् ।।३८।।

भुवि पृथिव्यां स्थण्डिलं पूजास्थलं गोमयसहितेन जलेनाऽऽरचय्य उपलिप्य अमुत्र स्थण्डिले निजं स्वीयं विष्टरमासनं वस्त्रकम्बलादिकं न्यस्य संस्थाप्य तत्र विष्टरे विहितास्पदः कृतासनो जलेन शङ्खमस्त्रमनुना मूलमन्त्रास्त्रमन्त्रेण अस्त्रायफडितिमन्त्रेण वा प्रलेपयेत् ।।३८।।

पृथिवी को पानी और गोवर से लिपकर पवित्र पूजा स्थल बना करके, वहां अपने को बैठने के लिए यथायोग्य आसन बिछावे, उस आसन पर यथायोग्य

पद्मादि आसन से बैठकर पानी और अस्त्राय फट् इस मन्त्र से शंख का शोधन करे ।।३८।।

तत्रेति—

तत्र गन्धसुमनोक्षतानथो निक्षिपेद्धृदयमन्त्रमुच्चरन् ।
पूरयेद्विमलपाथसा सुधीरक्षरैः प्रतिगतैः शिरोन्तकैः ।।३९।।

वामभागकृतवह्निमण्डलाधारके शङ्खे सुधीः सुबुद्धिसाधकः हृदय-मन्त्रं मूलमन्त्रमेव हृदयमन्त्रं केवलं हृदयाय नमः इति वा उच्चार्य गन्धपुष्पयवतण्डुलान्निक्षिपेत् तथा विमलपाथसा निर्मलजलेन पूरयेत् मन्त्रमाह–प्रतिगतैरिति । प्रतिलोमगतैः प्रतिलोमपठितैर्मातृकाक्षरैः क्षकाराद्यैरकारान्तैः शिरोन्तकैः सबिन्दुकैः । बिन्द्वन्तकैरिति लघुदीपिकाकारः । स्वाहान्तैरिति विद्याधराचार्य्यः । विक्रायस्वाहेत्यन्तैरिति त्रिपाठिनः ।।३९।।

उस शंख में "हृदयाय नमः" मन्त्र बोलकर चन्दन पुष्प अक्षतादि चढावे और प्रतिलोम विधि से अर्थात् क्षकार से अकार पर्यन्त सानुस्वार मातृकाक्षरों को बोलते हुए शंख को निर्मल जल से भरे ।।३९।।

पीठेति ।

पीठशङ्खसलिलेषु मन्त्रविद् वह्निवासरनिशाकृतां क्रमात् ।
मण्डलानि विषकश्रवोक्षरैरर्चयेद्वदनपूर्वदीपितैः ।।४०।।

पीठे शङ्खे सलिले च यथाक्रमं वह्निसूर्यचन्द्राणां मण्डलानि विषं मकारः कंशिरस्तत्र न्यस्यमानोऽकारः श्रवःश्रोत्रं तत्र न्यस्यमानउकार एभिरक्षरैर्मन्त्रविदुपासकः क्रमेण पूजयेत् । कीदृशैः ? वदनपूर्वदीपितैः वदनपूर्वं शिरसि न्यस्यमानम् अंबिन्दुरिति यावत् तेनदीपितैः सानुस्वारैरित्यर्थः । प्रयोगस्तु-मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः उं सोममण्डलायषोडशकलात्मने नमः ।।४०।।

मन्त्र वेत्ता उपासक को चाहिए कि पीठ, शंख, सलिल पर अग्नि, सूर्य, चन्द्र मण्डल की भावना करके क्रमश, सानुस्वार म, अ, उ, ये तीनों अक्षरों से पूजा करे । प्रयोगः मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः ।।४०।।

तत्र तीर्थेति—

तत्र तीर्थमनुना ऽभिवाहयेत् तीर्थमुष्णरुचिमण्डलात्ततः ।
स्वीयहृत्कमलतो हरिं तथा गालिनीं च शिखया प्रदर्शयेत् ।।४१।।

तत्र शङ्खजले वक्ष्यमाणतीर्थमन्त्रेण सूर्यमण्डलतीर्थमावाहयेत् तथा ततः स्वीयहृत्पद्मात् कृष्णमावाहयेत् । अनन्तरं शिखामन्त्रेण वक्ष्यमाणां गालिनीं मुद्रां प्रदर्शयेत् चकारात् धेनुमुद्रां च । (वामहस्ततले दक्षिणतर्जन्या ताडनं प्रबोधनम्) ।।४१।।

उस शंख पर तीर्थ मन्त्र—गंगे च यमुने चैव इत्यादि से सूर्यमण्डलस्थ तीर्थों का आवाहन करे । अपने हृदय कमल से श्रीकृष्ण का आवाहन करे । और वषट मन्त्र से गालिनी मुद्रा तथा धेनुमुद्रा भी दिखावे ।।४१।।

तज्जलमिति —

तज्जलं नयनमन्त्रवीक्षितं वर्मणा समवगुण्ट्य दोर्युजा ।
मूलमन्त्रसकलीकृतं न्यसेदङ्गकैश्च कलयेद्दिशोऽस्त्रतः ।।४२।।

तज्जलं शङ्खजलं वौषडिति नयनमन्त्रेण वीक्षितं यत्र नयनमन्त्रः सम्भवति तत्रैव नयनमन्त्रेण वीक्षणमिति त्रिपाठिनः । वर्मणा हुमिति कवचमन्त्रेणाऽवगुण्ठ्य मूलमन्त्रसकलीकृतं मूलमन्त्राङ्गसम्बद्धम् । एतस्यैव विवरणं न्यसेदिति ।

देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिरिति रुद्रधरः ।

यद्वा मूलमन्त्रध्यानेन सदैवतमिति त्रिपाठिनः अङ्गकैश्चन्यसेदिति मूलमन्त्रस्य षडङ्गन्यासङ् कुर्यादित्यर्थः अनन्तरं शङ्खस्य दश दिशः अस्त्रमन्त्रेण छोटिकया बध्नीयात् ।।४२।।

वौषट् इस नयन मन्त्र से अभिमन्त्रित उस जल को हुं इस कवच मन्त्र से दोनों करों द्वारा ढककर फिर मूल मन्त्र से सम्बन्धित अंग न्यास करे । अस्त्राय फट् इस मन्त्र से शंख की दशों दिशाओं का बन्धन करे ।।४२।।

अक्षइत्यादि ।

अक्षताबियुतमच्युतीकृतं संस्पृशन् जपतु मन्त्रमष्टशः ।
किं च न क्षिपतु वर्द्धनीजले प्रोक्षयेन्निजतनुं ततोऽम्बुना ।।४३।।

तज्जलम् अभग्नतण्डुलचन्दनपुष्पसहितं विष्णुस्वरूपतां नीतं स्पृशन् मूलमन्त्रमष्टकृत्वो जपेत् । अनन्तरम् अर्घजलस्य किञ्चित् स्वदक्षिणभागस्थापितवर्द्धनीजले प्रोक्षणीयपात्रजले निक्षिपेत्, तदुक्तम्—

दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमादायाऽद्भिः प्रपूजयेत् ।
किञ्चिदर्घ्याम्बु संगृह्य प्रोक्षण्यम्भसि योजयेदिति ।।

ततस्तदनन्तरम् अर्घपात्रजलेन वारत्रयं निजशरीरं प्रोक्षयेत् । वर्द्धनीघटजलेनेति विद्याधराचार्य्याः ।।४३।।

पूर्वोक्त प्रकार से अभिमन्त्रित जल, जो गन्धाक्षतों से युक्त है, उसको कृष्णमय समझकर स्पर्श करते हुए आठ वार मूलमन्त्र का जप करे । अर्घ्यपात्र का थोड़ा सा जल वामभाग में स्थापित प्रोक्षणीय पात्र के जल में डाले, तथा उस अर्घ्यजल से अपने शरीर को पवित्र करे ।।४३।।

त्रिरिति ।

त्रिः करेण मनुनाऽखिलं तथासाधनं कुसुमचन्दनादिकम् ।
शङ्खपूरणविधिः समीरितो गुप्त एष यजनाग्रणीरिह ।।४४।।

तथा मूलमन्त्रेण दक्षहस्तेन पुष्पचन्दनादिकं पूजोपकरणद्रव्यं वारत्रयं प्रोक्षयेत् ।

उपसंहरति शङ्खेति ।

एष शङ्खपूरणप्रकारः समीरितः उक्तः । कीदृशः ? इह आगमशास्त्रे यजनाग्रणीः प्रथमविधाने यः श्रेष्ठतरः ।।४४।।

दायें हाथ द्वारा मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित उस जल से भगवत्पूजा के लिए संगृहीत पुष्प चन्दनादि द्रव्यों को तीन वार सेचन करे । इस प्रकार शंख पूजा विधि बताई गई है, जो सकल शास्त्रों में गोप्य रूप से है ।।४४।।

अधुना तीर्थमन्त्रं दर्शयति ।

गङ्गेति—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ।।४५।।

एष तीर्थमनुः प्रोक्तो दुरितौघनिवारणः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम् ।।४६।।

तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नसञ्जिताः ।
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता ।।४७।।

एषतीर्थावाहनमन्त्रः कथितः दुरितेति पापसमूहविनाशकः ।।

अधुना गालिनी मुद्राया लक्षणमाह – कनिष्ठेत्यादिना ।

हस्तयोरन्योन्यकनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सम्बन्धौ तथा तर्जनीमध्यमानामिकाः संहताः कृत्वा भुग्नाः किञ्चिदाकुञ्चिताः परस्परसंसक्ताः कार्या इत्यर्थः । एवं च सति एषा गालिनी मुद्रा प्रोक्ता । शङ्खस्योपरि चालिता सती देवताप्रीतिं सम्पादयतीत्यर्थः ।।४५।।४६।।४७।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिकुरु ।।

यह पापों को नष्ट करने वाला तीर्थ मन्त्र है ।

दोनों हाथों की कनिष्ठिका को और अंगुष्ठ को मिलाकर तर्जनी मध्यमा, अनामिका को संगठित रूप से कुछ झुकाकर रखने से गालिनी मुद्रा होती है जो शंख जल के ऊपर दिखाई जानी चाहिए ।।४५।।४६।।४७।।

अधुना स्वदेहे पीठपूजाक्रममाह—

अथेत्यादि—

अथ मूर्द्धनि मूलचक्रमध्ये निजनाथान् गणनायकं समर्च्य ।
न्यसनक्रमतश्च पीठमन्त्रैर्जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः ।।४८।।

अथानन्तरं मूर्द्धनि स्वकीयशिरसि मूलेचक्रमध्ये मूलाधारचक्रे यथाक्रमं स्वनाथान् स्वगुरून् गणपतिं च पूजयित्वा पूर्वोक्तन्यासक्रमेण पीठमन्त्रैराधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रान्तं तत्तन्मन्त्रैर्जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः स्वशरीरे पीठपूजनं कुर्यात् ।।४८।।

इसके बाद सिर, मूलाधार चक्र पर अपने गुरु तथा गणेशजी की अर्चना करके, जल, चन्दन, अक्षतों द्वारा पीठ मन्त्रों से न्यासक्रम के अनुसार पीठ पूजा करे ।।४८।।

प्रयजेदथमूलमन्त्रतेजो निजमूले हृदये भ्रुवोश्च मध्ये ।
त्रितयं स्मरतः स्मरेत्तदेकी कृतमानन्दघनं तडिल्लताभम् ।।४९।।

अथानन्तरं तन्मूलाधारहृदयभ्रूमध्यगततेजस्त्रितयं मूलमन्त्रात्मकं परं ज्योतिः स्मरतः कामबीजेन क्लीमित्यनेनैकीभूतं चिन्तयेत् । कीदृशम् ? आनन्दघनं चिदानन्दम् । पुनः कीदृशम् ? विद्युत्प्रभम् ।।४९।।

फिर मूलाधार, हृदय, भ्रूमध्यगत मूलमन्त्रात्मक ज्योति जो विद्युत् के समान तेजस्वी, चिदानन्दघन है, उसे काम बीज के साथ एकात्मक समझते हुए चिन्तन करना चाहिए ।।४९।।

तत्तेजोङ्गैरिति –

तत्तेजोङ्गैः सावयवीकृत्य विभूत्या-
द्यङ्गान्तं विन्यस्य यजेदासनपूर्वैः ।
भूषान्तैर्भूयो जलगन्धादिभिरर्चां
कुर्याद् भूत्याद्यङ्गविधानावधि मन्त्री ।।५०।।

तदेकीकृत तेजः पञ्चाङ्गैः सावयवीकृत्य शरीरयुक्तं सम्पाद्य तत्र विभूत्याद्यङ्गान्तं विभूतिपञ्जरमारभ्याङ्गन्यासपर्यन्तं स्वशरीरे विन्यस्य आसनादिभूषान्तैरुपचारैर्देवपूजयेत् । भूयः पुनरपि जलगन्धादिभिर्विभूतिपञ्जरमूर्तिपञ्जरकरस्थसृष्टिस्थितिदशपञ्चाङ्गन्यासस्थानेषु न्यासक्रमेणैव तन्मन्त्रैरेव पूजयेत् ।।५०।।

उस काम बीज के रूप में एकीभूत तेज को पांचों अंगों के रूप में विभक्त कर शरीर युक्त बना करके विभूति पंजर से लेकर अंग न्यास पर्यन्त न्यास करके आसन से शृंगार पर्यन्त की पूजा, चन्दन पुष्पादियों से करनी चाहिए ।।५०।।

भूयइति—

भूयो वेणुं वदनस्थं वक्षोदेशे वनमालाम् ।
वक्षोजोदृर्ध्व प्रयजेच्च श्रीवत्सं कौस्तुभरत्नम् ।।५१।।

भूयः पुनरपि मुखस्थं वेणुं पूजयेत् हृदये च वनमालां कण्ठमारभ्य पादद्वयमवलम्बिनीं पत्रपुष्पमयीं मालाम् ।

तदुक्तं—

कण्ठमारभ्य या तिष्ठेत् पादद्वयविलम्बिनी ।
पत्रपुष्पमयी माला वनमालाप्रकीर्त्तितेति ।
स्तनस्योपरि श्रीवत्सं कौस्तुभं च पूजयेत् ।।५१।।

फिर भगवान् के मुखारविन्द पर शोभित होने वाली वंशी, वक्ष स्थल पर विलसित होने वाली वनमाला और वक्ष स्थल से कुछ ऊपर विद्यमान श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि की अर्चना करे ।।५१।।

श्रीखण्डनिःस्यन्दविचर्चिताङ्गो
मूलेन भालादिषु चित्रकानि ।
लिख्यादथो पञ्जरमूर्तिमन्त्रै-
रनामया दीपशिखाकृतीनि ॥५२॥

अथानन्तरं मूलमन्त्रेण चन्दनपङ्कलिप्ताङ्गः पूजक एव ललाटादिषु मूर्तिपञ्जरन्यासस्थानेषु चित्रकाणितिलकानि दीपशिखाकाराणि अनामिकया मूर्त्तिपञ्जरमन्त्रैः ॐ अं केशवधातृभ्यां नम इत्यादिना द्वादशमूर्त्तिभिर्लिख्यात्कुर्यादित्यर्थः ॥५२॥

मूल मन्त्रोच्चारण पूर्वक श्रीखण्ड चन्दन से भूषित पूजक को ललाटादि मूर्तिपञ्जर न्यास स्थानों पर ॐ अं केशवधातृभ्यां नमः इत्यादि द्वादश मन्त्रों से अनामिका अंगुली द्वारा दीपशिखा के समान सुडोल आकृति वाले उर्ध्व तिलक करना चाहिए ॥५२॥

अधुना पुष्पाञ्जलिविधिं दर्शयति—
पुष्पाञ्जलिमिति ।

पुष्पाञ्जलिं वितनुयादथ पञ्चकृत्वो-
मूलेन पादयुगले तुलसीद्वयेन ।
मध्ये हयारियुगलेन च मूर्द्धिन पद्म-
द्वन्द्वेन षड्भिरपि सर्वतनौ च सर्वैः ॥५३॥

अथानन्तरं पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं वितनुयात् । तुलसीद्वयेन श्वेतकृष्णतुलसीद्वयेन पादयुगले क्रमेणदक्षिणवामपादयोरित्यञ्जलिद्वयं मध्ये हृदि हयारियुगलेन श्वेतरक्तकरवीराभ्यामित्येकोऽञ्जलिः मूर्द्धिनपद्मद्वयेन श्वेतरक्तपद्माभ्याम् इत्यपरोऽञ्जलिः सर्वतनौ सर्वैश्च षड्भिरपि तुलसीद्वयकरवीरद्वयपद्मद्वयैश्चाञ्जलिं तनुयादिति पञ्चमोऽञ्जलिः ॥५३॥

भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न दिव्याङ्गों पर मूल मन्त्र जपते हुए पांच वार पुष्पांजलि समर्पण करे । प्रथम द्वितीय पुष्पाञ्जलि के रूप में श्वेत, कृष्ण दोनों प्रकार के तुलसी दल चरणारविन्दद्वय पर क्रमशः चढावे । तृतीय पुष्पाञ्जलि के रूप में श्वेत और लाल करवीर हृदय पर चढावे। चतुर्थ पुष्पाञ्जलि के रूप में श्वेत और लाल कमल सिर पर चढावे। पञ्चम पुष्पाञ्जलि के रूप में तुलसीद्वय, करवीरद्वय, कमलद्वय छहों प्रकार के पुष्प सर्वाङ्गों पर समर्पण करे ॥५३॥

अधुना श्वेतकृष्णतुलस्यादीनां प्रदानविभागं दर्शयति—
श्वेतानीति ।

श्वेतानि दक्षभागे सितचन्दनपङ्किलानि कुसुमानि ।
रक्तानि वामभागे ऽरुणचन्दनपङ्कसिक्तानि ॥५४॥

श्वेतानि तुलस्यादीनि पुष्पाणि श्वेतचन्दनपङ्कयुक्तानि दक्षिणविभागे देयानि रक्तानि तुलस्यादीनि रक्तचन्दनपङ्कयुक्तानिवामविभागे देयानि ॥५४॥

भगवान् श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में श्वेतचन्दनलिप्त श्वेतपुष्प चढाने चाहिये, और वामभाग में लालचन्दनलिप्त लाल पुष्प समर्पण करना चाहिए ॥५४॥

उपचारं दर्शयति—
तद्वदिति ।

तद्वच्च धूपदीपौ समर्प्य धिनुयात्सुधारसैः कृष्णम् ।
मुखवासाद्यं दत्वा समर्चयेत्साधुगन्धाद्यैः ॥५५॥

धूपदीपौ समर्प्य सुधारसैर्ब्रह्मरन्ध्रस्थितशशाङ्कबिम्बगलितामृतद्रवैर्धिनुयात् प्रीणयेत् । सुधारसैर्मन्त्रकृतजलैरिति रुद्रधरः । श्रीकृष्णं प्रीणयेत् अनन्तरं मुखवासाद्यं गन्धवटिकां दत्वा गन्धपुष्पैः पूजयेत् ॥५५॥

पूजा क्रम के अनुरूप धूप दीप समर्पण कर भक्तिरस से द्रवीभूत भावमय मन से किंवा मूलमन्त्र जपजन्य सुधारस से श्रीकृष्ण को प्रसन्न करे और अनेक सुवासित कस्तूरिकावटी आदि तथा सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से श्रीकृष्ण का पूजन करे ॥५५॥

ताम्बूलेति ।

ताम्बूलगीतनर्तनवाद्यैः सन्तोष्य चुलुकसलिलेन ।
ब्रह्मार्पणाख्यमनुना कुर्यात्स्वात्मार्पणं मन्त्री ॥५६॥

ततस्तदनन्तरं मन्त्री साधकः उपासकः ताम्बूलगीतादिभिः श्रीकृष्णं परितोष्य चुलुकोदकेन ब्रह्मापर्णमन्त्रेण वक्ष्यमाणस्वात्मसर्पणंकुर्यादित्यर्थः ॥५६॥

इसके बाद साधक, ताम्बूलादि के समर्पण से, गीत वाद्यस्तुति प्रार्थनाओं से भगवान् को प्रसन्न करके हाथ में जल लेकर श्रीकृष्णार्पणमस्तु कहते हुए अपने को भगवान् में अर्पित करे ॥५६॥

अथाशक्तं प्रत्याह—

अथ वेति ।

अथ वा संकुचितधियामयं विधिर्मूर्त्तिपञ्जरारब्धः ।
यद्यष्टादशलिपिना सार्णपदाङ्गैश्च वेणुपूर्वैः प्रोक्तः ॥५७॥

अथ वा मन्दमतीनां पूजकानां पूजाप्रकारो मूर्त्तिपञ्जरादिभिरुक्त इयं दशाक्षरेण पूजा, अष्टादशाक्षरपूजामाह । यद्यष्टादशाक्षरमन्त्रेण पूजा तदा कचभुविललाटादिस्थानेषु मन्त्राक्षरन्यासपदपञ्चाङ्गन्यासैर्वेण्वादिभिश्च प्रोक्तः ॥५७॥

यह दशाक्षर मन्त्र के अनुसार की जाने वाली पूजा मन्द मतियों के लिए बताई गई है, यह मूर्ति पञ्जरादि न्यास क्रम से की जाती है । यदि अष्टादशाक्षर मन्त्र के अनुरूप विधि करनी हो तो वेणु आदि हों पूर्व में जिनके ऐसे मन्त्राक्षर, न्यास, पद न्यास अंगन्यास आदि सर्वाङ्गपूर्ण न्यास तथा पूजन करना होगा ॥५७॥

जपविधिं दर्शयति—

सुप्रसन्नेति ।

सुप्रसन्नमथ नन्दतनूजं
भावयन् जपतु मन्त्रमनन्यः ।
सार्थसंस्मृतियथाविधिसंख्या-
पूरणेऽसुयमनं विदधीत ॥५८॥

अथानन्तरं मन्त्रार्थस्मरणपूर्वकं मूलमन्त्रं जपतु । किङ्कुर्वन् ? सुप्रसन्नं पूर्वोक्तरूपम् आत्मभिन्नं कृष्णं हृदि भावयन् । पुनः किम्भूतः ? अनन्यस्तत्परः यथोक्तजपसंख्यापूरणे सति असुयमनं प्राणायामं कुर्यात् जपारम्भे चात्रविद्याधराचार्यः वाह्यपूजाशक्तौ आत्मपूजानन्तर जपं कुर्यात् शक्तौ तु पूजानन्तरमित्याह ॥५८॥

अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में विराजमान श्रीकृष्ण की भावना करते हुए अनन्य-भाव से मन्त्रार्थ को समझते हुए मन्त्र जपे । और संकल्पित संख्या पूर्ति होने पर प्राणायाम भी करे ॥५८॥

प्रयोगपूर्वकृत्यमाह—

प्रणवेति ।

प्रणवपुटितं बीजञ्जप्त्वा शतं सहिताष्टकं
निजगुरुमुखादात्तान् योगान्युनक्तु महामतिः ।
सदमृतचिदानन्दात्माऽथोजपञ्च समापये-
दितिजपविधिः सम्यक् प्रोक्तो मनुद्वितयाश्रितः ॥५९॥

कामबीजं प्रणवपुटितं सहिताष्टकं शतमष्टोत्तरशतं जप्त्वा निजगुरुमुखात्प्राप्तान्योगान् आत्मपरदेवतासमावेशलक्षणान् अष्टमपटले वक्ष्यमाणान्महामतिर्युनक्तु करोतु ।

प्रकृतमुपसंहरति—

अनन्तरं सदमृतचिदानन्दात्मा ऽमुं जपं समापयेत् इत्यनेन प्रकारेण मनुद्वितयाश्रितः दशाक्षराष्टादशाक्षराश्रितः पूजाप्रकारः सम्यक् प्रकारेणोक्तः ॥५९॥

प्रणव से संपुटित १०८ वार कामबीज को जपकर अपने गुरुओं से प्राप्त उपदेश अनुसार उपासना करे । अपने को भी चिदानन्दमय समझकर जप का समापन करे । इस प्रकार दोनों मन्त्रों की जप पूजा विधि बताई गई ॥५९॥

य इति ।

य इमं भजते विधिं नरो भविताऽसौ दयितः शरीरिणाम् ।
अपिवाक्कमलैकमन्दिरं परमं ते समुपैति तन्महः ॥६०॥

इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायांक्रमदीपिकायां
तृतीयः पटलः ॥३॥

यो नरो मनुष्य इमं पूजाप्रकारं सेवतेऽसौ शरीरिणां वल्लभो भविष्यति । तदा सरस्वतीलक्ष्म्योरावासो भविता अन्ते देहपातानन्तरं तेजः समुपैति तद्रूपो भवतीत्यर्थः ॥६०॥

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

इस पूर्वोक्त विधि से जो साधक श्रीकृष्ण की सेवा करता है, वह सभी प्राणियों का प्रिय, बृहस्पति के समान विद्वान्, साक्षात् लक्ष्मी का आश्रय होता है, और अन्त में श्रीकृष्ण को प्राप्त करता है ॥६०॥

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत "दीपिकार्थ प्रकाशिका"
नामक हिन्दी व्याख्या का तृतीय पटल पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थपटलम्

अथ मन्त्रजपादौ दीक्षितस्यैवाधिकारः तदुक्तमागमान्तरे—

द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु ।।
तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रे देवार्चनादिषु ।
नाऽधिकारोस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम् ।।

इत्यतो मन्त्रजपप्रधानाङ्गभूतां दीक्षां कथयामीत्याह ।

कथ्यत इति ।

कथ्यते सपदि मन्त्रवर्ययोःसाधनं सकलसिद्धिसाधनम् ।
यद्विधाय मुनयो महीयसीं सिद्धिमीयुरिह नारदादयः ।।१।।

सपदि सांप्रतं मनुवर्ययोः दशाक्षराष्टादशाक्षरयोः साध्यते वाञ्छितमनेनेति । साधनं दीक्षाङ्गं कथ्यते । कीदृशं ? सकलफलसाधनं यत् कृत्वा नारदादयो मुनयः महतीं सिद्धिम् इह जगति प्राप्तवन्तः ।।१।।

गोपाल दशाक्षर, तथा गोपालाष्टादशाक्षर मन्त्रों का वह साधन (दीक्षाङ्ग) बताता हूँ, जो सकल सिद्धि प्रदान करने वाला है। जिस दीक्षाङ्ग विधि का आश्रय लेकर नारदादि मुनियों ने महती सिद्धि प्राप्त की ।।१।।

दीक्षाया गुरुसाध्यत्वादादौ गुरुलक्षणमाह —

विप्रमिति ।

विप्रं प्रध्वस्तकामप्रभृतिरिपुघटानिर्मलाङ्गं गरिष्ठां
भक्तिं कृष्णाङ्घ्रिपङ्केरुहयुगलरजोरागिणीमुद्वहन्तम् ।।
वेत्तारम्वेदशास्त्रागमविमलपथां सम्मतं सत्सुदान्तं
विद्यां यः संविवित्सुः प्रणततनुमना देशिकं संश्रयेत ।।२।।

योविद्यां संविवित्सुर्मन्त्रं सम्यक् ज्ञातुमिच्छति स एतादृशं देशिकं गुरुं संश्रयेत् सेवेत । कीदृशं ? विप्रं ब्राह्मणजातं उपदेशे क्षत्रियादेरनधिकारात् । पुनः कीदृशं ? प्रकर्षेण दूरीभूता कामाद्यरिषड्वर्गघटा तया पूतं शरीरं यस्य तथा तं कामक्रोधौ लोभ मोहौ मदमत्सरौ एते रिपवः

कामादयः लोभाद्युपहतचित्तस्य निरन्तरं प्रत्यवायोत्पत्त्या सेव्यत्वाभावात् । पुनः कीदृशं ? श्रीकृष्णचरणकमलयुगले यद्रजस्तत्ररागयुक्ताम् अतिशयितां भक्तिं धारयन्तम् अभक्तस्य पुरुषार्थानवाप्तेः । पुनः कीदृशं ? वेदशास्त्रागमसम्बन्धिविमलमार्गाणां ज्ञातारम् अन्यथा आगमशास्त्रविचारानुपपत्तेः । पुनः कीदृशं ? सत्सुजनेषु मध्ये सम्मतं सज्जनत्वेन प्रसिद्धम् अन्यथा खलत्वात् शुश्रूषानर्हत्वात्सच्छब्दार्थ एव न स्यात् । पुनः किम्भूतं ? दान्तं वशीकृतेन्द्रियम् अवशीकृतेन्द्रियस्य देवतापराङ्मुखत्वात् । कीदृशः ? प्रणतानम्रा विनीतातनुः कायो मनो हृदयम् च यस्य स तथा अत्राऽधिकं मत्कृतशारदातिलकेऽवगन्तव्यम् ।।२।।

जो जिज्ञासु साधक, इस मन्त्र विद्या को सम्यक् जानना चाहता है, वह अत्यन्त प्रणत होकर ऐसे गुरु का आश्रय ले, जो ब्राह्मण हो, काम, क्रोध, लोभ मोह मद मात्सर्य रूपी शत्रुओं को ध्वस्त करने वाला हो, निर्मल अंग वाला हो, और भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल के मकरन्द आस्वादन के प्रति लोकोत्तर अनुरागात्मिका–प्रेमलक्षणा भक्ति करने वाला हो, वेद शास्त्र तथा आगम शास्त्र सम्बन्धी निर्मल पद्धति को समझने वाला जितेन्द्रिय, तथा सज्जनों द्वारा सदा सम्मान्य हो ।।२।।

गुरुसेवाप्रकारमाह—

सन्तोषयेदिति ।

सन्तोषयेदकुटिलार्द्रतरान्तरात्मा
तं स्वैर्धनैश्च वपुषाप्यनुकूलवाण्या ।
अब्दत्रयङ्कमलनाभधियाऽतिधीर-
स्तुष्टे विवक्षतु गुरावथ मन्त्रदीक्षाम् ।।३।।

अथानन्तरम् उक्तलक्षणं गुरुं वत्सरत्रयं पद्मनाभबुद्ध्या सन्तोषयेत् । कैः ? स्वीयद्रव्यैः तथा शरीरेण तथा प्रियवचनेन । कीदृशः ? सुधीरः पण्डितः । पुनः कीदृशः ? अवक्रोऽतिस्निग्धो अन्तरात्मा अन्तःकरणं यस्य स तथा अथानन्तरं तुष्टे गुरौ मन्त्रदीक्षां विवक्षतु वक्तुमिच्छतु शिष्य एव यत्त्वन्यत्रोक्तम् ।

एकाब्देन भवेद्विप्रोभवेदब्दद्वयान्नृपः ।
भवेदब्दत्रयैर्वैश्यः शूद्रो वर्षचतुष्टयैः ।। इति ।

तदत्यन्तपरिशीलितविषयम् ।

अन्यथा तु ।

त्रिषु वर्षेषु विप्रस्य षड्वर्षेषु नृपस्य च ।

विशो नवसु वर्षेषु परीक्षेतेति शस्यते ॥

समास्वपिद्वादशसुतेषां ये वृषलादयः ।

इति बोद्धव्यं ।

विहितनक्षत्रादिकं मत्कृतशारदातिलकोद्द्योते बोद्धव्यम् ॥३॥

इसके बाद पूर्वोक्त गुण विशिष्ट गुरु की भगवद् बुद्धि से धीर, निश्छल, स्निग्ध मन बनाकर शरीर, धन, अनुकूल वाणियों से तीन वर्षों तक सेवा करे। जब यह ज्ञात हो कि मेरी निष्कपट सेवा से गुरु सन्तुष्ट हैं तब उनसे दीक्षा लेने की प्रार्थना करे ॥३॥

कलावत्यादिभेदेन दीक्षाया बहुविधत्वात् मया पुनरत्र प्रपञ्चसारोक्ता क्रियावती दीक्षैव सङ्क्षेपेण प्रदर्श्यते इत्याह—

प्रपञ्चसारेति ।

प्रपञ्चसारप्रथिता तु दीक्षा संस्मार्यते संप्रतिसर्वसिद्धयै ।
ऋते यया सन्ततजापिनोऽपि सिद्धिं न वै दास्यति मन्त्रपूगः ॥४॥

सम्प्रति दीक्षा क्रियावती संस्मार्यते तस्याः स्मरणमात्रं क्रियते नतु सम्यगभिधीयते । अत्र हेतुः यतः प्रपञ्चसारे विविच्योक्ता, किमर्थमभिधीयते ? सर्वेषां फलानां प्राप्त्यै यया दीक्षया विना सर्वदा जपकर्तुः पुरुषस्य मन्त्रसमूहः फलं यस्मान्न ददाति ।

यदाहुः ।

मन्त्रवर्गानुसारेण साक्षात्कृत्येष्टदेवताम्

गुरुश्चेद्बोधयेच्छिष्यं मन्त्रदीक्षेति सोच्यते ।

इति ॥ ४ ॥

प्रपञ्चसार ग्रन्थ पर विस्तृत रूप से वर्णित दीक्षा विधि को सर्व सिद्धि प्राप्ति के लिए यहाँ स्मरण मात्र कराता हूँ। क्योंकि बिना गुरु दीक्षा के निरन्तर जपे जाने पर भी मन्त्र फल नहीं दे सकता ॥४॥

अथ शोधितशालादिस्थाने मण्डपपूर्वकृत्यं वास्तुबलिमाह

अथेति ।

अथ पुरो विदधीत भुवः स्थलीमधि यथाविधि वास्तुबलिं बुधः ।
अचलदोर्मितमत्र तु मण्डपं मसृणवेदिकमारचयेत्ततः ॥५॥

अथानन्तरं प्रथमं भुवः स्थलीमधि पृथिव्यामुपरि यथाविधि यथोक्तप्रकारेण वास्तुबलिं बुधो दद्यात् । अत्र बलिदानादिविधिश्च मत्कृतशारदातिलकोद्द्योते बोद्धव्यः । ततस्तदनन्तरम् अत्र संस्कृतभूमौ मण्डपं कुर्यात् । कीदृशम् ? अचलदोर्मितं सप्तहस्तपरिमितं । तु शब्दो अनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन पञ्चहस्तपरिमितं नवहस्तमितं चेति बोद्धव्यं । पुनः कीदृशं ? मसृणवेदिकं चिक्कणवेदिकम् उत्कृष्टवेदिकमित्यर्थः ॥५॥

इसके बाद सर्वप्रथम पृथिवी पर विधिपूर्वक वास्तुबलि प्रदान करे। उसके बाद उस संस्कृत भूमि पर सात हाथ लम्बा चौड़ा मण्डप, जिस पर अत्यन्त सुन्दर वेदी की संरचना हो ॥५॥

विशेष :—यहां पर तु शब्द से यथा सम्भव पांच हाथ और नौ हाथ भी समझना चाहिए।

त्रिगुणेति ।

त्रिगुणतन्तुयुजा कुशमालया परिवृतं प्रकृतिध्वजभूषितम् ।
मुखचतुष्कपयस्तरुतोरणं सितवितानविराजितमुज्ज्वलम् ॥६॥

पुनः कीदृशं ? कुशमालयावेष्टितं । किम्भूतया ? श्वेतरक्तश्यामवर्णतन्तुयुक्तया यद्वा त्रिगुणीकृतसूत्रयुक्तया । पुनः कीदृशं ? अष्टभिर्ध्वजैः शोभितं प्रकृतिरष्टसंख्या । पुनः कीदृशं ? मुखचतुष्के द्वारचतुष्टये पयस्तरुभिः क्षीरवृक्षैः तोरणं बहिर्द्वारं यत्र तादृशं । क्षीरवृक्षास्तु अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधाख्याः पुनः कीदृशं ? शुभ्रचन्द्रातपेनशोभितं पुनः कीदृशं ? उज्ज्वलं निर्मलम् ॥६॥

जो मण्डप श्वेत, रक्त, श्याम तन्तु से युक्त, किंवा तीन लर की तन्तु युक्त कुशमाला से वेष्टित हो, आठ ध्वजाओं से शोभित हो, पीपल, गूलर, प्लक्ष- वट- वृक्षों द्वारा निर्मित चार द्वार हो ऐसा शुक्ल किरण शाली चन्द्रज्योत्स्ना के समान जगमगाता-सा अत्यन्त निर्मल बितान से युक्त मण्डप हो ॥६॥

कुण्डविधिमाह—

वस्विति ।

वसुत्रिगुणिताङ्गुलप्रमितखाततारायतं
वसोर्वसुपतेरथो ककुभिधिष्ण्यमस्मिन् बुधः ।

करोतु वसुमेखलं वसुगणार्द्धकोणं प्रती-
च्यवस्थितगजाधरप्रतिमयोनिसंलक्षितम् ।।७।।

अथानन्तरम् अस्मिन् मण्डपे बुधः वसोर्वह्नेर्धिष्ण्यं कुण्डं करोतु । कीदृशं ? वसुरष्टसंख्या अष्टौवसवः इति प्रसिद्धेः । तेषां वसूनां त्रिगुणानि चतुर्विशाङ्गुलानि तैः प्रमितं तत्प्रमाणंखातस्यगर्त्तस्य उच्चत्वविस्तारश्च यत्र तादृशं । कुत्र ? वसुपतेः कुबेरस्य ककुभिदिशि उत्तरस्यां । पुनः कीदृशं ? वसुमेखलम् । अत्र वसुशब्देन अग्निरुच्यते स च गार्हपत्याहवनीयेत्यादित्रिविधः । पुनः कीदृशं ? वसुगणार्द्धकोणं चतुष्कोणम् । पुनः कीदृशं ? पश्चिमदिश्यवस्थितं गजोऽष्टसदृशद्वादशाङ्गुलायामा या योनिस्तया भूषितं । तदुक्तं-

द्वादशाङ्गुलिरूपत्वाद्योनिः स्याद्द्वादशाङ्गुलिरिति ।

अपरोऽत्र विशेषः शारदातिलकतोऽवगन्तव्यः ।।७।।

उक्त मण्डप की उत्तर दिशा की ओर चौबीस अंगुल परिमित लम्बा चौड़ा अग्निकुण्ड बनावे । जो चौकोण और अग्नि मेखला युक्त हो । पश्चिम दिशा की ओर द्वादशाङ्गुल परिमित योनि का आकार बनाया जावे ।।७।।

अधुनाराशिमण्डलविधिंदर्शयति ।

तत इति ।

ततोमण्डपे गव्यगन्धाम्बुसिक्ते
लिखेन्मण्डलं सम्यगष्टच्छदाब्जम् ।
सवृत्तत्रयंराशिपीठाङ्घ्रिवीथि-
चतुर्द्वारशोभोपशोभास्त्रयुक्तम् ।।८।।

ततोमण्डपानन्तरम् अस्मिन् मण्डपेसम्यक्यथोक्तप्रकारेणमण्डलंलिखेत् । कीदृशे ? गव्यैः पञ्चगव्यैः शारदातिलकोक्तवैष्णवगन्धाष्टकजलेनप्रोक्षिते । कीदृशम् ? अष्टदलपद्मसहितं । पुनः कीदृशं ? वृत्तत्रयसहितं । पुनः राशयोमेषादयः पीठं कलसस्थापनस्थानंतस्याङ्घ्रिपीठपात्रचतुष्टयं चतस्रोवीथयः चत्वारिद्वाराणिशोभाउपशोभा अस्रं कोणम् एतैर्युक्तम् । अयमर्थः सार्द्धहस्तद्वयप्रमाणेनसमंचतुरस्रम्भूभागंपरिष्कृत्यतत्र पूर्वापरायतानिसप्तदशसूत्राणिपातयेत् । एवंसतिषट्पञ्चाशदुत्तरं द्विशतंकोष्ठानां भवति । तत्र कोष्ठविभागोमध्येषोडशभिः कोष्ठैर्वृत्तत्र-

यान्वितं पद्मं लिखेत् (तत्र च पद्मोपरिशिष्टेपीठंतदङ्गं च लिखेत्) । तद्बहिरष्टाधिकचत्वारिंशताद्वादशराशीन् लिखेत् तद्बहिः षट्त्रिंशतापीठं पीठाङ्घ्रिञ्च लिखेत् (तद्बहिरशीतिभीः पदैर्लिखेत्) । अत्रेदं बोद्धव्यं पद्मस्यदलाग्रस्थंवृत्तंपीठशक्तिश्चएतयोर्मध्ये पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरसूत्रचतुष्टयंदद्यात, अनन्तरंद्वादशाधिकैः शतपदैर्द्वारशोभोपशोभाकोणानिविलिखेत् । तत्रसर्वस्यांदिशिद्वारंषट्पदं । (तत्रप्रकारः बाह्यपङ्क्तिगतमध्यकोष्ठद्वयन्तदन्तर्गतपङ्क्तिगतमध्यकोष्ठद्वयमितिद्वारस्यैकस्मिन्भागेकोष्ठचतुष्टयेनैकाशोभाभवति । तत्रबाह्यपङ्क्तिगतमेकंकोष्ठंतदन्तर्गतपङ्क्तिगतंकोष्ठत्रयमितिएवंकोष्ठचतुष्टयेनैकाशोभाभवति । अत्रबाह्यपङ्क्तिगतकोष्ठत्रयन्तदन्तर्गतपङ्क्तिगतमेकंकोष्ठमितितथाकोष्ठषट्केन कोणमिति । एवमपरस्मिन्भागेऽपिशोभोपशोभाकोणानिबोद्धव्यानि । एवंदिक्चतुष्टयेऽपिमिलित्वा द्वादशाधिकंशतंभवतीति । अत्रानुक्तं शारदातिलकेबोध्यम् ।। ८ ।।

इसके बाद पञ्चगव्य किंवा अष्टगन्धयुक्त जल से प्रक्षालित उस मण्डप पर राशि मण्डल लिखे, जिसमें अष्टदलकमल हो, तीन वृत्त हों, मेषादि राशि—पीठ, कलश स्थापना स्थान, और उसके पीठ पर रखे जाने वाले चार पात्र, चार मार्ग, चार द्वार तथा शोभा उपशोभा, और कोण भी हों ।।८।।

विशेषः—अढाई हाथ लम्बी चौड़ी चतुष्कोण भूमि पर सीधी और तिरछी सत्रह-सत्रह रेखाएं खींचने पर २५६ कोण का राशि मण्डल बनता है। उसके अन्दर बड़ी वारिकी से विभिन्न देव पीठों, पात्र स्थानों का यथा विधि निर्माण किया जाता है।

ततो देशिकः स्नानपूर्वं विधानं
विधायाऽऽत्मपूजावसानं विधिज्ञः ।
स्ववामाग्रतः शङ्खमर्घ्यपाद्या-
चमाद्यानि पात्राणि सम्पूरितानि ।।९।।

विधायाऽन्यतः पुष्पगन्धाक्षताद्यं
करक्षालनं पृष्ठतश्चाऽपि पात्रम् ।
प्रदीपावलीदीपिते सर्वमन्यत्
स्वदृग्गोचरे साधनं चाऽऽददीत ।।१०।।

तदनन्तरं विधिज्ञः आगमोक्तप्रकारज्ञः देशिको गुरुः स्नानपूर्वकं विधानं स्वगृह्योक्तादिस्नानविधिम् आत्मपूजापर्यन्तं समाप्य स्ववामाग्रे शङ्खार्घ्यपाद्याचमनीयपात्राणि जलादिस्वच्छद्रव्यैः सम्पूरितानि कृत्वा यथोत्तरं स्थापयित्वाऽन्यतो दक्षिणभागे पुष्पाणि पूजा द्रव्याणि निधाय करप्रक्षालनपात्रमेकं पृष्ठदेशे निधाय सर्वमन्यत् साधनम् उपकरणं स्वहृग्गोचरे चक्षुर्गोचरे प्रदीपश्रेणिविराजिते स्थापयेत् । अत्राऽपरो विशेषः श्रीपरमानन्दभट्टाचार्यकृते प्रपञ्चसारविवरणे द्रष्टव्यः ।।९।।१०।।

इसके बाद विधिज्ञ गुरु को चाहिए, कि स्नान से लेकर अपने सम्पूर्ण कर्तव्य विधि को शास्त्रोक्त रीति से सम्पादन करके यथा सुविधा अपनी बायीं ओर अपने आगे जलादि द्रव्यों से पूरित शंख, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय पात्रों को यथाक्रम स्थापित कर अपनी दायीं ओर पुष्पगन्ध आदि रखे, पीछे हाथ धोने का पात्र रखे, इसी प्रकार सभी आवश्यक सामग्री को दीपमाला से प्रकाशित स्थान पर अपनी दृष्टि के सामने रखे ।।९।।१०।।

वायव्येति—

वायव्याशादीशपर्यन्तमर्च्य-
पीठस्योदग्गौरवी पङ्क्तिरादौ ।
पूज्योऽन्यत्राऽप्याम्बिकेयः कराब्जैः
पाशं दन्तं सृण्यभीती दधानः ।।११।।

पीठस्य राशिपीठस्य उदक् उत्तरभागे वायव्यकोणादीशानकोण पर्यन्तं गुरुसम्बन्धिनी पङ्क्तिरादौ प्रथमतः पूज्या । प्रयोगस्तु ॐ गुरुभ्योनमः इति । अन्यत्र दक्षिणभागे आम्बिकेयो गणपतिः पूज्यः । कीदृशः ? हस्तपद्मैः स्वदन्तं सृणिम् अङ्कुशम् अभयं दधानः ।।११।।

राशि पीठ के उत्तर भाग में वायव्य से लेकर ईशान कोण पर्यन्त गुरुपरंपरा की पूजा करे । पीठ के दक्षिण भाग में अपने हस्तकमलों द्वारा पाश, दन्त, अंकुश, अभय, को धारण करने वाले श्रीगणेशजी की पूजा करे ।।११।।

अधुनाकलशस्थापनप्रकारंदर्शयति
यतोदेशिक इत्यादिना
आराध्येति ।

आराध्याऽऽधारशक्त्याद्यमरचरणपावध्यथो मध्यभागे
धर्मादीन् वह्निरक्षः पवनशिवगतान् दिक्ष्वधर्मादिकांश्च ।

मध्ये शेषाब्जबिम्बत्रितयगुणगणात्मादिकं केशराणां
वह्नेर्मध्ये च शक्तीर्नवसमभियजेत्पीठमन्त्रेण भूयः ।।१२।।

अथानन्तरं मण्डलमध्यभागे आधारशक्तिमारभ्य कल्पवृक्षपर्यन्तमाराध्य पूजयित्वा पीठन्यासक्रमेण वह्नीति अग्न्यादिकोणगतान् धर्मादीन् पूर्वादिचतुर्दिक्षु अधर्मादीन् तथा मध्ये शेषं पद्मं तथा सूर्यसोमवह्नीनां बिम्बत्रयं द्वादशषोडशदशकलाव्याप्तं मण्डलत्रयं तथा सत्वादिगुणत्रयं तथाऽऽत्मादिचतुष्टयं पूजयेत् । अथ केशराणां मध्ये कर्णिकायां च विमलाद्या नव शक्तीः पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् । भूयः पुनरपि पूर्वोक्तेन पीठमन्त्रेण पीठं पूजयेदित्यर्थः ।।१२।।

राशि मण्डल के मध्य भाग में आधार शक्ति से लेकर कल्पवृक्ष पर्यन्त की पूजा करके, अग्निकोण, नैऋत्य, वायव्य, ईशान कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अन्य पूर्वादि दिशाओं में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य की पूजा करे । मध्य में शेष, पद्म, द्वादश, षोडश, दशकला व्याप्त, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि मण्डलों, सत्वरज, तम तीनों गुणों, परमेष्ठ्यात्मा (वासुदेव) पुरुषात्मा (संकर्षण) विश्वात्मा (प्रद्युम्न) सर्वात्मा (अनिरुद्ध) की पूजा करे । मध्य कर्णिका में विमलादि नौ शक्तियों की पूजा करे, पीठ मन्त्रों से पीठ को भी पूजा करे ।।१२।।

तत इति

ततः शालीन् मध्येकमलममलांस्तण्डुलवरा-
नपि न्यस्येद्दर्भांस्तदुपरि च कूर्चाक्षतयुतान् ।
न्यसेत्प्रादक्षिण्यात्तदुपरि कृशानोर्दश कला-
यकाराद्यर्णाद्या यजतु च सुगन्धादिभिरिमाः ।।१३।।

तदनन्तरं मध्येकमलं कमलमध्ये शालीन् आढकपरिमितान् तथा शुभ्रान् शाल्यष्टभागपरिमितान् तण्डुलान् श्रेष्ठान् न्यस्येत् स्थापयेत् ।

तदुक्तं ।

शालीन्वैकर्णिकायांचनिक्षिप्याढकसंमितान् ।

तण्डुलांश्चतदष्टांशान्दर्भैः कूर्चैः प्रविन्यसेदिति ।

तदुपरि तण्डुलोपरि कूर्चाक्षतयुक्तान् दर्भान् विन्यसेत्, कुशत्रयघटितो ब्रह्मग्रन्थिः कूर्चशब्देनोच्यते. कूर्चः कुशमुष्टिरितित्रिशाठिनः, तदुपरि कूर्चोपरि कृशानोर्वह्नेर्दश कला यकारादयो दशवर्णा आद्याः

प्रथमा यासान्ताः प्रादक्षिण्येन न्यसेत् तदनन्तरं इमा दश कला गन्धादिभिः पूजयेत् ।

ताश्च —

धूम्रार्चिरूष्माज्वलिनीज्वालिनीविस्फुलिङ्गिनी ।

सुश्रीः सुरूपा कपिलाहव्यवहाकव्यवहेति ।

प्रयोगस्तु धूम्रार्चिषेनम इति ।।१३।।

इसके बाद अष्टदल कमल के बीच में आढक परिमित अर्थात् करीब सोलह किलो शालीधान्य को रखे, उसके ऊपर तीन कुशों से निर्मित ब्रह्म ग्रन्थियुक्त अक्षत-सहित कूर्च (कुश मुष्टि) रखे। उस कुश मुष्टि के ऊपर धूमार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा, कव्यवहा ये अग्नि की दश कलाओं की चकारादि दश वर्णों से चन्दन पुष्पादि द्वारा प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे ।।१३।।

न्यसेदिति ।

न्यसेत्कुम्भं तत्र त्रिगुणितलसत्तन्तुकलितं
जपंस्तारं धूपैः सुपरिमलितं जोङ्कटमयैः ।
कभाद्यैः कुम्भेऽस्मिन् ठडवसितिभिर्वर्णयुगलैः ।
तथान्यस्याऽभ्यर्च्यास्तदनु खमणेर्द्वादश कलाः ।।१४।।

तत्र दशकलामये कूर्चे तारमोंकारमुच्चरन् कुम्भं न्यसेत् । कुम्भस्तु सुवर्णादिनिर्मितः ।

तदुक्तं ।

सौवर्णं राजतं वापि मृन्मयं वा यथोदितम् ।

क्षालयेदस्त्रमन्त्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरीति ।

कीदृशं ? ग्रीवायां त्रिगुणिता लसन्तः शोभमाना ये तन्तवः कन्याकर्तितकार्पाससूत्राणि तैः कलितम् अस्त्रमंत्रेणवेष्टितम् । पुनः कीदृशं ? जोङ्कटमयैः कृष्णागुरुप्रधानैर्धूपैः सुधूपितं तदनन्तरं खमणेः सूर्यस्य द्वादशकला अस्मिन् कुम्भे न्यस्य अनन्तरं पूज्याः कैः ? वर्णयुगलैः । कीदृशैः ? कभाद्यैः ककारभकाराद्यैः । पुनः कीदृशैः ? ठडवसितिभिः ठकारडकारावसानैः । अयमर्थः-अनुलोमपठितककाराद्येकैकमक्षरं प्रतिलोमपठितभ-

काराद्येकैकमक्षरेणसहितं तपिन्यादिषु द्वादशकलासु संयोज्य न्यासादिकं कार्यम् ।

ताश्च —

तपिनीतापिनीधूम्रामरीचि र्ज्वालिनीरुचिः ।

सुषुम्णाभोगदाविश्वावेधिनीधारिणीक्षमेति ।।

प्रयोगस्तु कंभंतपिन्यैनमः खं बं तापिन्यैनम इत्यादिकार्यम् ।।१४।।

उस अग्नि की दश कलाओं से युक्त कुशों के ऊपर प्रणव का जाप करते हुए तीन लर तन्तु के परिवेष्टन से शोभित कलश की स्थापना करे। वह कलश कृष्ण अगुर से निर्मित धूपों से आमोदित होना चाहिए। इस कलश पर सूर्य की द्वादश कलाओं की ककारादि मातृकाक्षर से अनुलोम, भकारादि मातृकाक्षर से प्रतिलोभ, ठकार, डकार अन्त में आएं ऐसे दो-दो वर्णों के क्रम से न्यास तथा पूजा करे। तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, वोधिनी, धारिणी, क्षमा ये सूर्य की कलाएं है। यथा प्रयोगः कं भं तपिन्यै नमः, खं बं, तापिन्यै नमः ।।१४।।

एवमित्यादि —

एवं संकल्प्याऽग्निमाधाररूपं
भानुं तद्वत्कुम्भरूपं विधिज्ञः ।
न्यस्येत्तस्मिन्नक्षताद्यैः समेतं
कूर्चं स्वर्णैरत्नवर्यैः प्रदीप्तम् ।।१५।।

एवमनेन प्रकारेणाऽऽधाररूपमग्निं संकल्प्य तद्वत्कुम्भरूपंभानुं विचिन्त्य तस्मिन् कुम्भे विधिज्ञ आगमोक्तप्रकाराभिज्ञः मूलमन्त्रेणाऽक्षताद्यैः सहितं कूर्चं पूर्वोक्तलक्षणैः सुवर्णरत्नवर्यैर्नवरत्नैः शोभितं न्यसेत् ।

तदुक्तं भैरवेण ।

एतान् नयित्वा तन्मध्येशुक्लपुष्पंसिताक्षतम् ।

नवरत्नंचकूर्चंचमूलेनैवविनिक्षिपेदिति ।।१५।।

इस प्रकार आधार रूप अग्नि का चिन्तन कर विविज्ञ साधक को कलश रूप सूर्य का भी स्मरण करना चाहिए। तथाभूत कलशस्थ कूर्च का चन्दनाक्षत और स्वर्ण रत्नों से पूजन करे ।।१५।।

अथेति —

अथ क्वाथतोयैः क्षकारादिवर्ण-
रकारावसानैः समापूरयेत्तम् ।
स्वमन्त्रत्रिजपावसानं पयोभि-
र्गवां पञ्चगव्यैर्जलैः केवलैर्वा ॥१६॥

अथाऽनन्तरं पीठकुम्भयोरैक्यं विचिन्त्य पञ्चाशद्वर्णैरोषधितोयैः पलाशत्वग्जलैः क्षीरद्रुमत्वक्क्वाथजलैर्वा सर्वौषधिजलैर्वागवां पयोभिर्वा पञ्चगव्यैर्वा केवलजलैः कर्पूरादिजलैर्वा तीर्थजलैर्वा क्षकारादिवर्णैर-कारावसानैर्विलोममातृकाभिः स्वमन्त्रत्रिजपावसानं मूलमन्त्रवारत्रयज-पान्तं यथा स्यादेवं पूरयेत् ॥१६॥

तदनन्तर पीठ और कलश को एक ही समझकर वर्णमाला के प्रतिलोभ उच्चारण पूर्वक अर्थात् क्ष से लेकर अकार पर्यन्त वर्णों का उच्चारण करते हुए तीन वार मूल मन्त्र जपने के बाद दुग्धशाली वृक्षों के क्वाथजल से अथवा दूध से अथवा पञ्चगव्य से अथवा शुद्ध जल से ही कलश को भरे ॥१६॥

कलश जले इति—

कलशजलेस्मिन् वसुयुगसंख्याः
स्वरगणपूर्वा न्यसतु तथैव ।
उडुपकलास्ताः सलिलसुगन्धा-
क्षतसुमनोभिस्तदनु यजेत ॥१७॥

तस्मिन् कलशजले उडुपकलाश्चन्द्रकलाः वसुयुगसंख्याः षोडश-संख्याः स्वरगणपूर्वा अकारादिवर्णपूर्वा न्यसतु । तदनु तदनन्तरं ताश्च-न्द्रकलास्तथैव तेनैव क्रमेण पुष्पाञ्जलिभिः पूजयेत् ।

ताश्च—

अमृतामानदापूषातुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः ।
शशिनीचन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्नाश्रीः प्रीतिरङ्गदाः ।
पूर्णापूर्णामृतेति ॥१७॥

कलश जल में सोलह स्वरों से न्यास करे। उसके बाद जल, चन्दन, अक्षत, पुष्पों से अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता, ये सोलह चन्द्रकलाओं की पूजा करे ॥१७॥

अधुना वैष्णवगन्धाष्टकमाह—

उदीच्यकुष्टकुङ्कुमाम्बुलोहसज्जटामुरैः ।
सशीतमित्युदीरितं हरेः प्रियाष्टगन्धकम् ॥१८॥

उदीच्यम् उशीरं कुष्टं कुङ्कुमं अम्बुवाला नेत्रवाला लोहः कृष्ण-गुरुः जटया सह मुरा जटामांसो मुरा मांसी च एतैः सह शीतं चन्दनमिति हरेः प्रियकारिगन्धाष्टकमुक्तम् ॥१८॥

उशीर (खस) कुष्ट (कूट) कुंकुम (केसर) अम्बु (नेत्रवाला) लोह (कृष्ण अगूर) सजटा (जटामासी) मुरा (मासी) शीत (चन्दन) ये आठ चीज को अष्टगन्ध कहते हैं, जो भगवान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं ॥१८॥

शङ्खपूरणमाह—
क्वाथेति ।

क्वाथतोयपरिपूरितोदरे-
संविलोड्य विधिनाऽष्टगन्धकम् ।
सोमसूर्यशिखिनां पृथक्कलाः ।
सेचकर्म विनियोजयेत्क्रमात् ॥१६॥

दरे शङ्खे विधिनाऽऽगमोक्तप्रकारेण मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तक्वाथजलेन परिपूरिते गन्धाष्टकं नमोमन्त्रेण संविलोड्य दत्वा सोमसूर्यवह्नीनां कलाः पृथक् समावाह्य सेचकर्म प्राणप्रतिष्ठाकर्मक्रमेण विनियोजयेत् कुर्यात् ॥ १९ ॥

पूर्वोक्त द्रव्य-दूध या शुद्ध जल से पुरित शंख में पूर्वोक्त अष्टगन्ध को विधि-पूर्वक डालकर विलोडन करना चाहिए। उसमें सूर्य, सोम, अग्नि की कलाओं को आवाहित करके सेचनक्रिया किंवा प्राण प्रतिष्ठादि विधि भी करनी चाहिए ॥१९॥

तद्वदिति—

तद्वदाक्षरभवास्तु कादिभि-
ष्टादिभिः पुनरुकारजाः कलाः ।
पादिभिर्मलिपिजास्तु बिन्दुजाः
षादिभिः स्वरगणेन नादजाः ॥२०॥

पूर्वोक्तप्रकारेण आक्षरभवा अकाराक्षरभवा दश कलाः कादिभिः ककारादिभिर्दशभिरक्षरैः सहिताः पुनरुकारजा । उकाराक्षर भवा दश कलाः यादिभिर्दशभिरक्षरैः सहिताः तथा मलिपिजा मकाराक्षरभवा दश कलाः पादिभिर्दशभिरक्षरैः सहिताः तथा बिन्दुजा बिन्दुप्रभवाः चतस्रः कलाः षादिभिश्चतुरक्षरैः सहिताः तथा नादजा नादप्रभवाः षोडश कलाः स्वरसमूहेन षोडशभिः स्वरैः सहिताः शङ्खसलिले न्यस्याः ।

ताश्च—

सृष्टिर्धृतिः स्मृतिर्मेधाकान्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिरा ।
स्थितिः सिद्धिरकारोत्थाः कला दश समीरिताः ॥१॥

यवा च पालिनी शान्तिरैश्वरी रतिकामिके ।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा उकारजाः कलाः ॥२॥

तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत् हृदिनी क्रिया ।
उत्कारी चैव मृत्युश्च मकाराक्षरजाः कलाः ॥३॥

विन्दोरपि चतस्रः स्युः पीता श्वेताऽरुणाऽसिता ।
निवृत्तिः सुप्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ॥४॥

ईरिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा ।
सूक्ष्मा सूक्ष्ममता ज्ञाना ऽमृता चाऽऽप्यायनी तथा ।
व्यापिनी व्योमरूपा च अनन्ता नादसम्भवा ॥५॥ इति ।

प्रयोगश्च कं सृष्टयै नम इत्यादि ॥२०॥

पूर्वोक्त प्रकार से शंखस्थ जल में ककारादि दश हल् अक्षरों को लिए हुए अकार की दश कला, यकारादि दश हल् अक्षरों को लिए हुए उकार की दश-कला, पकारादि दश हल् अक्षरों को लिए हुए यकार की दश कला, षकारादि चार हल् अक्षरों को लिए हुए बिन्दु की चार कला, सोलह स्वरों को लिए हुए सोलह कलाओं का न्यास करना चाहिए ॥२०॥

विशेषः—सृष्टि, धृति, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति सिद्धि ये दश अकार की कलाएं हैं। यवा, पालिनी, शान्ति, ऐश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, ये दश उकार की कलाएं हैं। तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुत्, हृदिनी, क्रिया, उत्कारी, मृत्यु ये दश मकार की कलाएं हैं। पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, ये चार बिन्दु की कलाएं हैं। निवृत्ति, सुप्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, ईरिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा सूक्ष्मा,

सूक्ष्मतमा, ज्ञाना, अमृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता ये सोलह नाद की कलाएं हैं।

समावाहनान्ते इत्यादि ।

समावाहनान्तेऽसुसंस्थापनात्प्राक्
ऋचस्तत्र तत्राऽभिजप्या बुधेन ।
समभ्यर्च्य तास्ताः पृथक् तच्च पाथोऽ-
र्पयेन्मूलमन्त्रेण कुम्भे यथावत् ॥२१॥

समावाहनस्याऽन्ते ऽसुसंस्थापनात्प्राक् प्राणप्रतिष्ठायाः पूर्वं तत्र तत्र स्थाने पण्डितेन धार्य्याश्चाऽभिजप्याः पठनीयाः । अयमर्थः शङ्खजले ऽकारप्रभवककारादिकलावाहनानन्तरं प्राणप्रतिष्ठायाः पूर्वं "हंसः शुचिष" दिति ऋचं पठेत् । उकारप्रभवटादिकलावाहनानन्तरं "प्रत-द्विष्णु" रिति ऋचम्पठेत् । मकारादिप्रभवपकारादिकलावाहनानन्तरं "तत्सवितु" रित्यादि ऋचं पठेत् । नादप्रभवतकारादिकलावाहनानन्तरं "विष्णोर्योनि" रित्यादिऋचं पठेत् । अनन्तरं मूलमन्त्रं शङ्खजले विलोमेन जपेत् । तारकलाः पृथगेकैकशः यथावत् यथाविधि सम्पूज्य तच्च पाथः तच्छङ्खोदकं मूलमन्त्रं पठित्वा कुम्भे विनिक्षिपेत् ॥२१॥

पूर्वोक्त शंख जल में अकार की कलाओं के आह्वान के बाद और प्राण प्रतिष्ठा के पहले पूजक का निर्धारित वेद मन्त्र "हंसः शुचिषद्" इत्यादि को पढना चाहिए। और उकार की कलाओं के आह्वान पश्चात् "प्रतद्विष्णु" इत्यादि ऋक् पढनी चाहिए। मकार की कलाओं के आह्वान के अनन्तर "तत्सवितुः" इत्यादि मन्त्र बोलना चाहिए। नाद–कला के आह्वान के बाद "विष्णोर्योनिः" इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए। इसके बाद प्रणव रूप बिन्दु की कलाओं को विधिवत् आवाहित करके मूल मन्त्र जपते हुए शंख का शुद्ध जल कलश में डाले ॥२१॥

सहेति—

सहकारबोधिपनसस्तवकैः
शतमन्युवल्लिकलितैः कलशम् ।
पिदधातु पुष्पफलतण्डुलकै-
रभिपूर्णयाऽपि शुभचक्रिकया ॥२२॥

सहकार आम्रः बोधिरश्वत्थः पनसः कण्टकिफलवृक्षः एतेषां स्तवकैः पल्लवैः शतमन्युवल्लिकलितैरिन्द्रवल्लीबद्धैः कलशं कलशमुखं सुरद्रुमधिया पिदधातु समाच्छादयतु तथा पुष्पादिभिः परिपूर्णया शुभचक्रिकया शोभमानशरावेण तदुपरि पिदधातु ।।२२।।

आम्र, पीपल, कटहल के पल्लवों के गुच्छे, जो कलायों से बँधे हों, कल्पवृक्ष के पल्लवों की भावना करते हुए उनसे कलश के मुख को ढक दें, और उनके ऊपर पुष्प तण्डुल से परिपूर्ण एक सुन्दर सकौरा रखे ।।२२।।

अभीति ।

अभिवेष्टयेत्तदनु कुम्भमुखं
नवनिर्मलांशुकयुगेन बुधः ।
समलंकृतेऽत्र कुसुमादिभिर-
प्यभिवाहयेत्परतरञ्च महः ।।२३।।

तदनु तदनन्तरं नूतनमलरहितवस्त्रद्वयेन परितः कुम्भमुखमभिवेष्टयेत् । अनन्तरं कुम्भे पुष्पादिभिरलंकृते परमोत्कृष्टं महस्तेजः पूज्यदेवतास्वरूपमावाहयेत् आवाहनादिकं कुर्यात्, यथा श्रीकृष्णेहा ऽऽगच्छेह तिष्ठ इह संनिधेहि ।।२३।।

तदनन्तर कलश के मुख किंवा ग्रीवा को दो सुन्दर वस्त्रों से परिवेष्ठित करे । विभिन्न पुष्पादिकों से समलंकृत उस कलश में भगवान् श्रीकृष्ण के तेजोमय स्वरूप का आह्वान करे ।।२३।।

सकलीति—

सकलीविधाय कलशस्थममुं
हरिमर्णतत्त्वमनुविन्यसनैः ।
परिपूजयेद् गुरुरथाऽवहितः
परिवारयुक्तमुपचारगणैः ।।२४।।

अमुं कलशस्थं हरिं सकलीकृत्य
देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिरिति ।
उत्तमाङ्गं विधाय वर्णतत्त्वमन्विति अक्षरमयतत्त्व मन्त्रन्यासैः सहेति रुद्रधरः । अर्ण इति सृष्टिसंहारभेदेन अङ्गुल्यारोपणभेदेन च मन्त्रवर्णविन्यासोऽर्णन्यासः तत्त्वेति सृष्टिसंहारभेदेन मन्त्राक्षरान्वितदशतत्त्वन्यासः तथा मूलमन्त्रन्यासो मनुन्यासः मनुपुटितमातृकान्यास इत्यर्थः । इत्यादिन्यासैस्तत्तेजोरूपधरं सकलं सगुणं शरीरं कुर्यादिति भैरवत्रिपाठिनः । विद्याधरोऽप्येवमाह पीठन्यासकरन्यासौ विनाऽपि प्रथमद्वितीयपटल प्रोक्तन्यासादिजातैरिति । केचित् अष्टादशाक्षरे पक्षे तत्त्वन्यासस्थाने मन्त्राक्षरन्यासो द्रष्टव्यः । अथाऽनन्तरम् अवहितः सावधानो गुरुः सपरिवारम् आवरणसमेतम् उपचारगणैः षोडशदशपञ्चोपचारान्यतमोपचारेण पूजयेत् ।।२४।।

कलश में आवाहित श्रीकृष्ण को अष्टादशाक्षर मन्त्र के प्रतिवर्णों से षडङ्ग न्यास करके किंवा मन्त्र संपुटित मातृका न्यास तथा दशतत्व न्यासों द्वारा सम्पूर्ण कला पूर्ण बनाकर षोडषोपचार से आवरण सहित कलश की पूजा करे ।।२४।।

पूजाक्रममाह—

दत्वेति ।

दत्वाऽऽसनं स्वागतमित्युदीर्य
तथाऽर्घ्यपाद्याचमनीयकानि ।
देयानि पूर्वं मधुपर्कयूञ्जि
नन्दात्मजायाऽऽचमनान्तकानि ।।२५।।

स्थानं च वासश्च विभूषणानि
साङ्गाय तस्मै विनियोज्य मन्त्री ।
गात्रे पवित्रैरथ गन्धपुष्पैः
पूर्वं यजेन्न्यासविधानतोऽस्य ।।२६।।

तस्मै साङ्गाय नन्दात्मजाय कृष्णाय आसनं पद्मादिकुसुमरूपं दत्वा स्वागतमित्युदीर्य स्वागतमिति शब्दमुच्चार्य अनन्तरं पूर्वं प्रथमतः अर्घ्यपाद्याचमनीयकानि मधुपर्कसहितानि देयानि आचमनान्तकानि मधुपर्कं दत्वा पुनराचमनीयं देयं स्नानं गन्ध जलादिभिः कार्यं वासो वस्त्रयुगलं शरीरे देयं विभूषणानि कुण्डलादीनि यथास्थानं विनियोज्यानि । अथाऽनन्तरम् अस्य परमेश्वरस्य गात्रे शरीरे पूर्वं प्रथमतः पवित्रैः शुद्धैः गन्धपुष्पैर्न्यासप्रकारेण यजेत् पूजयेत् ।।२५।।२६।।

नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण को कमल पुष्प रूप आसन समर्पण कर स्वागत करे। उसके बाद अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय समर्पण करे। स्नान, वस्त्र, विभिन्न आभूषण समर्पण करके भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य विग्रह पर परमपावन चन्दन-पुष्पादि से न्यास विधान के अनुसार पूजन करे ॥२५॥२६॥

पूजाप्रकारमेवाह—
सृष्टिस्थितीति।

सृष्टिस्थिती स्वाङ्गयुगं च वेणुं
मालामभिज्ञानवराश्ममुख्यौ।
मूलेन चाऽऽत्मार्चनवत्प्रपूज्य
समर्चयेदावरणानि भूयः ॥२७॥

वर्णन्यासमन्त्रैर्यथाक्रमं पूजयेत्। ॐ गों ॐ नमः इत्यादि। सृष्टिस्थिती पूर्वोक्तं स्वाङ्गयुगं पञ्चाङ्गदशाङ्गन्यासौ वेणुं मालांवनमालाम् अभिज्ञानवरं श्रीवत्सलाञ्छनमिति अश्ममुख्यः कौस्तुभः एतानि सम्पूज्य मूलेन चाऽऽत्मार्चनवत यथाऽऽत्मनि परमेश्वरपूजा मूलमन्त्रेण पञ्चकृत्वः तुलस्यादिपुष्पाञ्जलिभिः पदद्वयादिषु कृता तथा कुम्भस्थमपि सम्पूज्य भूयः पुनरपि आवरणानि वक्ष्यमाणानि पूजयेत्। अष्टादशार्णपक्षे सृष्टयादिस्थानेषु वर्णन्यासपदन्यासानां पूजा कार्येति बोद्धव्यम् ॥२७॥

वर्णन्यास मन्त्रों से सृष्टि, स्थिति न्यास, तथा पञ्चाङ्ग दशाङ्ग न्यास करे। प्रयोगः ॐ गों ॐ नमः इत्यादि है। यदि अष्टादशाक्षर मन्त्र लक्ष्य में है तो उसके वर्णों तथा पदों से सृष्टि स्थिति न्यास क्रम से पूजा करे। साथ ही वेणु वनमाला, श्रीवत्स, कौस्तुभ मणियों पर भी अपने अंग में किए जाने वाले न्यासक्रम अनुरूप पूजा करे, पुनः आवरण पूजा भी करे ॥२७॥

आवरणपूजाक्रममाह—
दिक्ष्विति।

दिक्ष्वथ दामसुदामौ वसुदामः किङ्किणी च संपूज्याः।
तेजोरूपास्तद्बहिरङ्गानि च केशरेषु समभियजेत् ॥२८॥

अथाऽनन्तरं कर्णिकायां देवस्य पूर्वादिचतुर्दिक्षु दामादयश्चत्वारः पूज्याः। कीदृशाः? तेजोरूपाः देदीप्यमानाः। प्रयोगस्तु ॐ दामायनम इत्यादि। द्वितीयावरणमाह तद्बहिरिति। कर्णिकाकोणेषु अङ्गानि समभियजेत् ॥२८॥

कर्णिकास्थ श्रीकृष्ण की पूर्वादि दिशाओं में तेजस्व रूप, दाम, सुदाम, वसुदाम, किङ्किणी, की, उसके बाहर द्वितीयावरण—कर्णिका के कोणों पर उक्त पार्षदों के अंगों की पूजा करे ॥२८॥

पूजाविधानमाह—
हुतवह्निर्ऋतिसमीरणशिवेति।

हुतवहनिर्ऋतिसमीरशिवदिक्षु हृदादिवर्मपर्यन्तम्।
पूर्वादिदिक्ष्वथाऽस्त्रं क्रमेण गन्धादिभिः सुशुद्धमनाः ॥२९॥

अग्न्यादिकोणचतुष्टयेषु हृदयादिकवचान्तानि चत्वार्यङ्गानि अथाऽनन्तरं पूर्वादिचतुर्दिक्षु अस्त्रमङ्गं पूजयेत् ॥२९॥

शुद्ध मन से आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान दिशाओं में हृदय, सिर, शिखा, कवच की, पूर्वादि दिशाओं में उनके अंग-अस्त्रों की पूजा करे ॥२९॥

अङ्गदेवताध्यानमाह—
मुक्तेति।

मुक्तेन्दुकान्तकुवलयहरिनीलहुताशसभाः प्रमदाः।
अभयवरस्फुरितकराः प्रसन्नमुख्योऽङ्गदेवताः स्मर्याः ॥३०॥

अङ्गदेवता ध्येयाः। किम्भूताः? प्रमदाः स्त्रीस्वभावाः। पुनः किम्भूताः? मुक्ताः इन्दुकान्तश्चन्द्रकान्तमणिः कुवलयं नीलपद्मं हरिनीलः इन्द्रनीलमणिः हुताशो वह्निश्च एतेषां समानाऽऽभा प्रभा वर्णो यासान्तास्तथा। पुनः किम्भूताः? अभयेन वरेण च शोभिताः करा यासान्ताः। पुनः किम्भूताः? प्रसन्नवदनाः ॥३०॥

वनिता स्वभाव के मुक्तामणि, चन्द्रकान्त, नीलकमल, इन्द्रनीलमणि और अग्नि के समान आभा वाले, अभयवर देने के लिए उद्यत हैं करकमल जिनके, ऐसे प्रसन्न मुख कमल वाले अंग देवताओं का स्मरण करना चाहिए ॥३०॥

तृतीयमावरणमाह—
रुक्मिण्येति।

रुक्मिण्याद्या महिषीरष्टौ
सम्पूजयेद्दलेषु ततः।
दक्षिणकरधृतकमला वसुभरि
तसुपात्रमुद्रितान्यकराः ॥३१॥

ततस्तदनन्तरं दलेषु पूर्वादिपत्रेषु रुक्मिण्याद्याः अष्टौ महिषीर्मुख्या महादेवीः सम्पूजयेत् । किम्भूताः ? दक्षिणकरैर्धृतानि कमलानि याभिस्ताः तथा । पुनः किम्भूताः ? वसुपूरितपात्रैर्मुद्रिताः पूरिता अन्ये वामकरा यासां तास्तथा ।।३१।।

तृतीय आवरण में दायें करकमलों से कमलों को धारण करने वाली, वायें करकमलों से ऐश्वर्य पूर्ण स्वर्ण पात्रों को धारण करने वाली रुक्मिणी आदि अष्टमहीषियों की पूजा करे ।।३१।।

अष्टौ वर्णयति –

रुक्मिण्येति ।

रुक्मिण्याख्यासत्या सनाग्निजित्याह्वया सुनन्दा च ।
भूयश्च मित्रविन्दा सुलक्षमणा ऋक्षजा सुशीला च ।।३२।।

ऋक्षजा जाम्बवती ।।३२।।

रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, सुनन्दा, मित्रविन्दा, सुलक्ष्मणा, जाम्बवती, सुशीला, ये अष्टमहीषी हैं ।।३२।।

तासांरूपाणि दर्शयति–

तपनीयेति ।

तपनीयमरकताभाः सुसित-
विचित्राम्बरा द्विशस्त्वेताः ।
पृथुकुचभरालसाङ्गयो विविध-
मणिप्रकरविलसिताभरणाः ।।३३।।

एता रुक्मिण्याद्या द्विशः युग्मशः क्रमेण काञ्चनमरकतयोरिवाऽऽभा दीप्तिर्यासां तास्तथा पुनः । किंभूताः ? शोभमानानि शुक्लानि नानाप्रकाराणि वस्त्राणि यासान्तास्तथा पुनः किंभूताः ? अचला ये कुचास्तेषां गौरवेण अलसानि निष्क्रियाणि अङ्गानि यासान्तास्तथा । पुनः किंभूताः ? नानाप्रकारो मणिप्रकर इन्द्रनीलादिसमूहस्तेषु विशेषेण शोभितानि आभरणानि यासाम् ।।३३।।

रुक्मिणी, सत्यभामा, प्रतप्त सुवर्ण और मरकत मणि की सी आभा वाली हैं । नाग्नजिती और सुनन्दा, अत्यन्त सुन्दर सफेद धरती पर अनेक चित्र भरे

वस्त्रों को पहनने वाली हैं । मित्रविन्दा, सुलक्ष्मणा, विशाल उरजों के भार से आलस्यपूर्ण अंगों वाली हैं । जाम्बवती और सुशीला, अनेक दिव्य मणि समूहों से संगठित दिव्य आभूषणों को धारण करने वाली हैं ।।३३।।

चतुर्थावरणमाह–

तत इति ।

ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवं च देवकीम् ।
नन्दगोपं यशोदां च बलभद्रं सुभद्रिकाम् ।
गोपान् गोपीश्च गोविन्दविलीनमतिलोचनान् ।।३४।।

ततस्तदनन्तरं दलाग्रेषु पूर्वादिक्रमेण वसुदेवादीन् संपूजयेत् । किंदृशाः ? गोविन्दे विलीना संबद्धा मतिर्लोचनं येषान्ते तथा ।।३४।।

चतुर्थ आवरण में पूर्वादि दिशा क्रम से वसुदेव, देवकी, नन्द यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा, और गोप, गोपियों की जो श्रीकृष्ण में सर्मापित हैं, पूजा करे ।।३४।।

एतेषामायुधानिदर्शयति –

ज्ञानेति ।

ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपाण्डुरौ ।
दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषणे मातरौ पुनः ।।३५।।

ज्ञानमुद्रा अभयं च करेषु ययोस्तौ पितरौ वसुदेवनन्दगोपौ । कीदृशौ ? हरिद्राभश्वेतौ मातरौ देवकीयशोदे । कीदृश्यौ ? दिव्यानि देवार्हाणि माल्याम्बरभूषणानि ययोस्तादृश्यौ ।।३५।।

क्रमशः पीत और श्वेत वर्ण वाले ज्ञान मुद्रा और अभय मुद्रा को धारण करने वाले वसुदेव और नन्द हैं । दिव्यमाला, दिव्यवस्त्र, दिव्य अंगराग, दिव्याभूषणों को धारण करने वाली माता, देवकी, तथा यशोदा हैं ।।३५।।

धारयन्त्यौ च वरदं पायसापूर्णपात्रकम् ।
अरुणाश्यामले हारमणिकुण्डलमण्डिते ।।३६।।

वरदं वरदानं मुद्राविशेषं पायसापूर्णपात्रं च धारयन्त्यौ । पुनः किम्भूते ? अरुणाश्यामले । पुनः किंदृश्यौ ? हारकुण्डलाभ्यां शोभिते ।।३६।।

वरद मुद्रा, तथा पायस पूर्ण स्वर्ण पात्र को धारण करने वाली, तथा अरुण-श्याम वर्ण वाली, हार कुण्डलों से सुशोभित माता देवकी तथा यशोदा है ।।३६।।

बलः शङ्खेन्दुधवलो मुसलं लाङ्गलन्दधत् ।
हालालोलो नीलवासा हेलावानेककुण्डलः ।।३७।।

बलो बलभद्रः शङ्खेन्दुधवलः श्वेतः लाङ्गलं मुसलं बिभ्राणः । पुनः कीदृशः ? हाला माध्वी तस्याः पाने चञ्चलः अमृष्यकारी । पुनः कीदृशः ? नीलवासाः । पुनः कीदृशः ? हेलावान् लीलावान् । पुनः कीदृश. ? एककुण्डलधारी ।।३७।।

शंख और चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले, मुसल और हल को धारण करने वाले, मधुपान के प्रति चञ्चलता लिए हुए, नील वस्त्रधारी, एक कुण्डल धारण करने वाले लीलावान् श्रीबलदेवजी है ।।३७।।

कलायश्यामला भद्रा सुभद्रा भद्रभूषणा ।
वराभययुता पीतवसना रूढयौवना ।।३८।।

सुभद्रा कलायश्यामला भद्रा समीचीना भद्रभूषणा । शोभमानाभरणा । पुनः किम्भूता ? वराभययुता । पुनः किम्भूता ? पीतवसना । पुनः किम्भूता ? प्रौढयौवना ।।३८।।

सुभद्रा कलाय के समान श्याम मिश्रित वर्ण वाली, भद्रस्वभावा, सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाली, वर और अभयमुद्रा से शोभित पीतवस्त्रशालिनी रूढ यौवना हैं ।।३८।।

वेण्विति—

वेणुवीणावेत्रयष्टिशङ्खशृङ्गादिपाणयः ।
गोपा गोप्यश्च विविधप्राभृतात्तकराम्बुजाः ।
मन्दरादींश्च तद्बाह्ये पूजयेत्कल्पपादपान् ।। ३९।।

वेणुर्वंशी वीणातन्त्री वेत्रं यष्टिः शङ्खः शृङ्गादि नानावस्तु पाणौ करे येषां एवंविशिष्टा गोपाः गोप्यः पुनर्नानाप्रकारं यत्प्राभृतमुपढौकनं तेनात्तमायत्त वशीकृतं कराब्जं यासान्ताः । पञ्चमावरणमाह—

मन्दारादीनिति । तद्बाह्ये तदनन्तरं मन्दारादीन् अग्रे वक्ष्यमाणान् कल्पवृक्षान् पूजयेत् ।।३९।।

पञ्चम आवरण में वंशी, वीणा, वेत्र, यष्टि, शंख, सींग को धारण करने वाले, कबड्डी आदि क्रीड़ा के लिए अपने हाथों को सुदृढ करने वाले ऐसे गोप, तथा गोपियों की, तथा आवरण के बाहर मन्दारादि कल्पवृक्षों की पूजा करे ।।३९।।

मन्दारसन्तानकपारिजात-
कल्पद्रुमाख्यान् हरिचन्दनं च ।
मध्ये चतुर्दिक्ष्वपिवाञ्छितार्थ-
दानैकदक्षान् फलनम्रशाखान् ।।४०।।

तानेवाह मन्दारेति । कुत्र कः पूजनीयः तत्राह मध्ये इति । मध्ये कर्णिकायां प्रथमपरित्यागे मानाभावात् प्रथमनिर्दिष्टवत् पूजा चतुर्दिक्षु पूर्वादिचतुर्दिक्षु एतादृशान् वाञ्छिता आकाङ्क्षिता ये अर्थास्तेषां दाने एके अद्वितीया दक्षाः तान् तथा फलैः नम्राःशाखायेषु तान् यद्वा आकाङ्क्षितदाने अद्वितीयसमर्थान् तथा फलै नम्राः शाखा येषु तान् ।।४०।।

फलों से लदी शाखा वाले, वाञ्छित फल को देने में तत्पर, मन्दार, सन्तान, पारिजात, कल्पद्रुम, और चन्दन वृक्षों की पूजा करे ।।४०।।

षष्ठावरणमाह—
हरीति—

हरिहव्यवाट्तरणिजक्षपाचरा-
ऽप्पतिवायुसोमशिवशेषपद्मजान् ।
प्रयजेत् स्वदिक्ष्वमलधीः स्वजात्यधी-
श्वरहेतिपत्रपरिवारसंयुतान् ।।४१।।

हरिरिन्द्रः हव्यवाडग्निः तरणिजो यमः क्षपाचरो निशाचरो निर्ऋतिः अप्पतिर्वरुणः वायुः सोमः ईशः शेषोऽनन्तः पद्मजो ब्रह्मा एतान्स्वदिक्षु पूर्वादिदिक्षु निर्मलमतिः पूजयेत् । अत्र निर्ऋतिवरुणयोमध्येऽनन्तं सोमेशानयोर्मध्ये ब्रह्माणं स्वदिक्ष्वितिकथनात् अन्यत्र कल्पितपूर्वादिदिक्षु पूजाऽवगम्यते ।

तदुक्तमागमान्तरे ।

देवाग्रेस्वस्यवाप्यग्रे प्राची प्रोक्ता च देशिकैः ।
प्राची प्राच्येव विज्ञेया मुक्तये देवतार्चनमिति ।।

कीदृशान् ? स्वजातिः इन्द्रत्वादिः अधीश्वरोऽधिपतिः हेतिः शस्त्रं पत्रं वाहनं परिवारो गणः एतैः संयुक्तान् एतेषां च बीजानि उच्चारयितव्यानि । प्रयोगस्तु इं इन्द्राय सर्वसुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नम एवमन्यत्राप्यूहनीयः ।।४१।।

षष्ठावरण में निर्मल बुद्धि वाले साधक को चाहिए कि अपनी-अपनी दिशाओं में इन्द्रत्वादि जाति, ऐश्वर्य, शस्त्र, वाहन गणों से युक्त इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, शिव की पूजा करे। और निर्ऋति और वरुण के मध्य में अनन्त, सोम और ईशान के मध्य में ब्रह्मा की पूजा होती है। प्रत्येक देवता के पहले अक्षर को बीज के रूप में प्रयोग करते हुए चतुर्थी विभक्ति लगाकर पूजन करना चाहिए। प्रयोगः—इं इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सगणाय नमः हैं ॥४१॥

इदानींवर्णमाह—

कपिशेति।

कपिशकपिलनीलश्यामलश्वेतधूम्रा-
मलसितशुचिरक्ता वर्णतो वासवाद्याः।
करकमलविराजत्स्वायुधा दिव्यवेशा-
विविधमणिगणोस्रप्रस्फुरद्भूषणाढ्याः ॥४२॥

कपिशः कनकवर्णः कपिलस्ताम्रवर्णाभः श्यामलः कृष्णः श्वेतः शुक्लः धूम्रोऽसितभेदः अमलसितः श्वेतः शुचिरपि श्वेत एव रक्तो लोहित एते वासवाद्याः वर्णतो वर्णेन यथाक्रमं पूर्वोक्त क्रमतः। पुनः कीदृशाः? हस्तपद्मे शोभमानानि आयुधानि येषां ते। पुनः उत्कृष्टवेशा नानाप्रकारमणिसमूहानां पद्मरागादीनाम् उस्रेण किरणेन प्रस्फुरद्देदीप्यमानं यद्भूषणं तेनाढ्या उपचिताः शोभमाना इत्यर्थः ॥४२॥

उन दश दिक्पालों का वर्ण क्रमशः स्वर्ण, ताम्र, श्याम, श्वेत, धूम्र, श्वेत, श्वेत, रक्त है। ये दिक्पाल अपने हाथों में आयुध लिए हुए, दिव्य वेशधारी, विभिन्न पद्म रागादि मणियों की किरणों से प्रस्फुटित होने वाले आभूषणों को धारण करने वाले हैं ॥४२॥

सप्तमावरणमाह—

दम्भोलीति।

दम्भोलिशक्त्यभिधदण्डकृपाणपाश
चण्डाङ्कुशाह्वयगदात्रिशिखारिपद्माः।

अर्च्या बहिर्निजसुलक्षितमौलियुक्ताः
स्वीयायुधाभयसमुद्यतपाणिपद्माः ४३॥

दम्भोलिर्वज्रं शक्त्यभिधं शक्तिनामकमस्त्रं दण्डः कृपाणः खड्गः चण्डाङ्कुश ह्वयः उग्राङ्कुशाख्यः गदा त्रिशिखं त्रिशूलम् अरि चक्रं पद्मं च एतानि वाह्यवासवादितो बहिः सम्पूज्यानि। दम्भोलिप्रभृतयः कीदृशाः? निजसुलक्षितमौलियुक्ताः वज्रादिलाञ्छितमुकुटाः, पुनःस्वस्वायुधैरस्त्रैरभयेन च समुद्यतं सुलक्षितं हस्तपद्मं येषां ते तथा ॥४३॥

सप्तमावरण में वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, चक्र, पदम, ये आयुध पूज्य हैं। इन्द्रादि देवताओं के बाहर इनकी पूजा होनी चाहिए। ये आयुध अपने-अपने आश्रय से सम्बन्धित होते हैं, किंवा आयुध चिह्न भूषित आभूषणों को देवता धारण करते हैं, इसलिए वे अपने को सदा सुरक्षित समझते हैं, अतः हाथों को निर्भय पूर्वक ऊपर उठाए हुए होते हैं ॥४३॥

वज्रादीनांवर्णमाह—

कनकेति।

कनकरजततोयदाभ्रचम्पा-
रुणहिमनीलजवाप्रबालभासः।
क्रमत इति रुचा तु वज्रपूर्वा-
रुचिरविलेपनवस्त्रमाल्यभूषाः ॥४४॥

वज्रपूर्वाः वज्राद्याः रुचा वर्णेन क्रमतोऽनुक्रमेणैवंरूपा ज्ञेयाः। पुनः कीदृशाः? काञ्चनं रौप्यं तोयदो मेघः अभ्रं मेघः चम्पकपुष्पम् अरुणो रक्तः हिमं श्वेतः नीलः श्यामलःजवा ओण्ड्रपुष्पं प्रबालो नवपल्लवः एवंभूता दीप्तिर्येषान्ते तथा। पुनः कीदृशाः? रुचिरं मनोहरं विलेपनं चन्दनादि वस्त्रं माल्यं भूषणं च येषान्ते तथा ॥४४॥

वज्र आदि आयुधों का वर्ण क्रमशः स्वर्ण, रजत, मेघ, चम्पापुष्प, अरुण, श्वेत, श्याम, जवाकुसुम, नव पल्लव के समान है, जो सुन्दर चन्दन, वस्त्र, माला, आभूषणों से सुशोभित हैं ॥४४॥

पूर्वोक्तमुपसंहरति—

कथितमिति।

कथितमावृतिसप्तकमच्युता-
र्चनविधाविति सर्वसुखावहम् ।
प्रयजतादथवाऽङ्गपुरन्दरा
शनिमुखैस्त्रितयावरणं त्विदम् ॥४५॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण विष्णुपूजाविधौ आवरणसप्तकं कथितं । कीदृशं ? सकलसुखार्थदायकम् ? अशक्तं प्रत्याह प्रयजतादिति । पूर्वोक्ताशक्तः त्रितयावरणम् आवरणत्रयसहितं प्रयजेत् । कैः ? अङ्गम् इन्द्रवज्रं एतन्मुखैरेतत्प्रधानैरित्यर्थः ॥४५॥

सर्व सुख प्रदान करने वाली सप्तावरण पर्यन्त की श्रीकृष्ण की पूजा विधि यहां कही गई है । जो असक्त है सप्तावरण पूजा नहीं कर सकता, उसे तीन आवरण तक की पूजा करनी चाहिए ॥४५॥

प्रकृतमुपसंहरन्पूजान्तरमाह ।

इत्यर्चयित्वेति ।

इत्यर्चयित्वा जलगन्धपुष्पैः
कृष्णाष्टकेनाऽप्यथ कृष्णपूजाम् ।
कुर्याद् बुधस्तानि समाह्वयानि ।
वक्ष्यामि तारादिनमोन्तकानि ॥४६॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण जलगन्धपुष्पैः पूजयित्वा अथानन्तरं कृष्णाष्टकेन वक्ष्यमाणेन बुधः पण्डितः कृष्णपूजां कुर्यात् तानि । समाह्वयानि नामानि प्रणवादिनमोन्तकानि वक्ष्यमाणानि ॐ कृष्णायनम इत्यादीनि ॥ ४६ ॥

जल, चन्दन, पुष्पादि से पूर्वोक्त विधिपूर्वक, अर्चना करने के बाद कृष्ण नामाष्टक से श्रीकृष्ण की पूजा करे । श्रीकृष्ण के आठ नाम जिनके आदि में प्रणव, अन्त में नमः लगाकर बोले जाते हैं, उनको आगे कहूँगा ॥४६॥

तान्येव दर्शयति—

श्रीकृष्णइत्यादि ।

श्रीकृष्णो वासुदेवश्च नारायणसमाह्वयः
देवकीनन्दनो यदुश्रेष्ठो वार्ष्णेय इत्यपि ॥४७॥

असुरान्तकशब्दान्ते भारहारीति सप्तमः ।
धर्मसंस्थापकश्चाऽष्टौ चतुर्थ्यन्ताः क्रमादिमे ॥४८॥

असुरान्तकशब्दान्ते भारहारीत्यर्थः । इमे कृष्णादयः शब्दाः क्रमादेकैकशः प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्तकाश्च विज्ञेयाः ॥४७॥४८॥

श्रीकृष्ण, वासुदेव, नारायण, देवकीनन्दन, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, असुरान्तक भारहारी, धर्मसंस्थापक, ये श्रीकृष्ण के आठ नाम हैं, इनमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर पूजा करनी चाहिए । प्रयोग—ॐ श्रीकृष्णाय नमः आदि है ॥४७॥४८॥

अत्यन्ताशक्तं प्रत्याह—

एभिरिति ।

एभिरेवाऽथवा पूजा कर्तव्या कंसवैरिणः ।
संसारसागरोत्तीर्त्यै सर्वकामाप्तये बुधैः ॥४९॥

अथवा एभिरेव कृष्णादिभिः शब्दैः कंसवैरिणः श्रीकृष्णस्य पूजा बुधैः पण्डितैः कर्तव्या । किमर्थ ? संसार एव सागरः तस्य उत्तीर्त्यै उत्तरणाय । पुनः किमर्थं ? सकलमनोरथप्राप्त्यर्थम् ॥४९॥

साधकों को संसार सागर से पार होने के लिए और सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धि के लिए उक्त नामों से श्रीकृष्ण की अर्चना करनी चाहिए ॥४९॥

धूपदानविधिं दर्शयति—

साराङ्गारे इति ।

साराङ्गारे घृतविलुलितैर्जर्जरैः संविकीर्णै
र्गुग्गुलवाद्यैर्घनपरिमलैर्धूपमापाद्य मन्त्री ॥
दद्यान्नीचैर्दनुजमथनायाऽपरेणाऽथ दोष्णा
घण्टां गन्धाक्षतकुसुमकैरर्चितां वादयानः ॥५०॥

साराङ्गारे दृढकाष्ठाङ्गारे । खादिराङ्गारे इति त्रिपाठिनः । संविकीर्णैः क्षिप्तैः गुग्गुल्वाद्यैः गुग्गुलुशर्करामधुचन्दनागुरुशीरैः घृतविलुलितैर्घृतप्लुतैः जर्जरैः कुट्टनेन चूर्णितैर्घनपरिमलैर्निबिडसौरभशालिभिः धूपमापाद्य कृत्वा मन्त्री उपासकः नीचैर्नाभिप्रदेशे दनुजमथनाय गोपाल-

कृष्णाय दद्यात् । किङ्कुर्वन् ? अथा ऽनन्तरम् अपरेण वामेन दोष्णा हस्तेन गजध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति घण्टाम्बादयन् । किम्भूतां ? गन्धाक्षतपुष्पैः पूजिताम् ।।५०।।

कड़े (खदिर) काष्ट के प्रज्वलित अंगारों में गुग्गुल उशीर आदि तीव्र सुगन्धित वस्तुओं के घृत प्लुत चूर्णों को धूपदानी में डालकर दायें हाथ से भगवान् के नाभि प्रदेश पर दिखावे, बायें हाथ से चन्दन अक्षत कुसुमों से अर्चित घंटा बजावे ।।५०।।

दीपदाने विधिं दर्शयति –

तद्वदिति ।

तद्वद्दीपं सुरभिघृतसंसिक्तकर्पू रवर्त्या
दीप्तं दृष्टयाद्यतिविशदधीः पद्मपर्यन्तमुच्चैः ।।
दत्वा पुष्पाञ्जलिमपि विधायाऽर्पयित्वा च पाद्यं
साचामं कल्पयतु विपुलस्वर्णपात्रे निवेद्य ।।५१।।

तद्वदापाद्य दीपं कुर्यात् । कया ? सुरभि सुगन्धि यद्घृतं तेन सिक्ता उक्षिता कर्पूरसहिता वर्त्तिः तया । कीदृशं ? दृष्टया दीप्तं, दृष्टिमनोहरमिति रुद्रधरः । पद्मपर्यन्तं मस्तकपर्यन्तमुच्चैरुपरि दत्वा दृष्टयादोति दक्षिणावर्त्तन पद्मपर्यन्तं चरणकमलपर्यन्तमिति त्रिपाठिनः। पादपर्यन्तमिति क्वचित्पाठः । अनन्तरं पुष्पाञ्जलिमपि शिरसि दत्वा-पाद्याचमनीये च दत्वा विपुलस्वर्णपात्रे वृहत्कनकभाजने नैवेद्यङ्कल्पयतु सम्पादयतु । साचामम् आचमनसहितं प्रथमं वदनेत्यादिभिराचमनन्दत्वा अनन्तरं नैवेद्यन्ददात्वित्यर्थः ।।५१।।

जिस रीति से धूप किया उसी रीति से सुगन्धित घृत से संसिक्त कपूर युक्त बत्ती से, जो दिखने में भी सुन्दर हो दक्षिणावर्त से पद कमल से सिर पर्यन्त अथवा सिर से पद कमल पर्यन्त दीप दर्शन करावे । इसके अनन्तर पुष्पाञ्जलि, पाद्य, आचमनीय समर्पण करे, तत्पश्चात् विशाल स्वर्ण पात्र में नैवेद्य निवेदन करे ।।५१।।

नैवेद्यस्वरूपं दर्शयति—

सुरभीति ।

सुरभितरेण दुग्धहविषा सुभृतेन सिता-
ससमुपदंशकैरुचिरहृद्यविचित्ररसैः ।

दधिनवनीतनूतनसितोपलपूपपुलि-
घृतगुडनारिकेलकदलीफलपुष्परसैः ।।५२।।

अतिसुरभिणा दुग्धान्नेन सुशृतेन सुपक्वेन सितासमुपदेशकैः शर्करा-व्यञ्जनैः सह । शर्करयासहउपदंशकैर्व्यञ्जनैरितित्रिपाठिनः । अस्मिन्पक्षे शुचितेन सितासमुपदंशकैरितिपाठः । रुचिर इच्छाकरः हृद्यः सुस्वादः विचित्रो मधुरादिरसो येषु तैः नूतनं श्रेष्ठं सितोपलं खण्डादिप्रसिद्ध पुष्परसो मधु एतैर्द्रव्यैर्नैवेद्यं कल्पयतु ।।५२।।

बढ़िया तरीके से पका, सुगन्धित शर्करायुक्त पायस के साथ व्यञ्जन, कुछ चबाए जाने वाले अचार, अनेक रस विशिष्ट साग, दही, नवनीत, नवीन मिश्री, पूआ, पूड़ी, घी, गुड़, नारियल, केला आदि फल और अन्य पुष्प-फल रसों से स्वादु नैवेद्य समर्पण करे ।।५२।।

किंविशिष्टं नैवेद्यं कल्पयतु तत्राह—

अस्त्रोक्षितमिति ।

अस्त्रोक्षितं तदरिमुद्रिकयाऽभिरक्ष्य
वायव्यतोयपरिशोषितमग्निदोष्णा ।
संदह्य वामकरसौधरसाभिपूर्णं
मन्त्रामृतीकृतमथाऽभिमृषन्प्रजप्यात् ।।५३।।
मनुमष्टशः सुरभिमुद्रिकया
परिपूर्णमर्चयतुगन्धमुखैः ।
हरिमर्चयेदथ कृतप्रसवा-
ञ्जलिरास्यतोऽस्य प्रसरेच्च महः ।।५४।।

मूलमन्त्रास्त्रमन्त्रेणाऽस्त्रायफडित्यनेन वा उक्षितं सिक्तं चक्रमुद्रया-ऽभिरक्ष्य वायव्येति वायुवीजजप्तोदकप्रोक्षणपरिशोषितदोषम् अग्नि-दोष्णा संदह्येति रमितिवह्निबीजाभिजप्तदक्षिणकरेण स्पृष्ट्वा दोषान् दग्ध्वा वामकरसौधरसाभिपूरणमिति वामहस्तेन पिधाय वंबीजजपेना-ऽमृतरसाभिपूर्णं विचिन्त्य मूलमन्त्रेणाऽमृतरूपं विचिन्त्याऽथाऽनन्तरं तदेतादृशं नैवेद्यम् अभिमृशन् स्पृष्ट्वा मनुं मन्त्रम् अष्टशः अष्टवारं प्रजपतु सुरभिमुद्रिकया धेनुमुद्रिकया परिपूर्णं नैवेद्यं विचिन्त्य गन्धमुखैः

चन्दनाद्यैः पूजयतु। दानप्रकारं दर्शयति हरिमित्यादिना। कृतप्रसवाञ्जलिर्हरिं प्रत्यर्चयेत् नैवेद्यग्रहणायाऽऽस्यतस्तेजो निःसरत्विति प्रार्थयेत् अथानन्तरम् अस्य हरेरास्यतो मुखतस्तेजो निःसरेत् प्रसरत्विति चिन्तयेत्। नैवेद्ये संयोजयेदिति त्रिपाठिनः ।।५३।।५४।।

मूल मन्त्र अथवा अस्त्राय फट् इस मन्त्र से सेचन करके चक्र मुद्रा से नैवेद्य की रक्षा करे। इसके बाद यं इस वायु बीज को जपते हुए यह समझे कि इससे निःसृत जलधारा से नैवेद्यगत दोष चला गया, और रं इस अग्नि बीज को जपते हुए दायें हाथ से स्पर्श कर नैवेद्यगत दोषों को जल जाने की भावना करे। फिर बायें हाथ से ढककर वं इस अमृत (वरुण) बीज को जपकर नैवेद्य का अमृतीकरण करे। तदनन्तर नैवेद्य को सुरभि मुद्रा दिखाकर पुनः स्पर्श करते हुए आठ वार मूल मन्त्र जपे। और केसर चन्दन से नैवेद्य की पूजा करे। और हाथ में पुष्प लेकर भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना करके यह भावना करे कि भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से ऐसे तेजोनिःसरण हुआ जो सीधे नैवेद्य में व्याप्त हो गया ।।५३।।५४।।

वीतिहोत्रदयितान्तमुच्चरन्
मूलमन्त्रमथनिक्षिपेज्जलम्।
अर्पयेत्तदमृतात्मकं हवि-
र्दोर्युजा सकुसुमं समुद्धरन् ।।५५।।

अथानन्तरं वीतिहोत्रदयितान्तं स्वाहाकारान्तं मूलमन्त्रमुच्चरन् किञ्चिज्जलन्तदुपरि क्षिपेत् प्रोक्षयेत्। अत्र स्वाहान्तेपि मन्त्रे पुनः स्वाहापदप्रयोगः कार्यः एतद्बलादेव अनन्तरन्दोर्युजा हस्तद्वयेन सकुसुमं सपुष्पं समुद्धरन् उत्तोलयन् तदमृतात्मकं हविः समर्पयेत् ।।५५।।

स्वाहा पद है अन्त में जिसके ऐसे मूल मन्त्र के अन्त में स्वाहा पद का उच्चारण करते हुए नैवेद्य में पवित्र जल छोड़े। उस अमृतमय नैवेद्य को अपने दोनों हाथों से उठाकर भगवान् को समर्पण करे ।।५५।।

नैवेद्यार्पणमन्त्रमाह—

निवेदयामीति।

निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे।
निवेद्यार्पणमन्त्रोऽयं सर्वार्चासु निजाख्यया ।।५६।।

अयं मन्त्रः सर्वासु देवानां पूजासु निजाख्ययेति हरे इत्यस्मिन्

स्थाने यस्मै देवाय दीयते तन्नामग्रहणं कर्तव्यमितिनिजाख्याशब्दार्थः। निवेद्याख्ययेति केचित् ।।५६।।

हे भगवन्! आपको मैं यह परम पवित्र अमृतमय नैवेद्य समर्पण करता हूँ, कृपा कर इसे स्वीकार करें। जिस देवता को नैवेद्य देना है उसी का सम्बोधन करना चाहिए ।।५६।।

विशेष—नैवेद्य समर्पण मन्त्र—निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे!

भोजनोपयोगिमुद्राविशेषं दर्शयति—

ग्रासेति।

ग्रासमुद्रां वामदोष्णा विकचोत्पलसन्निभाम्।
प्रदर्शयेद्दक्षिणेन प्राणादीनां च दर्शयेत् ।।५७।।

वामदोष्णा ग्रासमुद्रां दर्शयेत्। किम्भूतां? प्रफुल्लोत्पलसदृशीम्। अनन्तरं दक्षिणहस्तेन प्राणादीनां वक्ष्यमाणां मुद्रां दर्शयेदिति ।।५७।।

वाम हस्त से प्रफुल्ल कमलाकार ग्रास मुद्रा दिखावे। दक्षिण हस्त से प्राण मुद्रा दिखावे ।।५७।।

प्राणादीनां मुद्रां दर्शयति—

स्पृशेदिति।

स्पृशेत्कनिष्ठोपकनिष्ठिके द्वे
अङ्गुष्ठमूर्द्ध्ना प्रथमेह मुद्रा।
तथाऽपरा तर्जनिमध्यमे स्या
दनामिकामध्यमिके च मध्या ।।५८।।

अनामिकातर्जनिमध्यमाः स्या
त्तद्वच्चतुर्थी सकनिष्ठिकास्ताः।
स्यात्पञ्चमी तद्वदिति प्रदिष्टाः
प्राणादिमुद्रा निजमन्त्रयुक्ताः ।।५९।।

कनिष्ठोपकनिष्ठिके कनिष्ठानामिके द्वे स्वाङ्गुष्ठमूर्द्ध्ना स्पृशेत्। इह मुद्रा प्रथमा तथा तर्जनीमध्यमे स्वाङ्गुष्ठमूर्द्ध्ना स्पृशेत् अनामिकामध्यमिके च तेन स्पृशेदेवं व्यानमुद्रा अनामातर्जनीमध्यमा, तेन

स्पृशेत् चतुर्थी उदानस्य तास्तिस्रः कनिष्ठासहिताः तद्वत् स्वाङ्गुष्ठ-मूर्द्धर्ना यदि स्पृशेत्तदा समानमुद्रा इत्यनेन प्रकारेण प्राणादिमुद्राः प्रदिष्टाः कथिताः। किम्भूताः ? यथायोग्यस्वमन्त्रसहिताः मन्त्रसाहित्येन तासां मुद्रात्वम्भवति विल्वमुद्रावदित्यर्थः। ५८ ५९।

कनिष्ठिका और अनामिका से अंगुष्ठ के अग्रभाग का स्पर्श करने पर प्राण मुद्रा होती है। तर्जनी मध्यमा से अंगुष्ठाग्र भाग को स्पर्श करने पर अपान मुद्रा होती है। अनामिका मध्यमा से अंगुष्ठ स्पर्श करने पर व्यान मुद्रा, अनामिका, तर्जनी, मध्यमा से अंगुष्ठ स्पर्श करने पर उदान मुद्रा, और कनिष्ठिका के साथ अनामिका, तर्जनी, मध्यमा से अंगुष्ठ स्पर्श करने पर समान मुद्रा होती है। मन्त्र के अनुरूप मुद्राएं होती हैं ॥५८॥५९॥

के ते मन्त्रा इत्याकाङ्क्षायां प्राणादीनां मन्त्रानाह—

प्राणेति।

प्राणापानव्यानोदानसमानाः क्रमाच्चतुर्थ्यन्ताः।
ताराधारा वध्वा चेद्धाः कृष्णाध्वनस्त्विमे मनवः ॥६०॥

प्राणादयः पञ्च क्रमाच्चतुर्थीविभक्तिसहिताः तथा ताराधाराः ॐकाराधाराः प्रणवाद्या इत्यर्थः। तथा कृष्णाध्वनोऽग्नेर्वध्वा प्रियया इद्धा उद्दीप्ताः सम्बद्धाः स्वाहाकारान्ता इत्यर्थः। एवं च सति ॐप्राणाय-स्वाहाइत्याद्याः पञ्च मन्त्रा भवन्तीत्यर्थः ॥६०॥

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ये पांच वायुओं को चतुर्थी विभक्ति सहित आदि में ॐ अन्त में स्वाहा का प्रयोग करने पर ॐ प्राणाय स्वाहा। इत्यादि मन्त्र सम्पन्न होते हैं ॥६०॥

निवेद्यमुद्रां प्रदर्शयन्मंत्रं च दर्शयति—

ततो निवेद्य मुद्रिकां प्रधानया करद्वये।
स्पृशन्ननामिकां निजं मनुं जपन् प्रदर्शयेत् ॥६१॥

ततस्तदनन्तरं निवेद्यमुद्रां प्रदर्शयेत्। किंकुर्वन् करद्वये करयोरनामिकां प्रधानया ऽङ्गुष्ठेन स्पृशन्। पुनः किंकुर्वन् ? निजं स्वीयं मनुं-मन्त्रं प्रजपन् ॥६१॥

दोनों हाथों की अनामिकाओं को अंगुष्ठ से स्पर्श करने पर निवेद्य मुद्रा होती है। वक्ष्यमाण मन्त्र को जपते हुए निवेद्य मुद्रा दिखानी चाहिए ॥६१॥

मन्त्रमुद्धरति—

नन्देति।

नन्दजोऽम्बुमनुबिन्दुयुङ्नतिः
पार्श्वरामरुदवात्मने ऽनि च।
रुद्धङेयुक्निवेद्य मात्मभू
र्मांसपार्श्वमनिल स्तथाऽमियुक् ॥६२॥

नन्दजः ठकारः अम्बु वकारः मनुः औकारः बिन्दुः एतैर्युक्ता नति-र्नमः पार्श्वः पकारः राइति स्वरूपं मरुत् यकारः अवात्मने इति ऽनिस्वरूपं रुद्ध इति स्वरूपं ङे चतुर्थी अनिरुद्धशब्दश्चतुर्थीयुक्त इत्यर्थः। निवेद्यमिति त्रयः आत्मभूः ककारः मांसो लकारः पार्श्वः पकारः लकार-यकाराभ्यां युक्तोऽनिलो यकारः अमीति स्वरूपं तथा ठ्वौंनमः परायाऽवात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि इतिमन्त्रः ॥६२॥

निवेदन मन्त्र का उद्धार किया जाता है। नन्द=ठ, अम्बु=व, मनु=औ, बिन्दु=अनुस्वार, नतिः=नमः, पार्श्व=प, रा, मरुत्=य, अवात्मने, अनि, रुद्ध, (चतुर्थ्यन्त) निवेद्य, आत्मभूः=क, मांसः=ल, पार्श्वः=प, अनिलः=य, आमि, अर्थात् ठ्वौं नमः परायावात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि, यह मन्त्र है ॥६२॥

मण्डलमभित इति—

मण्डलमभितो मन्त्री
बीजाङ्कुरभाजनानि विन्यस्य।
पिष्टमयानपिदीपान्
घृतपूर्णान्विन्यसेत्सुदीप्तशिखान् ॥६३॥

मण्डलपरितो बीजाङ्कुरपात्राणि संस्थाप्य तथैव पिष्टकृतान् घृतपरिपूर्णान् प्रज्वलितशिखान् प्रदीपान् स्थापयेत् ॥६३॥

मण्डल के चारों ओर बीज, अंकुर पात्रों की स्थापना करे। और पिष्ट निर्मित घृत पूर्ण दीपमाला की भी स्थापना करे ॥६३॥

दीक्षाङ्गहोमविधिं दर्शयति—

अथेति।

अथ संस्कृते हुतवहेऽमलधी-
रभिवाह्य सम्यगभिपूज्य हरिम् ।
जुहुयात् सिताघृतयुतेन पयः-
परिसाधितेन सितदीधितिना ।।६४।।

अष्टोत्तरं सहस्रं समाप्य होमं पुनर्बलिदद्यात् ।
राशिष्वधिनाथेभ्यो नक्षत्रेभ्यस्ततश्च करणेभ्यः ।।६५।।

अथानन्तरं शास्त्रोक्तसंस्कारैः संस्कृते वह्नौ निर्मलबुद्धिः यथोक्तरूपं हरिमावाह्य गन्धादिभिश्च यथाविधि संपूज्याऽष्टोत्तरसहस्रं जुहुयात् । केन सितदीधितिना भक्तेन कीदृशेन पयः परिसाधितेन दुग्धपरिपाचितेन परमान्नेनेत्यर्थः । पुनः कीदृशेन ? सिताघृतयुतेन शर्करा-घृतसहितेन अनन्तरं यथोक्तहोमं समाप्याऽवशिष्टपरमान्नेन राशिषु मेषादिषु अधिनाथेभ्यो राशिदेवताभ्यो मङ्गलादिभ्यः नक्षत्रेभ्योऽश्विन्यादिभ्यः करणेभ्यो ववादिभ्यो बलिं दद्यात् । प्रयोगस्तु मेषवृश्चिकाधिपतये मङ्गलाय एष बलिर्नमः एवं वृषतुलाधिपतये शुक्राय मिथुनकन्याधिपतये बुधाय कर्कटाधिपतये चन्द्राय सिंहाधिपतये सूर्याय धनुर्मीनाधिपतये गुरवे मकरकुम्भाधिपतये शनये एष बलिर्नमः एवम् अश्वनीभरणीकृत्तिकापादीयमेषराशये एष बलिर्नम इत्यादि एवं ववबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिभ्यः एष बलिर्नमः ।।६४।।६५।।

इसके बाद गुरु को चाहिए कि शास्त्रोक्त विधि से संस्कृत अग्नि में भगवान् श्रीकृष्ण को आवाहित करके पूजा करने के बाद सफेद दिखाई पड़ने वाली घृत शर्करामिश्रित खीर से हवन करे ।

इस प्रकार अष्टोत्तर सहस्र संख्या से हवन करने के बाद हुत शेष परमान्न से राशियों के स्वामी नव ग्रह, नक्षत्रों के स्वामी, और वव आदि करणों के लिए बलि प्रदान करे ।।६४।।६५।।

पूजानन्तरं प्रकारमाह—
सम्पाद्येति ।

सम्पाद्य पानीयसुधां समर्प्य
दत्वाऽम्भ उद्वास्य मुखार्चिरास्ये ।
नैवेद्यमुद्धृत्य निवेद्य विष्वक्-
सेनाय पृथ्वीमुपलिप्य भूयः ।।६६।।

पानीयमेव धेनुमुद्रया सुधां कृत्वा पानार्थं कृष्णाय समर्प्याऽम्भो दत्वा जलमाचमनार्थं दत्वा मुखार्चिर्देवमुखान्नैवेद्येऽवतारितं तेजः आस्ये देवमुखे उद्वास्य निवेश्य नैवेद्यमुत्तोल्य विश्वक्सेनाय देवगणाय नैवेद्यं समर्प्य पृथिवीमुपलिप्य ।।६६।।

धेनु मुद्रा से जल को अमृत बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण के लिए समर्पण करे । जो भगवान् का तेज नैवेद्य पर भावना से आवाहित था, उसे भगवान् के मुखारविन्द में पहुंच जाने की भावना करे और उस यथास्थान स्थापित नैवेद्य को उठाकर लिपी हुई भूमि पर विश्वक्सेन के लिए समर्पण करे ।।६६।।

गण्डूषदन्तधवनाचमनास्यहस्त-
मृज्यानुलेपमुखवासकमाल्यभूषाः ।
ताम्बूलमप्यभिसमर्प्य सुवाद्यनृत्य-
गीतैः सुतृप्तमभिपूजयतात्पुरेव ।।६७।।

भूयः पुनरपि गण्डूषं चुलुकोदकं दन्तधवन दन्तकाष्ठं । दन्तधवनन्दन्तधावनमितित्रिपाठिनः । आचमनं शेषाचमनं द्विराचमनम् आस्यहस्तयोर्मृज्यं मुखहस्तयोः प्रोञ्छनवस्त्रम् अनुलेपश्चन्दनादिः मुखं वास्यते सुरभि क्रियते अनेनेति मुखवासः कर्पूरादि माल्यं पुष्पं भूषाऽलङ्करणं ताम्बूलमपि समुच्चये एतानि समर्प्य पुनरेव यथापूर्वं पूजाकृता एवं सुवाद्यनृत्यगीतैः सुतृप्तंहरिं नत्वा अभिपूजयेत् ।।६७।।

कुल्ला, दन्त शुद्धि, आचमन, मुख-कर पोंछने के लिए रुमाल, पुनः चन्दनादि लेप, मुख शुद्धि के लिए लवंग आदि अर्पण करना, माला अलंकारों से विभूषित करना तथा ताम्बूल समर्पण आदि सेवा करने के बाद अत्यधिक तृप्त हुए श्रीकृष्ण की पूजा और वाद्य वादन, नृत्य गानों से भगवान् को प्रसन्न करे ।।६७।।

गन्धादिभिः सपरिवारमथाऽर्घमस्मै
दत्वा विधाय कुसुमाञ्जलिमादरेण ।
स्तुत्वा प्रणम्य शिरसा चुलुकोदकेन
स्वात्मानमर्पयतु तच्चरणाब्जमूले ।।६८।।

कैः ? गन्धादिभिः सपरिवारं पूर्वोक्तावरणसहितम् अथानन्तरम् अस्मै हरये अर्घ्यं दत्वा आदरेण पुष्पाञ्जलिन्दत्वा स्तुत्वा शिरसा प्रणम्य तच्चरणारविन्दमूले स्वात्मानं चुलुकेन अर्घ्यशेषजलेन समर्प्पयतु ।। ६८ ।।

चन्दन पुष्पादियों से श्रीराधा सहित (आवरण सहित) श्रीकृष्ण की पूजा करके, अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर आदरपूर्वक पुष्पाञ्जलि समर्पण करके विभिन्न स्तोत्रों द्वारा स्तुति, सिर से प्रणाम करे। और अर्घ्य शेष जल को हाथ में लेकर अपने को भगवान् के चरणारबिन्द में समर्पण करे ।।६८।।

आत्म समर्पण मन्त्र—इतः पूर्वं प्राण बुद्धि देह धर्माधिकारतो इत्यादि .... ॐ तत्सत् इति।

आत्मनः समर्प्पणमन्त्रमाह—

इत इत्यादिना स्वात्मसमर्प्पणे इत्यन्तेन ग्रन्थेन।

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं च सकलं हरये सम्यगर्प्पये ॐतत्सदिति च प्रोक्तमन्त्रः स्वात्मसमर्पणे ।।

अनुस्मरन्कलशगमच्युतं जपेत्
सहस्रकं मनुमथ साष्टकं बुधः।
वपुष्यथो दितिजजितः समावृती-
विलाप्य तास्तदपि नयेत्सुधात्मताम् ।।६९।।

एतच्च मन्त्रत्रयं स्पष्टत्वान्नलिख्यते

अनुस्मरन्निति—

अथानन्तरं बुधः पण्डितः कलशगङ्कुम्भादिनिष्ठं हरिञ्चिन्तयन् साष्टकम् अष्टसहितं सहस्रं मनुं मन्त्रं जपेत् अथानन्तरं दितिजजितः श्रीकृष्णस्य वपुषि शरीरे ताः पूर्वोक्ताः समावृतीः आवरणदेवता विलाप्य विलीना इति विचिन्त्य तदपि देववपुः सुधात्मताम् अमृतता नयेत् ।।६९।।

इसके बाद कलश पर आवाहित श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए मूल मन्त्र को १००८ वार जपे। भगवान् श्रीकृष्ण में सम्पूर्ण आवरण देवताओं को विलीन समझ कर भगवान् के दिव्य विग्रह को अमृतमय समझे ।।६९।।

ध्वजेति—

ध्वजतोरणदिक्कलशादिगता-
मपि मण्डपमण्डलकुण्डगताम्।
अभियोज्य चितिं कलशे कुसुमैः
परिपूज्य जपेत्पुनरष्टशतम् ।।७०।।

कलशे चितिं मन्त्रदेवतां चैतन्यरूपम् अभियोज्य कुसुमैः पुष्पैः सम्पूज्य पुनरष्टसहितं शतं जपेत्। किम्भूतां? चितिं ध्वजतोरण-दिक्कलशादिगतां न केवलं ध्वजादिगताम् अपितु मण्डले मण्डपे कुण्ड-गताम् ।।७०।।

कलश में चैतन्य रूप मन्त्र देवताओं की स्थिति तथा ध्वज, तोरण, दिक्कलश, मण्डल, मण्डप, कुण्ड, किंवा सर्वगत देवताओं की स्थिति जानकर चन्दन पुष्पों से पूजा करके १०८ वार मन्त्र का जाप करे ।।७०।।

अथेति—

अथ शिष्य उपोषितः प्रभाते कृतनैत्यः सुसिताम्बरः सुवेशः।
धरणीधनधान्यगोकुलैर्धिनुयाद्विप्रवरान् हरेः प्रसत्त्यै ।।७१।।

अथानन्तरम् उपोषितः कृतोपवासः शिष्यः प्रभाते प्रातःकाले कृतनित्यकृत्यः शुक्लवस्त्रधरः सुवेशः शोभनभूषणः धरणी पृथिवी धनं सुवर्णादि धान्यं व्रीह्यादि गौर्दोग्ध्नी दुकूलं पट्टवस्त्रम् एतैर्यथा योग्यं विप्रवरान् ब्राह्मणश्रेष्ठान् धिनुयात् प्रीणयेत्। किमर्थं? हरेः श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थम् ।।७१।।

अब शिष्य का कर्तव्य बताया जाता है। शिष्य को चाहिए कि उपवास व्रत करके दूसरे दिन प्रातःकालीन नित्य कर्म करे, श्वेताम्बर धारण करे, वेश सुन्दर होना चाहिए। पृथिवी, धन, धान्य गौओं के दान से ब्राह्मणों को प्रसन्न करे, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हो जाएं ।।७१।।

भूय इति—

भूयः प्रतर्प्य प्रणिपत्य देशिकं
तस्मै परस्मै पुरुषाय देहिने।
तां वित्तशाठ्यं परिहृत्य दक्षिणां
दत्वा तनुं स्वां च समर्प्पयेत्सुधीः ।।७२।।

क्षआदिर्येषां तैः आन्तैः अकार अन्तो येषां तैर्वर्णैर्मातृकाक्षरैर्मूलमन्त्रत्रिजपावसानैरभिषिक्तशरीरः शिष्यः धृतनवीनातिशुक्लवसनयुगलः मौनी कृतद्विराचमनः ।।७६।।

मूल मन्त्र को तीन वार जपने के बाद मातृकाक्षरों के प्रतिलोम क्रम से अर्थात् क्ष से आरम्भ कर अकार पर्यन्त के अक्षरों के न्यासों से शिष्य का शरीर पूर्ण बनावे। शिष्य को चाहिए कि दो शुद्ध वस्त्रों को पहनकर आचमन के बाद प्राणायाम करे ।।७६।।

बहुशः प्रणम्य देशिकनामानं हरिमथोपसङ्गम्य ।

तद्दक्षिणत उपास्तामभिमुखमेकाग्रमानसः शिष्यः ।।७७।।

बहुवारं देशिकनामानं गुरुरूपं हरिं नत्वा अथानन्तरम् उपसंगृह्य गुरुचरणौ व्यस्तहस्तद्वयं कृत्वा तद्दक्षिणतो गुरुदक्षिणे अभिमुखं गुरुसन्मुखम् एकाग्रमानसः एकचित्तस्तिष्ठेत् उपविशेत् ।।७७।।

शिष्य श्रीकृष्ण स्वरूप आचार्य के पास जाकर प्रणाम करके एकाग्रमना होकर आचार्य के दायीं ओर बैठे ।।७७।।

न्यासैरिति ।

न्यासैर्यथाविधि तमच्युतसाद्विधाय

गन्धाक्षतादिभिरलङ्कृतवर्ष्मणोऽस्य ।

ऋष्यादियुक्तमथ मन्त्रवरं यथावद्

ब्रूयात्त्रिशो गुरुरनर्घ्यमवामकर्णे ।।७८।।

अथानन्तरं यथाविधि यथोक्तप्रकारेण न्यासैः पञ्चाङ्गन्यासादिभिः ते शिष्यम् अच्युतसाद्विधाय श्रीकृष्णरूपं कृत्वा गन्धाक्षतपुष्पैः विभूषितशरीरस्याऽस्य अवामकर्णे दक्षिणकर्णे ऋषिच्छन्दोदेवतासहितम् अनर्घ्यममूल्यं मन्त्रवरं मन्त्रश्रेष्ठं त्रिशः त्रिवारं ब्रूयात् यथावत् यथोक्तप्रकारेण स च प्रकारः प्रथमं दक्षिणहस्ते गुरुर्जलं ददाति अमुकमन्त्रं ददामीति अनेन शिष्योऽपि ददस्व इति ब्रूयात् ततो मन्त्रं दद्यादिति अत्राऽवश्यं वारत्रयं गुरुणा मन्त्रः पठनीयः दत्ते यावच्छिष्यस्य मन्त्रः स्वायत्तो भवति तावत्पठनीय इति ।।७८।।

आचार्य, शिष्य को यथाविधि सभी न्यासों से श्रीकृष्णमय बनाकर चन्दन अक्षतादि से जिसका शरीर भूषित हो गया है, ऐसे शिष्य के दक्षिण कान में ऋषि देवता, छन्द सहित अमूल्य मन्त्र को तीन वार सुनावे जिससे शिष्य को वह मन्त्र कण्ठस्थ हो जाए ।।७८।।

मन्त्रग्रहणानन्तरं शिष्यकृत्यं दर्शयति—

गुरुणेति ।

गुरुणा विधिवत्प्रसादितं,

मनुमष्टोद्‌र्ध्वशतं प्रजप्य भूयः ।

अभिवाद्य ततः शृणोतु सम्यक्

समयान्भक्तिभरेण नम्रमूर्त्तिः ।।७९।।

यथाविधि गुरुणा हेतुना प्राप्तं मन्त्रं प्रसाधितम् अनुग्रहेण दत्तमितित्रिपाठिनः अष्टौ ऊर्द्धं यस्य तस्य तदष्टाधिकशतं प्रजप्य भूयः पुनरपि गुरुमभिवाद्य नमस्कृत्य दण्डवत्प्रणम्य ततो गुरुतः समयान् आचारान् सम्यक्कृत्वा शृणोतु यत्तु विद्यामष्टकृत्वो जपेदिति तत्तन्न्यूनसङ्ख्याकजपनिषेधपरं कीदृशो भक्त्यतिशयेन नम्रशरीरः ।।७९।।

इस प्रकार की विधि से गुरु द्वारा प्रसाद के रूप में प्राप्त उस मन्त्र को १०८ वार जपे। पुनः गुरु को प्रणाम करने के बाद भक्ति पूर्ण चित्त से सावधान होकर वैष्णवाचार सुने ।।७९।।

मन्त्रदानानन्तरं गुरुकृत्यमाह—

दत्वेति ।

दत्त्वा शिष्याय मनुं न्यस्याऽथ गुरुः कृतात्मयजनविधिः ।

अष्टोत्तरं सहस्रं स्वशक्तिहान्यनवाप्तये जप्यात् ।।८०।।

अथानन्तरं गुरुः शिष्याय मन्त्रं दत्वा न्यस्य न्यासादिकं कृत्वा कृतात्मयजनविधिः कृताभ्यन्तरयागः अष्टाधिकं सहस्रं स्वसामर्थ्यहान्यनवाप्तये स्वसामर्थ्यरक्षार्थं दत्तमन्त्रं जपेत् ।।८०।।

इस प्रकार शिष्य को मन्त्र सुनाकर गुरु न्यास करके अपने आभ्यन्तर कृत्य पूर्ण करने के बाद अपनी शक्ति रक्षा के लिए १००८ वार मन्त्र का जाप करे ।।८०।।

शिष्यकृत्यमाह—

कुम्भादिकमिति ।

कुम्भादिकं च सकलं गुरवे समर्प्य

सम्भोजयेद् द्विजवरानपि भोज्यजातैः ।

कुर्वन्त्यनेन विधिना य इहाऽभिषेकं

ते सम्पदां निलयनं हि त एव धन्याः ।।८१।।

कुम्भादिकं सकलं मण्डलसहितं मण्डपावस्थितद्रव्यं गुरवे समर्प्य दत्वा भोज्यसमूहै द्विजश्रेष्ठान्सन्तोषयेत् एतत्करणस्य फलमाह— इह जगति अनेन विधिना अनया परिपाट्या ये अभिषेकं कुर्वन्ति ते सम्पदां सर्वसमृद्धीनां निलयनं स्थानं त एव धन्याः पुरुषार्थभागिनः ।।८१।।

इस प्रकार कृपापूर्वक गुरु से मन्त्र प्राप्त करने के बाद यज्ञगत कलशादि समस्त सामग्री गुरु के लिए समर्पण करके विभिन्न मिष्ठान्नों से ब्राह्मण भोजन भी करावे। इस प्रकार की दीक्षाङ्ग विधि करने वाले पुरुष समृद्धि शाली और पुरुषार्थ चतुष्टय के भागी होते हैं ।।८१।।

उक्तमर्थमुपसंहरति—
सङ्क्षिप्येति ।

संक्षिप्य किञ्चिदुदिता दीक्षा संस्मरणाय हि विशदधियाम् ।
एतां प्रविश्य मन्त्री सर्वान् जपेज्जुहोतु यजेच्च मनून् ।।८२।।

इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
दीक्षापूजानामचतुर्थपटलः ।।४।।

किञ्चित् सङ्क्षिप्य दीक्षा उक्ता कथिता विशदधियां निर्मलबुद्धीनां संस्मरणाय एतां दीक्षां प्रविश्य प्राप्य मन्त्री साधकः सर्वान् मन्त्रान् जपेत् यजेज्जुहोतु ।।८२ ।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे चतुर्थः पटलः ।। ४ ।।

निर्मल मतिशाली अधिकारियों को केवल स्मरण के लिए संक्षेप में यह दीक्षाङ्ग विधि बताई है। दीक्षा प्राप्त करने के बाद मन्त्र सिद्धि के लिए शिष्य को चाहिए कि वह मन्त्र का जाप, हवन, तथा पूजन भी करे ।।८२।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत "दीपिकार्थ प्रकाशिका"
नामक हिन्दी व्याख्या का चतुर्थ पटल पूर्ण हुआ ।। ४ ।।

पञ्चमपटलम्

अधुना दीक्षितस्य मन्त्रविधिं दर्शयति—

चैत्रे कृत्वैतन्मासि कर्माऽच्छपक्षे
पुण्यर्क्षे भूयो देशिकात्प्राप्य दीक्षाम् ।
तेनाऽनुज्ञातः पूर्वसेवां द्वितीये
मासि द्वादश्यामारभेताऽमलायाम् ।।१।।

चैत्रे मासि पुण्यर्क्षे शुभनक्षत्रे अच्छपक्षे शुक्लपक्षे एतत्कर्म मन्त्रदीक्षात्मकं कर्म कृत्वा भूयः पुनरपि देशिकात् गुरोर्दीक्षां मन्त्रोपदेशं प्राप्याऽनन्तरं तेन गुरुणा ऽनुज्ञातः द्वितीये मासि वैशाखे अमलायां द्वादश्यां तिथौ पूर्वसेवां पुरश्चरणमारभेत ।

चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्यात्—
इति वचनं गोपालमन्त्रभिन्नदीक्षाविषयम् ।।१।।

चैत्रमास, शुभनक्षत्र, शुक्ल पक्ष में पूर्वोक्त विधि पूर्वक गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के बाद उनकी आज्ञा लेकर वैशाख मास की शुक्ल द्वादशी से पुरश्चरण का आरम्भ करे ।।१।।

विशेष---"चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्यात्" चैत्र मास की दीक्षा दुःखदायी होती है, जो यह कहा गया है वह गोपाल मन्त्र से भिन्न मन्त्रों की दीक्षा के सम्बन्ध में है।

कृत्वेति—

कृत्वा स्नानाद्यं कर्म देहार्चनान्तं
वर्त्माऽऽश्रित्य प्रागीरितं मन्त्रिमुख्यः ।
शुद्धो मौनी सन् ब्रह्मचारी निशाशी
जप्याच्छान्तात्मा शुद्धपद्माक्षदाम्ना ।।२।।

मन्त्रिमुख्यः साधकः स्नानमारभ्यात्मयागान्तं कर्म कृत्वा प्रागीरितं वर्त्माऽऽश्रित्य पूर्वोक्तपूजाप्रकारमाश्रित्य शुद्धो गायत्रीजपेन निष्पापः

ब्राह्मणाद्युक्तबाह्यान्तरशौचयुक्तो मौनी वाग्यतः ब्रह्मचारी अष्टविध-मैथुनत्यागी निशाशी रात्रिभोजी शान्तात्मा अनुद्धतचित्तः शुक्लपद्मबीज-मालया जप्यात् ।

अत्रैवमागमान्तरोक्तं बोद्धव्यम् ।

शुभे दिने क्रोशं क्रोशद्वयं वा क्षेत्रं विहारार्थं परिकल्प्य क्षीरद्रुम-भववितस्तिपरिमिताऽष्टकीलकाः प्रत्येकमेकदैव वा दशकृत्वः शतकृत्वो वा जपित्वा अष्ट दिग्देवताः संपूज्य मध्ये क्षेत्रे क्षेत्रपालबलिं दत्वा पूजां कृत्वा पूर्वाद्यष्टदिक्षु तान्निखन्यात् तत्र तत्र तत्तन्नाम्ना दिक्पतिबलिं च दत्वा दीपकं च दत्वा जपपूर्वदिवसे एकभोजनमुपवासो वा गुरुं ब्राह्मणांश्च तर्पयेत् ।

तथाच सनत्कुमारकल्पे ।
विप्रांश्च भोजयेदन्नभोजनाच्छादनादिभिः ।
बहुभिर्वस्त्रभूषाभिः सम्पूज्य गुरुमात्मनः ।।
आरभेत जपं पश्चात् तदनुज्ञापुरस्सरमिति ।

ततोऽग्रिमदिने स्नानादिकं कृत्वा सङ्कल्पं कुर्यात्ॐअद्येनम इत्या-द्युच्चार्याऽमुकमन्त्रस्य सिद्धिकाम इयत्संख्याकजपतद्दशांशामुकद्रव्यहोम-तद्दशांशामुकद्रव्यतर्पणतद्दशांशामुकाभिषेकतद्दशांशब्राह्मणसंप्रदानकभो-ज्यदानात्मकपुरश्चरणकर्म करिष्ये इति सङ्कल्पं कुर्यात् ततो मन्त्रर्षि-च्छन्दोदेवतानां कामस्थाने पुरश्चरणजपे विनियोग इति ।

जपे चायं नियमः ।
नैरन्तर्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत् ।
शयनं दर्भशय्यायां शुचिः प्रयतमानसः ।
दिवसातिक्रमे दोषः सिद्धिबाधः प्रजायते ।

नारदीये—
शनैः शनैरविस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम् ।
न न्यूनं नाधिकं वाऽपि जपं कुर्याद् दिने दिने ।

तथान्यत्र -
अनन्यमानसः प्रातः कालान् मध्यदिनावधि ।

नारदीये तथैव च—
नवदन्नस्वपन् गच्छन्नान्यत्किमपि संस्मरन् ।
न क्षुज्जृम्भणहिक्कादिविकलीकृतमानसः ।।

मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति तस्माद्यत्नपरो भवेत् ।
उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशः तथैव च ।।
प्रसारितपाणिपादो नाचपादासनो भवेत् ।

तथा वैशम्पायनसंहितायाम्—
स्नानं त्रिसवनं प्रोक्तमशक्तो द्विः सकृत्तथा ।
अस्नातस्य फलं नाऽस्ति न चाऽतर्प्पयतः पितॄन् ।।
नाऽसत्यमभिभाषेत नेन्द्रियाणि प्रलोभयेत् ।
शयनं दर्भशय्यायां शुचिः प्रयतमानसः ।।
तद्वासः क्षालयेन्नित्यमन्यथा विघ्नमावहेत् ।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्रो कदाचन ।।
उपर्यधो बहिर्वस्त्रे पुरश्चरणकृद्व्रजेत् ।

तथा नारदीये—
स्त्रीशूद्राभ्यां न सम्भाषेद्रात्रौ जपपरो न च ।
जपेन्न सन्ध्याकालेषु प्रदोषे नोभयेषु च ।।
ब्राह्मणानीतवस्त्रशुद्धजलेनकर्मकृद्भवेदिति ।।२।।

मन्त्रानुष्ठान करने वाले साधक को चाहिए कि पहले स्नान, न्यास आदियों से देहार्चन करके पूर्वोक्त विधि का अनुसरण करते हुए गायत्री जप से शुद्ध होकर मौन, ब्रह्मचर्य, निशा भोजन आदि नियमों का पालन करते हुए शान्त होकर कमलमाला, किंवा तुलसी माला से जप करे ।।२।।

विशेष—अनुष्ठान के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि एक या दो कोस क्षेत्र को भ्रमण के लिए निश्चित करना चाहिए। पीपल, गूलर, न्यग्रोध (वट) आदि दूध वाले वृक्ष के एक बिलात लम्बे कील (खूंटे) बनाकर एक-एक को स्पर्श करते हुए दश या सौ बार मन्त्र जपे, अष्ट दिक्पालों की पूजा करके मध्य क्षेत्र में क्षेत्र-पाल की पूजा करके बलि दे, आठों दिशाओं की ओर उन कीलों को गाड़ दे। उनको दीप, बलि भी दे। एक समय भोजन करना चाहिए। जप में विधि की निरन्तरता होना, न्यूनाधिक न होना कुशासन पर शयन करना आदि विशेष नियम हैं जिनका पालन होना नितान्त आवश्यक है।

जपितुः कृत्यमाह—
तन्वन्निति ।

तन्वन् शुश्रूषां गोषु ताभ्यः प्रयच्छन्
ग्रासं भूतेषु प्रोद्वहंश्चानुकम्पाम् ।

मन्त्राधिष्ठात्रीं देवतां वन्दमानो
दुर्गां दुर्बोधध्वान्तभानुं गुरुं च ।।३।।

गोषु शुश्रूषां गोपरिचर्यां धूमकण्डूयनादिरूपां सेवां विस्तारयन् । किंकुर्वन् ? ताभ्यो गोभ्यो ग्रासं प्रयच्छन् गोपालमन्त्र एव ग्रासादिकम् अत्रोपादानादन्यत्रानुक्तेश्च भूतेषु प्राणिषु करुणां धारयन् मन्त्राधिष्ठातृदेवतां दुर्गाम् अज्ञानान्धकारसूर्यं गुरुं च वन्दमानः ।।३।।

मन्त्रानुष्ठान करने वाले साधक को गौओं की सेवा करनी चाहिए, कण्डूयन, गोग्रास, घास आदि से उनको प्रसन्न करना चाहिए। प्रत्येक प्राणियों में दया कर उनकी यथाशक्य सेवा करनी चाहिए। मन्त्र के अधिष्ठातृदेवता दुर्गा, अन्धकार को नाश करने वाले सूर्य तथा मन्त्रदाता गुरु की भक्तिपूर्वक वन्दना करनी चाहिए ।।३।।

कुर्वन्निति—

कुर्वन्नात्मीय कर्म वर्णाश्रमस्थं
मन्त्रं जप्त्वा त्रिः स्नानकाले ऽभिषिञ्चेत् ।
आचामन् पाथस्तत्वसङ्ख्याप्रजप्तं
भुञ्जानश्चाऽन्नं सप्तजप्ताञ्जनादि ।।४।।

स्वीयं वर्णाश्रमोक्तं कर्म कुर्वन् आत्मीयं आत्मनो यो वर्णो ब्राह्मणादि र्यो वाऽऽश्रमो ब्रह्मचर्यादिस्तत्र तत्रस्थं कर्म विहितं तत्तत्कुर्वन्नित्यर्थः । मन्त्रजप्तजलेन काले वारत्रयं स्वात्मानमभिषिञ्चेत् तत्वसंख्याप्रजप्तं द्वात्रिंशत्संख्याप्रजप्तं पञ्चविंशतिप्रजप्तं वा तथा जलम् आचमन् इत्थमेवाऽन्नं भुञ्जानः । पुनः कीदृशः ? सप्तप्रजप्तं अञ्जनादि कज्जलादि यस्य स तथा आदिशब्देन गन्धमाल्यादीनां परिग्रहः अञ्जनाद्य इति क्वचित्पाठः ।।४।।

वर्णाश्रम सम्बन्धी उचित कर्म करते हुए तीन वार मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से अपने को सिञ्चन करे। और मूल मन्त्र के पच्चीस वार या बत्तीस वार के जप से अभिमन्त्रित जल से आचमन करे, सात संख्या से अभिमन्त्रित भोजन, कज्जल लेपन, (जल को आंखों में लगाना), माला धारण, वस्त्र परिधान आदि करे ।।४।।

जपस्थानमाह—
अद्रेरिति ।

अद्रेः शृङ्गे नद्यास्तटे बिल्वमूले
तोये हृद्घ्ने गोकुले विष्णुगेहे ।
अश्वत्थाधस्तादम्बुधेश्चाऽपि तीरे
स्थानेष्वेतेष्वासीन एकैकशस्तु ।।५।।

प्रजपेदयुतचतुष्कं दशाक्षरं मनुवरं पृथक् क्रमशः ।
अष्टादशाक्षरं चेदयुतद्वयमित्युदीरिता सङ्ख्या ।।६।।

पर्वतशृङ्गे नदीतीरे विल्ववृक्षसमीपदेशे हृदयप्रमाणजले गोष्ठे विष्णुप्रतिमाधिष्ठितगेहे पिप्पलवृक्षसमीपदेशे समुद्रस्य तीरे अष्टसु स्थानेषु आसीन उपविष्टः एकैकश एकैकस्मिन् स्थाने स्थानेषु क्रमशः क्रमेण पृथक् अयुतचतुष्कं कृत्वा दशाक्षरमन्त्रं जपेत् यदाऽष्टादशाक्षरमन्त्रः तदा ऽयुतद्वयं कृत्वा इति जपसंख्योदीरिता अत्र न प्रतिस्थानम् अयुतचतुष्कायुतद्वयजपः किन्तु तथा जप्तव्यं येन सर्वत्र जपेन तावत्येव संख्या भवति अन्यथा ऽष्टसु स्थानेषु जपेना ऽष्टादशाक्षरे षोडशायुतजपः स्यात् ।

प्रपञ्चसारेऽपि ।

अयुतद्वितयावधिजपः स्यादिति ।

यद्यप्यष्टादशाक्षरे इयं संख्या तथाऽपि तुल्यन्यायाद्दशाक्षरेऽपि इयमेव व्यवस्थेति रुद्रधरः ।।५।।६।।

पुरश्चरण के पहले, पुरश्चरण के ही अंग के रूप में पर्वत शिखर, नदी-तट, विल्व मूल, हृदय तक आने वाले—जल, गोष्ठ, भगवन्मंदिर, पीपल के नीचे और समुद्र के तट, इन आठ स्थानों पर बैठकर क्रमशः एक-एक स्थान पर उतना जप करे, जितने जप से योग में चालीस हजार हो जाए। यह चालीस हजार का नियम दशाक्षर मन्त्र के लिए है, गोपालाष्टादशाक्षर के लिए तो बीस हजार जप संख्या है। एतावता यदि दशाक्षर का अनुष्ठान हो तो एक स्थान पर पांच हजार संख्या होगी, और गोपालाष्टादशाक्षर का अनुष्ठान हो तो पच्चीस सौ जप संख्या होगी ।।५।।६।।

उक्तेषु स्थानेषु क्रमेणाऽऽहारनियममाह ।

शाकमिति ।

शाकं मूलं फलं गोस्तनभवदधिनी भैक्षमन्नं च सक्तुं
दुग्धान्नं चेत्यदानः क्षितिधरशिखरादौ क्रमात्स्थानभेदे ।
एकं चैषामशक्तौ गदितमिह मया पूर्वसेवाविधानं
निर्वृत्तेऽस्मिन्पुनश्च प्रजपतु विधिवत्सिद्धये साधकेशः ।।७।।

क्षितिधरशिखरादौ पूर्वोक्तपर्वतशृङ्गादौ स्थानविशेषे क्रमादेकैकं क्रमेण विहितं शाकं वास्तुकादि मूलं शूरणादि फलम् आम्रादि गोस्तनभवं दुग्धं दधि च द्वन्द्वः भैक्षं भिक्षात उपलब्धमन्नं च प्रशस्तं हैमतिकं सितास्विन्नं सक्तुं भृष्टयवचूर्णं दुग्धान्नं पायसम् अदानो भक्षमाणः जपं कुर्यात् मितोदनम् ।

शस्तान्नं च समश्नीयान् मन्त्रसिद्धिसमीहया ।
तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन शस्तान्नाशो भवेन्नर इति ।।

अशक्तं प्रत्याह एकमिति अशक्तो चैषामद्रिशृङ्गाद्यष्टस्थानानां मध्ये एकं स्थानं समाश्रित्य शाकाद्यष्टविधेष्वेकं भोजनमाश्रित्य जपं कुर्यात् ।

तदुक्तं नारदीये—
मृदु सोष्णं सुपक्वं च कुर्याद्वै लघु भोजनम् ।
नेन्द्रियाणां यथा वृद्धिस्तथा भुञ्जीत साधकः ।।
यद्वा तद्वा परित्याज्यं दुष्टानां सङ्गमं तथा ।

इह ग्रन्थे पूर्वसेवाविधानं मया गदितम् कथितम् अस्मिन्निर्वृत्ते सम्पूर्णे पुरश्चरणजपे पुनश्च प्रजपतु सिद्धये विशिष्टफलसिद्धये विधिवत् यथोक्तप्रकारेण अत्र केचिदस्मिन्पूर्वसेवारम्भे कर्मणि निर्वृत्ते समाप्ते पुनःपुरश्चरणजपं करोत्वित्याहुः ।।७।।

पूर्वोक्त पर्वत शिखर आदि आठ स्थानों पर जप करते समय क्रमशः बथुआ आदि साग, सकरकन्द, आम्रादि फल, गोदुग्ध, गोदधि, भिक्षान्न, सत्तू और पायस का भोजन करे। यदि कोई साधक सभी स्थानों पर यथानियम जप करने में असमर्थ है तो उक्त स्थानों में से एक स्थान पर बैठकर, और उक्त भोजनों में से एक का भोजन करते हुए जप संख्या की पूर्ति कर सकता है। इस पूर्वांग से निवृत्त होकर पूर्वोक्त पूजा विधि का अनुसरण करते हुए संकल्पित पुरश्चरण सम्बन्धी जप करे ।।७।।

देहार्चनान्ते दिनशो दीनादौ
दीक्षोक्तमार्गान्यतरं विधानम् ।

आश्रित्य कृष्णं प्रयजेद्विविक्ते
गेहे निषण्णो हुतशिष्टभोजी ।।८।।

देहार्चनान्तेदेहपूजावसाने दिनशः प्रतिदिनं दिनादौ प्रातर्दीक्षोक्तमार्गेषु षोडशपञ्चोपचारादिषु अन्यतरमेकं वर्त्माश्रित्य कृष्णं प्रयजेत् पूजयतु आवरणभेदाद्वर्त्मभेदः । कीदृशः ? विविक्त एकान्ते गृहे निषण्ण उपविष्टः । पुनः कीदृशः ? हुतशिष्टभोजी प्रात्यहिकजपदशांशहोमावशिष्टभोजी ।।८।।

प्रकारान्तरमपि महते फलाय पुरश्चरणमाह—

दशलक्षमिति रुद्रधरः

वयं तु पश्यामः ।

अपने शरीर की न्यासादि विधि से अर्चना करने के बाद प्रतिदिन प्रातःकाल दीक्षा विधान पर कहे गए विधानों में से किसी एक विधान का अनुसरण करते हुए, एकान्त स्थान पर बैठकर श्रीकृष्ण की पूजा करे। और प्रतिदिन किए जाने वाले दशांश हवन का अवशिष्ट पदार्थ का ही भोजन करे ।।८।।

प्रकृतयथोक्तपुरश्चरणमाह—

दशलक्षमिति ।

दशलक्षमक्षयफलप्रदं मनुं
प्रतिजप्य शिक्षितमति र्दशाक्षरम् ।
जुहुयाद् गुडाज्यमधुसंप्लुतैर्नवै-
ररुणाम्बुजैर्हुतवहे दशायुतम् ।।९।।

शुद्धमतिः साधकः अक्षयफलदं मोक्षफलं दशाक्षरं मनुं दशलक्षं प्रतिजप्य हुतवहे संस्कृताग्नौ अरुणाम्बुजैररुणकमलै र्दशायुतं लक्षमेकं जुहुयात् । कीदृशैः ? गुडाज्यमधुसंप्लुतैः गुणघृतमधुसंयुक्तैः ।।९।।

अक्षय फल देने वाले दशाक्षर मन्त्र की जप संख्या दश लाख है। गुड़, घी, मधु से परिप्लुत नवीन लाल कमलों के पुष्पों से एक लाख दशांश हवन करना चाहिए ।।९।।

शुषिरेति—

शुषिरयुगलवर्णं चेन्मनुं पञ्चलक्षं
प्रजपतु जुहुयाच्च प्रोक्तक्लृप्त्याऽर्द्धलक्षम् ।
अमलमतिरलाभे पायसैरम्बुजानां
सहितघृतसितैरेवाऽऽरभेद्धोमकर्म ॥१०॥

शुषिरयुगलवर्णं शुषिरं छिद्रं नवसंख्यात्मकं तस्य युगलं द्वन्द्वम् अष्टादशाक्षरं जपेत् तदा पञ्चलक्षं प्रजपतु प्रोक्तक्लृप्त्या पूर्वोक्तपरिपाट्या चार्द्धलक्षं जुहुयात् यथोक्तहोमद्रव्यालाभे द्रव्यान्तरमाह अमलमतिरिति शुद्धमतिः अम्बुजानां पद्मानामलाभे ऽप्राप्तौ पायसैः परमान्नैर्होममारभेत । कीदृशैः ? सहिते घृतसिते येषु तैः घृतशर्करासहितैरित्यर्थः स्वाहान्तेन होमपूजेति सर्वत्र बोद्धव्यं होमादेश्चानुष्ठानप्रकारो मत्कृतहोमानुष्ठानपद्धतेरवगन्तव्यः ।

नारदीयेयथा ।

जपस्य तु दशांशेन होमः कार्यो दिने दिने ।
अथवा लक्षपर्यन्तं होमः कार्यो विपश्चितेति ॥१०॥

यदि अष्टादशाक्षर मन्त्र का अनुष्ठान साधक करना चाहे तो उसकी जप संख्या पांच लाख है, उसके दशांश हवन की जप संख्या पचास हजार है। यदि हवन के लिए कमल पुष्प न मिलें तो घृत शर्करा मिश्रित पायस से हवन करना चाहिए ॥१०॥

होमाशक्तं प्रत्याह—

अशक्तानामिति ।

अशक्तानां होमे निगमरसनागेन्द्रगुणितो
जपः कार्यश्चेति द्विजनृपविशामाहुरपरे ।
सहोमश्चेदेषां सम इह जपोहोमरहितो
य उक्तो वर्णानां स खलुविहितस्तच्चलदृशाम् ॥११॥

तावद्द्रव्याद्यसम्पत्त्या होमकर्मणि असमर्थानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां यथासंख्यं निगमा वेदाश्चत्वारः रसाः षट् नागेन्द्राः अष्टौ एतैर्गुणितैर्जपो ऽनुष्ठेय इत्यपरे आचार्या आहुः तत्रकृत एव जपः एतैर्गुणित इति रुद्रधरः ।

वस्तुतस्तु—

होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम् ।
षड्गुणं चाष्टगुणितं यथासंख्यं द्विजातयः ॥
इति पुरश्चरणचन्द्रिकोक्तमेव युक्तं पश्यामः ।
होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः ॥
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणो हि विधीयते ॥

इति एतेषां मतापेक्षया अपर इत्युक्तम् एतेषां च मते तर्पणादिव्यतिरेकेण मूलभूतजपद्विगुणजपेनैव पुरश्चरणसिद्धि र्भवति तथैव ग्रन्थान्तरे ऽभिधानात् । एषां ब्राह्मणादीनां होमसहितश्चेज्जपः तदा त्रयाणामपि अयुतचतुष्टयादिसमानमेव वर्णानां ब्राह्मणादीनां होमरहितो य उक्तो जपः अत्र होमरहितो यश्चतुर्गुणो जप इति भैरवत्रिपाठिनः । स एव तच्चलदृशां तत्पत्नीनां विहितः ॥११॥

यदि साधक पूर्वोक्त पदार्थों से हवन करने में असमर्थ है तो ब्राह्मण के लिए हवन के प्रतिनिधि जप संख्या चौगुनी, क्षत्रिय के लिए, छः गुनी, वैश्य के लिए आठ गुनी है। कुछ शास्त्रज्ञों का कहना है कि यदि मूल जप के साथ-साथ हवन के प्रतिनिधि भूत जप भी होता हो तो सभी वर्णों के लिए हवन-जप संख्या समान है और होम रहित जप है तो होम जप संख्या चौगुनी ही होगी, इसी प्रकार स्त्री जाति के लिए भी समझना चाहिए ॥११॥

शूद्रं प्रत्याह—

यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रः स च तन्नतभ्रुवाम् ।
विदधीतजपं विधिवच्छ्रद्धावान् भक्तिभरावनम्रतनुः ॥१२॥

ब्राह्मणादीनां मध्ये यं वर्णं शूद्रः समाश्रितः स तन्नतभ्रुवां तेषामेव द्विजात्यादीनां स्त्रीणां विहितं जपं विधिवत् कथितप्रकारेणविहितं कुर्यात् कीदृशः श्रद्धायुतः पुनः कीदृशः भक्तिभरेण भक्त्यतिशयेन नम्रा तनुः शरीरं यस्य स तथा जपश्चायं होमरहित इति रुद्रधरः ॥१२॥

जो श्रद्धालु शूद्र जिस वर्ण के घर में रहता है उसकी जप संख्या उतनी है, जितनी उनकी स्त्रियों की जप संख्या बताई गई है। शूद्र भी भक्तिभाव पूर्ण होकर प्रणव-स्वाहा रहित नमः पद युक्त दशाक्षर मन्त्र का जप कर सकता है। हवन नहीं कर सकता ॥१२॥

पुरश्चरणोत्तरकृत्यमाह—

पुनरिति ।

पुनरभिषिक्तो गुरुणा विधिवद्विश्राण्य दक्षिणां तस्मै ।
अभ्यवहार्य च विप्रान् विभवैः सम्प्रीणयेच्च भक्तियुतः ।।१३।।

गुरुणा पुनरपि विधिवत् यथोक्तविधिना अभिषिक्तः कृताभिषेकः तस्मै गुरवे दक्षिणां विश्राण्य दत्वा विप्रानभ्यवहार्य भोजयित्वा भक्तियुतः सन् संप्रीणयेत् धनधान्यादिभिः प्रीतिं कुर्यात् ।।१३।।

पुनः गुरु कलश जल से शिष्य का अभिषेक करे, और शिष्य गुरु के लिए उचित दक्षिणा दे । ब्राह्मणों को भोजन और धन दान से प्रसन्न करे ।।१३।।

सिद्धमन्त्रस्य कृत्यमाह—

इतीति ।

इति मन्त्रवरद्वितयान्यतरं
परिसाध्य जपादिभिरच्युतधीः ।
प्रयजेत्सवनत्रितये दिनशो
विधिनाऽथ मुकुन्दममन्दमतिः ।।१४।।

इत्यनेन प्रकारेण मन्त्रद्वितयान्यतरं मन्त्रद्वितययोर्मध्ये एकं जपादिभिर्जपपूजाहोमतर्पणादिभिः परिसाध्य साधयित्वा अच्युतधीः अच्युते श्रीकृष्णे धीर्बुद्धिर्यस्य स तथा यद्वा अच्युता न क्षरिता विष्णौ बुद्धिर्यस्य स तथा सवनत्रितये सन्ध्यादित्रये दिनशः प्रतिदिनं विधिना उक्तप्रकारेण मुकुन्दं कृष्णं प्रयजेत् पूजयतु अमन्दमतिः शुद्धमतिः ।।१४।।

भगवान् श्रीकृष्ण में ही बुद्धि को अर्पित करने वाला साधक उक्त दो मन्त्रों में से किसी एक को जप हवनादि से सिद्ध करके प्रतिदिन तीनों याम भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा विधिपूर्वक करे ।।१४।।

पूजायां प्रातःकालिकध्यानमाह—

अथेति ।

अथ श्रीमदुद्यानसंवीतहैम-
स्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः ।

लसत्कल्पवृक्षाध उद्दीप्तरत्न-
स्थलीधिष्ठिताम्भोजपीठाधिरूढम् ।।१५।।

सप्तश्लोकान्तं कुलकम् ।

अथानन्तरं भक्तिनम्रः भक्त्यतिशयेन नम्रदेहः प्रगे प्रातःकाले कथितरूपं कृष्णमनुस्मृत्य ध्यात्वा तदङ्गेन्द्रवज्रादिभिः तस्य कृष्णस्याङ्गानि पूर्वोक्तानि हृदयादीनि इन्द्रादयो दश दिक्पालाः वज्रादयस्तदायुधानि च तैः सह पूजयित्वा तं कृष्णं सिता शर्करा मोचा कदली विशेषः हैयङ्गवीनं सद्योजातघृतम् एभिस्तथा दध्ना विमिश्रेण दधिसंयुक्तेन दौग्धेन पायसेन च मन्त्री सम्प्रीणयेत् । कीदृशं ? श्रीमत् शोभायुक्तं यदुद्यानं क्रीडावनं तेन संवीतं वेष्टितं यद्धैमस्थलं लसत्काञ्चनभूमिस्तत्रोद्भासीनि उद्गतकिरणानि यानि यानि रत्नानि तैः स्फुरन् देदीप्यमानो यो मण्डपस्तस्या ऽन्तर्मध्ये देदीप्यमानो यः कल्पवृक्षस्तस्याधश्छायायाम् उद्गता दीप्तिर्यस्य तादृशं रत्नमयं यत्स्थानं तदधिष्ठितं तत्रावस्थितं यदम्भोजं पद्मं तदेव पीठं तत्राधिरूढमुपविष्टम् ।।१५।।

प्रातःकालीन पूजा के समय श्रीकृष्ण के ध्यान का स्वरूप बताते हैं । अनेक शोभा सम्पन्न क्रीड़ा उद्यानों से विलसित, काञ्चनमयी भूमि पर विद्यमान, अनेक रत्नों की किरणों से देदीप्यमान मण्डप स्थल के मध्य में सुन्दर कल्पवृक्ष है, उसकी दिव्य छाया से सुशोभित स्थान पर अष्टदल कमल के आकार वाले सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए ।।१५।।

महानीलेति ।

महानीलनीलाभमत्यन्तबालं
गुडस्निग्धवक्त्रान्तविस्रस्तकेशम् ।
अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्म-
प्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम् ।।१६।।

पुनः कीदृशं ? महानील इन्द्रनीलः तद्वन्नीलाभं श्यामं पुनः अत्यन्तबालं पञ्चवार्षिकं पुनः गुडाः कुटिलाः स्निग्धाः चिक्कणाः कर्णान्ते कपोले विस्रस्ताः पर्याकुलाः वक्त्रान्तेतिपाठे विस्रस्ता मुखावलम्बिताः केशा यस्य तम् अलिव्रातेन भ्रमरसमूहेन पर्याकुलं चञ्चलं व्याप्तं वा यत्फुल्लं विकसितं पद्मं तद्वत्प्रमुग्धं मनोहरम् आननं मुखं यस्य तं पुनः

श्रीमत् दोषरहितं यदिन्दीवरं नीलपद्मं तत्सदृशे अक्षिणी यस्य तम् ।। १६ ।।

इन्द्र नील मणि के समान नील आभा वाले जिनकी पांच वर्ष की अवस्था है जिनके कपोल पर स्निग्ध काले-काले घुंघराले बाल फिर फिराते हैं, मानो वे ही भ्रमर हैं, ऐसे भ्रमर रूप बालों से व्याप्त प्रफुल्ल नीलकमल के समान मुखारविन्द है जिनका, ऐसे सुन्दर नीलकमल के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।१६।।

चलदिति—

चलत्कुण्डलोल्लासिसंफुल्लगण्डं
सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम् ।
अनेकाश्मरश्म्युल्लसत्कण्ठभूषा-
लसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकम् ।।१७।।

पुनः कीदृशं ? चञ्चले ये कुण्डले ताभ्यामुन्नतौ उल्लसितौ शोभमानौ संफुल्लौ विकाशितौ गण्डौ यस्य त पुनः शोभमाना घोणा नासा यस्य तं पुनः सुशोणो लोहितो ऽधरो यस्य तं पुनः शोभनं यत् स्मितमीषद्धासस्तद्युक्तमास्यं यस्य तं पुनः अनेकानि यान्यश्मानि इन्द्रनीलप्रभृतीनि रत्नानि तेषां ये रश्मयः किरणाः तैरुल्लसन्ती या कण्ठभूषा तया लसन्तं शोभमानं पुनः पौण्डरीकं व्याघ्रसम्बन्धिनखं वहन्तं धारयन्तम् ।।१७।।

रत्न जटित चञ्चल कुण्डलों से सुशोभित है गण्ड स्थल जिनका, सुन्दर नासिका वाले, लाल-लाल अधरोष्ठ, मन्द हास युक्त मुख मण्डल वाले, अनेक इन्द्रनील मणियों की किरणों से विलसित है कण्ठाभरण जिनका, ऐसे व्याघ्र नख को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।१७।।

समुद्धूसर इति—

समुद्धूसरोरःस्थलं धेनुधूल्या
सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम् ।
कटीरस्थले चारुजङ्घान्तयुग्मे-
पिनद्धं कणत्किङ्किणीजालदाम्ना ।।१८।।

पुनः कीदृशं ? धेनुधूल्या गोरजसा समुद्धूसरं धूसरितम् उरः स्थलं यस्य तं गवामनुगमनात् सुष्ठु पुष्टमङ्गं यस्य तं, कीदृशं ? अष्टापदाकल्पदीप्तं – सुवर्णघटितालङ्कारेण शोभमानं, पुनः कीदृशं ? क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना शब्दायमानक्षुद्रघण्टिकासमूहमालया कटिस्थले श्रोणितटे चारुजङ्घान्तयुग्मे मनोहरगुल्फद्वयोर्द्ध्वप्रदेशे पिनद्धं बद्धम् ।।१८।।

गौओं के खुरों से निर्गत धूली कणों से धूसरित है उरःस्थल जिनका, सुवर्ण घटित आभूषणों से चमकने वाले सुन्दर जंघाओं के बीचोंबीच (कटि प्रदेश) पर शब्द करने वाली किङ्किणियों (क्षुद्र घण्टिका) को पिरोए गए कोमल स्वर्ण तन्तु की डोरी से अलंकृत श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।१८।।

हसन्तमिति—

हसन्तं हसद्बन्धूजीवप्रसून-
प्रभां पाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते
दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम् ।।१९।।

पुनः: कीदृशं ? पाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या हस्तचरणपद्मविपुलशोभया हसद्बन्धुजीवपुष्पकान्ति हसन्तं उपहसन्तम्, पुनःकीदृशं ? दक्षिणे करे हस्ते पायसं सव्यहस्ते वामकरे नवं नूतनं शुद्धं निष्कलुषं हैयङ्गवीनं नवनीतं ह्योगोदोहोद्भवं घृतं दधानं धारयन्तम् ।।१९।।

जिनके कर चरण कमल की विपुल सुषमा प्रफुल्ल बन्धु जीव नामक पुष्प की कान्ति को फीकी करने वाली है ऐसे दक्षिण कर कमल में पायस, वामकर कमल में गौओं के नव-नवनीत गोले को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।१९।।

महीति—

महीभारभूतामरारातियूथा-
ननः पूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम् ।
प्रभुं गोपिकागोपगोवृन्दवीतं
सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देववृन्दैः ।।२०।।

पुनः कीदृशं ? महीभारभूतामरारातियूथान् पृथिवीभाररूपदैत्यसमूहान् अनःपूतनादीन् शकटासुरप्रभृतीन् निहन्तुं प्रवृत्तं, पुनः कीदृशं ?

प्रभुं समर्थम् ईश्वरं, पुनः कीदृशं ? गोपिका गोपस्त्री गोपः गौः एतेषां समूहेन वीतं वेष्टितं, पुनः कीदृशम् ? इन्द्रादिभिर्देवसमूहैर्नमस्कृतम् ॥ २० ॥

जो पृथिवी के भारभूत पूतना, शकटासुर बकासुर आदि दैत्यों का वध करने के लिए उद्यत हैं, संसार के स्वामी और गोप गोपियों, गोवृन्दों से परिगत हैं, इन्द्रादि देव समूहों से सदा वन्द्यमान हैं ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥२०॥

प्रगे पूजयित्वेत्यनुस्मृत्य कृष्णं
तदङ्गेन्द्रवज्रादिकैर्भक्तिनम्रः ।
सितामोचहैयङ्गवीनैश्च दध्ना
विमिश्रेण दौग्धेन सम्प्रीणयेत्तम् ॥२१॥

पूर्वश्लोकेऽव्याख्यातमपि क्रमानुरोधेन व्याख्या प्रगे प्रातःकाले उक्तप्रकारेण कृष्णमनुस्मृत्य ध्यात्वा उपचारैः सम्पूज्य अङ्गाद्यावरणैः सह सम्पूज्य नैवेद्यं दद्यात् । नैवेद्यद्रव्यमाह-सितेति ।

सिता शर्करा मोचा कदली हैयङ्गवीनं दौग्धेन पायसेन ॥२१॥

प्रातःकाल भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्वोक्त स्वरूप का अनुस्मरण करते हुए भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करे। और श्रीकृष्ण–पूजा के अंगीभूत सपरिवार इन्द्रादि देवताओं की पूजा करे। मिश्री, केला, नवनीत, दही ये वस्तुओं के साथ पायस नैवेद्य समर्पण कर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करे ॥२१॥

प्रातःसवनपूजाफलमाह –

इतीति ।

इति प्रातरेवार्चयेदच्युतं यो-
नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ।
लभेताचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रा-
मिह प्रेत्य शुद्धं परं धाम भूयात् ॥२२॥

इत्यनेन प्रकारेण प्रत्यहं शश्वत्सर्वदा आस्तिक्ययुक्तःसन् यो नरः प्रातःकाले अच्युतमर्चयेत् तमेवावश्यं पूजयति स इह लोके अचिरेणैवाल्पकालेनैव समग्रां सम्पूर्णां लक्ष्मीं सम्पदं लभते प्राप्नोति प्रेत्य देहं परित्यज्य परं शुद्धं ब्रह्माख्यं महः भूयात् प्राप्नोति तत्सरूपो भवतीत्यर्थः ॥२२॥

इस प्रकार प्रतिदिन आस्थावान् होकर जो भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करता है, वह शीघ्र ही समग्र लक्ष्मी को प्राप्त करता है। अन्त में भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष भी प्राप्त कर सकेगा ॥२२॥

प्रातः पूजायामेव नैवेद्यं तर्प्पणं च दर्शयति—

अह्नोमुखइति ।

अह्नोमुखेऽनुदिनमित्यभिपूज्य शौरिं
दध्नाऽथ वा गुडयुतेन निवेद्य तोयैः ।
श्रीमन्मुखे समनुतर्प्य च तद्धिया तं
जप्यात्सहस्रमथ साष्टकमादरेण ॥२३॥

अथवा शब्दः पादपूरणे इति पूर्वोक्तप्रकारेण अह्नोमुखे प्रातःकाले अनुदिनं प्रत्यहं शौरिं कृष्णम् अभिपूज्य गुडसहितेन दध्ना नैवेद्यं दत्वा जलैस्तद्धिया गुडसहितबुद्धया श्रीमतः कृष्णस्य मुखे समनुतर्प्य अथानन्तरं तं मन्त्रमादरेण साष्टकं सहस्रम् अष्टोत्तरसहस्रं जपेत् ॥२३॥

प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करके गुड़ मिश्रित दही, अथवा गुड़ मिश्रित दधिबुद्धि से शुद्ध जल द्वारा ही भगवान् के श्रीमुख में १००८ अथवा १०८ वार मन्त्र जप पूर्वक तर्पण करे ॥२३॥

मध्यदिनसवनध्यानमाह –

मध्यंदिन इति ।

मध्यंदिने जपविधानविशिष्टरूपं
वन्द्यं सुरर्षियतिखेचरमुख्यवृन्दैः ।
गोगोपगोपवनितानिकरैः परीतं
सान्द्राम्बुदच्छविसुजातमनोहराङ्गम् ॥२४॥

चतुर्थश्लोकस्थक्रियया योजना एवमनेन प्रकारेण मध्यन्दिने मध्याह्ने नन्दजं कृष्णं ध्यात्वा इन्दिरा श्रीस्तस्या आप्त्यर्थम् अर्चयतु । कीदृशं ? जपविधानेन विशिष्टं रूपं यस्य तं जपार्थं यत् ध्यानम् अथ प्रकटसौरभेत्यादि तृतीयपटलोक्तध्यानं तदेवात्रापीति त्रिपाठिनः । पुनः कीदृशं ? वन्द्यं श्रेष्ठं, पुनः कीदृशं सुरा इन्द्रादय ऋषय नारदादयः यतयः सनकादयः खेचरा स्वर्गवासिनः एतेषां मुख्या श्रेष्ठाः तेषां वृन्दैः समूहैः तथा

गौः गोपः गोपस्त्री च एतेषां निकरैः समूहैः परीतं वेष्टितं सान्द्रो निविडो यो ग्रम्बुदो मेघस्तद्वच्छविर्यस्य तत् अथ च सुजातं दोषरहितम्, अथ च मनोहरं नेत्रोत्सवकारकमङ्गं यस्य ।।२४।।

लक्ष्मी प्राप्ति के लिए किए जाने वाला श्रीकृष्ण का मध्याह्न ध्यान बताते हैं। मध्याह्न के जप विधान अनुरूप ध्यान स्वरूप से विशिष्ट, नारदादि देवर्षिगण, सनकादि योगेश्वर, इन्द्रादि मुख्य देवों द्वारा वन्दनीय, गौ, गोप गोपियों के समूहों से परिगत, जल बरसाने वाले घने बादलों के समान गम्भीर श्याम कान्ति वाले, लोकोत्तर सौन्दर्य–परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।२४।।

मायूरपत्रपरिक्लृप्तवतंसरम्य-
धम्मिल्लमुल्लसितचिल्लिकमम्बुजाक्षम् ।
पूर्णेन्दुविम्बवदनं मणिकुण्डलश्री-
गण्डं सुनासमतिसुन्दरमन्दहासम् ।।२५।।

पुनः कीदृशं ? मयूरस्येदं मायूरं पत्रं पक्षः मायूरं च तत्पत्रं चेति मायूरपत्रं तेन परिक्लृप्तो यो वतंसः शिरोभूषणम् ।

'वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इत्यकारलोपः ।

तेन रम्यो मनोहरो धम्मिल्लः केशपाशो यस्य तं पुनः कीदृशम् ग्रम्बुजवत् पद्मवत् ग्रक्षिणी यस्य स तथा तं पुनः कीदृशं ? संपूर्णो य इन्दुविम्बश्चन्द्रमण्डलं तद्वद्वदनं मुखं यस्य स तथा तं, पुनः कीदृशं ? मणिमयं यत् कुण्डलं तेन श्रीयुक्तौ शोभासहितौ गण्डौ यस्य त, पुनः कीदृशं ? शोभना नासा यस्य तं, पुनः कीदृशं ? मनोहरेषद्धास्य-युक्तम् ।।२५।।

जिनका केशपास मयूर पंख से निर्मित अलंकार से रमणीय है जो नील-अलकावलियों से शोभित है, सुन्दर भ्रूलता से विलसित है, जिनके कमल के समान सुन्दर नयन हैं, पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर मुखारविन्द वाले मणियुक्त कुण्डलों से विलसित है गण्डस्थल जिनका ऐसे सुन्दर नासिका वाले, त्रिलोकी को मुग्ध करने वाले मन्दस्मित से सुन्दर श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।२५।।

पीताम्बरं रुचिरनूपुरहारकाञ्ची-
केयूरकोर्मिकटकादिभिरुज्ज्वलाङ्गम् ।

दिव्यानुलेपनपिशङ्गितमंसराज-
दम्लानचित्रवनमालमनङ्गदीप्तम् ।।२६।।

पुनः कीदृशं ? पीतमम्बरं वस्त्रं यस्य तं, पुनः कीदृशं ? मनोहर-नूपुरादिभिः शोभितमङ्गं यस्य तं हारो मुक्तावली काञ्ची क्षुद्रघण्टिका केयूरमङ्गदम् ऊर्मिमुद्रिका कटकः कङ्कणः ग्रादिपदेन किरीटादीनां परिग्रहः, पुनः कीदृशं ? देवसंबन्धिना ऽनुलेपनेन कुङ्कुमादिना पिश-ङ्गितं पिञ्जरितम् अंसे स्कन्धे राजन्ती शोभमाना ग्रम्लाना ग्रक्लिष्टा चित्रा नानाप्रकारिका वनमाला पत्रपुष्पमयी ग्रापादलम्बिनी माला यस्य तं, पुनः कीदृशम् ? ग्रनङ्गवत् कामवत् दीप्तम् ।।२६।।

जो पीत वस्त्र को धारण करने वाले हैं, सुन्दर नूपुर, मुक्तावली काञ्ची, केयूर, मुद्रिका कंकण-किरीट, आदि आभूषणों से उज्ज्वल हैं अंग जिनके, और जो केसर आदि दिव्य उवटनों से भूषित हैं, दोनों स्कन्धों से पाद पर्यन्त लटकने वाली वनमाला से शोभित हैं, कामदेव के समान किंवा निरतिशय सुन्दर श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।२६।।

वेणुं धमन्तमथवा स्वकरे दधानं-
सव्येतरे पशुपयष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे मणिप्रवरमीप्सितदानदक्षम्
ध्यात्वैवमर्चयतु नन्दजमिन्दिराप्त्यै ।।२७।।

पुनः कीदृशम् ? वेणुं धमन्तं वादयन्तम् अथवा पक्षान्तरे स्वकरे सव्येतरे वामे गोरक्षणदण्डं दधानं तथा दक्षे दक्षिणे ईप्सितदानदक्षं मणि दधानं, पुनः कीदृशम् ? उदारवेषम् । उद्भटवेषमिति रुद्रधरः । वस्तु-तस्तु वेणुं वादयन्तं तदेवदर्शयति ग्रथेति वामकरे सव्यं दक्षिण वामयो रित्यभिधानात् द्वयोरेवात्रतन्त्रेणसंग्रहः तत्र सव्ये द्वितीयवामहस्ते पशु-पर्यष्टि पशुरक्षणार्थं यष्टि दण्डं तथा सव्ये दक्षिणे हस्ते मणिप्रवरं मणिश्रेष्ठं चिन्तामणि दधानं, कीदृशं ? मणिप्रवरम् ईप्सितदानदक्षं वाञ्छितार्थदानक्षमम् इत्यर्थः ।।२७।।

वंशी की तान छेड़ते हुए अथवा वामकर में गौ रक्षक यष्टि को धारण करने वाले दक्षिण कर में ईप्सित फल देने में समर्थ चिन्तामणि को लिए हुए श्रीकृष्ण का लक्ष्मी प्राप्ति के लिए ध्यान करते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए ।।२७।।

आवरणनैवेद्यदानप्रकारमाह—

दामादिकेति ।

दामादिकाङ्गदयितासुहृदङ्घ्रिपेन्द्र-
वज्रादिभिः समभिपूज्य यथाविधानम् ।
दीक्षाविधिप्रकथितं च निवेद्यजातं-
हैमे निवेदयतु पात्रवरे यथावत् ।।२८।।

दाम आदिर्यस्य आदिपदेन सुदामादीनां परिग्रहः । अङ्गानि पूर्वोक्तानि पञ्च दयिता रुक्मिण्याद्याः सुहृदो वसुदेवाद्याः अङ्घ्रिपा मन्दाराद्याः पूर्वोक्ता इन्द्रादयो दश दिक्पालाः वज्रादीनि च तेषाम् आयुधानि पूर्वोक्तानि एतैर्यथाविधानं यथोक्तप्रकारेण कृष्णं संपूज्य दीक्षाविधाने कथितं नैवेद्यसमूहं हैमे सुवर्णमये पात्रश्रेष्ठे यथावत् निवेदयतु ।।२८।।

दाम, सुदामा आदि सखा, रुक्मिणी आदि महीषी, वसुदेव आदि सुहृद, मन्दार आदि वृक्ष, सपरिकर दश दिक्पालों का यथाविधि पूजन करके पूर्वोक्त प्रकार का नैवेद्य, सुवर्ण पात्र में समर्पण करे ।।२८।।

होमादिकमाह—

अष्टोत्तरमिति ।

अष्टोत्तरं शतमथो जुहुयात्पयोन्नैः
सर्पिःप्लुतैः सुसितशर्करया विमिश्रैः ।
दद्याद्बलिं च निजदिक्षु सुरर्षियोगि-
वर्गोपदैवतगणेभ्य उदग्रचेताः ।।२९।।

अनन्तरं पयोन्नैः पायसैः सर्पिःप्लुतैः सुसितशर्करया विमिश्रैः अतिशुभ्रशर्करया मिलितैः अष्टाधिकं शतं जुहुयात् होमं कुर्यात् । साहचर्यात् कल्पनालाघवाच्च होमोक्तद्रव्येणैव निजदिक्षु स्वस्वदिक्षु सुरर्षियोगिवर्गोपदैवतगणेभ्यो बलिं दद्यात् । तत्र सुरा विरञ्चिप्रभृतयः पूर्वदिक्स्थाः ऋषयो नारदादयो दक्षिणदिक्स्थाः योगिवर्गः सनकादिः पश्चिमदिक्स्थ उपदेवगणाः यक्षसिद्धगन्धर्वविद्याधराद्याः उत्तरदिक्स्था इतित्रिपाठिनः । उपदेवगणाः दशदिक्पाला इतिरुद्रधरः । उदग्रचेता उद्भटचित्तः सोत्साह इत्यर्थः ।।२९।।

इसके बाद घृत और खाण मिश्रित पायस से अष्टोत्तरशत हवन करे और अपनी-अपनी दिशाओं में संस्थित, ब्रह्मादि देव पूर्व, नारदादि ऋषि दक्षिण, सनकादि योगी पश्चिम, यक्षादि सिद्धगण, देवगण, उपदेवगण उत्तर, उनको यथाक्रम उदारता से बलि देवे ।।२९।।

नवनीतेति ।

नवनीतमिलितपायसधिया ऽर्चनान्ते जलैर्मुखे तस्य ।
सन्तर्प्य जपतु मन्त्री सहस्रमष्टोत्तरशतं वाऽपि ।।३०।।

अर्चनान्ते पूजावसाने तस्य देवस्य मुखे नवनीतेन मिलितं सम्बद्धं यत् पायसं तद्बुध्या जलैः सन्तर्प्य तर्पणं कृत्वा मन्त्री साधकः अष्टाधिकं सहस्रं शतं वा जपतु ।।३०।।

अर्चना के उपरान्त नवनीत मिश्रित पायस बुद्धि से जल द्वारा श्रीमुख में तर्पण कर एक हजार या अष्टोत्तर शत संख्या जप करे ।।३०।।

एतत्फलमाह —

अह्नइति ।

अह्नो मध्ये वल्लवीवल्लभं तं
नित्यं भक्त्या ऽभ्यर्चयेत् यो नराग्र्यः ।
देवाः सर्वे तं नमस्यन्ति शश्वत्
वर्तेरन् वै तद्वशे सर्वलोकाः ।।३१।।

यो नराग्र्यो नरश्रेष्ठः अह्नः मध्ये मध्याह्ने तं वल्लवीवल्लभं गोपीप्रियं नित्यं सर्वदा भक्त्या सात्विकेन भावेनार्चयेत् तं नरश्रेष्ठ सर्वे देवाः नमस्यन्ति तथा शश्वत्सर्वदा सर्वे जना एव तद्वशे वर्तेरन्, तद्वश्याः स्युरित्यर्थः ।।३१।।

जो मनुष्य मध्याह्न में श्रीराधा श्रीरुक्मिणी प्रिय श्रीकृष्ण की भक्तिपूर्वक नित्य पूजा करता है, उसे सभी देवता नमस्कार करते हैं, और सभी मनुष्य उसके वश में हो जाते हैं ।।३१।।

मेधेति ।

मेधायुःश्रीकान्तिसौभाग्ययुक्तः
पुत्रैर्मित्रैर्गोमहीरत्नधान्यैः ।

भोगैश्चान्यैर्भूरिभिः सन्निहाढचो

भूयात् भूयो धाम तच्चाच्युताख्यम् ॥३२॥

तथा इह लोके मेधा धारणावती बुद्धिः आयुः जीवनं श्रीः लक्ष्मीः कान्तिः शरीरशोभा सौभाग्यं सर्वजनप्रियता एतै युक्तः सम्बद्धः तथा पुत्रैरौरसैः मित्रैः सुहृद्भिः गोंः पृथिवी रत्नं धान्यं व्रीह्यादिः एतैश्च तथा अन्यैर्भूरिभिः प्रचुरैः सुखैराढचः उपचितः सन्पुनः देहावसाने अच्युताख्यं कृष्णनामकं तेजो महो भूयात् तद्रूपो भवतीत्यर्थः ॥३२॥

ऐसा श्रीकृष्ण पूजक साधक, धारणाशक्ति, आयु, श्री, कान्ति, सर्वलोकप्रियत्व, आदि गुणों से भरपूर हो जाता है। और पुत्र, मित्र, गौ, भूमि धन धान्य तथा अन्यान्य बहुत भोगों से पूर्ण होता हुआ, विख्यात धनिक होता है और अन्त में श्रीकृष्ण धाम को प्राप्त कर लेता है ॥३२॥

तृतीयकालपूजाव्यवस्थामाह —
तृतीयेति ।

तृतीयकालपूजायामस्ति कालविकल्पना ।

सायान्हे निशि वेत्यत्र वदन्त्येके विपश्चितः ॥३३॥

तृतीयकालपूजायां कालस्य वेलायां विकल्पना विकल्पोऽस्ति तमेवाह सायाह्ने सन्ध्यायां निशि रात्रौ वेति अत्र एके विपश्चितो वदन्ति ॥३३॥

तृतीय काल की पूजा के सम्बन्ध में विकल्प है। कुछ लोग कहते हैं सायंकाल कुछ लोग रात्रि बताते हैं ॥३३॥

किं तत्राह —
दशाक्षरेणेति ।

दशाक्षरेण चेद्रात्रौ सायान्हे ऽष्टादशार्णतः ।

उभयीमुभयेनैव कुर्यादित्यपरे जगुः ॥३४॥

चेद्यदि दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजादिकं तदा रात्रौ यद्यष्टादशार्णतो अष्टादशाक्षरेण मन्त्रेण तदा सायाह्ने इत्येकेषां मतम् । अपरे पुनः उभयीम् उभयपूजाम् उभयेनैव दशाक्षरेणा ऽष्टादशाक्षरेण च तत् कुर्यात् इति जगुः कथयन्ति तथा चैच्छिको विकल्प इतिभावः ॥३४॥

तृतीय काल की पूजा के सम्बन्ध में कुछ लोगों का कहना है कि यदि दशाक्षर मन्त्र के अनुसार पूजा करनी है तो रात्रि में, अष्टादशाक्षर के अनुसार

करनी है तो सायंकाल में पूजा होनी चाहिए। इस पर कोई कहते हैं कि चाहे किसी मन्त्र से हो, दोनों से सायं पूजा, और रात्रि पूजा की जा सकती है ॥३४॥

सायाह्नइत्यादि —

अत्र नवश्लोकान्तं कुलकम् ।

सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते ।

द्व्यष्टसाहस्रसंख्यातैर्भवनैरभिसंवृते ॥३५॥

हंससारससंकीर्णैः कमलोत्पलशालिभिः ।

सरोभिरमलाम्भोभिः परीते भवनोत्तमे ॥३६॥

उद्यत्प्रद्योतनद्योतसद्युतौ मणिमण्डपे ।

मृद्वास्तरे सुखासीनं हेमाम्भोजासने हरिम् ॥३७॥

नारदाद्यैः परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये ।

तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम् ॥३८॥

सायाह्ने एवमेतादृशवेषधारिणं हरिं ध्यात्वा ऽर्चयेत् कीदृशं मृद्वास्तरकोमलासनरूपे हेमाम्भोजासने कनकपद्मासने समासीनम् उपविष्टं कुत्रावस्थितं मणिमण्डपे, किंविशिष्टे ? उद्गच्छन् यः प्रद्योतनः सूर्यः तस्य द्योतस्य समाना द्युति र्यस्य तस्मिन् कुत्र भवनोत्तमे गृहश्रेष्ठे किंविशिष्टे ? चित्रोद्यानोपशोभिते बहुधोपवनसेविते, पुनः किंविशिष्टे ? द्वारवत्यां विद्यमाने. पुनः किंविशिष्टे ? भवनैर्गृहैरभिसंवृते, कीदृशैः ? द्व्यष्टसहस्रसंख्यातैः ।

पुनः किंविशिष्टे —

सरोभिः सरोवरैः परीते, कीदृशैः ? अमलाम्भोभिर्निर्मलजलैः, पुनः कीदृशैः ? हंससारससंकीर्णैः हंसादिपक्षिगणैर्व्याप्तैः, पुनः कीदृशैः ? कमलोत्पलशालिभिः पद्मोत्पलसहितैः ।

हरिं कीदृशं —

नारदाद्यैः मुनिभिः परिवृतं वेष्टितं किमर्थमात्मतत्वनिर्णये आत्मतत्वनिश्चये निमित्ते पुनः कीदृशं तेभ्यो नारदादिभ्यः स्वं धाम ज्ञानस्वरूपमात्मानं कथयन्तं पुनः कीदृशं परमविद्यातत्कार्यरहितं पुनः कीदृशम् अक्षरम् अविनाशि ॥३५॥३६॥३७॥३८॥

सायंकाल की पूजा द्वारिका में होनी चाहिए। द्वारिका विभिन्न प्रकार के उद्यानों से शोभित है सोलह हजार दिव्य भवनों से संवृत है, कमल, नीलकमल की पत्रावलियों पर भ्रमण करने वाले हंस-सारस आदि पक्षियों से व्याप्त और निर्मल जल शाली सरोवरों से वेष्टित है ऐसे उत्तम भवन में उदीयमान सूर्य के समान चमकने वाले, कोमल आस्तरणों से विलसित स्वर्ण घटित कमलासन में सुखपूर्वक विराजमान जो आत्मतत्व विचार के उद्देश्य से उपस्थित नारदादि मुनिजनों द्वारा सेवित हैं, उनको अपने अविनाशी धाम की महिमा बता रहे हैं ऐसे श्रीकृष्ण का सप्रेम ध्यान करना चाहिए ।।३५।।३६।।३७।।३८।।

इन्दीवरनिभं सौम्यं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।
स्निग्धकुन्तलसंभिन्नकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।।३९।।

पुनः कीदृशं—

इन्दीवरनिभं नीलाम्भोजसदृशं सौम्यम् उग्रतारहितं, पुनः कीदृशं? पद्मपत्रवदायते दीर्घ ईक्षणे यस्य तं पुनः स्निग्धाः चिक्कणा ये कुन्तलाः केशास्तैः सम्भिन्नै मिलिते किरीटमुकुटे ताभ्यामुज्ज्वलं देदीप्यमानं अत्र किरीटशब्देन ललाटाश्रितः त्रिश‍ृङ्गोऽलङ्कारविशेषः कथ्यते मुकुटशब्देन च मूर्ध्नि मध्यभागाश्रितं तच्च दीपशिखाकारो ऽलङ्कारविशेषः कथ्यते ।। ३९ ।।

जिनकी नीलकमल के समान कान्ति है, जो सुन्दर, कमल नयन हैं, स्निग्ध अलकावलियों में संश्लिष्ट, किरीट और मुकुट की शोभा को भी उज्ज्वल करने वाले हैं, ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।३९।।

विशेष—किरीट, ललाट के करीब धारण किए जाने वाला, सीगों वाला आभूषण विशेष है। मुकुट, सिर के मध्यभाग में लगाए जाने वाला दीप शिखकार अलंकार विशेष है।

चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ।।४०।।

पुनः कीदृशं? चारु मनोहरं प्रसन्नं फलदायि वदनं यस्य तं पुनः स्फुरती देदीप्यमाने मकराकृती कुण्डले यस्य तं, पुनः श्रीवत्सो विप्रपादप्रहारकृतचिह्नविशेषो वक्षसि यस्य तं, पुनः भ्राजन् देदीप्यमानः कौस्तुभो मणिविशेषो यस्य तं पुनः वनमालाधारिणम् ।।४०।।

सुन्दर और प्रसन्न मुखारविन्द वाले देदीप्यमान मकराकृति कुण्डलों को धारण करने वाले, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, और वनमाला को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।४०।।

काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम् ।
हारकेयूरकटकरसनाद्यैः परिष्कृतम् ।।४१।।

पुनः कीदृशं —

काश्मीरेण कुङ्कुमवर्णम् उरो यस्य तं, पुनः पीतवस्त्रधारिणं, पुनः हारः मुक्ताहारः केयूरमङ्गदं वाहुलङ्कारः कटकः कङ्कणः रसना क्षुद्रघण्टिका आदिशब्देनाऽङ्गुलीयकादेः परिग्रहः एतैः परिष्कृतम् शोभितम् ।। ४१ ।।

केसर के समान वर्णशाली जिनका उरःस्थल है जो कौशेय पीताम्बर को धारण करने वाले हैं, मुक्ताहार, केयूर=(बाहुस्थल पर लगाया जाने वाला आभूषण विशेष) कंकण किंकिणि आदि से सुशोभित श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।४१।।

हृतविश्वम्भराभूरिभारं मुदितमानसम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम् ।।४२।।

पुनः कीदृशं ।

हृतो ऽपनीतो विश्वम्भरायाः पृथ्व्या भूरिर्भरो बृहद्भारो ऽसुरादिलक्षणो येन तं पुनः मुदितं हृष्टं मानसं यस्य तं पुनः शङ्खचक्रगदापद्मैः शोभितं बाहुचतुष्टयं यस्य तम् ।।४२।।

हरण कर लिया है विश्वम्भरा पृथिवी के गुरुतर भार को जिन्होंने, अतएव प्रसन्न मना, शंख, चक्र गदा पद्मों से विलसित चार बाहु हैं जिनके, ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।४२।।

एवं ध्यात्वा ऽर्चयेन्मन्त्री तदङ्गैः प्रथमावृतिम् ।
द्वितीयां महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत् ।।४३।।

अत्र पूजायाम् अङ्गैः पूर्वोक्तैः पञ्चाङ्गैः प्रथमावरणं भवति, द्वितीयावरणं महिषीभिः, रुक्मिण्यादिभिः तृतीयायामावृतौ दिक्षु पूर्वादिदिक्ष वक्ष्यमाणान् नारदादीन् अग्रे च विनतासुतं गरुडं पूजयेत् ।।४३।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए पूर्वोक्त पञ्चोपचार विधि से प्रथमावरण में देवताओं की द्वितीयावरण में अष्टमहीषियों की, तृतीयावरण में आगे बताए जाने वाले नारदादिकों की पूजा करे ॥४३॥

तानेवाह –

नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकान् ।
विश्वक्सेनं च सैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम् ॥४४॥

पर्वतनामा मुनिविशेषः जिष्णुरर्जुनः निशठो यादवविशेषः उद्धवोऽपि तथा दारुकः कृष्णसारथिः विष्वक्सेनः भाण्डागारिकः शैनेयः सात्यकिः ॥ ४४ ॥

तृतीयावरण में पूज्य देवता, नारद, पर्वत, अर्जुन, निशठ (यादव विशेष), उद्धव, विश्वक्सेन, सात्यकि, दारुक, गरुड़ है ॥४४॥

लोकेशैस्तत्प्रहरणैः पुनरावरणद्वयम् ।
इति संपूज्य विधिवत्पायसेन निवेदयेत् ॥४५॥

लोकेशैरिन्द्रादिभिरेकमावरणं तत्प्रहरणैस्तदायुधैर्वज्रादिभिरपरावरणं एवं क्रमेणाऽवरणद्वयं इत्यनेन प्रकारेण पञ्चावरणकेन संपूज्य विधिवद्दीक्षाकथितं पायसं दद्यात् ॥४५॥

दश दिक्पाल तथा उनके आयुध की पूजा, चतुर्थ तथा पञ्चमावरण में करनी चाहिए। और उनको पायस का नैवेद्य समर्पण करना चाहिए ॥४५॥

तर्पणप्रकारं जपसंख्यां च दर्शयति ।

तर्पयित्वेति –

तर्पयित्वा खण्डमिश्रैर्दुग्धबुद्धया जलैर्हरिम् ।
जपेदष्टशतं मन्त्री भावयन् पुरुषोत्तमम् ॥४६॥

खण्डेन शर्करया विमिश्रं मिलितं यद्दुग्धं तद्बुद्धया जलैः कृष्णं तर्पयित्वा पुरुषोत्तमं भावयन् ध्यायन् मन्त्री साधकः अष्टाधिकशतं जपेत् । यद्यपि तर्पणस्य क्त्वाप्रत्ययेन पूर्वकालता प्रतीयते तथापि प्रथमं जपः तदनु तर्पणं कार्यं तथैवानुक्रमात् सम्प्रदायाच्चेति रुद्रधरः ॥४६॥

शर्करा मिश्रित जल को ही दूध समझकर उससे श्रीकृष्ण का तर्पण करे और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए अष्टोत्तर शत जप करे ॥४६॥

पूजास्विति –

पूजासु होमं सर्वासु कुर्यान्मध्यंदिने ऽथवा ।
आसनादर्घ्यपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा नमेत्सुधीः ॥४७॥

सर्वासु तिसृष्वपि पूजासु होमं कुर्यात् । पक्षान्तरमाह अथवेति । मध्यंदिने मध्याह्नपूजायां वा होमं कुर्यादित्यर्थः । आसनादिति । आसनमन्त्रादारभ्याऽर्घपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा स्तवनं कृत्वा नमेत् दण्डवत्प्रणमेत । अवसानार्घपर्यन्तमितिपाठे अयमर्थः–पूजां कृत्वा पूजाशेषकर्तव्यार्घ्यमवशेषयित्वा मध्येहोमं कृत्वा ततः पूजाशेषार्घ्यमवसानार्घ्यसंज्ञकं पराङ्मुखार्घ्यापरपर्यायं दद्यादित्यर्थः ॥४७॥

तीनों काल की पूजा के अनन्तर हवन करे। यदि तीन काल हवन करने में असमर्थ है तो, मध्याह्न काल की पूजा के अनन्तर हवन करे। आसन समर्पण से अर्घ्य पर्यन्त की पूजा करके स्तुतिपूर्वक भगवान् को प्रणाम करे ॥४७॥

समर्प्येति –

समर्प्यात्मानमुद्वास्य तत्स्वे हृत्सरसीरुहे ।
विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत् ॥४८॥

आत्मसमर्पणमन्त्रेण स्वात्मानं परमेश्वरे समर्प्य तत् परमेश्वरतेजः पूजास्थानादुद्वास्य उद्वृत्य स्वकीयहृदयपद्मे विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानं पूजयेत् ॥४८॥

अपने को आत्म समर्पण मन्त्र बोलते हुए, श्रीकृष्ण में अर्पण करे। और भगवान् श्रीकृष्ण का तेज जो पूजा स्थान पर है उसे वहां से उद्धृत करके अपने हृदय कमल पर आहित करे, उसके बाद अपनी अर्चना करे ॥४८॥

सायाह्नपूजाफलमाह–

सायाह्नइति ।

सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं यजेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते स याति परमां गतिम् ॥४९॥

यो नरः सायाह्ने वासुदेवं नित्यं सर्वदा एवं कथितप्रकारेण यजेत् पूजातर्पणहोमादिभिः परितोषयेत् सर्वान् कामान्वाञ्छितानर्थान् अवाप्य देहावसाने परां गतिं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोति ॥४९॥

इस प्रकार जो साधक भगवान् श्रीकृष्ण की सायं कालीन पूजा करता है, वह इस लोक में मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर अन्त में परम गति–भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष प्राप्त करता है ॥४९॥

रात्राविति—

रात्रौ चेन्मन्मथाक्रान्तमानसं देवकीसुतम् ।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम् ॥५०॥

चेद् यदि रात्रौ पूजा क्रियते तदा रासः क्रीडाविशेषस्तेन परिश्रान्तं देवकीनन्दनं यजेत् मन्मथेनाक्रान्तं मानसं हृदयं यस्य तं पुनः गोपीनां मण्डलं गोष्ठीविशेषः तस्य मध्ये स्थितम् ॥५०॥

यदि रात्रि में श्रीकृष्ण की पूजा की जाती है तो रास क्रीड़ा से श्रान्त हुए, कामदेव से आक्रान्त है मन जिनका, एवं गोपियों के बीच में विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥५०॥

रासक्रीडांदर्शयति ।

पृथुमिति ।

पृथु सुवृत्तं मसृणं वितस्ति-
मात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शङ्कुम् ।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरात्त-
हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी ॥५१॥

इतरेतरात्तहस्तैः परस्परगृहीतहस्तैः अयंभ्रमोभ्रमणंरासगोष्ठी किंकृत्वा ? कौपृथिव्यां पृथुंस्थूलंसुवृत्तंवर्तुलाकारं मसृणं स्निग्धंवितस्तिमात्रोत्थितं द्वादशाङ्गुलप्रमाणेनोर्द्ध्वंस्थितंशङ्कुकाष्ठखण्डविनिखन्य, पुनः किंकृत्वा ? पद्भ्यांशङ्कुमाक्रम्यनियन्त्र्य ॥५१॥

रास क्रीड़ा कैसे होती है, उसे बताते हैं । पृथिवी पर एक स्थूल, वर्तुलाकार, स्निग्ध दिव्य काष्ठ निर्मित मणिमय—आधार शंकु को गाडकर जो द्वादशाङ्गुल परिमित (एक बिलात) ऊपर उठा हो, उसे दोनों चरण कमलों की केन्द्र बिन्दु बनाते हुए परस्पर करकमलों को ग्रहण करते हुए की जाने वाली क्रीड़ा का नाम रास है ॥५१॥

ध्यानमाह—

स्थूलेत्यादि ।

स्थूलनीरजसूनपरागभृता
लहरीकणजालभरेण सता ।

मरुता परितापहृताऽध्युषिते
विपुले यमुनापुलिने विमले ॥५२॥

द्वादशश्लोकान्तं कुलकम् ।

कल्याणमयस्वरूपमजं विचिंत्य प्रथमोदितपीठवरे पूर्वोक्तदीक्षासम्बन्धिपूजापीठश्रेष्ठे विधिवत् यथाविधि प्रयत्नेन पूजयेत् । कीदृशं ? यमुनापुलिने यमुनातटे इतरतेरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ अन्योन्यबद्धहस्तस्त्रीसमूहपरिकल्पितक्रीडाविशेषविधौमणिशङ्कुंमणिमयशङ्कुमध्यगतं कीदृशे पुलिने ? वायुनाऽध्युषिते आक्रान्ते, कीदृशेन, स्थलनीरजंस्थलकमलन्तत्पुष्पपरागभृता तत्केशरसंनिकृष्टपुष्परजोयुक्तेन अनेन सौगन्ध्यं वर्णितं पुनः लहरीतरङ्गस्तस्यकणजालंबिन्दुसमूहः तस्य भरेणप्रकर्षेणसता उत्कृष्टेनयुक्तेनेतित्रिपाठिनः । अनेन शैत्यमुक्तम् पुनः परितापहृताखेदविनाशकेन—अनेन मान्द्यमुक्तं, पुनः कीदृशे पुलिने ? विपुले विस्तीर्णे पुनः विमले शुद्धे ॥५२॥

स्थल-कमल-पुष्पों के पराग को लिए हुए यमुनाजी के जल तरङ्गों की बिन्दुओं से भरित, परिश्रम जन्य स्वेद को हरण करने वाली त्रिविध-मन्द, सुगन्ध, शीतल वायु से संसेवित विशाल यमुना पुलिन पर रासविहार करने वाले श्रीकृष्ण का पूजन करे ॥५२॥

अशरीरनिशातशरोन्मथित-
प्रमदाशतकोटिभिराकुलिते ।
उडुनाथकरैर्विशदीकृतदिक्-
प्रसरे विचरद्भ्रमरीनिकरे ॥५३॥

पुनः कीदृशे—

अशरीरः कामः तस्य यो निशातशरस्तीक्ष्णबाणस्तेनउन्मथिताव्यग्रीकृता याः प्रमदास्तासां शतकोटिभिराकुलीकृते इतस्ततोव्याप्ते, पुनः कीदृशे ? उडुनाथश्चन्द्रस्तस्यकरैः किरणैर्विशदीकृतः प्रकाशितोदिक्प्रसरोदिगवकाशोयत्रतस्मिन्, पुनः कीदृशे ? विचरन्तीभ्रमन्तीयाभ्रमरीतस्यानिकरः समूहोयत्रतस्मिन् ॥५३॥

जो कामदेव के तीक्ष्ण बाण से विचलित हुई करोड़ों गोपियों के समूह से व्याप्त है, चन्द्रमा की धवल किरणों से प्रकाशित है दिग् विभाग जिसमें, ऐसे

भ्रमण करने वाले भ्रमर समूह से गुञ्जायित यमुना पुलिन पर रासविहार करने वाले श्रीकृष्ण का पूजन करे ।।५३।।

विद्याधरकिन्नरसिद्धसुरैः
गन्धर्वभुजङ्गमचारणकैः ।
दारोपहितैः सुविमानगतैः
खस्थैरभिवृष्टसुपुष्पचयैः ।।५४।।

पुन: कीदृशे —

विद्याधरप्रभृतयोयथाप्रसिद्धा: तथाभुजङ्गम: हस्तपादादिशरीरान्वितोनागलोकस्थ: सर्व: एतैर्दारोपहितै: सस्त्रीकै: शोभनविमानगतै: आकाशनिष्ठै: कृतपुष्पवृष्टिसमूहै: आकुलिते ।।५४।।

अपनी-अपनी अर्धांगिनियों के साथ आकाश में उड़ने वाले सुन्दर विमान में आरूढ़ होकर विद्याधर, किन्नर, सिद्ध, देव, तथा गर्न्धव नाग, चारण गण जहां पर दिव्य पुष्प वृष्टि करते हैं ऐसे यमुना पुलिनस्थ रासविहारी श्रीकृष्ण की पूजा करे ।।५४।।

इतरेतरबद्धकरप्रमदा
गणकल्पितरासविहारविधौ ।
मणिशङ्कुगमप्यमुनावपुषा
बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम् ।।५५।।

पुन: कीदृशं कृष्णम् ? अमुनावपुषा अनेन मणिशङ्कुगतेन शरीरेण नानाप्रकारकृतस्वीयदिव्यशरीरम् ।।५५।।

परस्पर करकमलों को परिबद्ध करने वाली गोपियों द्वारा परिकल्पित रास क्रीड़ा के प्रसंग में रास क्रीड़ा के आधारभूत मणिमय शंकु पर केन्द्रित होते हुए भी वहीं से अनेक दिव्य श्री विग्रहों का विस्तार करने वाले श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए। यहां इतना और समझना आवश्यक है कि मणिमय शंकु पर केन्द्रित श्रीकृष्ण ही व्यूह से सभी गोपियों के साथ अलग-अलग रूप में परिणत होकर रास करते हैं, बाद में सारी शक्तियां उन्हीं श्रीकृष्ण में सिमट जाती हैं ।।५५।।

सुदृशामुभयोः पृथगन्तरगं
दयितागणबद्धभुजद्वितयम् ।

निजसङ्गविजृम्भदनङ्गशिखि
ज्वलिताङ्गलसत्पुलकालियुजाम् ।।५६।।

पुन: कीदृशम् ।

सुदृशां कामिनीनामुभयोर्द्वयो: पृथक् द्वयद्वय क्रमेण अन्तरगं मध्यगतं । पुन: कीदृशं ? दयितागणेन नारीसमूहेन बद्धं स्वहस्तेनान्योन्यं ग्रन्थितं भुजद्वितयं यस्यतम् एतेनैतदुक्तं भवति कामिन्योर्मध्येकामिनीनामेव हस्तेन गृहीतहस्त: परमेश्वर इति अपि समुच्चयेन केवलं शङ्कुगं कामिनीनामपि अन्तरेण युक्तमिति भाव: । कीदृशां ? निजसङ्गेन गोपालकृष्णसङ्गेन विजृम्भमाण. प्रज्वलितो यो अनङ्गशिखी कामाग्निस्तेन ज्वलितं प्रदीप्तं यदङ्गं तत्र लसन्तीशोभमाना या पुलकाली रोमाञ्चपङ्क्तिस्तया युज्यन्ते इति तद्युजस्तासाम् ।।५६।।

श्रीकृष्ण के संग से उत्पन्न प्रज्वलित कामाग्नि से उद्दीप्त अंगों में विलसित है अञ्चित रोमावली जिनके ऐसी सुन्दर दृष्टि वाली गोपियों में से पृथक्-पृथक् दो-दो के बीच में उन्हीं प्रियतमाओं द्वारा पकड़ी जा रही हैं भुजाएं जिनकी, ऐसे श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए ।।५६।।

विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतर-
स्वरसप्तकमूर्छनतालगणैः ।
भ्रममाणममूभिरुदारमणि-
स्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतरम् ।।५७।।

पुन: कीदृशम् ।

अमूभिर्गोपीभि: सहभ्रममाणं भ्रमीं कुर्वाणं कै:? विविधो नानाप्रकार: श्रुतिर्नामस्वरारम्भकावयव: शब्दविशेष: तेनभिन्नं सङ्गतं मनोज्ञतरम् अतिहृदयग्राहि यत्स्वरसप्तकं निषादेत्यादि तस्ययामूर्छनाएकविंशतिप्रकारिका भागतालाश्वतालपरितालादय: ऊनपञ्चाशत् एतेषाङ्गणै: समूहै: । पुन: कीदृशम् ? उदारउद्भटोयोमणिस्तस्यस्फुटं प्रव्यक्तम् अतितेजस्वितयायन्मण्डनन्तस्य शिञ्जितं शब्दितं तेन चारुतरं हृदयंगमम् ।। ५७ ।।

अनेक स्वरों से सम्बलित श्रुतिस्वरारम्भ शब्द विशेष से मनोज्ञतर, निषाद आदि सप्तस्वर, तत्सम्बन्धी इक्कीस मूर्छना एवं विभिन्न ताल विशेष के

साथ नृत्य करने वाली गोपियों के साथ नृत्य करने वाले, चमकने वाले मणियों की झंकृति से रमणीय लगने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।५७।।

इति भिन्नतनुं मणिभिर्मिलितं
तपनीयमयैरिव मारकतम् ।
मणिनिर्मितमध्यगशङ्कुलस-
द्विपुलारुणपङ्कजमध्यगतम् ।।५८।।

पुनः कीदृशम्—

इति भिन्नतनुम् ।

अनेन प्रकारेणगोपीभिर्मिलितदेहङ्गोपालकृष्णं कमिव तपनीयमयैः सुवर्णमयैः मणिभिर्मिलितं ग्रथितंमरकतमणिमिव । पुनः कीदृशं ? मणि-निर्मितोमध्यगतो य शङ्कुः तल्लग्नंलसद्देदीप्यमानंयद्विपुलंबृहदरुणपङ्क-जन्तस्यमध्यगतम् ।।५८।।

इस प्रकार गोपियों के साथ संश्लिष्ट है तनु जिनकी, सुवर्ण संघटित मणियों से शोभित, मकरत मणि के सदृश आभा वाले रास मण्डल के मध्य में मणिमय आधार शंकु से परिशोभित विशाल रक्तकमलाकार सिंहासन में विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।५८।।

अतसीकुसुमाभतनुं तरुणं
तरुणारुणपद्मपलाशदृशम् ।
नवपल्लवचित्रसुगुच्छलस-
च्छिखिपिच्छपिनद्धकचप्रचयम् ।।५९।।

पुनः कीदृशम्—

अतसीप्रसिद्धा तस्याः कुसुमानीवाभादीप्तिर्यस्यास्तनोस्तादृशी-तनुर्यस्य तं । पुनः कीदृशं ? तरुणेति नूतनारुणपद्मपत्रसदृशनेत्रं । पुनः कीदृशं ? नवेति नूतनपल्लवनानाविधस्तवकशोभमानमयूरपुच्छसम्बद्ध-केशसमूहम् ।।५९।।

अतसी कुसुम के समान नील आभा वाले, तरुण, नव पुष्पित लाल कमल के पत्र के समान नेत्र वाले, नये-नये पल्लवों से संगठित मयूर पंख से सम्बन्धित हैं घुंघराले बाल जिनके, ऐसे श्रीकृष्ण का पूजन करे ।।५९।।

चटुलभ्रुवमिन्दुसमानमुखं
मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगम् ।
शशरक्तसदृक्दशनच्छदनं-
मणिराजदनेकविधाभरणम् ।।६०।।

पुनः कीदृशं—

चटुलभ्रुवञ्चलद्भ्रूलताकं । पुनः कीदृशं ? शुक्लपक्षीयपूर्णचन्द्र-सदृशाननं, पुनः कीदृशं ? मणिमयकुण्डलशोभितगण्डद्वयं, पुनः कीदृशं ? शशशोणिततुल्याधरं, पुनः कीदृशं ? मणिना शोभमाननानाप्रकारा-भरणम् ।।६०।।

चञ्चल भ्रूलताशाली, पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुख कमल वाले मणि संघटित कुण्डलों से शोभित है गण्डस्थल जिनका, ऐसे शशाङ्कित नवोदीयमान चन्द्रमा के समान अधरोष्ठ वाले मणि शोभित अनेक आभूषणों को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए ।।६०।।

असनप्रसवच्छदनोज्ज्वलस-
द्वसनं सुविलासनिवासभुवम् ।
नवविद्रुमभद्रकराङ्घ्रितलं
भ्रमराकुलदामविराजितनुम् ।।६१।।

पुनः कीदृशम्—

असनोवृक्षविशेषः तस्यप्रसवः पुष्पंतस्यच्छदनं पत्रं च तद्वदुज्ज्वलं शोभमानं मनोहरं वस्त्रं यस्य तं, पुनः कीदृशं ? शोभनक्रीडाविचित्र-स्थानं । पुनः कीदृशं ? नवोनूतनोयोविद्रुमः प्रवालस्तद्वत् भद्रं मनोहरं कराङ्घ्रितलंयस्यतं, पुनः कीदृशं ? भ्रमरैराकुलंव्याप्तं यत् पुष्पदाममा-लातेनविराजितं भुजद्वयंयस्यतं यद्वा मालयाविराजितातनुर्यस्यतम् ।।६१।।

असन (चम्पा) पुष्प के सदृश पीतोज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाले, सुन्दर क्रीड़ा स्थली पर विराजमान होने वाले, नवविद्रुम (मूगा) के सदृश है कर चरणतल जिनके, भ्रमरों से व्याप्त पुष्प माला से शोभित श्रीकृष्ण का पूर्वोक्त गुणविशिष्ट यमुना पुलिन पर पूजन करे ।।६१।।

तरुणीकुचयुक्परिरम्भमिलत्
घुसृणारुणवक्षसमुक्षगतिम् ।

शिववेणुसमीरितगानपरं

स्मरविह्वलितं भुवनैकगुरुम् ।।६२।।

पुनः कीदृशं ? युवतीनां स्तनद्वयालिङ्गनसम्बद्धकुङ्कुमारुणितमुरःस्थलंयस्यतं । पुनः कीदृशम् ? उक्षगतिवृषभगतिं । पुनः कीदृशं ? शिवः कल्याणप्रदोयोवेणुर्वंशस्तेनसमीरितं संपादितं यद्गानङ्गीतंतत्परन्तदासक्तं । पुनः कीदृशं ? स्मरेणकामेनविह्वलितमनायत्तं । पुनः कीदृशं ? भुवनत्रयस्य एकम् अद्वितीयं गुरुम् ।।६२।।

व्रज सीमन्तिनियों के उरजों के आलिङ्गन से अनुलिप्त कुंकुम है उरःस्थल में जिनके और वृषभ के समान मनोहर गति वाले, आनन्दप्रद वंशी ध्वनि करने वाले, अपने सौन्दर्य से कामदेव को भी विमुग्ध करने वाले जगद्गुरु श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए ।।६२।।

प्रथमोदितपीठवरे विधिवत्

प्रयजेदिति रूपमरूपमजम् ।

प्रथमं परिपूज्य तदङ्गवृतिं

मिथुनानि यजेद्रसगानि ततः ।।६३।।

इतिरूपमजं प्रथमोदिते पीठवरे पूर्वकथितदेवताक्लृप्तपीठेयजेत् अरूपंनिर्गुणम् । आवरणानिदर्शयति – प्रथममिति । तदङ्गवृतिंपूर्वोक्ताङ्गावरणं प्रथमं परिपूज्य ततस्तदनन्तरंमिथुनानिकेशवकीर्त्यादीनि रासगानिरासक्रीडागतानि ।।६३।।

अजन्मा, अरूप होते हुए भी सुरूप वाले श्रीकृष्ण की विधिवत् पूजा पूर्वोक्त पीठ पर करे। प्रथमावरण की पूजा करने के बाद कीर्ति आदि शक्तियों के साथ रासगत शक्तियों का भी पूजन करे ।।६३।।

दलषोडशके स्वरमूर्तिगणं

सहशक्तिकमुत्तमरासगतम् ।

सरमामदनं स्वकलासहितं

मिथुना ह्वमयेन्द्रपविप्रमुखान् ।।६४।।

दलषोडशकेषोडशपत्रेपूजयेत्—

मिथुनमेवकथयति स्वरमूर्त्तिगणम् इति स्वरभवा अकारादिवर्णभवाः केशवादिषोडशमूर्तयः, स्वरमूर्त्तिगणं कीदृशं ? सहशक्तिकं कीर्त्यादिशक्तिसहितं । पुनः कीदृशं ? उत्तमोयोरासः तत्रगतं । क्वचिदुत्तररासगतमिति पाठः । तत्रमध्यरासेपरमेश्वरपूजाउत्तरादिरासे केशवादिकं पूजयेत् ।

पुनः कीदृशं —

रमा श्रीबीजं मदनः कामबीजम् एताभ्यां सहितं । पुनः कीदृशं ? स्वकीया याः कलाः षोडशस्वराः तैः सहितं प्रयोगश्च श्रीं क्लीम् अंकेशवकीर्तिभ्यांनमः इत्यादि । पुनः कीदृशं ? मिथुनाह्वं मिथुनसंज्ञकम् । अथानन्तरम् इन्द्रपविप्रमुखान् इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेदित्यर्थः ।।६४।।

कीर्ति आदि शक्तियों के सहित स्वरों के अधिष्ठातृ देवता, केशव आदि मूर्तियों की, श्रीं बीज तथा क्लीं बीज को आदि में प्रयोग करते हुए इन सबके साथ श्रीकृष्ण की पूजा करे, तथा इन्द्रादि दश दिक्पाल एवं उनके आयुधों की पूजा भी करनी चाहिए ।।६४।।

पूर्वोक्तावृतिसंख्यापूर्वकंनैवेद्यं कथयति ।

इतीति ।

इति सम्यगमुं परिपूज्य हरिं

चतुरावृतिसंवृतमार्द्रमतिः ।

रजतारचिते चषके ससितं

सुश्रृतं सुपयोऽस्य निवेदयतु ।।६५।।

अनेन प्रकारेणचतुरावरणवेष्टितममुं हरिंसम्यक्यथाविधिसम्पूज्य श्रद्धावान् रजतारचितेरूप्यनिर्मितेचषकेपात्र अस्यहरेः ससितं सशर्करं सघृतंघृतसहितं पाठान्तरम् । सुशृतम् आवर्त्तितंपयो दुग्धंनिवेदयतु ।।६५।।

सरस हृदय वाले साधक को पूर्वोक्त प्रकार से चार आवरणों से वेष्टित श्रीकृष्ण की पूजा करके रजतपात्र में मिश्री मिश्रित अधौटे दूध का नैवेद्य समर्पण करना चाहिए ।।६५।।

विभवे सति कांस्यमयेषु पृथक्

चषकेषु तु षोडशसु क्रमशः ।

मिथुनेषु निवेद्य पयः ससितं

विदधीत पुरोवदथो सकलम् ।।६६।।

विभवेसतियदितादृशमैश्वर्यंभवतितदाकांस्यघटितेषुपृथक् एकैकंषोडशचषके-पु क्रमेणमिथुनगणेषुससितं पयोनिवेद्य अथानन्तरं पुरोवत् निवेदयामि भगवते इत्याद्युक्तप्रकारेणसकलं पूजाविशेषंसमापयेत् ।।६६।।

यदि ऐश्वर्य है, करने की उदारता भी है तो सोलह आवरणों में स्थित शक्ति सहित देवताओं को सोलह कांस्य पात्रों में अधौटा दूध या पायस नैवेद्य के रूप में समर्पण करके पुनः पूर्वोक्त विधि से अंग पूजा भी करे ।।६६।।

रासपूजाफलमाह ।

सकलेति ।

सकलभुवनमोहनं विधिं यो
नियतममुं निशिनिश्युदारचेता ।
भजति स खलु सर्वलोकपूज्यः
श्रियमतुलां समवाप्य यात्यनन्तम् ।।६७।।

अमुं विधिंरासपूजाप्रकारं सकलभुवनमोहनं सकलभुवनवश्यकरं नियतमबाधेन यो निशिनिशिप्रतिरजनिउदारचेताः प्रसन्नमनाः सन् सम्यक्भजतिकुर्यात् स सर्वलोकपूज्यः सन् अतुलामतिशयितां श्रियंसमृद्धिंसमवाप्य अनन्तंविष्णुंयाति प्राप्नोति ।।६७।।

यदि कोई उदार चेता साधक नियमतः रात्रि में सकल भुवन को वश करने वाली पूर्वोक्त विधि का आश्रय लेता है तो वह सर्वलोक पूज्य होकर अतुल वैभव को प्राप्त करता हुआ अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करता है ।।६७।।

निशिवेति—

निशि वा दिनान्तसमये
प्रपूजयेन्नित्यशोऽच्युतं भक्त्या ।
समफलमुभयं हि ततः
संसाराब्धिं समुत्तितीर्षति यः ।।६८।।

यः पुमान् संसारसागरन्तरितुमिच्छतिसोऽच्युतं भक्त्या निशि वा दिनान्तसमयेवासंध्यायां पूजयेत् नित्यशः प्रत्यहं हियतः उभयंनिशासंध्यापूजनद्वयंसमफलं ततस्तस्माद्धेतोः निशिवादिनान्तेवापूजयेदित्यर्थः ।।६८।।

जो साधक संसार सागर से पार होने की इच्छा करता है तो वह सायं या रात्रि में भक्तिपूर्वक नित्य भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करे। दोनों काल की पूजा का फल एक समान ही है ।।६८।।

उक्तमुपसंहरति ।

इत्येवमिति ।

इत्येवं मनुविग्रहं मधुरिपुं यो वा त्रिकालं यजे-
त्तस्यैवाऽखिलजन्तुजातदयितस्याऽम्भोधिजावेश्मनः ।
हस्ते धर्मसुखार्थमोक्षतरवः सद्वर्गसम्प्रार्थिताः
सान्द्रानन्दमहारसद्रवमुचो येषां फलश्रेणयः ।।६९।।

इति अमुनाप्रकारेण यः पुमान्मन्त्रशरीरंमधुसूदनंत्रिकालंवा पूजयेत् तस्यनानाविधप्राणिसमूहवल्लभस्य अम्भोधिजावेश्मनोलक्ष्मीनिवासस्य-धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयवृक्षाः हस्तेभवन्तीतिशेषः । कीदृशाः ? सतांवर्गः समूहः तेनप्रार्थिताः । संसर्गीतिपाठेसंसर्गिभिर्निकटस्थैः यद्यपिमोक्षस्य-फलंनास्तितथापिमोक्षपदेनतद्धेतुभूतं तत्वज्ञानमुक्तं येषां वृक्षाणांफलपङ्क्तयः नित्यानन्दब्रह्मस्वरूपमहारसद्रवदाः ।।६९।।

जो साधक पूर्वोक्त विधि से त्रिकाल मन्त्र स्वरूप श्रीकृष्ण की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण प्राणी मात्र का अत्यन्त प्रिय होता है, और उसका घर लक्ष्मी का निवास स्थान हो जाता है। जो बड़े-बड़े महापुरुषों द्वारा भी प्रार्थनीय है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ उसके हाथों में रहते है, उस साधक की सफलता की श्रेणियां सर्वविध सघन आनन्द रसरूपी अमोघ धारा प्रवाहित करती हैं। अर्थात् जो चाहे सो फल पुरोवर्ती हो जाते हैं ।।६९।।

अथेति ।

अथोच्यते पूर्वसमीरितानां
पूजावसाने परमस्य पुंसः ।
कल्पस्तु काम्येष्वपि तर्पणानां
विना ऽपि पूजां खलु यैः फलं तत् ।।७०।।

अथानन्तरं परमस्यपुंसः श्रीगोपालकृष्णस्य पूजावसाने पूजानन्तरं पूर्वसमीरितानां श्रीमन्मुखइत्यादिकथितानांनित्यतर्पणानां कल्पः प्रकारः

काम्येष्वपितर्पणेषुप्रकारउच्यतेयैस्तर्पणैः पूजां विनापि तत्फलं पूजाफलं प्राप्नोति यथापूजातथैवतर्पणम् ।।७०।।

भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा सम्पन्न होने पर किए जाने वाला, नित्य तर्पण तथा काम्य तर्पणों का प्रकार बताया जाता है। जिस तर्पण से पूजा के बिना भी पूजा के द्वारा प्राप्त होने वाले फल सहज ही प्राप्त हो सकते हैं ।।७०।।

संतर्प्येति ।

संतर्प्य पीठमन्त्रैः सकृत्सकृत्प्रथममच्युतं तत्र ।
आवाह्य पूजयेत्तं तोयैरेवाखिलैः समुपहारैः ।।७१।।

प्रथमं पीठमन्त्रैराधारशक्त्यादिमन्त्रैः पीठाङ्गभूतदेवतां सकृत्सकृदेकैकवारंसंतर्प्य अनन्तरंतत्रतोयमये पीठे अच्युतमावाह्यजलैरेवगन्धादिसकलोपचारात्मकैः पूजयेत् ।।७१।।

आधार शक्ति आदि पीठ मन्त्रों से पीठाङ्ग भूत देवताओं के लिए एक-एक वार तर्पण करके वहां जलीय पीठ पर श्रीकृष्ण का आवाहन कर चन्दनादि मिश्रित जल से श्रीकृष्ण का तर्पण करे ।।७१।।

बद्ध्वेति ।

बद्ध्वाऽथ धेनुमुद्रां तोयैः सम्पाद्य तर्पणद्रव्यम् ।
तद्बुद्धयाऽञ्जलिना तं सुवर्णचषकीकृतेन तर्पयतु ।।७२।।

ततोधेनुमुद्रांवद्ध्वातोयैस्तर्पणद्रव्यं संपाद्य तद्द्रव्यरूपतयातोयं भावयित्वातद्बुद्धयातत्कथितद्रव्यतर्पणद्रव्यबुद्धया तं कृष्णं तर्पयतु केनाञ्जलिनाकीदृशेनसुवर्णचषकतयाविचिन्तितेनेत्यर्थः ।।७२।।

धेनु मुद्रा से जल को अमृतमय बनाकर उस जल में तर्पण द्रव्य (कामधेनु गौ का दूध, शर्करा आदि) वस्तुओं की भावना कर, और अपनी अञ्जलि को सुवर्ण पात्र समझ कर तर्पण करे ।।७२।।

विंशतीति ।

विंशतिरष्टोपेता कालत्रयतर्पणेषु संख्योक्ता ।
भूयः स्वकालविहितान्सकृत्तर्पयेच्च परिवारान् ।।७३।।

कालत्रयतर्पणेषुत्रिकालतर्पणेषु एकस्मिन् कालेऽष्टोपेता अष्टाविंशतिः तर्पणस्यसंख्योक्ता पुनः स्वकालविहितान्स्वस्मिन् प्रातर्मध्याह्नादौ ये ये विहिताः परिवारा आवरणदेवतास्तान्सकृदेकैकवारंसन्तर्पयेत् ।।७३।।

प्रातः, मध्याह्न, सायं तीनों कालों में अट्ठाईस-अट्ठाईस वार तर्पण करना चाहिए। तत्तत्समय में पूजे जाने वाले आवरण देवताओं का भी तर्पण करे ।।७३।।

कालत्रयस्यतर्पणद्रव्यमाह ।

प्रातरिति ।

प्रातर्दधिगुडमिश्रं मध्याह्ने पायसं सनवनीतम् ।
क्षीरं तृतीयकाले ससितोपलमित्युदीरितं द्रव्यम् ।।७४।।

गुडसहितंदधिप्रात काले नवनीतसहितं पायसं मध्याह्ने ससितोपलशर्कराविकारसहितंक्षीरंतृतीयकाले इत्यमुना प्रकारेणद्रव्यंतर्पणद्रव्यं कथितम् ।। ७४ ।।

प्रातःकाल का तर्पण द्रव्य, गुड़ मिश्रित दही, मध्याह्न का नवनीत सहित पायस, सायंकाल का तर्पण द्रव्य, मिश्री मिश्रित गो दुग्ध है ।।७४।।

तर्पणमन्त्र माह—

तर्पयामीत्यादि ।

तर्पयामिपदं योज्यं मन्त्रान्ते स्वेषु नामसु ।
द्वितीयान्तेषु तु ततः पूजाशेषं समापयेत् ।।७५।।

मन्त्रान्ते मूलमन्त्रावसाने स्वकीयानि तर्पणीयदेवतानां नामानि तेषु तत्समीपेषु द्वितीयान्तेषु अमुकदेवतामित्यादिरूपेषु तर्पयामीतिपदं योज्यम् अनन्तरं पूजाशेषं समापयेत् ।।७५।।

मूल मन्त्र बोलने के बाद तर्पणीय देवताओं के द्वितीया विभक्ति युक्त नामोच्चारण करके तर्पयामि नमः कहना चाहिए। इसके अनन्तर अवशिष्ट पूजा करे। प्रयोग---श्रीराधाकृष्णौ तर्पयामि नमः है ।।७५।।

उत्तरकृत्यमाह—

अभ्युक्ष्येति ।

अभ्युक्ष्यतत्प्रसादाद्भिरात्मानं प्रपिबेदपः ।
तज्जप्त्वा तमथोद्वास्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ।।७६।।

तत्प्रसादाद्भिः परमेश्वरप्रसादतर्पणजलैः आत्मानं शरीरं सिक्त्वा तज्जप्त्वामन्त्रंजप्त्वा अपः प्रपिबेत् अथानन्तरंतंदेवमुद्वास्यस्वहृदये संयोज्य तन्मयः सन्मन्त्रं जपेत् ।।७६।।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद स्वरूप उस तर्पण जल से अपने को सेचन करे मन्त्र जपकर तर्पण जल का पान करे। इसके बाद हृदय में श्रीकृष्ण को विराजमान करके तन्मय होकर मन्त्र का जाप करे ॥७६॥

सप्रकारंसद्रव्यं काम्यंतर्पणमाह—

अथेति।

अथ द्रव्याणि काम्येषु वक्ष्यन्ते तर्पणेषु तु।

तानि प्रोक्तविधानानामाश्रित्यान्यतरं भजेत् ॥७७॥

अथानन्तरंकाम्येषु तर्पणेषु यानि नारदादिभिः कथितानिद्रव्याणि-तानिवक्ष्यन्ते प्रोक्तविधानानांत्रिकालोक्तविधानानाम् अनन्तरम् एकंवि-धानमाश्रित्यकाम्यतर्पणकर्मभजेत् ॥७७॥

अब यहां काम्य तर्पण द्रव्यों को बताया जाता है। त्रिकालिक उक्त विधानों में से एक का अवलम्बन कर तर्पण आदि करे ॥७७॥

द्रव्यैरियादि।

द्रव्यैः षोडशभिरमुं प्रतर्पयेदेकशश्चतुर्वारम्।

स चतुःक्षीराद्यन्तैः सकृज्जलाद्यन्तमच्युतंभक्त्या ॥७८॥

षोडशभिर्द्रव्यैरमुं श्रीकृष्णं एकशश्चतुर्वारं तत्द्रव्यबुद्धया जलैरेव-तर्पयेत्। कोदृशैः? चत्वारि क्षीराणि आद्यं येषां तैः। षोडशद्रव्याणाम् आदौ दुग्धाञ्जलिचतुष्टयम् अन्ते च चतुष्टयमित्यर्थः। सकृज्जलाद्यन्त-मिति क्रियाविशेषणम्। तथा च प्रथममेकवारं जलेन ततश्चतुर्वारं ततः चतुर्वारं क्षीरैः ततः सकृज्जलेन इति पर्यवसन्नम् ॥७८॥

आगे बताए जाने वाले सोलह द्रव्यों में से एक द्रव्य से श्रीकृष्ण को चार वार तर्पण करे। पहले दूध से चार वार अन्त में चार वार, और आदि अन्त में जल से एक-एक वार तर्पण करे ॥७८॥

षोडशद्रव्याण्याह—

पायसमिति।

पायसदाधिकक्रृसरङ्गौडान्नपयोदधीनि नवनीतम्।

आज्यं कदलीमोचारजस्वलाचोचमोदकापूपम् ॥७९॥

पृथुकं लाजोपेतं द्रव्याणां कथितमिह षोडशकम्।

लाजान्तेऽन्त्यक्षीरात्प्रावसमर्प्यसितोपलापुञ्जैः ॥८०॥

पायसंपरमान्नं दाधिकं दध्नापरिष्कृतम् अन्नं कृसरं मुद्गौदनं गौडान्नं गुडोदकपक्वम् अन्नम् पयोदुग्धम् दधि प्रसिद्धम् नवनीतम् आज्यम् घृतम् कदली चम्पाकदली मोचास्वर्णकदली रजस्वला कदलीविशेषः चोचोऽपि कदलीविशेषः मोदको लड्डुकः अपूपम् पूलिका पृथुकं चिपिटकं लाजसमेतम् लाजसहितम् इति द्रव्याणां षोडशकम् कथितम् इह ग्रन्थे। लाजेति। लाजतर्पणानन्तरम् अन्त्यचतुःक्षीरतर्पणात् पूर्वं सितोपला-पुञ्जैः श्वेतशर्करासमूहैः भावनया तोयभावापन्नैः सकृत्संतर्पयेत् ॥७९॥८०॥

तर्पण द्रव्य—पायस, कढी, खीचड़ी, गुड़रस पक्व = मीठा भात, गोदुग्ध, दही, नवनीत, घी, चम्पा केला, स्वर्ण केला, रस केला, चोचा केला, ये सब केला के भेद हैं, लड्डू, पूआ, चिउड़ा, लाजा, ये तर्पण द्रव्य हैं। लाजा तर्पण के बाद अन्तिम दुग्ध तर्पण से पूर्व मिश्री मिश्रित जल से तर्पण करना चाहिए ॥७९॥८०॥

उक्तकाम्यतर्पणस्यफलमाह—

प्रगेइति।

प्रगे चतुःसप्ततिवारमित्यमुं

प्रतर्पयेद् योऽनुदिनं नरो हरिम्।

अनन्यधीस्तस्य समस्तसंपदः

करे स्थिता मण्डलतोऽभिवाञ्छिताः ॥८१॥

इत्यनेनप्रकारेणप्रगेप्रातःकालेचतुःसप्ततिवारम् अमुं हरिंकृष्णंयो नरः अनुदिनं प्रत्यहमनन्यधीः एकाग्रचित्तः सन्संतर्पयेत् तस्यपुंसः मण्डलतः एकोनपञ्चाशद्दिवसात् अर्वागितित्रिपाठिनः अष्टचत्वारिंशद्दिवसाभ्य-न्तर इतिलघुदीपिकाकारः, पञ्चत्रिंशद्दिवसाभ्यन्तर इति रुद्रधरः अभि-वाञ्छिताआकाङ्क्षिताः सकलसिद्धिसमृद्धयः हस्तस्थिता भवन्ति अत्रसि-तोपलापुञ्जस्य गणना नकार्या ॥८१॥

जो साधक प्रतिदिन प्रातःकाल चौहत्तर वार प्रेम पूर्वक तर्पण करता है, वह उन्चास दिनों में ही वाञ्छित सकल ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है। यहां चौहत्तर संख्या की पूर्ति इस तरह होती है, पूर्वोक्त सोलह द्रव्यों से चार-चार वार तर्पण करने पर चौसठ संख्या होती है और आदि अन्त में दूध से चार-चार वार तर्पण करने से बैहत्तर वार तथा उससे भी आदि और अन्त में जल से एक-एक वार तर्पण करने पर तर्पण संख्या चौहत्तर होती है ॥८१॥

काम्यतर्पणान्तरमाह—

धारोष्णेति ।

धारोष्णपक्वपयसीदधिनवनीते घृतं च दौग्धान्नम् ।

मत्स्यण्डीमध्वमृतं द्वादशशः तर्पयेन्नवभिरेभिः ॥८२॥

धारोष्णम्पयः तदानींतनमेवनिष्पादितंदुग्धंतथापक्वम्पयः साधितं-दुग्धंधारोष्णपक्वेचपयसीच अमू धारोष्णपक्वपयसीदधिप्रसिद्धंनवनीतं घृतं दौग्धान्नं पायसं मत्स्यण्डीशर्कराविशेषः सशर्करं विनष्टदुग्धमिति-त्रिपाठिनः । मधुप्रसिद्धम् अमृतंएतैर्नवभिर्द्रव्यैर्द्वादशवारंतर्पयेत् ॥८२॥

धारोष्ण दूध, औटा दूध, दही, नवनीत, घी, पायस, मत्स्यण्डीराव, मधु, और समूहगत पञ्चामृत, इन नौ द्रव्यों से बारह-बारह वार श्रीकृष्ण को तर्पण करे ॥८२॥

एतस्यफलमाह—

तर्पणेति ।

तर्पणविधिरयमपरः पूर्वोदितसमफलोऽष्टशतसंख्यः

कार्मणकर्मणि कीर्त्तौ जनसंवनने विशेषतो विहितः ॥८३॥

अयं तर्पणप्रकारः पूर्वोक्ततर्पणप्रकाराद्भिन्नः, कीदृशः ? पूर्वकथि-ततर्पणफलसमफलः पुनः । कीदृशः ? अष्टोत्तरशतप्रमाणकः ततोनवभि-र्द्रव्यैर्द्वादशकृतत्वात्तर्पणेनाष्टोत्तरसंख्याभवति । पुनः कीदृशः ? कार्मण-कर्मणिवश्यकरणकर्मणितथाकीर्त्तौसत्कथायां जनसंवननेलोकवशीकरणे लोकप्रियत्वेन वाविशेषेणविहितः ॥८३॥

यह तर्पण पूर्वोक्त तर्पण से भिन्न है, किन्तु पूर्वोक्त तर्पण के समान ही फलदायी है। उन नौ द्रव्यों से बारह-बारह वार तर्पण करने पर एक सौ आठ संख्यात्मक तर्पण होता है। यह तर्पण विशेषतः वशीकरण, कीर्ति, सर्वजन वशीकरण के लिए किया जाता है ॥८३॥

तर्पणान्तरमाह—

सखण्डेति ।

सखण्डधारोष्णधियामुकुन्दं

व्रजन् पुरग्राममपि प्रतर्प्य ।

लभेत भोज्यं सरसं समृत्यै-

र्वासांसिधान्यानि धनानि मन्त्री ॥८४॥

शर्करायुक्तसद्योदुग्धबुद्धयाजलेन मुकुन्दं प्रतर्प्य नगरं तथा ग्रामं व्रजन् साधकः अनुगैः सह सरसंमधुरादिरससहितं भक्षणीयं तथा वस्त्राणिधान्यानि सुवर्णादीनि प्राप्नोति ॥८४॥

जो साधक श्रीकृष्ण को खाण युक्त धारोष्ण दूध से तर्पण करके नगर और ग्राम जहां कहीं भी जाए तो उसे सरस भोजन, सम्मान, सुन्दर वस्त्र, और धन धान्य सब कुछ प्राप्त हो सकता है ॥८४॥

तर्पणस्या ऽशेषफलदातृतां तर्पणोत्तरकृत्यं च दर्शयति ।

यावदित्यादि ।

यावत्संतर्पयेन्मन्त्रीतावत्संख्यंजपेन्मनुम् ।

तर्पणेनैव कार्याणि साधयेदखिलान्यपि ॥८५॥

अखिलानि समस्तानि कार्याणि वाञ्छितानि तर्पणेनैव विनापि पूजाहोमं साधयेत् । अत्र यावत्संख्यं तर्पणं करोति तावत्संख्यं मन्त्रंजपेत् ॥८५॥

जितनी संख्या से साधक तर्पण करे, उतनी संख्या का तर्पणान्तर जप करे। बिना हवन, तर्पण से ही सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं . यह तर्पण–विधि की विशेषता है ॥८५॥

प्रयोगान्तरमाह—

द्विज इति ।

द्विजोभिक्षावृत्तिर्य इह दिनशो नन्दतनयः

स्वयं भूत्वा भिक्षामटति विहरन् गोपसुदृशाम् ।

अमा चेतोभिः स्वैर्ललितललितैर्नर्मविधिभि-

र्दधिक्षीराज्याढ्यां प्रचुरतरभिक्षां स लभते ॥८६॥

भिक्षावृत्तिर्जीवनोपायो यस्य स द्विजोत्रैवर्णिको दिनशः प्रतिदिनं स्वयं नन्दतनयो भूत्वातद्रूपेणात्मानं विचिन्त्यइह भिक्षामटतियाचते किङ्कुर्वन् स्वकीयैर्ललितललितैः अतिमनोहरैः नर्मविधिभिः क्रीडाकर्म-

भिर्गोपसुदृशां गोपस्त्रीणां चेतोभिः सार्द्धं विहरन् अमाशब्दः सहार्थे सदधिदुग्धघृतप्रचुरां बहुभिक्षां प्राप्नोति ॥८६॥

जो ब्राह्मण भिक्षा वृत्ति से जीवन यापन करना चाहता है, उसको चाहिए कि प्रतिदिन अपने को श्रीकृष्णाधीन समझकर गोपियों के स्वरूप भूता अबलाओं के यहां जाकर विनोद की भाषा में भिक्षा मांगे। तब उसको भिक्षा में दही, दूध, घी आदि से संस्कृत प्रचुर पक्वान्न की भिक्षा अवश्य मिलेगी ॥८६॥

यन्त्रमाह—
मध्य इति ।

मध्ये कोणेषु षट्स्वप्यनलपुरपुटस्यालिखेत्कर्णिकायां
कन्दर्पं साध्ययुक्तं विवरगतषडर्णद्विशः केशरेषु ।
शक्ति श्रीपूर्वकान्द्विनवलिपिमनोरक्षराणि च्छन्दानां-
मध्ये वर्णान् दशानां दशलिपिमनुवर्यस्य चैकैकशोऽब्जम्
॥८७॥

दशदलपद्मं विलिख्यकर्णिकायां षट्कोणं वह्निगृहं विलिख्यवह्नि-गृहयुग्मस्य मध्ये षट्कोणेषु विलिखेत् लेखन प्रकारमाह कर्णिकायां मध्ये साध्यनामसहितम् अमुकस्यामुकं सिद्धचत्वितयनेन सहित कन्दर्पं कामबीजं विलिखेत् तथाविवरगतं षडर्णं षट्कोणगतवक्ष्यमाणषडक्षरं विलिखेत्, तथा केशरेषु दशदलमूलेषु द्विशः द्वौद्वौकृत्वा द्विनवलिपिमनोरष्टादशाक्षर-मन्त्रस्य शक्तिश्रीपूर्वकानि भुवनेश्वरीबीजश्रीबीजाद्यान्यक्षराणिविलिखेत् तथा दशानां पत्राणां मध्ये दशलिपिमनुवर्यस्य दशाक्षरमन्त्रश्रेष्ठस्य वर्णान् एकैकशो विलिखेत् ततोऽब्जेपद्मम् ॥८७॥

यन्त्र का स्वरूप बताते हैं। दश दल कमल के मध्य कर्णिका में दो अग्नि-गृह के रूप में षट्कोण लिखे, उस षट्कोण की कर्णिका में साध्य नाम सहित (अमुक का अमुक कार्य हो) लिखकर काम बीज लिखे, षट्कोण के प्रतिकोण में "क्लीं कृष्णाय नमः" इस षडक्षर मन्त्र के अक्षरों को एक-एक कोण में एक-एक अक्षर लिखे। दस दल कमल के मूल देश में ह्रीं श्रीं बीजों को लगाकर दो-दो अक्षरों के क्रम से अष्टादशाक्षर मन्त्र के अक्षर लिखे। और कमल के दस दलों में दशाक्षर मन्त्र के दसों अक्षरों को एक-एक अक्षर के क्रम से लिखे। इस प्रकार लिखने पर दस दलात्मक धारण यन्त्र बनता है जो सर्व फलदायी, रक्षक होता है ॥८७॥

भूसद्मना ऽभिवृतमस्रगमन्मथेन
गोरोचनाऽभिलिखितं तपनीयसूच्या ।
पट्टे हिरण्यरचिते गुलिकीकृतं तद्-
गोपालयन्त्रमखिलार्थदमेतदुक्तम् ॥८८॥

(गोपालयन्त्रमुक्तं किंभूतम् ?) भूबिम्बेन चतुरस्रेण वेष्टितं कुर्यात् कीदृशेन? भूसद्मना अस्रगमन्मथेनकोणगतकामबीजेनएतदखिलार्थदं गोपालयन्त्रमुक्तं कीदृशं ? सुवर्णशलाकया गोरोचनादिना सुवर्णरचितेपट्टे लिखितम् अनन्तरं वर्तुलीकृतम् ॥८८॥

वह यन्त्र चतुष्कोण शाली भूबिम्ब तथा कोणगत कामबीज से वेष्टित हो। सुवर्ण पत्र में सुवर्ण लेखनी से गोरोचन द्वारा लिखकर गोल (वर्तुलाकार) बनाकर धारण करने पर सम्पूर्ण वाञ्छित फल को देने वाला होता है ॥८८॥

संस्कारधृतफलंदर्शयति—
सम्पातेति ।

संपातसिक्तमभिजप्तमिदं महद्भि-
र्धार्यं जगत्त्रयवशीकरणैकदक्षम् ।
रक्षायशःसुतमहीधनधान्यलक्ष्मी
सौभाग्यलिप्सुभिरजस्रमनर्घ्यवीर्यम् ॥८९॥

इदं यन्त्रंपातसिक्तम् आहुतिदानशेषपुरः स्थितघृतसिक्तं तथामन्त्रेणाभिमन्त्रितं रक्षाभयनिवारणं यशः सत्कथाप्रकाशः सुतः पुत्रः महीपृथिवी धनं सुवर्णादि लक्ष्मीः सर्वसंपत्तिः सौभाग्यं सर्वजनप्रियत्वम् एतत्प्राप्तुमिच्छद्भिर्महद्भिः शौचयुक्तैः सततंधारणीयम् । अयमर्थः— यथोक्तं यन्त्रं सम्पाद्य प्राणप्रतिष्ठांकृत्वापञ्चगव्यपञ्चामृतादिभिः अभिषिच्य अष्टोत्तरशतंसहस्रंवासंपातघृतसिक्तं कृत्वा यथोक्तसंख्यंजप्त्वा-धारयेदिति । कीदृशं ? जगत्त्रयायत्तीकरणकुशलं । पुनः अनर्घ्यवीर्यं-महाप्रभावम् ॥८९॥

इस यन्त्र का हुतशेष घृत बिन्दु से सेचन करना चाहिए। हवन के बाद यन्त्र को लक्ष्य करके मूल मन्त्र को जपते हुए अभिमन्त्रित करना होगा। इस प्रकार संस्कृत यह यन्त्र जगत्त्रय को वश में करने वाला महान् प्रभावशाली है

और इस यन्त्र को अपनी रक्षा, कीर्ति, पुत्र, पृथिवी, धन, धान्य, लक्ष्मी, सौभाग्य की इच्छा करने वाले व्यक्ति धारण करें ।।८९।।

यन्त्रस्यदर्शयति धारणादन्यत्राप्युपयोगं—

भूतोन्मादेति ।

भूतोन्मादापस्मृतिविषमूर्छाविभ्रमज्वरार्त्तानाम् ।
ध्यायन्शिरसि प्रजपेन्मन्त्रमिमं झटितिशमयितुं विकृतिम् ।।९०।।

भूतः श्मशानदेशवर्त्ती अदृश्यरूपोऽनिष्टकारीउन्मादश्चित्तविभ्रमः अपस्मृतिरपस्मारणयोगः विषंमूर्छाकारि स्थावरं जङ्गमञ्च मूर्छा अचेष्टा विभ्रमः प्रमादः ज्वरोरोगविशेषः एतैरार्त्तानां पीडितानां शिरसि मस्तकोपरि इदं यन्त्ररूपध्यायन्इमङ्गोपालमन्त्रंजपेत् किङ्कर्तुं ? विकृतिंझटितिशीघ्रं शमयितुं नाशयितुम् ।।९०।।

भूत, प्रेत, उन्माद, अपस्मार (मृगी) विष, मूर्च्छा, विभ्रम, ज्वर आदि उपद्रवों से पीड़ित मनुष्य के सिर में इस यन्त्र का ध्यान करते हुए, मूल मन्त्र के जपने पर सब उपद्रव तुरन्त शान्त होते हैं ।।९०।।

यन्त्रेषडक्षरमन्त्रमुद्धरति—

स्मरेति ।

स्मरत्रिविक्रमाक्रान्तश्चक्रीष्णायहृदित्यसौ ।
षडक्षरोऽयं संप्रोक्तः सर्वसिद्धिकरोमनुः ।।९१।।

स्मरः कामबीजं त्रिविक्रमः ऋकारः तेनक्रान्तः संबद्धः चक्रीककारः तथाकृ इतिष्णायेति स्वरूपंहृन्नमः इत्यनेन प्रकारेणासौषडक्षरोऽयंमन्त्रः सम्प्रोक्तः सर्वसिद्धिकरः अखिलकामदः ।।९१।।

स्मर = क्लीं, त्रिविक्रम = ऋ, इससे युक्त चक्री = क, इसके बाद ष्णाय, अन्त में हृत् = नमः, पद होने पर क्लीं कृष्णाय नमः यह सर्वसिद्धिदायक षडक्षर मन्त्र होता है ।।९१।।

शक्तिबीजमुद्धरति—

क्रोड इति ।

क्रोडोऽग्निदीप्तोमायावीलवलाञ्छितमस्तकः ।
सैषाशक्तिः परासूक्ष्मानित्यासंवित्स्वरूपिणी ।।९२।।

क्रोडोहकारः । कीदृशं ? अग्निना रेफेणदीप्तः । पुनः मायावीदीर्घ-ईकारः तद्युक्तः । पुनः लवेनबिन्दुनालाञ्छितंमस्तकं यस्य सतथासानुस्वारइत्यर्थः । एषाशक्तिः पराउत्कृष्टासूक्ष्मामृणालतन्तुसदृशीनित्याजन्मनाशरहितासंवित्स्वरूपिणी स्वप्रकाशरूपिणी ।।९२।।

क्रोड = हकार, अग्नि = रेफ, मायावी = दीर्घ ईकार, लव = अनुस्वार, से युक्त है मस्तक जिसका ऐसे "ह्रीं" शक्ति बीज होता है । यह अत्यन्त उत्कृष्ट सूक्ष्म नित्य, संवित् स्वरूप है ।।९२।।

श्रीबीजमुद्धरति—

अस्थीति ।

अस्थ्यग्निगोविन्दलवैर्लक्ष्मीबीजंसमीरितम् ।
आभ्यामष्टादशलिपिः स्याद्विंशत्यक्षरोमनुः ।।९३।।

अस्थिशकारः अग्निःरेफः गोविन्दोदीर्घ ईकारः लवोबिन्दुः एतैः संयुक्तैः श्रीबीजंसमीरितंकथितम् । आभ्यां शक्तिश्रीबीजाभ्यां सहितः पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमन्त्रः विंशत्यक्षरो भवति ।।९३।।

अस्थि = शकार, अग्नि = रेफ, गोविन्द = ई, लव = अनुस्वार, इन सबकी समष्टि से श्रीं बीज होता है । अष्टादशाक्षर मन्त्र के आदि में ह्रीं और श्रीं बीज लगाने पर बीस अक्षर वाला महा मन्त्र हो जाता है ।।९३।।

परमेश्वर – पूजास्थाननिर्यातिंदर्शयति ।

शालग्राम इत्यादिना ।

शालग्रामेमणौयन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च ।
नित्यं पूजाहरेः कार्या नतु केवलभूतले ।।९४।।

शालग्रामे प्रसिद्धे मणौगोमेदपद्मरागादौ यन्त्रेऽस्मिन्नेवगोपालयन्त्रे मण्डले सर्वतोभद्रादौ सोमसूर्याग्निमण्डलेवेति रुद्रधरः, प्रतिमासु सुवर्णादिगोपालप्रतिमायाम् । अत्रहरेर्नित्यं सर्वदापूजाकार्या नतु केवलायां भूमौ ।। ९४ ।।

शालग्राम, पद्म रागादि मणि, गोपाल यन्त्र, सूर्य, सोम, मण्डल, किंवा सर्वतोभद्र मण्डल, और सुवर्ण आदि की प्रतिमाओं में भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए केवल भूमि में नहीं ।।९४।।

कथितप्रकाराणां फलंदर्शयति—

इतीति ।

इति जपहुतपूजातर्पणाद्यैर्मुकुन्दं
य इह भजति मन्वोरेकमाश्रित्यनित्यम् ।
स तु सुचिरमयत्नात्प्राप्यभोगान् विशेषान्
पुनरमलतरन्तद्धाम विष्णोः प्रयाति ।।९५।।

इति श्रीकेशवभट्टाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
पञ्चमः पटलः ।।५।।

इतिकथितप्रकारैर्जपहोमपूजातर्पणैः आदिपदादभिषेकादिन योमुकुन्दंनित्यं सेवते । किं कृत्वा ? मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकंगृहीत्वा इहलोके अयत्नात्सुचिरंसर्वकालं सर्वान्भोगान्प्राप्यपुनरन्ते प्रसिद्धं निर्मलन्तेजः प्राप्नोति तद्धामाभवतीत्यर्थः ।।९५।।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकायाः
विवरणे पञ्चमः पटलः ।। ५ ।।

जो साधक, पूर्वोक्त प्रकार से जप, होम, पूजा, तर्पण, आदि से दोनों मन्त्र दशाक्षर, अष्टादशाक्षर में से किसी एक का आश्रय लेकर भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करता है, वह विना प्रयास प्राप्त ऐश्वर्य विशेष का भोग चिरकाल तक कर सकता है और अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के धाम नित्य वृन्दावन को प्राप्त कर सकता है ।।९५।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत ''दीपिकार्थ प्रकाशिका''
नामक हिन्दी व्याख्या का पञ्चम पटल पूर्ण हुआ ।। ५ ।।

षष्ठपटलम्

अथैवं साधितमन्त्रयोः प्रयोगादीन् दर्शयति ।

विनियोगानिति ।

विनियोगानथो वक्ष्ये मन्त्रयोरुभयोः समान् ।
तदर्थकारिणोऽनन्तवीर्यान्मिन्त्रांश्च कांश्चन ।।१।।

अथो अनन्तरं मन्त्रयोर्दशाष्टादशाक्षरयोः समान् ध्यानविशेषेण-विनियोगान् तथा तदर्थकारिणोऽनन्तवीर्यान् बहुफलदातॄन् कांश्चिन्मन्त्रान् वक्ष्ये ।।१।।

अब दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर मन्त्रों के विनियोग तथा मनोवाञ्छित फल देने वाले कुछ अन्य मन्त्रों का वर्णन भी करूंगा ।।१।।

प्रयोगार्थं दशाष्टादशाक्षरयोर्ध्यानमाह ।

वन्द इति ।

वन्दे तं देवकीपुत्रं सद्योजातं द्युसप्रभम् ।
पीताम्बरं करलसच्छङ्खचक्रगदाम्बुजम् ।।२।।

उक्तरूपं प्रसिद्धं देवकीपुत्रंसद्योजातं बालकं द्युसप्रभम् आकाशसमानकान्ति श्यामम्पीतवस्त्रं करे लसन्ति शोभमानानि शङ्खचक्रगदापद्मानियस्य तं वन्दे नमस्करोमि ।।२।।

आकाश के समान नील कान्ति वाले पीताम्बर धारी शंख, चक्र, गदा, पदम विलसित हैं करकमलों में जिनके, ऐसे बालस्वरूप श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ ।।२।।

एवमिति—

एवं ध्यात्वाजपेल्लक्षं मन्त्रं ब्राह्मे मुहूर्तके ।
स्वादुप्लुतैश्च कुसुमैः पलाशैरयुतं हुनेत् ।।३।।

एवममुनाप्रकारेणब्राह्मे मुहूर्त्तकेउदयात्प्राक्दण्डद्वये दण्डचतुष्टय इति कश्चित् मन्त्रम् उभयोरेकं लक्षंजपेत् अनन्तरं पलाशपुष्पैः स्वादुप्लुतैर्घृतमधुशर्करासहितैर्दशसहस्रंजुहुयात् ।।३।।

ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उक्त दो, मन्त्रों में से एक मन्त्र का एक लाख जप ब्रह्ममुहूर्त में करके घृत मधु शर्करा परिप्लुत पलाश पुष्पों से दश हजार (आहुति) हवन करे ॥४॥

फलमाह—

मन्वोरिति ।

मन्वोरन्यतरेणैवं कुर्याद्यः सुसमाहितः ।
स्मृतिं मेधां मतिबलं लब्ध्वा स कविराड् भवेत् ।
स्यान्मनुस्तत्समजपध्यानहोमफलोऽपरः ॥४॥

मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरन्यतरेणएकेनसुसमाहितः सुसंयतः सन् य एवं कुर्यात् स स्मृतिं स्मरणं मेधांधारणावतींबुद्धिं मतिं सम्यक् ज्ञानं बलंमहाप्राणत्वम् एतत्सर्वं प्राप्य कविराट् कविश्रेष्ठोभवति स्यादिति अपरो ऽग्रेवक्ष्यमाणमन्त्रः कथितमन्त्रद्वयसमानजपध्यानहोमफलोभवति ॥ ४ ॥

समाहित होकर दोनों मन्त्रों में, एक से उक्त संख्या के जप, हवन करने से स्मृति, मेधा, (मतिवल ज्ञान शक्ति) प्राप्त करके कविराट् (कविश्रेष्ठ) होता है। उक्त दो मन्त्रों केसमान फलदायी मन्त्र एक और है, जिसको आगे बताया जाएगा ॥४॥

मन्त्रमाह—

श्रीमन्मुकुन्देति ।

श्रीमन्मुकुन्दचरणौसदेतिशरणन्ततः ।
अहं प्रपद्य इत्युक्तो मौकुन्दोऽष्टादशाक्षरः ॥५॥

श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदेतिस्वरूपन्ततस्तदनन्तरंशरणमिति स्वरूपम् अहं प्रपद्य इति स्वरूपमित्यनेनप्रकारेण मौकुन्दो मुकुन्दसम्बन्धी अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कथितः ॥५॥

"श्रीमन्मुकुन्द चरणौ सदा शरणमहं प्रपद्ये" इसको अष्टदशाक्षर मुकुन्द-शरणागत मन्त्र कहा जाता है ॥५॥

ऋष्यादिकमाह -

नारद इति ।

नारदोऽस्य तु गायत्री मुकुन्दश्चर्षिपूर्वकाः ।
प्रातः प्रातः पिबेत्तोयं जप्तं योऽष्टोत्तरं शतम् ॥
अनेन षड्भिर्मासैः स भवेच्छ्रुतधरो नरः ॥६॥

अस्य मन्त्रस्य नारदोमुनिर्गायत्रीछन्दो मुकुन्दोदेवता ऋषिपूर्वकाः ऋष्याद्याः ऋषिच्छन्दोदेवताइत्यर्थः । ते च नारदादयः ।

प्रयोगमाह ।

प्रातः प्रत्यहम् अष्टोत्तरं शतं जप्तं मन्त्रजप्तं जलं पिबेत्स नरो अनेनविधानेन षड्भिर्मासैः श्रुतधरो भवेत् ॥६॥

मुकुन्द शरणागत मन्त्र का छन्द गायत्री, ऋषि नारद, देवता श्रीमुकुन्द हैं। इस मन्त्र द्वारा अष्टोत्तर शत संख्या से अभिमन्त्रित जल प्रतिदिन प्रातः पिया जाए तो छः महीनों में श्रुतधर हो जाता है ॥६॥

प्रयोगान्तरमाह—

उपसंहृतदिव्याङ्गं पुरोवन्मातुरङ्कगम् ।
चलद्दोश्चरणं बालं नीलाभं संस्मरन् जपेत् ॥७॥

उपसंहृतदिव्याङ्गं त्यक्तचतुर्बाहुरूपं धृतबाहुद्वयं पुरोवत् यथावसुदेवसद्मनि भीतेन दिव्याङ्गमुपसंहृतं मातुरङ्कगं देवकीक्रोडेस्थितं चलद्दोश्चरणं चञ्चलहस्तपादं बालशिशुं नीलाभंकृष्णं संस्मरन् ॥७॥

छिपा लिया है पूर्वरूप (चतुर्बाहु रूप) जिन्होंने, माता देवकी की गोद में आसीन, बाल स्वभाव से नन्हे-नन्हे करचरण कमलों को फटकने वाले नील कान्तिमान् बालकृष्ण का स्मरण करते हुए मन्त्र को दस हजार जपे ॥७॥

अयुतं तावदेवाज्यैर्जुहुयाच्च हुताशने ।
स लभेदचलां भक्तिं श्रद्धां शान्तिं च शाश्वतीम् ॥८॥

अयुतं जपेत् तावदेवाग्नावाज्यैर्घृतैर्जुहुयात् यः स स्थिरां परमेश्वरविषयिणोमाराध्यत्वबुद्धिं शुद्धां शास्त्रबोधितेऽर्थेऽवश्यम्भाविनिश्चयाऽऽत्मिकां शान्तिं मोक्षरूपां शाश्वतीं नित्यां प्राप्नोति दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिदं प्रयोगार्थमिति भैरवत्रिपाठिनः ।।८॥

साधक उक्त शरणागत मन्त्र का दस हजार जाप कर उतना ही हवन करे तो अचलभक्ति, श्रद्धा और शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सकेगा। कुछ लोगों का मत है कि यह प्रयोग दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र विषयक है ॥८॥

मन्त्रान्तरमाह—

मनुनैतदिति ।

मनुनैतत्समस्तान्ते मरुन्नमितशब्दतः ।

बाललीलात्मने हुं फट् नम इत्यमुनाऽथवा ।।९।।

अथवा अमुना वक्ष्यमाणमन्त्रेणैतत्प्रयोगजातं साधयेत् । मन्त्रमाह समस्तेति । स्वरूपम् अस्याऽन्ते मरुन्नमित इति स्वरूपम् । एतस्माच्छब्दात् बाललीलात्मने हुंफडिति स्वरूपं नम इति स्वरूपम् । अयमप्यष्टादशाक्षरः दशाष्टादशाक्षरसमानः ।।९ ।

अथवा उक्त मन्त्रों से किए जाने वाला प्रयोग, आगे बताए जाने वाले मन्त्र से भी किया जा सकता है। मन्त्र है—समस्त पद के अन्त में मरुन्नमित पद हो, इसके बाद बाल लीलात्मने हुं फट् नमः पद हो अर्थात "समस्त मरुन्नमित बाललीलात्मने हुं फट् नमः" यह नल कूवर गायत्री मन्त्र का स्वरूप है, इससे पूर्वोक्त प्रयोग किया जा सकता है ।।९।।

ऋष्यादीनाह—

नलेति ।

नलकूबरगायत्रीबालकृष्णा इतीरिताः ।

ऋष्याद्याः सिद्धयः सर्वाः स्युर्जपाद्यैरिहामुना ।।१०।।

अस्य मन्त्रस्य ऋष्याद्याः ऋषिः छन्दो देवता नलकूबरप्रभृतयः तत्र नलकूबरो मुनिर्गायत्री छन्दः बालकृष्णोदेवता इति । इह भुवने जपाद्यैः सर्वाः सिद्धयोभवन्ति ।।१०.।

इस नल कूबर गायत्री मन्त्र के ऋषि नल कूबर ही हैं, छन्द गायत्री, देवता बाल कृष्ण हैं। इसके जप साधन से सब सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं ।।१०।।

लम्बितमिति ।

लम्बितं बालशयने रुदन्तं बल्लवीजनैः ।

प्रेक्ष्यमाणं दुग्धबुद्धया तर्पयेत्सोऽश्नुतेऽशनम् ।।११।।

बालशयनेआन्दोलिकायां लम्बितं स्थितं रुदन्तं क्रन्दमानं बल्लवीजनैर्गोपीभिः प्रेक्ष्यमाणं दृश्यमानं प्रेर्यमाणमिति पाठे चाल्यमानमित्यर्थः दुग्धबुद्धयाजलेन तर्पयेत् । अशनं भक्ष्यवस्तु अश्नुते प्राप्नोति ।।११।।

नवजात बालकों को बहलाए जाने वाले दोला (पलने) में झूलने वाले जिनकी ओर गोपियां देख रही हैं, कुछ रोते हुए से श्रीबालकृष्ण को दुग्ध बुद्धि से जल से ही तर्पण करने पर साधक को उचित भोजन मिलता है ।।११।।

मन्त्रान्तरमाह—

अमुना वाऽन्नरूपान्ते रसरूपपदं वदेत् ।

तुष्टरूप नमो द्वन्द्वमन्नाधिपतये मम ।

अन्नं प्रयच्छ स्वाहेति त्रिंशदर्णोऽन्नदो मनुः ।।१२।।

अमुनामन्त्रेण पूर्वोक्तं कुर्यात् ।

मन्त्रमाह—अन्नरूप इति शब्दान्ते रसरूप इति स्वरूपं तुष्टरूपेति स्वरूपं नमोद्वन्द्वमिति नमोनम इति स्वरूपम् अन्नाधिपतये ममान्नं प्रयच्छस्वाहेति त्रिंशदक्षरो अन्नदमन्त्रः दशाष्टादशाक्षरसमानः ।।१२।।

अथवा भोज्य वस्तु की इच्छा करने वाले साधक को अन्नद मन्त्र का जाप करना चाहिए। मन्त्र है—"अन्नरूप रसरूप तुष्टरूप! नमो नमोऽन्नाधिपतये ममान्नं प्रयच्छ स्वाहा" यह तीस अक्षर का अन्नद मन्त्र है ।।१२।।

ऋष्यादीनाह—

नारदेति ।

नारदानुष्टुबन्नाधिपतयोऽस्यर्षिपूर्वकाः ।

भूतबालग्रहोन्मादस्मृतिभ्रंशाद्युपद्रवैः ।

पूतनास्तनपातारं ग्रस्तमूर्द्धिन स्मरन् जपेत् ।।१३।।

सासुचूषणनिर्भिन्नसर्वाङ्गीं रुदतीं च ताम् ।

आविश्य सर्वे मुक्त्वा तं विद्रवन्ति द्रुतं ग्रहाः ।।१४।।

अस्य मन्त्रस्य नारदोमुनिः अनुष्टुप्छन्दः अन्नाधिपतिर्देवता, प्रयोगमाह-भूतेति । भूतपिशाचादिर्बालग्रहो रोगविशेषः । उन्मादश्चित्तभ्रमः स्मृतिभ्रंशः सम्मोहः एतैरुपद्रवैरुपतापैः ग्रस्तमूर्द्धिन उपतप्तमस्तके पूतनास्तनपायिनं कृष्णं स्मरन् मन्त्रं जपेत् ।।१३।।

तां पूतनां रुदतीं क्रन्दमानां भावयेत्—

पुनः कीदृशीं ।

सासुचूषणं सह प्राणेन यत् चूषणं समाकर्षणं तेन निर्भिन्नमनायतं सर्वाङ्गं यस्याः सा तथा तां किं भूत्वा जपेत् ? आविश्य अहमेव हरिरिति

भावयित्वा, अनन्तरं तं ग्रस्तं सर्वे ग्रहा उपद्रवा मुक्त्वा परित्यज्य द्रुतं शीघ्रं विद्रवन्ति पलायन्ते, अत्र दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिदं प्रयोगार्थमिति त्रिपाठिनः ।।१४।।

अन्नद मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप्, देवता अन्नाधिपति हैं। भूत, पिशाच, बालग्रह, उन्माद, विक्षेप, आदि उपद्रवों से पीड़ित मनुष्य के सिर पर हाथ रख करके उपद्रवों में स्तनपान के बहाने प्राणों को ही चूसे जाने पर छटपटाती रोती हुई पूतना की भावना करते हुए और अपने को स्तन के साथ प्राण पान करने वाले श्रीकृष्ण ही समझकर उक्त मन्त्र का जप करने पर सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। यह ध्यान दशाक्षर और अष्टादशाक्षर के द्वारा किए जाने वाले प्रयोग-विषयक है ऐसा अन्य लोगों का मत है ।।१३।।१४।।

प्रयोगान्तरमाह --

जुहुयादिति ।

जुहुयात् खरमञ्जर्या मञ्जरीभिर्विभावसौ ।
सुस्नातः पञ्चगव्याद्भिः पूतनाहन्तुरानने ।।१५।।

खरमञ्जर्या अपामार्गस्य मञ्जरीभिरग्रभागैः पञ्चगव्यजलैः सिक्तैर्विभावसौ बह्नौ पूतनाहन्तुः कृष्णस्याननरूपे जुहुयात् ।।१५।।

पञ्चगव्य से प्रक्षालित अपामार्ग के टुकड़ों को पूतना को मारने वाले श्रीकृष्ण के अग्निरूप मुख मण्डल में हवन करे ।।१५।।

प्राशयेच्छिष्टगव्यं तत् कलशेनाऽभिषेचयेत् ।
साध्यं सहस्रजप्तेन सर्वोपद्रवशान्तये ।।१६।।

होमावशिष्टं पञ्चगव्यसाध्यं प्राशयेत् सहस्रजप्तेन पूर्वोक्तविधिना साधितेन कलसेन वाऽभिषेचयेत् सर्वोपद्रवनिवृत्त्यर्थम् ।।१६।।

सर्वोपद्रव शान्ति के लिए पीड़ित मनुष्य को होमावशिष्ट पञ्चगव्य पिलावे, और सहस्र संख्यात्मक जप से अभिमन्त्रित कलश जल से रोगी का अभिषेक भी करे ।।१६।।

मन्त्रान्तरमाह —
अमुनैतदिति ।

अमुनैतद्द्वादशार्णं हुंफट् स्वाहान्तकेन वा ।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्रीग्रहघ्नहरयोऽस्य तु ।।१७।।

एतत्पूर्वोक्तप्रयोगद्वयं वक्ष्यमाणमन्त्रेण वा कुर्यात् । मन्त्रमाह द्वादशेति-पूर्वोक्तवासुदेवद्वादशाक्षरान्ते हुंफट्स्वाहेति षोडशाक्षरोमन्त्रः दशाष्टादशाक्षरसमानः ऋष्यादिकमाह ऋष्याद्याइति । ऋषिप्रभृतयो ब्रह्मादयः । तत्र ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीछन्दः ग्रहघ्नरूपो हरिर्देवता ।।१७।।

अथवा पूर्वोक्त मन्त्र से किए जाने वाला सर्वोपद्रव शान्ति प्रयोग, हुं फट् स्वाहा अन्त में लगाकर द्वादशाक्षर मन्त्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा" से करे। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता ग्रहघ्नरूप श्रीहरि हैं ।।१७।।

निजेति ।

निजपादाम्बुजाक्षिप्तशकटं चिन्तयन् जपेत् ।
अयुतं मन्त्रयोरेकं सर्वविघ्नोपशान्तये ।।१८।।

निजचरणकमलनिक्षिप्तशकटं हरिंचिन्तयेत् । मन्त्रयोः पूर्वमन्त्रापरमन्त्रयोरेकमयुतं जपेत् । किमर्थं ? सकलविघ्नोपशमनार्थं दशाष्टादशाक्षरयोरेव सर्वविघ्नशान्त्यर्थं विशेषध्यानमिति त्रिपाठिनः ।।१८।।

सर्व विघ्न शान्ति के लिए अपने चरण कमलों से शकट को पटकने वाले श्रीबालकृष्ण का ध्यान करते हुए, दशाक्षर अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिए ।।१८।।

अधुना पूर्वोक्तश्रीमन्मुकुन्देत्यादि चतुर्णां मन्त्राणामङ्गावरणानि दर्शयति—

अङ्गानीति ।

अङ्गान्यमीषां मन्त्राणामाचक्रादिभिरर्चना ।
अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरुदिता सम्पदे सदा ।।१९।।

अमीषां कथितमन्त्राणाम् आचक्रादिभिर्दशाक्षरकथितैरङ्गानि कार्याणि अर्चना पूजातु अङ्गैरतथेन्द्राद्यैस्तदायुधैश्चेति सम्पत्त्यर्थं सदा कथिता ।।१९।

इन पूर्वोक्त मन्त्रों के अंग न्यासादि दशाक्षर मन्त्र के प्रसंग में कथित आचक्राय—सुचक्राय नमः आदि विधि से करने चाहिए। सम्पत्ति प्राप्ति के लिए तो सपरिवार—सायुध इन्द्रादि अंग देवताओं की पूजा भी करनी चाहिए ।।१९।।

मृत्युञ्जयविधिं दर्शयति।

दशाष्टादशाक्षरयोर्वाऽऽरोग्यार्थं विशेषध्यानमाह— बाल इत्यादिनेति त्रिपाठिनः ।

बाल इति ।

बालो नीलतनुर्दोर्भ्यां दध्युत्थं पायसंदधत् ।
हरिर्वोऽव्याद् द्वीपिनखकिङ्किणीजालमण्डितः ।।२०।।

हरिर्वोयुष्मान् रक्षतु । कीदृशः बालः ? पञ्चवर्षीयः, पुनः कीदृशः ? नीलतनुः, पुनः कीदृशः ? हस्ताभ्यां दध्युत्थं नवीनतं पायसं परमान्नञ्च धारयन् । पुनः कीदृशः ? व्याघ्रनखक्षुद्रघण्टिकासमूहाभ्यामलंकृतः ।।२०।।

व्याघ्रनख, क्षुद्र घण्टिकाओं से सुशोभित दोनों करकमलों में नवनीत तथा पायस को लिए हुए नीलतनु श्रीबालकृष्ण आप सब की रक्षा करें ।।२०।।

ध्यात्वैवमग्नौ जुहुयात् शतवीर्याङ्कुरैस्त्रिकैः ।
पयःसर्पिःप्लुतैर्लक्षमेकं तावज्जपेन्मनुम् ।।२१।।

एवंभूतं हरिंध्यात्वा वह्नौ शतवीर्याङ्कुरैः दूर्वाङ्कुरैस्त्रिभिः—कीदृशैः ।

पयोदुग्धं सर्पिर्घृतं ताभ्यां प्लुतैःसिक्तैः एकं लक्षंजुहुयात् लक्षमेकंजपेत् ।।२१।।

ऐसे बालकृष्ण भगवान् का ध्यान करते हुए दूध, घी से परिप्लुत तीन-तीन दुर्वांकुरों से अग्नि में एक लाख हवन करे, और उतना जप करे ।।२१।।

गुरवे दक्षिणां दत्वा भोजयेद् द्विजपुङ्गवान् ।
स ह्यब्दानां शतं जीवेन्न रोगी नाऽत्र संशयः ।।२२।।

अनन्तरंगुरवेदक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान्भोजयेच्च स वर्षाणां शतं रोगरहितः सन् जीवेत् अत्रसंशयोनास्ति ।।२२।।

इस प्रकार दुर्वांकुरों का हवन करके गुरु को दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भी भोजन करावे । ऐसा करने वाला साधक आरोग्यपूर्वक शतं जीवी होता है ।।२२।।

मन्त्रान्तरमाह—

अत्रेति ।

अत्राऽपरोमनुर्द्वादशार्णान्ते पुरुषोत्तम ।
आयुर्मे देहि सम्भाष्य विष्णवे प्रभविष्णवे ।।२३।।

नमोन्तो द्व्यधिकत्रिंशदर्णोऽस्यर्षिस्तु नारदः
छन्दोऽनुष्टुप्देवता च श्रीकृष्णोऽङ्गान्यतो ब्रुवे ।।२४।।

एतादृशेकार्येऽपरो मन्त्रोऽस्ति ।

मन्त्रमाह—

द्वादशाक्षरवासुदेवमन्त्रान्ते पुरुषोत्तम इति स्वरूपम् आयुर्मेदेहीतिस्वरूपं विष्णवेप्रभविष्णवे-इति स्वरूपं नमइत्यन्तोद्व्यधिकत्रिंशदर्णोद्वात्रिंशदक्षरोमन्त्रः कथितः तु । पुनः अस्यमन्त्रस्यनारदऋषिरनुष्टुप्छन्दोदेवता श्रीकृष्णः इति अतोऽनन्तरम् अङ्गानिब्रुवे वदामि ।।२३।।२४।।

यहां पर दूसरा आयु साधक मन्त्र का उद्धार किया जाता है । द्वादशाक्षर वासुदेव मन्त्र के अन्त में "पुरुषोत्तम, आयुर्मे देहि विष्णवे प्रभविष्णवे नमः" जोड़ने पर बत्तीस अक्षर का "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय पुरुषोत्तम आयुर्मे देहि विष्णवे प्रभविष्णवे नमः" यह आयुर्द मन्त्र होता है । इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टूप् देवता श्रीकृष्ण हैं । इसके अंग न्यास आदि आगे बताया जाएगा ।।२३।।२४।।

रवीति—

रविभूतेन्द्रियवसुनेत्रार्णैश्चात्मने युतैः ।
महानन्दपदज्योतिर्मायाविद्यापदैः क्रमात् ।।२५।।

द्वादशपञ्चपञ्चाष्टद्विसंख्यातैर्मन्त्राक्षरैरात्मनेपदान्तैर्महानन्दादि--पदैः सह क्रमेण पञ्चाङ्गानि, सहानन्देत्यपिक्वचित्पाठः ।।२५।।

न्यास विधि यह है । द्वादशाक्षर मन्त्र के अन्त में आत्मने तथा महानन्द पद बोलकर यथास्थान न्यास करे । इसी प्रकार पुरुषोत्तम, और आयुर्मे देहि ये पांच-पांच अक्षरों, विष्णवे प्रभविष्णवे ये आठ अक्षरों, तथा नमः ये दो अक्षरों के अन्त में आत्मने पद लगाकर आगे क्रमशः महानन्द, ज्योति, माया, विद्या पदों को जोड़कर न्यास करे । प्रयोगः—ॐ नमो भगवते वासुदेवायात्मने महानन्दाय नमो हृदये इत्यादि है ।।२५।।

एतस्यपुरश्चरणादिमाह—

जप्त्वेति ।

जप्त्वा लक्षमिमं मन्त्रमयुतं पायसैर्हुनेत् ।

पूर्ववद्दूर्वया जुह्वदायुर्दीर्घतरं लभेत् ॥२६॥

इमं मन्त्रं लक्षं जप्त्वापायसैरयुतंहुनेत् जुहुयात् । एवं मन्त्रं संसाध्य-पूर्ववद्दूर्वयाऽङ्कुरकैः दुग्धघृतमिलितैर्लक्षमेकंजुहुयात् । जपँश्च दीर्घतरमतिशतमायुः प्राप्नोति ॥२६॥

इस मन्त्र को एक लाख वार जप कर पायस से दस हजार हवन करे। अथवा पूर्वोक्त प्रकार से दुर्वाओं का हवन करने पर दीर्घायुष्य प्राप्त होता है ॥२६॥

दारयन्तमिति—

दारयन्तं बकं दोर्भ्यां कृष्णं संगृह्य तुण्डयोः ।

स्मरन् शिशूनामातङ्केस्पृष्ट्वाऽन्यतरमभ्यसेत् ।

तज्जप्ततिलजाभ्यङ्गाद्भवेयुः सुखिनश्च ते ॥२७॥

शिशूनां बालानामातङ्केभयेसमुपस्थिते तान् बालान् स्पृष्ट्वा-कृष्णंस्मरन् अन्यतरमुक्तेष्वेकंमन्त्रमभ्यसेज्जप्यात् । कीदृशंकृष्णं? कराभ्यांतुण्डयोः संगृह्य बकनामानमसुरं विदारयन्तं । तन्मन्त्रजप्ततैलाभ्यङ्गात्तेबालाः सुखिनोभवन्ति । स्मरन्निति शिशुनामानं कृष्णंस्मरन्, के शिरसिस्पृष्ट्वा जप्यादितिबोद्धव्यमत्रदशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिति त्रिपाठिनः ॥२७॥

बाल ग्रह शमन प्रयोग—यदि बालकों को भय उपस्थित हो, डरते हों, कांपते हों तो बालकों के सिर पर हाथ रखकर करकमलों से तुण्ड (चोंच) को पकड़कर वकासुर का विदारण करते हुए श्रीकृष्ण का स्मरण कर पूर्वोक्त मन्त्रों में किसी एक से अभिमन्त्रित तिल तैल से मालिस करने पर बालकों का भय समाप्त हो जाता है। यह प्रयोग दशाक्षर अष्टादशाक्षर से भी होता है ॥२७॥

अस्मिन्नेवबालरक्षार्थेऽन्योपिमन्त्रोस्तीत्याह—

अत्राप्यन्य इति ।

अत्राऽप्यन्यो मनुर्बालवपुषे वह्निवल्लभा ।

गोरक्षायां क्वणद्वेणुं चारयन्तं पशूँस्तथा ॥२८॥

बालवपुषे इति स्वरूपंवन्हिवल्लभेतिस्वाहा अस्मिन्नर्थगोरक्षायां च विशेषध्यानमाह—क्वणदिति । वेणुवादनपरं पशूँश्चारयन्तं कृष्णंस्मरन् जप्यात् ॥२८॥

बाल रक्षा के लिए एक अन्य मन्त्र है। वह है—"बाल वपुषे स्वाहा"। इससे गोरक्षा भी होती है। वंशी बजाते हुए गौओं को चराने वाले बाल कृष्ण भगवान् का ध्यान करते हुए मन्त्र जपना चाहिए ॥२८॥

अस्मिन्नेव बालकरक्षार्थे गोरक्षायां च मन्त्रान्तरमाह—

उक्त्वेति ।

उक्त्वा गोपालकपदं पुनर्वेशधराय च ।

वासुदेवाय वर्मास्त्रशिरांस्यष्टादशाक्षरः ॥२९॥

गोपालक इत्युक्त्वा पुनर्वेशधराय इत्युक्त्वा वासुदेवायेतिवदेत् वर्महुम् अस्त्रं फडितिशिरः स्वाहा एतानिवदेत् । एवं सति अष्टादशाक्षरोभवति ॥२९॥

बाल रक्षा और गौरक्षा के लिए एक और मन्त्र है। गोपाल पद के बाद वेशधराय, इसके बाद वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा, अर्थात् "गोपालक वेशधराय वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा" यह भी अष्टादशाक्षर बाला रक्षा मन्त्र है ॥२९॥

मनोर्नारदगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरनेन वा ।

कुर्याद्गोपालसंरक्षामाचक्राद्यङ्गिना बुधः ॥३०॥

अस्य पूर्वोक्तस्य च मनोर्नारदो मुनिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीकृष्णो देवता अनेन वा मन्त्रेण उक्तद्रव्यादिना वा गोपालरक्षां कुर्यात् । कीदृशेन? आचक्राद्यङ्गयुक्तेन ॥३०॥

इस गौ-बाल रक्षा मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण हैं। इस मन्त्र के जप से अथवा मन्त्राभिमन्त्रित तेल मर्दन आदि से गौ और बालकों की रक्षा करनी चाहिए। न्यासाङ्ग विधान पूर्वोक्त आचक्रादि नियम से किया जाना चाहिए ॥३०॥

विषहरणप्रयोगमाह—

कुम्भीनसेति ।

कुम्भीनसादिक्ष्वेडार्त्तौ दष्टमूर्द्धनि स्मरन् हरिम् ।

नृत्यन्तं कालियफणारङ्गेऽन्यतरमभ्यसेत् ॥३१॥

दृशा पीयूषवर्षिण्या सिञ्चन्तं तत्तनुं बुधः ।

तर्जयन् वामतर्जन्या तं द्राङ्मोचयते विषात् ॥३२॥

कुम्भीनसादिक्ष्वेडार्त्तौ सर्पविषपीडायाम् ।
कुम्भीनसास्तु ते सर्पा ये स्युर्दृष्टिविषोल्वणाः ।।
इति धरणिः ।

आदिपदाद् वृश्चिकादिसंग्रहः दष्टमूर्द्धिन आर्त्तमस्तके स्पृष्ट्वा कालियः नागविशेषस्तस्य फणा सैव रङ्गभूमिस्तत्र नृत्यन्तं स्मरन् अन्यतममन्त्रमभ्यसेत् जपेत । कीदृशं ? हरिं तत्तनुं शरीरम् अमृतवर्षिण्या दृष्टचा सिञ्चन्तं । किंकुर्वन् ? स्मरेत् वामतर्जन्यातर्जयन् । एवं सति तं दष्टं मन्त्री द्राक्शीघ्रं विषान्मोचयेत् । अत्र दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिति त्रिपाठिनः ।।३१।।३२।। विषनिवारणप्रयोग :—

दृष्टि से ही विष वमन करने वाले कुम्भीनस आदि सर्पविशेषों तथा अन्य विषैले जन्तुओं के विष से पीड़ित मनुष्य के सिर पर कालिय नाग की फणारूपी रंग भूमि पर नृत्य करने वाले, और अपनी पीयूष वर्षिणी दृष्टि से उस आर्त को अभिषिञ्चित करने वाले, तथा वामतर्जनी से पीड़ा-राक्षसी को धमकाने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए पूर्वोक्त मन्त्र, अथवा दशाक्षर, अष्टादशाक्षर मन्त्रों में से किसी एक के जाप करने से विष पीड़ा दूर होती है ।।३१।।३२।।

प्रयोगान्तरमाह—
आपूर्यति ।

आपूर्यकलशं तोयैः स्मृत्वा कालियमर्दनम् ।
जप्त्वाऽष्टशतमासिञ्चेद्विषिणं स सुखी भवेत् ।।३३।।

कलशं तोयैरापूर्याऽनन्तरङ्कालियमर्दनं देवं स्मृत्वाऽऽष्टाधिकं शतं जप्त्वा तेनकलशेन विषिणं विषयुक्तम् आसिञ्चेत् । अनन्त रंविषात्सुखीभवति ।।३३।।

पानी से भरे कलश में कालिय मर्दन भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करके १०८ वार मन्त्र जप से अभिमन्त्रित जल से विषार्त व्यक्ति को सिञ्चन करने पर विष पीड़ा नष्ट होकर सुखी हो जाता है ।।३३।।

कालियमर्दनमन्त्रमाह—
काव्यमध्य इति ।

काव्यमध्ये लियस्यान्ते फणामध्येदिवर्णकान् ।
उक्त्वा पुनर्वदेन्नृत्यङ्करोति तमनन्तरम् ।।३४।।

नमामि देवकीपुत्रमित्युक्त्वा नृत्यशब्दतः ।
राजानमच्युतं ब्रूयादिति दन्तलिपिर्मनुः ।।३५।।

काव्य इत्यक्षरद्वयोर्मध्ये लियस्येति स्वरूपम् एतस्यान्ते फणामध्येदि इति स्वरूपम् इत्यन्तान् वदेत् अनन्तरं नृत्यं करोति तमिति । अनन्तरं नमामिदेवकीपुत्रम् इति वदेत् । अनन्तरं नृत्यशब्दतः नृत्यशब्दान्ते राजानमच्युतमिति ब्रूयादित्यनेन प्रकारेण दन्तलिपिर्द्वात्रिंशदक्षरोमन्त्रः कथितः ।।३४।।३५।।

कालिय मर्दन मन्त्र का उद्धार किया जाता है। का व्य इन दो अक्षरों के बीच में लियस्य पद हो, लियस्य के अन्त में फणामध्ये दि पद हो, इसके बाद नृत्यङ्करोति तं हो, द्वितीयचरण में नमामि देवकी पुत्रं के बाद नृत्य शब्द हो इसके आगे राजानमच्युतम् हो, अर्थात् "कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यङ्करोति तम् । नमामि देवकी पुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्" यह बत्तीस अक्षरों का कालिय मर्दन मन्त्र है ।।३४।।३५।।

अस्य मन्यस्य अङ्गादीनिदर्शयति—
अस्येति ।

अस्याऽङ्गान्यङ्घ्रिभिर्व्यस्तैः समस्तैर्नारदो मुनिः
छन्दोऽनष्टुप्देवता च कृष्णः कालियमर्दनः ।।३६।।

अस्य मन्त्रस्य व्यस्तैरेकैकम् अङ्घ्रिभिश्चतुर्भिः पादैः समस्तैर्मन्त्रात्मकैश्चाङ्गानि पञ्चाङ्गानि कथितानि मुनिः नारदः छन्दोऽनुष्टुप् कालियमर्दन कृष्णोदेवता ।।३६।।

इस कालिय मर्दन मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप्, देवता कालिय मर्दन कृष्ण हैं। मन्त्रगत व्यस्त समस्त पदों से पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिए ।।३६।।

पुरश्चरणमाह—
जप्य इति ।

जप्यो लक्षं मनुरयं होतव्यं सर्पिषाऽयुतम् ।
अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरर्चनाऽस्य समीरिता ।।३७।।

अयं मन्त्रः लक्षं जप्यः सर्पिषाघृतेन पुनरयुतं होतव्यम् । अङ्गदिक्पालवज्राद्यैस्त्रिभिरावरणैरर्चनापूजा कथिता ।।६७।।

इस मन्त्र को एक लाख जप कर घृत से दस हजार हवन करना चाहिए। सपरिकर दश दिक्पालों का पूजन भी आवश्यक है ।।३७।।

प्रयोगमाह—

क्रियेति ।

क्रिया सर्वा च कर्तव्या विषघ्नी पूर्वमीरिता ।
सदृशोऽनेन जगति नहि क्ष्वेडहरो मनुः ॥३८॥

पूर्वमन्त्रकथिता विषघ्नी सर्वा क्रिया अमुनैवमन्त्रेण कर्त्तव्या हियतः जगतिसंसारे अनेनमन्त्रेण सदृशः समानःक्ष्वेडहृरः विषहरोनास्ति ॥३८॥

विष निवारण सम्बन्धी सभी प्रयोग इसी मन्त्र से करना चाहिए। क्योंकि विष हरण क्रिया में इसके बराबर प्रभावशाली मन्त्र इस लोक में अन्य कोई नहीं है ॥३८॥

विषघ्नं प्रयोगान्तरमाह—

अङ्गैरिति ।

अङ्गैः शुकतरोः पिष्टैर्गुलिका धेनुवारिणा ।
आननस्याऽञ्जनालेपैर्विषघ्नी साधिताऽमुना ॥३९॥

शुकतरोः करञ्जवृक्षस्येति भैरवत्रिपाठिनः किंशुकवृक्षस्येति लघुदीपिकाकारः, अङ्गैस्त्वग्भिरिति रुद्रधरः, पञ्चाङ्गैरिति त्रिपाठिनः। धेनुवारिणा सवत्सागोमूत्रेण पिष्टैः संपादितागुलिका अमुनामन्त्रेणसाधितासतीविषघ्नी भवति कैराननस्याऽञ्जनालेपप्रकारैः ॥३९॥

शुकतरु (करञ्ज वृक्ष किंशुक वृक्ष टेसू) के पञ्चांगों को सवत्सा गौ के मूत्र में पीसकर गोलियां बना लें, और उन गोलियों को पूर्वोक्त विषघ्न मन्त्र से अभिमन्त्रित करके विष पीड़ित व्यक्ति के मुख, नेत्र आदि स्थानों में लगाने से विष शमन हो जाता है ॥३९॥

अधुनाप्रयोगान्तरं दर्शयति ।

उद्दण्डेति ।

उद्दण्डवामदोर्दण्डधृतगोवर्धनाचलम् ।
अन्यहस्ताङ्गुलीव्यक्तस्वरवंशार्पिताननम् ॥४०॥
ध्यायन् हरिं जपन्मन्वोरेकं छत्रं विना व्रजेत् ।
वर्षवाताशनिभ्यः स्यादभयं तस्य नहि क्वचित् ॥४१॥

उत्तोलितो यो वामबाहुदण्डस्तेनधृतो गोवर्धनाचलो येन तम् अन्यहस्ताङ्गुलिभिः व्यक्तस्वरोयस्य वंशस्य तत्रार्पितमाननं येनतम् एवंभूतं हरिंचिन्तयन् मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकं जपन् छत्रं बिनाव्रजेत् यस्तस्य वृष्टिवायुवज्रादिभ्योभयं क्वापि न विद्यते ॥४०॥४१॥

वर्षादि निवारण प्रयोग बताया जाता है। ऊपर उठे हुए वामबाहु दण्ड से गोवर्धन पर्वत को धारण करते हुए, दक्षिण हस्तकमल की अंगुलियों से सञ्चालित व्यक्त ध्वनि वंशी को अधरोष्ठ पर संयुक्त करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर मन्त्रों में से किसी एक को जपते हुए बिना छत्र के चलने पर भी वर्षा, वायु, धाम तथा वज्रपात आदि से कतई भय नहीं होता ॥४०॥४१॥

प्रयोगान्तरमाह—

मोघेति ।

मोघमेघौघयत्नापगतेन्द्रं तं स्मरन् हुनेत् ।
लवणैरयुतसंख्यातैरनावृष्टिर्न संशयः ॥४२॥

मोघो निष्फलो यो मेघसमूहस्तस्य यत्नः तेनापगतः इन्द्रो यस्मात् तमेतादृशंहरिं चिन्तयन् अयुतसंख्यातैर्लवणैर्जुहुयात् अनन्तरमनावृष्टिर्भवति नात्र संशयः ॥४२॥

अतिवृष्टि निवारण प्रयोगः—इन्द्र के द्वारा व्रज मण्डल को जलमग्न कराने के उद्देश्य से की गई भीषण वर्षा के असफल प्रयास को निरस्त करने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए लवण से दस हजार हवन करने पर वृष्टि बन्द होती है ॥४२॥

प्रयोगान्तरमाह—

क्रीडन्तमिति ।

क्रीडन्तं यमुनातोये मज्जनप्लवनादिभिः ।
तच्छीकरजलासारैः सिच्यमानं प्रियाजनैः ॥४३॥
ध्यात्वाऽयुतं पयःसिक्तैः हुनेद्वानीरतर्पणैः ।
वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नाऽत्र संशयः ॥४४॥

यमुनाजले मज्जनोन्मज्जनैः क्रीडन्तं क्रीडांकुर्वन्तं, पुनः कीदृशं ? प्रियाजनैः रुक्मिणीप्रभृतिभिस्तच्छीकरजलासारैः यमुनाजलधारारूपैः

सिच्यमानम् एवं भूतं कृष्णं ध्यात्वा वानीरतर्पणै: वेतससमिद्भिः पय: सिक्तं दुग्धोक्षितैरयुतं जुहुयात् । एवं सति अकालोऽपि महतीवृष्टि-र्भवति नात्र संशय: ।।४३। ४४।।

वृष्टि कारक प्रयोग:—श्रीयमुना के निर्मल जल प्रवाह में गोपाङ्गनाओं के साथ अवगाहन क्रीड़ा करते हुए, यमुना जल की पावन बिन्दुओं से गोपियों द्वारा अभिसिञ्चित किंवा परस्पर सिञ्चन (जल प्रक्षेप) करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए दुग्ध परिप्लुत वेतलता की समिधाओं से दस हजार हवन करने से बिना ऋतु के निश्चय ही वर्षा होती है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ।।४३।।४४।।

अनेनैवध्यानेन प्रयोगान्तरमाह—

अमुमेवेति ।

अमुमेव स्मरन् मूर्द्धिन विषस्फोटज्वरादिभिः ।
सदाहमोहैरार्त्तस्य जपेच्छान्तिर्भवेत् क्षणात् ।।४५।।

दाहमोहसहितैर्विषस्फोटज्वरादिभिरार्तस्य मूर्द्धिन मस्तके अमुमे-वपूर्वोक्तरूपं कृष्णं ध्यात्वा जपेत् अनन्तरं तस्य पीडितस्य क्षणाद् शान्ति: स्वास्थ्यं भवति ।।४५।।

यमुना के जल प्रवाह में गोपाङ्गनाओं के साथ जल क्रीड़ा करने वाले, और गोपियों द्वारा जलतरङ्गों से अभिसिञ्चित श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, विष, फोड़ा, ज्वर आदि से पीड़ित व्यक्ति के सिर पर हाथ रखकर गोपाल मन्त्रों के जप करने से क्षण में ही वह पीड़ा मुक्त होता है ।।४५।।

एतस्यामेवाऽर्त्तौप्रकारान्तरमाह—

अथ वेति ।

अथवागरुडारूढं बलप्रद्युम्नसंयुतम् ।
निजज्वरविनिष्पिष्टज्वराभिष्टुतमच्युतम् ।।४६।।
ध्यात्वा ज्वराभिभूतस्य मूद्धर्न्यन्यतरमभ्यसेत् ।
शान्ति व्रजेदसाध्योऽपि ज्वर: सोपद्रव: क्षणात् ।।४७।।

अथवा ज्वराभिभूतस्य मस्तकेऽच्युतं ध्यात्वा अन्यतरम् द्वयोर्मध्ये एकं मन्त्रम् अभ्यसेत् जपेत् । कीदृशम् ? अच्युतं गरुडारूढं, पुन: कीदृशं? बलप्रद्युम्नाभ्यां संयुतं । पुन: कीदृशं ? निजज्वरेण वैष्णवज्वरेणशीता-

ख्येनाऽऽयुधरूपेणविनिष्पिष्ट: चूर्णितो यो रौद्रज्वर उष्णाख्यायुधरूपस्तेनस्तुतम् । अनन्तरम् अस्याऽसाध्योपिज्वर: शीघ्रमेव नाश गच्छति । कीदृशोज्वर: ? उपद्रवो गात्रपीडादि तत्सहित: ।।४६।।४७।।

ज्वर पीड़ा शमन प्रयोग—ज्वर पीड़ा शमन करने के लिए बलराम, और प्रद्युम्न के साथ गरुड़ पर आरूढ़ होने वाले, वैष्णव शीत ज्वर से अभिभूत-रुद्र-ज्वर के द्वारा संस्तुत श्रीकृष्ण का ध्यान कर ज्वर पीड़ित व्यक्ति के सिर पर स्पर्श करते हुए गोपाल मन्त्र को जपने से असाध्य ज्वर भी सभी उपद्रवों के साथ शान्त हो जाता है ।।४६।।४७।।

अनेनैव ध्यानेन प्रयोगान्तरमाह—

ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवमग्नावभ्यर्च्य पयोऽक्तैश्चतुरङ्गुलैः ।
जुहुयादमृताखण्डैरयुतं ज्वरशान्तये ।।४८।।

एवं पूर्वोक्तरूपं कृष्णं ध्यात्वा वह्नौ सम्पूज्य ज्वरशान्त्यर्थं चतुरङ्गु-लपरिमितैर्दुग्धसिक्तै रमृताखण्डैर्गुडूचीखण्डैरयुतं जुहुयात् ।।४८।।

ज्वर शान्ति के लिए एक और प्रयोग है, पूर्वोक्त गुण विशिष्ट श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए दुग्ध परिप्लुत चतुरङ्गुल परिमित गुडूची के खण्डों से दस हजार हवन करने से ज्वर शान्त होता है ।।४८।।

प्रयोगान्तरमाह —

निशातेति ।

निशातशरनिर्भिन्नभीष्मतापनुदं हरिम् ।
स्मृत्वा स्पृशन् जपेदार्त्तं पाणिभ्यां रोगशान्तये ।।४९।।

निशात: तीक्ष्णो य: शरस्तेन निर्भिन्नो विद्धो यो भीष्मस्तस्य यस्तापस्तंहरति । एवंभूतं हरिंध्यात्वा आर्त्तंज्वरादिपीडितं पाणिभ्यां स्पृष्ट्वा ज्वरनाशार्थं मन्त्रोरेकतर जपेत् ।।४९।।

तीक्ष्ण बाण से विद्ध भीष्मपितामह की पीड़ा को हरण करने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करके हाथ से आर्त व्यक्ति को स्पर्श करके मन्त्र जप करने से सभी प्रकार की पीड़ा शान्त होती है ।।४९।।

प्रयोगान्तरमाह—

अपमृत्युविनाशायेति ।

अपमृत्युविनाशाय सान्दीपनिसुतप्रदम् ।
ध्यात्वाऽमृतलताखण्डैः क्षीराक्तैरयुतं हुनेत् ॥५०॥

सान्दीपनिः कृष्णगुरुः तस्य सुतप्रदं कृष्णंध्यात्वा अमृतलताखण्डैः गुडूचीखण्डैः क्षीराक्तैर्दुग्धसिक्तैरयुतंहुनेत् जुहुयात् । कस्मै ? अपमृत्युरकालमरणं तस्य विनाशाय निवृत्तये । ५०॥

सान्दीपनि गुरु को सुत प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करके दुग्धमिश्रित गुडूची के खण्डों से दस हजार हवन करने से अकाल मृत्यु नहीं होती ॥५०॥

प्रयोगान्तरमाह —

मृतपुत्रायेति ।

मृतपुत्राय ददतं सुतान् विप्राय सार्जुनम् ।
ध्यात्वा लक्षं जपेदेकं मन्वोः सुतविवृद्धये ॥५१॥

मृतपुत्राय विप्राय पुत्रान् ददतं सार्ज्जुनं अर्ज्जुनसहितं ध्यात्वा-मन्वोरेकं लक्षं जपेत् । किमर्थम् ? सुतवृद्धिनिमित्तम् ॥५१॥

द्वारिका के ब्राह्मण को पुनः पुत्रों को देते हुए अर्जुन के सहित श्रीकृष्ण का ध्यान करके दो में से एक गोपाल मन्त्र का एक लाख जप करने से अकाल मृत्यु नहीं होती ॥५१॥

प्रयोगान्तरमाह—

पुत्रजीवेति ।

पुत्रजीवेन्धनयुते जुहुयादनलेऽयुतम् ।
तत्फलैर्मधुराक्तैः स्युः पुत्रा दीर्घायुषोऽस्य तु ॥५२॥

जीवापुत्रेति यस्य प्रसिद्धिः तस्य इन्धनेन युते संपादिते वह्नौ तत्-फलैः पुत्रजीवाफलैर्मधुराक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्मन्वोरेकेनाऽयुतं जुहुयात् । अनन्तरम् अस्य होमकर्त्तुः पुत्राः दीर्घायुषो भवन्ति ॥५२॥

पुत्र जीवा नामक लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में घृत मधु शर्करा युक्त पुत्र-जीवा के फलों से दश हजार हवन करने से पुत्र दीर्घायु होते हैं ॥५२॥

प्रयोगान्तरमाह—

क्षीरेति ।

क्षीरद्रुक्वाथसंपूर्णमभ्यर्च्य कलशं निशि ।
जप्त्वाऽयुतं प्रगे नारीमभिषिञ्चेद द्विषट्दिनम् ॥५३॥

सा वन्ध्याऽपि सुतान् दीर्घजीविनो गदवर्जितान् ।
लभते नाऽत्रसंदेहस्तज्जप्ताज्याशिनी सती ॥५४॥

कलशपूरणविधानेन क्षीरवृक्षक्वाथेन सम्पूर्ण कलशं निशिरात्री सम्पूज्याऽयुतं जप्त्वा प्रगे प्रातःकाले पुत्रार्थिनीं स्त्रियं द्विषट् दिनं द्वादश दिनानि व्याप्याऽभिषिञ्चेत् । अनन्तरं साऽभिषिक्ता वन्ध्याऽपि अपत्य-जननसमययोग्या अजनितापत्याऽपि पुत्रान् दीर्घायुषोरोगरहितान् प्राप्नोति । किम्भूता सती ? मन्त्रजप्ताज्यभोजिनी सती, अत्रार्थे सन्देहा न स्ति ॥५३॥५४॥

कलश पूरण विधि से, दूध वाले वृक्षों के क्वाथ से रात्रि में सम्पूर्ण कलश का पूजन करके बारह दिन तक प्रातः दस हजार जप से अभिमन्त्रित जल द्वारा पुत्रार्थिनी नारी को अभिषिक्त करने पर वह नारी वन्ध्या ही क्यों न हो रोग रहित दीर्घ जीवी पुत्र को जनती है, शर्त है कि मन्त्र से अभिमन्त्रित घी खाती रहे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५३॥५४॥

प्रयोगान्तरमाह —

प्रातरिति ।

प्रातर्वाचंयमा नारी बोधिच्छदपुटे जलम् ।
मन्त्रयित्वाऽष्टोत्तरशतं पिबेत्पुत्रीयती ध्रुवम् ॥५५॥

प्रातः काले वाचंयमा मौनिनी पुत्रीयती आत्मनः पुत्रमिच्छन्ती बोधिच्छदपुटे पिप्पलपत्रपुटे जलं मन्वोरन्यतरेण।ष्टोतरशतं जप्तं मासं व्याप्य पिवेत् । अनन्तरं पुत्रं प्राप्नोतीति शेषः ।

जलपानमन्त्रमाह ।

देवकीपुत्रेति ।

अत्र प्रसङ्गात् अस्मिन् ग्रन्थे अनुक्तोऽपि सन्तानगोपालमन्त्रः कथ्यते ।

तद्यथा—

देवकीपुत्र गोविन्द वासुदेव जगद्गुरो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ।

अस्य मन्त्रस्य नारदोमुनिः अनुष्टुप्छन्दः सन्तानप्रदोगोपालकृष्णो-देवता पदैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा पञ्चाङ्गानि ।

ध्यानं यथा ।

शङ्खचक्रधरं कृष्णंरथस्थंच चतुर्भुजम् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तं पीतवाससमच्युतम् ।।

मयूरपिच्छसंयुक्तं विष्णुतेजोपवृंहितम् ।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान् ।।

करुणामृतसंपूर्णदृष्ट्चेक्षन्तं च तं द्विजमिति ।।५५।।

पुत्र प्राप्ति प्रयोगः—प्रातःकाल मौन रहकर पीपल के पत्तों के दोने में पवित्र जल रखकर दशाक्षर अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र के १०८ जप से अभिमन्त्रित जल को एक मास तक पीने से पुत्र की प्राप्ति होती है ।।५५।।

विशेषः—देवकी पुत्र गोविन्द वासुदेव जगद्गुरो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ।।

यह सन्तान गोपाल मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द, अनुष्टुप्, देवता सन्तानप्रद गोपाल कृष्ण हैं। मन्त्र के समस्त–व्यस्त पदों से पञ्चाङ्ग न्यास भी करना आवश्यक है। कम से कम इस मन्त्र का बत्तीस हजार जप करना चाहिए।

प्रयोगान्तरमाह—

प्रहितामिति ।

प्रहितां काशिराजेन कृत्यां छित्वा निजारिणा ।
तत्तेजसा तन्नगरीं दहन्तं भावयन् हरिम् ।।५६।।

स्वस्नेहाक्तैर्हुनेद्रात्रौ सर्षपैः सप्तवासरम् ।
कृत्या कर्तारमेवाऽसौ कुपिता नाशयेद् ध्रुवम् ।।५७।।

प्रहितां प्रेपितां काशीश्वरेण कृत्यां घातकर्त्रीं निजारिणा निजचक्रेणछित्वा अनन्तरं तत्तेजसा तस्य काशिराजस्य नगरींदहन्तं कृष्णं भावयन् स्वस्नेहाक्तैः सर्षपतैलयुक्तैः सर्षपैः सप्तदिनानि व्याप्य रात्रौ मन्त्रोरेकतरेण जुहुयात् । अथाऽनन्तरम् असौ कृत्या क्रुद्धा सती ध्रुवं निश्चितं कर्त्तारमेव नाशयेत् ।।५६।५७।।

परप्रयुक्त कृत्या निवारण प्रयोगः—काशीराज के द्वारा प्रयुक्त कृत्या अपने सुदर्शन चक्र के आरों से छेदन कर उसी चक्र के ज्वलन्त तेज से काशीपुरी को भस्म करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, रात्रि में तेल सने सरसों से सात दिन तक हवन करने पर परप्रयुक्त आभिचारिक कृत्या, क्रुद्ध होकर प्रयोग करने वाले को ही भस्म कर देती है ।।५६।।५७।।

प्रयोगान्तरमाह—

आसीनमिति ।

आसीनमाश्रमे दिव्ये बदरीषण्डमण्डिते ।
स्पृशन्तं पाणिपद्माभ्यां घण्टाकर्णकलेवरम् ।।५८।।

ध्यात्वाऽच्युतं तिलैर्लक्षं हुनेत्त्रिमधुराप्लुतैः ।
मुक्तये सर्वपापानां शान्तये कान्तये तनोः ।।५९।।

बदरीषण्डोबदरीसमूहस्तेनमण्डिते शोभितेदिव्येउत्कृष्टे आश्रम आसीनम् । उपविष्टं तथा हस्तपङ्कजाभ्यां घण्टाकर्णस्यमहादेवमूर्त्तेः कस्यचिन् महादेवभक्तस्य वा कलेवरंशरीरंस्पृशन्तमच्युतन्ध्यात्वातिलैः त्रिमधुराप्लुतैर्घृतमधुशर्करामिश्रितैर्मन्वोरेकेनलक्षं जुहुयात् । किमर्थम् मोक्षाय तथा सकलपापानां विनाशार्थं तथा तनोर्देहस्य कान्तये दीप्त्यर्थम् ।।५८।।५९।।

बदरी वृक्ष समूहों से शोभित दिव्य आश्रम पर विराजमान अपने करकमलों द्वारा घंटा कर्ण के शरीर को स्पर्श करते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करके घृत मधु शर्करा मिश्रित तिलों से एक लाख हवन करने पर मुक्ति, सर्व पापों की शान्ति और शरीर की कान्ति प्राप्ति होती है ।।५८।।५९।।

प्रयोगान्तरमाह—

द्वेषयन्तमिति ।

द्वेषयन्तं रुक्मिबलौ द्यूतासक्तौ स्मरन् हरिम् ।
जुहुयादिष्टयोर्द्विष्टचै गुलिका गोमयोद्भवाः ।।६०।।

द्यूतासक्तौ द्यूतकर्मकुर्वन्तौ रुक्मिबलभद्रौ द्वेषयन्तं परस्परं द्वेषमुत्पादयन्तं हरिं स्मरन् गोमयोत्पन्ना गुलिका मन्त्रोरेकेन जुहुयात् । अत्र सहस्रहोमो बोद्धव्यः ।

अनुक्तायां तु संख्यायां सहस्रं तत्र निर्दिशेत् ।

इति वचनात् ।

किमर्थम् ? अष्टयोर्मित्रयोर्द्विष्टयं विद्वेषणार्थम् ।।६०।।

द्यूत क्रीड़ा में आसक्त रुक्मी और बलदेव को आपस में विद्वेष कराने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए, गोमयवटी से एक हजार हवन करने पर मित्रों का आपस में विद्वेष होता है ।।६०।।

प्रयोगान्तरमाह—

ज्वलदिति ।

ज्वलद्वह्निमुखैर्बाणैर्वर्षन्तं गरुडध्वजम् ।
धावमानं रिपुगणमनुधावन्तमच्युतम् ।।६१।।
ध्यात्वैवमभ्यसेन्मन्वोरेकं सप्तसहस्रकम् ।
उच्चाटनं भवेदेतद्रिपूणां सप्तभिर्दिनैः ।।६२।।

ज्वलन् देदीप्यमानो यो वह्निस्तद्वन्मुखं येषां तैर्बाणैर्वर्षन्तं तथा गरुडारूढं तथा धावमानं शत्रुसमूहमनुपश्चाद्धावन्तं हरिं ध्यात्वा मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकं सप्तसहस्रमभ्यसेत् जपेत् । एवं कृते सति एतस्य शत्रूणां सप्तभिर्दिनेरुच्चाटनं भवति स्वदेशादपयानं भवति ।।६१।।६२।।

उच्चाटन प्रयोगः—प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी तीखे, बाणों से शत्रुओं को ललकारने वाले, गरुडारूढ, भागते हुए, शत्रुओं का पीछा करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, सात दिन तक सात-सात हजार के क्रम से गोपाल मन्त्र जपने पर सात दिनों में शत्रुओं का उच्चाटन होता है ।।६१।।६२।।

प्रयोगान्तरमाह—

उत्क्षिप्तेति ।

उत्क्षिप्तवत्सकं ध्यायन् कपित्थफलहारिणम् ।
अयुतं प्रजपेत्साध्यमुच्चाटयति तत्क्षणात् ।।६३।।

उत्क्षिप्त उर्ध्वं क्षिप्तो वत्सो वत्सरूपो वत्सकासुरो येन तथा कपित्थस्य फलं हरतीति कृष्णं ध्यात्वा मन्वोर्मध्ये एकमयुतं जपेत् । अनन्तरं तत्क्षणात् शीघ्रमेव साध्यमुच्चाटनीयमुच्चाटयति ।।६३।।

वत्सासुर को उठाकर पटकने वाले, कैथ के फलों को अपने अधीन करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए दोनों में से एक मन्त्र का दस हजार जप करने से शत्रु का तुरन्त उच्चाटन हो जाता है ।।६३।।

प्रयोगान्तरमाह—

आत्मानमिति ।

आत्मानं कंसमथनं ध्यात्वा मञ्चान्निपातितम् ।
कंसात्मानमरिं कर्षन् गतासुं प्रजपेन् मनुम् ।।६४।।
अयुतं जुहुयाद्वाऽस्य जन्मोडुतरुतर्पणैः ।
अपि सेवितपीयूषो म्रियतेऽरिर्नसंशयः ।।६५।।

आत्मानं कंसमथनं कृष्णं ध्यात्वा कंसमथनात् मनोरैक्यं विचिन्त्य तथा रिपुं कंसस्वरूपम् अपगतप्राणं ध्यात्वा रिपुकंसयोरभेदं विचिन्त्येति भावः । मञ्चादधःकृतम् आकर्षयन् आकर्षणं भावयन् मन्वोरेकमयुतं जपेत् । अस्य रिपोः जन्मोडुतरुतर्पणैः समिद्भिर्जुहुयाच्च—

कारस्करोऽथ धात्रीस्यादुदुम्बरतरुः पुनः ।
जम्बूखदीरकृष्णाख्या वंशपिप्पलसंज्ञकौ ।।१।।
नागरोहितनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ ।
अम्बष्ठविल्वाज्जुनाख्यं विकङ्कतमहीरुहः ।।२।।
वहलः सवलः खर्ज्जुर्भण्डिलः पनसाऽर्कौ ।
शमीकदम्बाम्रनिम्बमधुका ऋक्षशाखिनः ।।३।।

इति सप्तविंशतिनक्षत्राणां वृक्षाः । जन्मनक्षत्रवृक्ष एवं कृते सेवितपीयूषोऽपि म्रियते नात्रसंशयः ।।६४-६५।।

अपने को कंसमथन करने वाले श्रीकृष्ण ही समझकर, किंवा कंसमथन करने वाले श्रीकृष्ण को मन्त्राभिन्न जानकर, शत्रु को सिंहासन से खींचकर भूमि पर पटकने के कारण मरे हुए कंस के समान ध्यान करके गोपाल मन्त्र को दस हजार जपने से अथवा नक्षत्र वृक्षों के टुकड़ों से दस हजार हवन करने पर शत्रु अमृतपान करने वाला ही क्यों न हो वह खत्म हो जाता है ।।६४।।६५।।

विशेष—अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के वृक्ष क्रमशः ये हैं। कारस्कर, धात्री, उदुम्बर, जम्बू, खदिर, कृष्ण, वंश, पीपल, नागर, रोहित, पलाश, प्लक्ष, अम्बष्ठ, बिल्व, अर्जुन, विकङ्कत, बहल, सबल, खर्जु, भम्डिल, पनस, अर्क, शमी, कदम्ब, आम्र, निम्ब, मधुक, ये नक्षत्र वृक्ष हैं।

इदं प्रयोजनं प्रकारान्तेणापि भवतीति दर्शयति—

अथवेति ।

इति वचनात् ।

किमर्थम् ? अष्टयोर्मित्रयोर्द्विष्टत्वं विद्वेषणार्थम् ॥६०॥

द्यूत क्रीड़ा में आसक्त रुक्मी और बलदेव को आपस में विद्वेष कराने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए, गोमयवटी से एक हजार हवन करने पर मित्रों का आपस में विद्वेष होता है ॥६०॥

प्रयोगान्तरमाह—

ज्वलदिति ।

ज्वलद्वह्निमुखैर्बाणैर्वर्षन्तं गरुडध्वजम् ।
धावमानं रिपुगणमनुधावन्तमच्युतम् ॥६१॥
ध्यात्वैवमभ्यसेन्मन्त्रयोरेकं सप्तसहस्रकम् ।
उच्चाटनं भवेदेतद्रिपूणां सप्तभिर्दिनैः ॥६२॥

ज्वलन् देदीप्यमानो यो वह्निस्तद्वन्मुखं येषां तैर्बाणैर्वर्षन्तं तथा गरुडारूढं तथा धावमानं शत्रुसमूहमनुपश्चाद्धावन्तं हरिं ध्यात्वा मन्त्रो-र्दशाष्टादशाक्षरयोरेकं सप्तसहस्रमभ्यसेत् जपेत् । एवं कृते सति एतस्य शत्रूणां सप्तभिर्दिनैरुच्चाटनं भवति स्वदेशादपयानं भवति ॥६१॥६२॥

उच्चाटन प्रयोग:—प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी तीखे, बाणों से शत्रुओं को ललकारने वाले, गरुडारूढ, भागते हुए, शत्रुओं का पीछा करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, सात दिन तक सात-सात हजार के क्रम से गोपाल मन्त्र जपने पर सात दिनों में शत्रुओं का उच्चाटन होता है ॥६१॥६२॥

प्रयोगान्तरमाह—

उत्क्षिप्तेति ।

उत्क्षिप्तवत्सकं ध्यायन् कपित्थफलहारिणम् ।
अयुतं प्रजपेत्साध्यमुच्चाटयति तत्क्षणात् ॥६३॥

उत्क्षिप्त उद्धर्वं क्षिप्तो वत्सो वत्सरूपो वत्सकासुरो येन तथा कपि-त्थस्य फलं हरतीति कृष्णं ध्यात्वा मन्त्रयोर्मध्ये एकमयुतं जपेत् । अनन्तरं तत्क्षणात् शीघ्रमेव साध्यमुच्चाटनीयमुच्चाटयति ॥६३॥

वत्सासुर को उठाकर पटकने वाले, कैथ के फलों को अपने अधीन करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए दोनों में से एक मन्त्र का दस हजार जप करने से शत्रु का तुरन्त उच्चाटन हो जाता है ॥६३॥

प्रयोगान्तरमाह—

आत्मानमिति ।

आत्मानं कंसमथनं ध्यात्वा मञ्चान्निपातितम् ।
कंसात्मानमरिं कर्षन् गतासुं प्रजपेन् मनुम् ॥६४॥
अयुतं जुहुयाद्वाऽस्य जन्मोडुतरुतर्पणैः ।
अपि सेवितपीयूषो म्रियतेऽरिर्नसंशयः ॥६५॥

आत्मानं कंसमथनं कृष्णं ध्यात्वा कंसमथनात् मनोरैक्यं विचिन्त्य तथा रिपुं कंसस्वरूपम् अपगतप्राणं ध्यात्वा रिपुकंसयोरभेदं विचिन्त्येति भावः । मञ्चादधःकृतम् आकर्षयन् आकर्षणं भावयन् मन्त्रोरेकमयुतं जपेत् । अस्य रिपोः जन्मोडुतरुतर्पणैः समिद्भिर्जुहुयाच्च—

कारस्करोऽथ धात्रीस्यादुदुम्बरतरुः पुनः ।
जम्बूखदीरकृष्णाख्या वंशपिप्पलसंज्ञकौ ॥१॥
नागरोहितनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ ।
अम्बष्ठबिल्वाज्र्जुनाख्यं विकङ्कतमहीरुहः ॥२॥
बहलः सबलः खर्ज्जुर्भण्डिलः पनसार्ककौ ।
शमीकदम्बाम्रनिम्बमधुका ऋक्षशाखिनः ॥३॥

इति सप्तविंशतिनक्षत्राणां वृक्षाः । जन्मनक्षत्रवृक्ष एवं कृते सेवित-पीयूषोऽपि म्रियते नात्रसंशयः ॥६४-६५॥

अपने को कंसमथन करने वाले श्रीकृष्ण ही समझकर, किंवा कंसमथन करने वाले श्रीकृष्ण को मन्त्राभिन्न जानकर, शत्रु को सिंहासन से खींचकर भूमि पर पटकने के कारण मरे हुए कंस के समान ध्यान करके गोपाल मन्त्र को दस हजार जपने से अथवा नक्षत्र वृक्षों के टुकड़ों से दस हजार हवन करने पर शत्रु अमृतपान करने वाला ही क्यों न हो वह खत्म हो जाता है ॥६४॥६५॥

विशेष—अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के वृक्ष क्रमशः ये हैं। कारस्कर, धात्री, उदुम्बर, जम्बू, खदिर, कृष्ण, वंश, पीपल, नागर, रोहित, पलाश, प्लक्ष, अम्बष्ठ, बिल्व, अर्जुन, विकङ्कत, बहल, सबल, खर्जु, भण्डिल, पनस, अर्क, शमी, कदम्ब, आम्र, निम्ब, मधुक, ये नक्षत्र वृक्ष हैं।

इदं प्रयोजनं प्रकारान्तेणापि भवतीति दर्शयति—

अथवेति ।

अथवा निम्बतैलाक्तैर्हुनेदेधोभिरक्षजैः
अयुतं प्रयतो रात्रौ मरणाय रिपोः क्षणात् ॥६६॥

निम्बतैलसिक्तैः अक्षजैः विभीतकसमिद्भिः प्रयतः पवित्रः सन् रात्रौ मन्वोरेकेन अयुतं हुनेत् । किमर्थम् ? शत्रोः शीघ्रं विनाशाय ॥६६॥

निम्बतेल से सने विभीतक (बहेड़ा) की लकड़ियों से रात्रि में दस हजार हवन करने से शत्रु तत्क्षण नष्ट होता है ॥६६॥

अस्मिन्नेवार्थे प्रयोगान्तरमाह —
दोषेति ।

दोषारिष्टदलव्योषकार्पासास्थिकणैर्निशि ।
हुनेदेरण्डतैलाक्तैः स्मशानस्थोऽरिशान्तये ॥६७॥

दोषा हरिद्रा अरिष्टदलं विभीतकपत्रमिति रुद्रधरः । भल्लातकपत्रमितिरुद्रधरः । निम्बपत्रमिति भैरवत्रिपाठिनः । व्योषन्त्रिकटुकं कार्पासाऽस्थिकार्पासबीजं कणः पिप्पली एतैर्मिलितैरेरण्डतैलसिक्तैः स्मशानस्थः मृतसंस्कारस्थानस्थः सन् निशिरात्रौ मन्वोरेकेन जुहुयात् । किमर्थम् ? शत्रुनाशार्थम् ॥६७॥

एरण्ड तेल से सिक्त हल्दी, निम्बपत्र, पीपल, मरीच, सौंठ, कपास के बीजों से रात्रि में श्मशान घाट पर हवन करने से शत्रु नष्ट होता है ॥६७॥

रागान्मारणप्रयोगे प्रायश्चित्तमाह —
न शस्तमिति ।

न शस्तं मारणं कर्म कुर्याच्चेदयुतं जपेत् ।
हुनेद्वा पायसैस्तावत् शान्तये शान्तमानसः ॥६८॥

मारणं कर्म शिष्टजनस्य न प्रशस्तं तथाऽपि यदि वा रागात् कुर्यात्तदा मन्वोर्मध्ये एकं मन्त्रम् अयुतं जपेत् परमान्नेन वा अयुतं जुहुयात् । शान्तये पापनाशाय शान्तमानसोनिर्मत्सरः ॥६८॥

मारण कर्म प्रशस्त नहीं है, निन्दा है । यदि राग द्वेष वशात् उक्त कर्म करे तो उसकी शान्ति (प्रायश्चित्त) के लिए मन्त्रराज का दस हजार जप करे, अथवा पायस से दस हजार हवन करे ॥६८॥

प्रयोगान्तरमाह —
जयकाम इति ।

जयकामो जपेल्लक्षं पारिजातहरं हरिम् ।
स्मरन् पराजयस्तस्य न कुतश्चिद्भविष्यति ॥६९॥

जयकामः पुमान् बलादिन्द्रसकाशात् स्वर्गस्थपारिजातापहारिणं कृष्णं भावयन् मन्वोरेकं लक्षं जपेत् एवं कृतेतस्य भङ्गः कस्मादपि न भविष्यतीति ॥६९॥

विजय की कामना हो तो पारिजात को हरण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, एक लाख मन्त्रराज का जप करे तो निश्चय उसको विजयश्री मिलती है । उसकी पराजय कभी न होगी ॥६९॥

प्रयोगान्तरमाह —
पार्थ इति ।

पार्थे दिशन्तं गीतार्थं व्याख्यामुद्राकरं हरिम् ।
रथस्थं भावयन् जप्याद्धर्मवृध्द्यै शमाय च ॥७०॥

पार्थे अर्जुनेगीतार्थं दिशन्तं कथयन्तं तथा व्याख्यामुद्रा करे यस्य तम् उत्तानतर्जन्यङ्गुष्ठयुताव्याख्यामुद्रा तथा रथारूढं हरिं भावयन् मन्वोरेकं लक्षं जपेत् । किमर्थं ? धर्मोत्पत्त्यर्थं मोक्षार्थञ्च ॥७०॥

अर्जुन को गीता के उपदेश करते समय व्याख्या मुद्रा से प्रसन्न रथस्थ श्रीकृष्ण की भावना करते हुए एक लाख जप करने से धर्म की वृद्धि, और शान्ति की प्राप्ति होती है । व्याख्या मुद्रा है उत्तानतर्जनी के साथ अंगुष्ठ कासंयोग ॥७०॥

प्रयोगान्तरमाह —
लक्षमिति ।

लक्षं पलाशकुसुमैर्हुनेद् यो मधुराप्लुतैः ।
व्याख्याता सर्वशास्त्राणां स कविर्वादिराड् भवेत् ॥७१॥

यः पलाशपुष्पैर्घृतमधुशर्करामिश्रैर्मन्वोरेकेन लक्षं जुहुयात् सः सकलशास्त्राणां व्यख्याता कविराट् कविश्रेष्ठश्च भवेत् ॥७१॥

घृत, मधु, शर्करा से परिप्लुत पलाश पुष्पों से एक लाख हवन करने से सम्पूर्ण शास्त्रों का व्याख्याता, वादिविजेता महाकवि भी होता है ॥७१॥

प्रयोगान्तरमाह —
विश्वेति ।

विश्वरूपधरं प्रोद्यद्भानुकोटिसमद्युतिम् ।
द्रुतचामीकरनिभमग्निसोमात्मकं हरिम् ।।७२।।
अर्काग्निद्योतदास्याङ्घ्रिपङ्कजं दिव्यभूषणम् ।
नानायुधधरं व्याप्तविश्वाकाशावकाशकम् ।।७३।।
राष्ट्रपूर्ग्रामवास्तूनां शरीरस्य च रक्षणे ।
प्रजपेन्मन्त्रयोरेकतरं ध्यात्वैवमादरात् ।।७४।।

विश्वरूपधरम् एतद् व्याचष्टे उद्यदादित्यकोटिसमानकान्ति तथा द्रवीभूतसुवर्णतुल्यं तथा अग्निसोमस्वरूपम्, सूर्यसोमात्मकमिति त्रिपाठिनः, तथा सूर्याग्निवदुज्ज्वलं मुखं पादपद्मं यस्य तथा चारुभूषणं तथा-विविधशस्त्रधरं तथा व्याप्तसंसाराकाशाभ्यन्तरम् एतादृशं हरिं ध्यात्वा आदरात् मन्त्रयोरेकं जपेत् । किमर्थं ? राष्ट्रोदेशः पूर्नगरं ग्रामोऽल्पजन-वासस्थानं वास्तु एकगृहस्वामिवासः, क्षेत्रम् इति गोविन्दमिश्राः । वस्त्विति पाठे हिरण्यादि, एतेषां शरीरस्य च रक्षणे रक्षानिमित्तम् ।।७२।।७३।।७४।।

विराट् स्वरूप को धारण करने वाले, उदीयमान करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, पिघले हुए सुवर्ण के समान आभा वाले उष्ण-शीत किरण शाली अग्नि-सोम के समान, तथा सूर्य-अग्नि के सदृश प्रकाशित मुखकमल, पदकमल वाले, दिव्य आभूषणों से विभूषित, अनेक आयुधों को धारण करने वाले समस्त ब्रह्माण्ड व्यापी स्वरूप श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए कार्य गौरव के अनुसार मन्त्रराज का शत, सहस्र, लक्ष संख्यात्मक जप करने से पुर, राष्ट्र, ग्राम, घर शरीर की रक्षा होती है ।।७२।।७३।।७४।।

प्रकारान्तरमाह—
अथ वेत्यादि ।

अथवा व्यस्तसर्वाङ्घ्रिरचिताङ्गार्ज्जुनर्षिकम् ।
त्रिष्टुप्छन्दसिकं विश्वरूपविष्ण्वधिदैवतम् ।।७५।।
जपेद् गीतामनुं स्थानेहृषीकेशाद्यमाज्यकैः ।
हुनेद्वा सर्वरक्षायै सर्वदुःखोपशान्तये ।।७६।।

इति श्रीकेशवभट्टाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
षष्ठः पटलः ।।६।।

अथवा स्थानेहृषीकेशाद्यं गीतामनुं जपेत् । किंभूतं मनुं ? व्यस्तम् एकैकं सर्वे समस्ता ये अङ्घ्रयः पादचतुष्टयं तैः रचितम् अङ्गं पञ्चाङ्गम् । अर्जुनः ऋषिर्यत्र तं व्यस्तसर्वाङ्घ्रिरचिताङ्गश्चार्जुन-ऋषिकश्चेति द्वन्द्वः तं त्रिष्टुप्छन्दो यत्रतं विश्वरूपोविष्णुरधिदेवता यस्य तम्. आज्यकैर्घृतैर्हुनेद्वा वाशब्दः समुच्चयेहुनेत् । टीकान्तरेउक्तप्रयोगेषु यत्र जपहोमयोः संख्या न उक्ता तत्र संनिधानोक्ता गृह्यते तदभावेऽष्टोत्तरंसहस्रं शतं वा अष्टौसहस्राणीत्येके ।

जगन्मोहनाख्यतन्त्रे ।

लक्षं वाप्ययुतं वापि सहस्रं शतमेव च ।
कार्याणां गौरवान्मन्त्रीतत्तद्धोमंसमाचरेत् ।।७५।।७६।।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकायां
विवरणे षष्ठः पटलः ।। ६ ।।

सर्वोपद्रव की शान्ति के लिए स्थाने हृषीकेश इत्यादि गीता मन्त्र का जप करना चाहिए। इस मन्त्र के ऋषि अर्जुन, छन्द त्रिष्टुप्, देवता, विश्वरूप श्रीकृष्ण है। विनियोग सर्वोपद्रव शान्ति है। मन्त्र के चारों चरणों को पृथक्-पृथक् करके पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिए।

पूरा मन्त्रः—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनु रज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ।।

इसका जप कार्य गौरव के अनुसार करना चाहिए ।।७५।।७६।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत "दीपिकार्थ प्रकाशिका"
नामक हिन्दी व्याख्या का षष्ठ पटल पूर्ण हुआ ।। ६ ।।

सप्तमपटलम्

अनेकमन्त्रकथनार्थं सप्तमं पटलमुपक्रामति ।

वक्ष्य इत्यादिना ।

वक्ष्येऽक्षयधनावाप्त्यै प्रतिपत्तिं श्रियः पतेः ।
सुगुप्तां धननाथाद्यैर्धन्यैर्या क्रियते सदा ॥१॥

श्रियः पतेर्गोपालस्य प्रतिपत्तिं ध्यानं मन्त्रपूजाध्यानादिप्रकारं वा वक्ष्ये । या प्रतिपत्तिर्धननाथाद्यैः कुबेरप्रभृतिभिर्महाधनैः क्रियते । कस्यै ? अक्षयमविनाशि यद्धनं तत्प्राप्त्यै, सुगुप्तां नात्यन्तप्रकटितां द्विजैरित्यर्थः ? ॥१॥

इस सप्तम पटल में अनेक मन्त्रों का विवेचन है । भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करने, तथा अक्षय धन-सम्पत्ति प्राप्त करने हेतु श्रीकृष्ण के ध्यान, पूजन आदि के प्रकार बताऊंगा । जिन पूजा विधानों का आश्रय लेकर कुबेर आदि धनपतियों ने भी धनाढ्यता प्राप्त की, यह विधि परम गोप्य है ॥१॥

द्वारवत्यामित्यादि सप्तश्लोकैर्मध्यकुलकम् ।

द्वारवत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोत्तमैः ।
अनल्पैः कल्पवृक्षैश्च परीते मण्डपोत्तमे ॥२॥

अच्युतो ध्येयः कुत्र द्वारवत्यां मणिमण्डपे मणिसिंहासनाम्बुजे आसीनो द्वारकानगरीगतमणिमण्डपावस्थितमणिमयसिंहासनपद्मोपविष्टः मणिमण्डपे । कीदृशे ? भवनोत्तमैः गृहोत्तमैः कल्पवृक्षैश्च परीते वेष्टिते । किम्भूतैः ? सहस्रसूर्याः तद्वद्भास्वरैर्दीप्तैरनल्पैर्विस्तरैः ॥२॥

द्वारिका में हजारों सूर्य के समान चमकने वाले दिव्य भवनों, तथा अनेक कल्पवृक्षों की वाटिका से सुशोभित उत्तम सिंहासन पर विराजमान, श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥२॥

पुनः कीदृशे ।

ज्वलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुड्यके ।
फुल्लस्रगुल्लसच्चित्रवितानालम्बिमौक्तिके ॥३॥

ज्वलन्ति दीप्तानि यानि रत्नानि तन्मयं तत्प्रधानं स्तम्भः गृहाधारभूतं द्वारतोरणं कुड्यं भित्तिर्यत्र तस्मिन् प्रफुल्ला विकासनीया स्रक् पुष्पमाला उल्लसच्छोभमानं पवित्रं नानाप्रकारं वितानं तत्रालम्बिमौक्तिकं यत्र तत्र ॥३॥

अत्यधिक चमकने वाले रत्नों से जटित गृह का मुख्य स्तम्भ उसको केन्द्र बिन्दु मान कर लगाए गए दिव्य तोरण तथा मणिमय दिवालों से उल्लसित, प्रफुल्ल पुष्पों की दर्शनीय मालाओं से विलसित, विभिन्न चित्रावलियों से चित्रित, मुक्तामालाओं की झालरों से चमत्कृत सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥३॥

पुनः कीदृशे मणिमण्डपे ।

पद्मरागस्थलीराजद्रत्ननद्योश्च मध्यतः ।
अनारतगलद्रत्नसुधस्य स्वस्तरोरधः ॥४॥

पद्मरागमयी या स्थली राजद्देदीप्यमान रत्नमयी च या नदी तयोर्मध्ये स्वस्तरोः पारिजातस्याधः स्वस्तरोः । किंभूतस्य ? अनारतं सर्वदा गलन्ती रत्नमयी सुधा अमृतं यस्य तस्य ॥४॥

पद्मराग मणिमयी भूमि और विभिन्न रत्नमयी नदी के मध्य में निरन्तर रत्न-सुधा को बरसाने वाले पारिजात वृक्ष के मूलस्थल पर देदीप्यमान मणिमय सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥४॥

पुनः कीदृशेमणिमण्डपे—

रत्नप्रदीपावलिभिः प्रदीपितदिगन्तरे ।
उद्यदादित्यसंकाशे मणिसिंहासनाम्बुजे ॥५॥

रत्नप्रदीपावलिभिर्ज्वलद्रत्नैः प्रदीपितम् उद्भासितं दिशामन्तरालम् अवकाशो यत्र मणिसिंहासने । किंभूते ? उद्यन् प्रादुर्भवन् य आदित्यस्तस्य सङ्काशे सदृशे ॥५॥

जहां रत्नमयी दीपमालाओं की दिव्य आभा से दिशाएं जगमगा रही हैं, ऐसे उदीयमान सूर्य के समान तेजस्वी मणिमय–कमलाकार दिव्य सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥५॥

अच्युतः

किम्भूतः ।

समासीनोऽच्युतो ध्येयो द्रुतहाटकसंनिभः ।

समानोदितचन्द्रार्कतडित्कोटिसमद्युतिः ॥६॥

द्रुतहाटकसन्निभः द्रवीभूतस्वर्णतुल्यः समानोदिता एकदोद्गता या चन्द्रार्कानां कोटिः तडितामपि कोटिः तत्समाद्युतिर्यस्य सः ॥६॥

पूर्वोक्त गुण विशिष्ट सिंहासन पर विराजमान, पिघले हुए, सुवर्ण के समान कान्ति वाले, एक साथ ही उदित होने वाले करोड़ों चन्द्र-सूर्य के समान समन्वित तेज वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥६॥

पुनः किम्भूतः

सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः ।

पीतवासाश्चक्रशङ्खगदापद्मोज्वलद्भुजः ॥७॥

सर्वाङ्गेन मुखादिना सुन्दरो रम्यः सौम्योऽनुद्धतः सर्वाभरणेन कुण्डलाद्यलंकारेण भूषितः पीतवासाः पीतेवाससी यस्य सः शङ्खचक्रगदापद्मैः उज्वला दीप्ता भुजा यस्य सः ॥७॥

मूर्तिमान् सुन्दरता ही हैं अंग जिनके, परम सौम्य मूर्ति, सर्व आभूषणों से विभूषित, पीताम्बर धारी, शंख, चक्र गदा, पद्मों को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥७॥

पुनः कीदृशः ?

अनारतोच्छलद्रत्नधारौघकलशं स्पृशन् ।

वामपादाम्बुजाग्रेण मुष्णता पल्लवच्छविम् ॥८॥

वामपादाम्बुजाग्रेण अनारतं सर्वदा उच्छलन्ती या रत्नधारा तस्या ओघः प्रवाहो यत्र स चासौ कलसश्चेति कर्मधारयः । तं स्पृशन् वामपादाम्बुजाग्रेण । किम्भूतेन ? पल्लवच्छविं मुष्णता किशलयकान्ति चोरयता ॥८॥

नव पल्लवों की छवि तिरस्कृत करने वाले श्रीकृष्ण के वामपद कमल के अग्रभाग से, निरन्तर चमकने वाले रत्न समूहों की वृष्टि हो रही है जिसमें ऐसे दिव्य कलश को स्पर्श करते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥८॥

अष्टमहिषीध्यानमाह—

रुक्मिणीसत्यभामेऽस्य मूर्ध्निरत्नौघधारया ।

सिञ्चन्त्यौदक्षवामस्थेस्वदोःस्थकलशोत्थया ॥९॥

रुक्मिणीसत्यभामे ध्येये । किम्भूते ? अस्य हरेर्मूर्ध्नि शिरसि रत्नप्रवाहधारया सिञ्चन्त्यौ । कीदृशे ? दक्षवामस्थे । अत्र रुक्मिणीदक्षिणे सत्या वामे । किम्भूतया धारया ? स्वहस्तस्थघटोद्भवया ॥९॥

जिन भगवान श्रीकृष्ण के सिर पर दक्षिण भाग से रुक्मिणी, वाम भाग से सत्यभामा अपने करकमलों से उत्थापित दिव्य कलश से प्रवाहित होने वाली रत्न धारा को उडेल रही हैं ऐसी रुक्मिणी सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥९॥

नाग्नजितीसुनन्दे च ध्येये—

एते कीदृशे ?

नाग्नजितीसुनन्दा च दिशन्त्यौकलशौतयोः ।

ताभ्यां च दक्षवामस्थेमित्रविन्दासुलक्ष्मणे ॥१०॥

तयो रुक्मिणीसत्यभामयोः स्थाने रत्नघटौ दिशन्त्यौ ददत्यौ । कीदृशे ? दक्षवामस्थे, तथा मित्रविन्दासुलक्ष्मणे दक्षिणवामस्थे ध्येये । किम्भूते ? ताभ्यां नाग्नजितीसुनन्दाभ्यां कलशं दिशन्तीभ्यां कलशं ददत्यौ ॥१०॥

रुक्मिणी और सत्यभामा को रत्नधारा की वृष्टि करने के लिए क्रमशः दक्षिण और वाम भाग से रत्न कलश देती हुई नाग्नजिती, और सुनन्दा के साथ तथा नाग्नजिती, सुनन्दा को रत्न कलश देने वाली मित्र वृन्दा और सुलक्ष्मणा का भी श्रीकृष्ण के साथ ध्यान करना चाहिए ॥१०॥

रत्ननद्याः समुद्धृत्यरत्नपूर्णौ घटौतयोः ।

जाम्बवतीसुशीला च दिशन्त्यौदक्षवामगे ॥११॥

तथा दक्षवामे जाम्बवतीसुशीले च ध्येये । किम्भूते ? रत्ननद्या रत्नपूर्णौ घटौ समुद्धृत्य तयोर्मित्रविन्दासुलक्ष्मणयोर्दिशन्त्यौ ॥११॥

रत्नमयी नदी से रत्न पूर्ण कलश को निकालकर मित्र वृन्दा और सुलक्ष्मणा को देती हुई क्रमशः दक्षिण वामस्था जाम्बवती तथा सुशीला के साथ श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए । यहां इतना और समझ लेना चाहिए कि अष्टमहीषियों में चार दक्षिण भाग में चार वाम भाग में उपस्थित होकर क्रमशः अपनी-अपनी सेवा सर्मपित कर रही हैं । उनकी अपूर्व सेवा से निरवधि प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण का गम्भीरता से ध्यान करना चाहिए । यह ही सम्पत्ति प्रयोग है ॥११॥

बहिः षोडशसाहस्रसंख्याताः परितः स्त्रियः ।
ध्येयाः सकलरत्नौघधारयुक्कलशोज्ज्वलाः ।।१२।।

तद्बहिः परितः षोडशसाहस्रसंख्याताः प्रिया ध्येयाः । किम्भूताः ? कनकं सुवर्णं रत्नानि पद्मादीनि तेषामोघ. समूहः, तस्य धारां युनक्तीति तद्युक् यः कलशः तेन दीप्ताः ।।१२।।

अष्टमहीषियों के बाद दूसरी पंक्ति में सम्पूर्ण रत्न वर्षण करने वाले रत्न कलशों को लेकर उपस्थित होने वाली सोलह हजार श्रीकृष्ण प्रियतमाओं का भी ध्यान करना चाहिए ॥१२॥

तद्बहिश्चाष्टनिधयो ध्येयाः—

कीदृशाः ।

तद्बहिश्चाष्टनिधयः पूरयन्तोधनैर्धराम् ।
तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे पुरोवच्चसुरादयः ।।१३।।

धरां पृथ्वीं धनैः पूरयन्तः तद्बहिर्वृष्णयो यादवा ध्येयाः अनन्तरं पुरोवत् दिक्षुस्थिताः सुरादयः देवर्षिसिद्धाविद्याधरगन्धर्वप्रभृतयो रत्ना भिषेकं कुर्वन्तो ध्येयाः ।।१३।।

उन सोलह हजार श्रीकृष्ण प्रियाओं के बाद तीसरी पंक्ति में रत्नों से पृथिवी को पूर्ण करने वाली अष्टनिधि, उनके बाहर वृष्णि वंश के ध्येय पुरुष, तथा देव ऋषि, सिद्ध, विद्याधर गन्धर्व आदि का भी ध्यान करना चाहिए ॥१३॥

ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं परमात्मानं विंशत्यर्णं मनुं जपेत् ।
चतुर्लक्षं हुनेदाज्यैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ।।१४।।

एवं परमात्मरूपम् अशरीरिणं ध्यात्वा विंशत्यक्षरं मन्त्रं चतुर्लक्षं जपेत् आज्यैर्घृतैश्चत्वारिंशत्सहस्रकं हुनेत् जुहुयात् । १४।।

इस प्रकार के भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए ह्रीं श्रीं बीजों को जोड़ने के बाद बीस अक्षर होने वाले मन्त्रराज का चार लाख जप करके चालीस हजार संख्या से हवन करना चाहिए ।।१४॥

विंशत्यक्षरमन्त्रमुद्धरति—

शक्तीति ।

शक्तिश्रीपूर्वकोऽष्टादशार्णोविंशतिवर्णकः ।
मन्त्रेणानेन सदृशोमनुर्नहिजगत्त्रये ।।१५।।

शक्तिः भुवनेश्वरीबीजं श्रीः श्रीबीजम् एतद्बीजद्वयपूर्वकः पूर्वोक्ता-ष्टादशाक्षरमन्त्रः एवं विंशत्यक्षरो भवतीत्यर्थः, अनेन मन्त्रेण सदृशो मन्त्रो जगत्त्रये नास्ति ।।१५।।

अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र के पूर्व शक्ति बीज ह्रीं श्रीबीज श्रीं लगाने पर बीस अक्षर वाला महामन्त्र होता है। इस मन्त्र के समान प्रभावशाली मन्त्र तीनों लोको में कोई अन्य नहीं है ।।१५।।

ऋष्यादिकं दर्शयति ।

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः कृष्णस्तुदेवता ।
पूर्वोक्तवदेवास्य बीजशक्त्यादिकल्पना ।।१६।।

अस्य मन्त्रस्य बीजशक्त्यादिकल्पना पूर्वोक्तवत् दशाक्षरवत् तथा च दशाक्षरस्य यद्बीजादिकं तदस्यापीत्यर्थः ।।१६।।

इस बीस अक्षर वाले मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण हैं। अन्य सभी बात दशाक्षर अष्टादशाक्षर के समान ही है ॥१६॥

पूजाप्रकारमाह -

कल्प इत्यादिना ।

कल्पः सनत्कुमारोक्तोमन्त्रस्या ऽस्योच्यते ऽधुना ।
पीठन्यासादिकं कृत्वा पूर्वोक्तक्रमतः सुधीः ।।१७।।

अस्य मन्त्रस्य सतत्कुमारकथितः पूजाप्रकारः सप्रति मया कथ्यते । पूर्वोक्तक्रमतः दशाक्षरोक्त प्रकारेण पीठन्यासप्राणायामादिकं कृत्वा ।। १७ ।।

सनत्कुमारों द्वारा वर्णित इस मन्त्र के पूजा प्रकार बताता हूँ। इसकी पूजा पूर्वोक्त विधि से क्रमशः पीठ न्यास आदि करके ही करनी चाहिए ।।१७।।

करद्वन्द्वाङ्गुलितलेष्वंगषट्कं प्रविन्यसेत् ।
मन्त्रेण व्यापकं कृत्वा मातृकांमनुसंपुटाम् ।।१८।।
संहारसृष्टिमार्गेण दशतत्वानिविन्यसेत् ।
पुनश्चव्यापकं कृत्वा मन्त्रवर्णांस्तनौन्यसेत् ।।१९।।

उभयकराङ्गुलिषु उभयकरतलेषु च षडङ्गानि क्रमान्न्यसेत् । मन्त्रेणेति विंशत्यक्षरमन्त्रेण व्यापकं सर्वतनौ न्यासं कृत्वा मातृकां मातृकान्यासं मनुसपुटां विंशत्यक्षरपुटितप्रत्यक्षरां पूर्वोक्तमातृकास्थानेषु विन्यसेत् । प्रयोगश्च–ह्रीं अं ह्रीं नम, इत्यादिः । एवं भपर्यन्तं द्विरावृत्तिः । ततो ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः क्लीं क्रीं पं क्लीं क्रीं नम इत्यादिः । संहारसृष्टिमार्गेण दशतत्वानि महीसलिलप्रभृनीति विन्यसेत् । पुनरपि विंशत्यक्षरमन्त्रेण व्यापकन्यासं कृत्वा विंशतिमन्त्राक्षराणि तनौ स्वशरीरे न्यसेत् ।।१८।।१९।।

दोनों हाथों की अंगुलियों में दोनों करतलों में षडङ्ग न्यास करे। विंशत्यक्षर मन्त्र से सर्व शरीर में व्यापक न्यास करना होगा। और बीस अक्षरों में से प्रति अक्षर से मातृकाओं को संपुटित करके तत्तत्स्थानों में न्यास करे। अर्थात् बीस अक्षर पूर्ण होने के बाद उनकी द्विरावृत्ति करे। संहृति-सृष्टि क्रम से दस तत्व न्यास होता है। पुनः व्यापक न्यास के बाद प्रति अक्षरों से शरीर में न्यास करे। प्रयोगः—ह्रीं अं ह्रीं नमः, इत्यादि है इस रीति से भमातृका तक संपुटित करे। इसके बाद ह्रीं श्रीं क्लीं नमः, क्लीं श्रीं ह्रीं नमः, इत्यादि प्रकार से संहृति सृष्टि क्रम से दश तत्व न्यास करना चाहिए ।।१८।।१९।।

अक्षरन्यासस्थानान्याह—

मूर्ध्नीति ।

मूर्द्ध्नभालेभ्रुवोर्मध्येनेत्रयोः कर्णयोर्नसोः ।
आननेचिबुके कण्ठेदोर्मूले हृदि तुन्दके ।।२०।।
नाभौ लिङ्गे तथा ऽऽधारेकटचोर्जान्वोश्चजङ्घयोः ।
गुल्फयोः पादयोर्न्यसेत्सृष्टिरेषासमीरिता ।।२१।।

मस्तके भाले ललाटे भ्रूमध्ये इत्यादावेकैकमक्षरं न्यसेत् । आधारे लिङ्गाधस्त्रिकोणस्थाने एष सृष्टिन्यासप्रकार उक्तः ।।२०।।२१।।

न्यास स्थान बताया जाता है। सिर, बाल, भ्रूद्वय, नेत्रद्वय, श्रोत्रद्वय, घ्राणद्वय, मुख, चिबुक, कण्ठ, बाहुमूल, हृदय, उदर, नाभि, लिंग, आधार, कटिद्वय, जानुद्वय, जंघाद्वय, गुल्फद्वय, पादद्वय, इस क्रम से किए जाने वाला न्यास सृष्टि न्यास है ।।२०।।२१।।

स्थिति र्हृदादिकांसान्ता संहृतिश्चारणादिका ।
विधायैवं पञ्चकृत्वःस्थित्यन्तंमूर्त्तिपञ्जरम् ।
सृष्टिस्थिती च विन्यस्य षडङ्गन्यासमाचरेत् ।।२२।।

हृदादिकांसां ता स्थितिः हृदयमारभ्यांऽसपर्यन्तन्यासः स्थितिः संहृतिश्चरणादिकापादावारभ्यमूर्द्धान्तन्यासः विधायेति । एवं पञ्चवारान् स्थित्यन्तं न्यासं कृत्वा इति गृहस्थाभिप्रायेण तथा पूर्वोक्तमूर्तिपञ्जरन्यासं कृत्वा पुनः सृष्टिस्थिती विन्यस्य सृष्टिस्थितिप्रकारेण मन्त्रवर्णान् विन्यस्य षडङ्गन्यासमाचरेत् ।।२२।।

स्थिति न्यास हृदय से अंस तक, संहृति न्यास चरण से सिर तक होता है। यह स्थिति न्यास पांच वार करके मूर्ति पञ्जर न्यास करे। पुनः सृष्टि स्थिति न्यास करने के बाद षडङ्ग न्यास करना चाहिए ।।२२।।

षडङ्गानि दर्शयति—

गुणेति ।

गुणाग्निवेदकरणकरणाक्ष्यक्षरैर्मनोः ।
मुद्रां बध्वा किरीटाख्यां दिग्बन्धं पूर्ववच्चरेत् ।
ध्यात्वा जप्त्वार्चयेद्देहे मूर्त्तिपञ्जरपूर्वकम् ।।२३।।

मनोर्मन्त्रस्य गुणास्त्रयः अग्नयस्त्रयः वेदाश्चत्वारः करणमन्तःकरणचतुष्टयं पुनः करणचतुष्टयम् अक्षिद्वयमेतैरक्षरैर्मन्त्रसम्भवैः षडङ्गानि कार्याणीत्यर्थः ।

मुद्रामिति । किरीटाख्यां किरीटाभिधां बद्ध्वा कृत्वा किरीटाद्यामिति पाठे कौस्तुभश्रीवत्समुद्रयोः परिग्रहः पूर्ववदस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धनं कुर्यात् ।

आत्मपूजामाह—

ध्यात्वेति ।

पूर्वोदितं ध्यानं कृत्वा अष्टोत्तरशतं च जप्त्वा मूर्त्तिपञ्जरपूर्वकं देहे पूजयेत् तथाचाऽऽभ्यन्तरे प्रथमं परमेश्वराराधनं तदनु मूर्त्तिपञ्जरस्य तदनु सृष्टिस्थितिन्यासं तदनु षडङ्गस्येति ।।२३।।

मन्त्र के तीन-तीन अक्षर, चार-चार, अक्षर, दो-दो अक्षरों को लेकर षडङ्ग न्यास करना चाहिए। किरीटी नामक मुद्रा बांधकर दिग्बन्धन किया जाना है। पूर्वोक्त प्रकार के श्रीकृष्ण का ध्यान करके १०८ वार मन्त्र जपने के अनन्तर मूर्ति पञ्जर न्यास क्रम से देह की अर्चना करे ।।२३।।

बाह्यपूजाप्रकारमाह—

अथेति ।

अथबाह्येऽर्चयेद्विष्णुं तदर्थं यन्त्रमुच्यते ।
गोमयेनोपलिप्योर्वीं तत्र पीठं निधापयेत् ।।२४।।

अथात्मपूजानन्तरं बाह्ये विष्णुं पूजयेत् । तत्पूजार्थं पूजास्थानमुच्यते । गोमयजलेन पृथिवीमुपलिप्य तत्र लिप्तस्थाने पीठं पूजाधारप्रियं पात्रं स्थापयेत् ।।२४।।

देहार्चना के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की बाह्य पूजा करनी चाहिए। पूजा यन्त्र विधि के अनुरूप हो, इसके लिए गोबर से भूमि शोधन करके वहां यन्त्र (पूजा) पीठ की स्थापना करे ।।२४।।

विलिप्य गन्धपङ्केन लिखेदष्टदलाम्बुजम् ।
कर्णिकायां तु षट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम् ।।२५।।

अनन्तरं तत्पीठं चन्दनपङ्केन विलिप्य तत्राष्टदलपद्मं विलिख्य कर्णिकायां पद्मं विलिख्य मध्यस्थाने षट्कोणपुटितं वह्निपुरद्वयं लिखेत। तत्र षट्कोणमध्ये ससाध्यं कर्मसहितं साध्यनामसहितं मन्मथं कामबीजं लिखेत् । साध्यग्रहणात् धारणार्थमप्येतद्बोद्धव्यमिति त्रिपाठिनः ।।२५।।

केसर आदि चन्दन से अष्टदल कमल लिखकर कर्णिका में षट्कोण लिखकर साध्य के सहित काम बीज भी लिखे ।।२५।।

शिष्टैस्तं सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् स्मरम् ।
प्राग्रक्षोऽनिलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु संविदम् ।।२६।।

शिष्टैः सप्तदशभिरक्षरैस्तं कामबीजं वेष्टयेत् । षट्कोणस्य पूर्वनिर्ऋतिवायव्यकोणेषु श्रियं श्रीबीजत्रयं लिखेत् । शिष्टेषु त्रिषु कोणेषु पश्चिमेशानाग्निकोणेषु संविदं भुवनेश्वरीबीजं विलिखेत् ।।२६।।

अष्टादशाक्षर मन्त्र के शेष सत्रह अक्षरों से क्लीं बीज को वेष्टित करे। पूर्व, नैऋत्य, वायव्य कोणों में श्रीं बीज लिखे । शेष तीन पश्चिम ईशान आग्नेय कोणों में ह्रीं बीज लिखे ।।२६।।

षडक्षरं संधिषु च केशरेषु त्रिशस्त्रिशः ।
विलिखेत्स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दलाष्टके ।।२७।।
षड्शः संलिख्य तद्बाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ।
भूबिम्बं च लिखेद् बाह्ये श्रीमाये दिग्विदिक्ष्वपि ।।२८।।

सन्धिषु षट्कोणसन्धिषु षडक्षरङ्कामबीजपूर्वकं कृष्णाय नम इति षडक्षरं लिखेत् केशरस्थाने कामगायत्रीं वक्ष्यमाणां त्रिशोऽक्षरत्रयं कृत्वा विलिखेत् पत्राष्टके वक्ष्यमाणां मालामन्त्रं षट्शः षडक्षराणि कृत्वा विलिख्य पद्मबाह्ये मातृकाक्षरैर्वेष्टयेत् । मातृकावेष्टनबाह्य एव वक्ष्यमाणस्वरूपं भूबिम्बं च लिखेत् । भूबिम्बदिग्विदिक्षु श्रीमाये दिक्षु श्रीबीजं कोणेषु भुनेश्वरीबीजं लिखेदित्यर्थः ।।२७।।२८।।

षट्कोण की सन्धियों में षडक्षर "क्लीं कृष्णाय नमः" मन्त्र के एक-एक अक्षर लिखे । अन्य कमल दल के केसरों में तीन-तीन अक्षरों के क्रम से कामगायत्री लिखे, और अष्टदलों में काममाला मन्त्र को छः-छः अक्षरों के क्रम से लिखे । उस अष्टदल कमल को मातृकाक्षरों से वेष्टित करे । मातृकाक्षरों के बाहर चतुष्कोण भूबिम्ब लिखे । भूबिम्ब की मुख्य दिशाओं में श्रीं बीज लिखे । अन्य कोणों में ह्रीं बीज लिखे ।।२७।।२८।।

एतद्यन्त्रं हाटकादिपट्टेष्वालिख्य पूर्ववत् ।
साधितं धारयेद् यो वै सोऽर्च्यते त्रिदशैरपि ।।२९।।

एतद्यन्त्रं पूजायामप्युपयुक्तं यो धारयेत् स देवैरपि पूज्यते । किं कृत्वा ? सुवर्णरजतताम्रादि पट्टेषु यथाकथितद्रव्येणालिख्य पूर्ववद्यः पूजासु यद्वा पूर्वमन्त्रवत् कृतप्राणप्रतिष्ठादिक्रियम् । कीदृशम् ? साधितं यथाकथितप्रकारेण सम्पादितं प्रजप्तं च ।।२९।।

इस यन्त्र को सुवर्णपत्र, रजतपत्र, अथवा ताम्रपत्र में लिखकर प्राण प्रतिष्ठादि विधि से सिद्ध करके धारण करने वाले व्यक्ति को देवता नमन करते हैं ।।२९।।

कामगायत्रीमुद्धरति ।

स्याद् गायत्रीकामदेवपुष्पवाणौ तु ङन्तकौ ।
विद्महेधीमहियुतौ तन्नोनङ्गः प्रचोदयात् ।
जप्याज्जपादौ गोपालमनूनांजनरञ्जनीम् ।।३०।।

कामदेवपुष्पबाणशब्दौ क्रमेण चतुर्थ्यन्तौ । किंभूतौ ? विद्महेधीमहिशब्दसहितौ तदनु तन्नोनङ्गः प्रचोदयादिति स्वरूपम् । एवं सति कामगायत्री स्यात् भवति । जप्यादिति गोपालमन्त्राणां जपादौ जपोपक्रमे एतांकामगायत्रीं जप्यात् । यत इयं जनरञ्जनीं वश्यकरीमित्यर्थः ।।३०।।

कामदेव और पुष्प बाण शब्दों को चतुर्थ्यन्त बनाकर क्रमशः उक्त पदों के आगे विद्महे और धीमहि पद जोड़े, इसके बाद तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् हो अर्थात् "कामदेवाय विद्महे पुष्प बाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्" यह काम गायत्री है, जिसको गोपाल मन्त्र जपने से पूर्व जपना चाहिए। यह काम गायत्री वशीकरण करने वाली है ॥३०॥

मालामन्त्रमुद्धरति—

नत्यन्त इत्यादिना।

नत्यन्ते कामदेवाय ङेन्तं सर्वजनप्रियम्।
उक्त्वा सर्वजनान्ते तु संमोहनपदं तथा ॥३१॥
ज्वलज्वल प्रज्वलेति उक्त्वा सर्वजनस्य च।
हृदयं मम च ब्रूयाद्वशङ्कुरु युगं शिरः।
कृत्वा मदनमन्त्रोऽष्टचत्वारिंशद्भिरक्षरैः ॥३२॥

नमः शब्दान्ते कामदेवायेति स्वरूपं तदनु चतुर्थ्यन्तं सर्वजनप्रियशब्दमुच्चार्य तदनु सर्वजनशब्दमुक्त्वा सम्मोहनपदं वदेत्। तदनु ज्वलज्वलप्रज्वलेति स्वरूपमुक्त्वा सर्वजनस्य हृदयं ममेति स्वरूपमुक्त्वा वशमिति स्वरूपमुक्त्वा कुरु कुरु इति स्वरूपमुक्त्वा शिरः स्वाहा इति वदेत्। एवं च सति अष्टचत्वारिंशदक्षरकैर्मदनमन्त्रः कथितः ॥३१॥३२॥

काम माला मन्त्र का उद्धरण किया जाता है। नमः शब्द के अन्त में कामदेवाय पद, इसके बाद चतुर्थ्यन्त सर्वजन प्रिय पद, इसके बाद चतुर्थ्यन्त सर्वजन सम्मोहन पद इसके बाद ज्वल-ज्वल प्रज्वल पद, इसके बाद सर्वजनस्य हृदयं मम पद, इसके बाद वशं कुरु-कुरु, स्वाहा पद के सन्निवेश से "नमः कामदेवाय सर्वजन प्रियाय, सर्वजन सम्मोहनाय ज्वल-ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु-कुरु स्वाहा" यह अड़त्तालीस अक्षर का काम माला मन्त्र होता है ॥३१॥३२॥

विनियोगं दर्शयति—

जपादाविति।

जपादौ मारबीजाद्यो जगत्त्रयवशीकरः।
भूगृहं चतुरस्रं स्यात्कोणवज्राद्यलंकृतम् ॥३३॥

यन्त्रे यथोद्भूत एव जपपूजाहोमादौ तु यदि कामबीजाद्यो भवति तदा जगत्त्रयवशीकरणक्षमः यदायं मन्त्रः स्वतन्त्रेण जप्यते तदेति त्रिपाठिनः।

भूगृहमुद्धरति भूगृहमिति। कोणसंलग्नाष्टवज्रालंकृतचतुरस्रं कोणचतुष्टयसहितं भूबिम्बमिति पाठो वा ॥३३॥

यन्त्र में उक्त मन्त्र को यथोद्धृत रूप का ही लिखना चाहिए, किन्तु इस मन्त्र का स्वतन्त्र रूप से जप करना हो तो आदि में काम बीज लगाना चाहिए। इस प्रकार इस मन्त्र के जप करने से जगत्त्रय वशीभूत होता है। भूबिम्ब का स्वरूप है जो कोण लग्न आठ कुलिशों से अलंकृत हो और चौकोण हो ॥३३॥

यन्त्रे पूजाप्रकारमाह—

पीठं पूर्ववदभ्यर्च्य मूर्त्तिसंकल्प्य पौरषीम्।
तत्राऽऽवाह्याच्युतं भक्त्या सकलीकृत्य पूजयेत् ॥३४॥

पूर्ववत् दशाक्षरवत् गुर्वापीठपूजान्तमभ्यर्च्य तत्र पौरुषीं पुरुषाकृति मूर्त्तिं पारमेश्वरीं विचिन्त्य तत्र मूर्त्तावच्युतमावाह्य सकलीकृत्य भक्त्या पूजयेत् सुषुम्णा प्रवाहनाड्यापुष्पयुक्ते उत्तानपाणीहृदयस्थमूर्त्तेस्तेजः संयोज्य तेजो देवता ब्रह्मरन्ध्रेण देवशरीरगतं विचिन्त्य स्वस्वमुद्रया बाह्ये संस्थाप्य सनिधाप्य संनिरुद्धयावगुण्ठच सकलीकृत्य देवताङ्गे षडङ्गन्यासं कृत्वा षोडशोपचारैः सम्पूजयेदित्यर्थः ॥३४॥

इस पूजा पीठ की दशाक्षर के प्रसंग में कथित विधि से पूजा करके वहां पर पुरुषमयी भगवन्मूर्ति की भावना कर उसमें श्रीकृष्ण को आवाहित कर पूजा प्रणाली से सकल कला पूर्ण बनाकर उनकी षोडशोपचार से पूजा करे ॥३४॥

आसनेति—

आसनादि भूषणान्तं पुनर्न्यासक्रमात् यजेत्।
सृष्टिस्थिती षडङ्गं च किरीटं कुण्डलद्वयम् ॥३५॥
चक्रशङ्खगदापद्ममालाश्रीवत्सकौस्तुभान्।
गन्धाक्षतप्रसूनैश्च मूलेनाभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥३६॥

आसनादि विभूषान्तं यथा स्यादेवं पूजयेत् आसनमारभ्य भूषान्तैरुपचारैः पूजयेदित्यर्थः। पुनर्न्यासक्रमात् सृष्टचादीन् यजेत्। प्रथमं सृष्टचादीनां न्यासं विधाय ततस्तान् पूजयेत्, अथवा न्यासक्रमाद्यथा तेषां न्यासः कृतस्तेन क्रमेणेत्यर्थः ॥३'॥

गन्धाक्षतेति—अक्षता यवा गन्धाक्षतपुष्पैश्च पूर्ववत् मूलमन्त्रेण कृष्णं पूजयित्वा सप्तावृती: सम्पूजयेदित्यर्थ: ।।३६।।

आसन से लेकर आभूषण पर्यन्त की पूजा सृष्टि स्थिति न्यास क्रम के अनुसार करनी चाहिए । और मूल मन्त्र को बोलते हुए गन्धाक्षत पुष्पों से किरीट कुण्डल, शंख चक्र गदा पद्म, वनमाला श्रीवत्स, कौस्तुभों की भी पूर्ववत् पूजा करनी होगी ।।३५।।३६।।

आवरणान्याह –

आदाविति ।

आदौ वह्निपुरद्वन्द्वकोणेष्वङ्गानि पूजयेत् ।
सहृच्छिर: शिखावर्मनेत्रमस्त्रमिति क्रमात् ।।३७।।

प्रथमं वह्निपुरयुगलसम्बन्धिषट्कोणेषु आग्नेयकोणमारभ्य षडङ्गानि पूजयेदित्यर्थ:-अङ्गान्याह सहृदिति । सहहृदावर्तत इति सहृत् हृदयं शिर: शिखावर्मकवचं नेत्रमस्त्रं चेति प्रथमावरणम् ।।३७।।

सर्वप्रथम प्रथमावरण में षट्कोण के आग्नेय कोण से आरम्भ कर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र इन षडङ्गों की पूजा करे ।।३७।।

द्वितीयावरणमाह—

वासुदेव इति ।

वासुदेव: सङ्कर्षण: प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धक: ।
अग्न्यादिदलमूलेषु शान्ति: श्रीश्च सरस्वती ।।३८।।
रतिश्च दिग्दलेष्वर्च्यास्ततोऽष्टौ महिषीर्यजेत् ।
रुक्मिण्याद्या दक्षसव्ये क्रमात् पत्राग्रकेषु च ।।३९।।

अग्न्यादिकोणदलमूलेषु केशरस्थानेषु वासुदेवादय: पूज्यास्तथैव पूर्वादिचतुर्दिक्षु दलमूलेषु शान्त्यादय: पूज्या इत्यर्थ: ।

तृतीयावरणमाह– ततोऽष्टाविति । तदनन्तरम् अष्टौर्महिष्य: पूज्या इत्यर्थ: । ता हि रुक्मिण्याद्या इति ।

पूजास्थानमाह—दक्षसव्ये इति । परमेश्वरस्य दक्षिणभागे चतस्र: वामभागे चतस्र: क्रमेण पूज्या इत्यर्थ: ।।३८।।३९।।

द्वितीयावरण के आग्नेयादि कोणों में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्धों, की पूर्वादि दलों में शान्ति, श्री सरस्वती, रतियों की पूजा करे ।

उसके बाद तृतीय आवरण में रुक्मिणी आदि अष्टमहिषियों की पूजा करे । अष्टमहिषियों में चार श्रीकृष्ण के दक्षिण भाग में चार वाम भाग में हों ।।३८।।३९।।

चतुर्थावरणमाह—

तत इति ।

तत: षोडशसाहस्रं सकृदेवाऽर्चयेत्प्रिया: ।
इन्द्रनीलमुकुन्दाद्यान्मकराऽनङ्गकच्छपान् ।।४०।।
पद्मशङ्खादिकांश्चाऽपि निधीनष्टौ क्रमाद्यजेत् ।
तद्बहिश्चेन्द्रवज्राद्ये आवृती सम्प्रपूजयेत् ।।४१।।

पूर्वादिदलाग्रेषु षोडशसहस्रं प्रिया: देवपत्नी: सकृदेव एकक्रमेणैवाऽर्च्चयेत् ।

पञ्चमावरणमाह—

इन्द्रनीलाद्यानष्टौ निधीन् पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् । अत्रेन्द्रादिशब्दानन्तरं प्रत्येकं चतुर्थ्यन्तं निधिपदं देयम् । प्रयोगश्च—ॐइन्द्रनिधये नम: इत्यादि: ।

षष्ठसप्तमावरणद्वयमाह—

तद्बहिरिति ।

तद्बाह्ये इन्द्रादिकं वज्रादिकं च पूजयेत् ।।४०।।४१।।

चतुर्थ आवरण में पूर्वादि दलों के अग्रभाग में सोलह हजार श्रीकृष्ण पत्नियों की एक साथ पूजा करे ।

पञ्चम आवरण में इन्द्रनील आदि अष्टनिधियों की पूजा करनी चाहिए ।

षष्ठ और सप्तम आवरण में इन्द्रादि देव, तथा उनके आयुधों की पूजा होनी चाहिए ।।४०।।४१।।

आवरणानि सन्दर्श्य नैवेद्यं दर्शयति—

इतीति ।

इति सप्तावृतिवृतमभ्यर्च्याऽच्युतमादरात् ।
प्रीणयेद्दधिखण्डाज्यमिश्रेण तु पयोऽन्धसा ।।४२।।

इत्यनेन प्रकारेण सप्तावरणवेष्टितं कृष्णमादरपूर्वकं सम्पूज्य दधिशर्करावृतसहितेन पायसेन प्रीणयेदित्यर्थः ।।४२।।

इस प्रकार सात आवरणों की पूजा पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करके चीनी मिला दही तथा घृत मिश्रित पायस को नैवेद्य के रूप में अर्पण करके भगवान् को प्रसन्न करे ।।४२।।

राजोपचारमिति ।

राजोपचारं दत्त्वाऽथ स्तुत्वा नत्वा च केशवम् ।
उद्वासयेत् स्वहृदये परिवारगणैः सह ।।४३।।

छत्रचामरादीनि दत्वा अथानन्तरं स्तवं कृत्वा अष्टाङ्गपञ्चाङ्गान्यतरेण प्रणम्य परिवारगणैः सह केशवं हृदये उद्वासयेत् उत्तोल्य स्थापयेत् ।। ४३ ।।

भगवान् श्रीकृष्ण का छत्र चामर आदि से राजयोग्य सम्मान करके, स्तुति-प्रणाम करे । सपरिकर भगवान को अपने हृदय में स्थापित करे ।।४३।।

न्यस्त्वेति ।

न्यस्त्वाऽऽत्मानं समभ्यर्च्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ।
रत्नाभिषेकध्यानेज्यार्विशत्यर्णाश्रितेरिता ।।४४।।
जपहोमार्चनैर्ध्यानैर्योऽमुं प्रभजते मनुम् ।
तद्वेश्म पूर्यते रत्नैः स्वर्णधान्यैरनारतम् ।।४५।।

न्यस्त्वा पूजापूर्वोक्तं सृष्टयादिन्यासं कृत्वा आत्मपूजां विधाय तन्मयः पूज्यदेवस्वरूपो भूत्वा पूजाङ्गमन्त्रं जपेत् ।

प्रकृतमुपसंहरति—
रत्नेति ।

ध्यानं च इज्या च पूजा च इत्यर्थः । तथा च यस्यां पूजायां कृष्णस्य रत्नाभिषेकध्यानं तत्र कृष्णस्य विंशत्यक्षरोक्ता पूजेयमुक्ता ।

फलं दर्शयति—जपेति । जपादिभिर्यो अमुं मन्त्रं सेवते तस्य गृहं पद्मरागादिभिः रत्नैः काञ्चनैर्धान्यैश्चाऽनारतमनवरतं पूर्यते ।।४४।।४५।।

अपने शरीर को सृष्टि-स्थिति आदि न्यासों द्वारा देवमय बनाकर मन्त्र जपना चाहिए । जप के समय का ध्यान रत्नाभिषेक प्रकरण पर बताए गए अनुसार करना चाहिए ।।४४।।

इस प्रकार जप, हवन, पूजन, ध्यान विधि से विंशत्यक्षर मन्त्र का जो साधक जप करता है, उसका घर सदा धन-धान्य, रत्न-सुवर्ण आदि से भरपूर होता है ।।४५।।

पृथ्वी पृथ्वी करे तस्य सर्वसस्यकुलाकुला ।
पुत्रैर्मित्रैः सुसम्पन्नः प्रयात्यन्ते परां गतिम् ।।४६।।

तथा पृथ्वी महती—पृथिवी साधकस्य करे आयत्ता भवति । किंभूता ? सर्वस्य धान्यादेः कुलेन समूहेनाकुला परिपूर्णा तथा औरसपुत्रैः सुहृद्भिश्च समेतः सन् शरीरपातानन्तरं विष्णुलोकं गच्छति ।।४६।।

और सस्य श्यामला विशाल पृथिवी का शासन उसके अधीन होता है । पुत्र, मित्रों से सम्पन्न होकर अन्त में भगवान् को प्राप्त करता है ।।४६।।

प्रयोगं दर्शयति –

वह्नाविति ।

वह्नावभ्यर्च्य गोविन्दं शुक्लपुष्पैः सतण्डुलैः ।
आज्याक्तैरयुतं हुत्वा भस्म तन्मूर्द्धिन धारयेत् ।
तस्याऽन्नादिसमृद्धिः स्यात्तद्वशे सर्वयोषितः ।।४७।।

यथोक्तप्रकारेणाग्निमाधाय तत्र यथोक्तप्रकारेण गोविन्दं सम्पूज्य घृताक्तैस्तण्डुलसहितैः शुक्लपुष्पैर्दशसहस्राणि हुत्वा होमाग्निभस्म यः पुमान् मूर्द्धिन धारयेत् तस्य नानासमृद्धिः सम्पत्तिर्भवति सर्वाश्च स्त्रियस्तदायत्ता भवन्ति ।।४७।।

विधिपूर्वक मण्डप पर अग्नि का आधान करके वहां भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करे । उसके बाद घृत प्लुत तण्डुलों तथा श्वेत पुष्पों से दस हजार हवन करके उसकी भष्म ललाट में लगाने से अन्न आदि की समृद्धि, तथा सभी स्त्रियां वश होती हैं ।।४७।।

प्रयोगान्तरमाह—

आज्यैरिति ।

आज्यैर्लक्षं हुनेद्रक्तपद्मैर्वा मधुराप्लुतैः ।
श्रिया तस्येन्द्रमैश्वर्यं तृणलेशायते ध्रुवम् ॥४८॥

घृतैः केवलैः घृतमधुशर्करायुतैः रक्तपद्मैर्वा यो लक्षं जुहोति तस्य साधकस्य श्रिया लक्ष्म्या कृत्वा इन्द्रसम्बन्धि ऐश्वर्यं तृणसमानं भवति ध्रुवमुत्प्रेक्षायाम् । ४८॥

केवल घृत से अथवा घृत मधु शर्करा युक्त लाल कमलों से एक लाख हवन करने से अतुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, जिस ऐश्वर्य के समक्ष इन्द्र का ऐश्वर्य तृण बराबर दीखेगा ॥४८॥

प्रयोगान्तरमाह—

शुक्लेति ।

शुक्लादिवस्त्रलाभाय शुक्लादिकुसुमैर्हुनेत् ।
त्रिमध्वक्तैर्दशशतमाज्याक्तैर्वाऽष्टसंयुतम् ॥४९॥

शुक्लादिवस्त्रप्राप्त्यर्थं घृतमधुशर्करासहितैः शुक्लपुष्पैः घृताक्तैर्वा अष्टाधिकं दशशतं जुहुयात् ॥४९॥

विशिष्ट कोटि के रेशमी श्वेत वस्त्र प्राप्ति के लिए घृत मधु शर्करा युक्त श्वेत पुष्पों से १०८ या १००८ हवन करना चाहिए ॥४९॥

प्रयोगान्तरमाह—

क्षौद्रसिक्तैरिति ।

क्षौद्रसिक्तैः सितैः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकम् ।
हुनेन्नित्यं स षड्मासान् पुरोधा नृपतेर्भवेत् ॥५०॥

मधुमिश्रितैः शुक्लपुष्पैरष्टाधिकसहस्रं प्रत्यहं यो जुहुयात् स षट्के अतीते राज्ञः पुरोहितो भवति ॥५०॥

मधु सिक्त श्वेत पुष्पों से छः मास तक १००८ हवन करने से साधक, राज पुरोहित हो सकता है ॥५०॥

दशाष्टेति ।

दशाष्टादशवर्णोक्तं जपध्यानहुतादिकम् ।
विदध्यात्कर्म चाऽनेन ताभ्यामप्यत्र कीर्त्तितम् ॥५१॥

दशाष्टादशाक्षरयोरुक्तं जपध्यानहोमादिकम् अनेन मन्त्रेण कुर्यात् । अत्र मन्त्रे कथितं प्रयोगादिकं ताभ्यां च कुर्यात् ॥५१॥

दशाक्षर अष्टादशाक्षर मन्त्र के प्रकरण में वर्णित विधि इस मन्त्र में की जा सकती है, इस मन्त्र के प्रकरण में कथित विधि उक्त दोनों मन्त्रों से की जा सकेगी ॥५१॥

मन्त्रान्तरमाह—

श्रीशक्तिरिति ।

श्रीशक्तिस्मरकृष्णाय गोबिन्दाय शिरो मनुः ।
रव्यर्णो ब्रह्मगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरथाऽस्य तु ॥५२॥

श्रीबीजं शक्तिबीजं स्मरः कामबीजं कृष्णाय गोविन्दायेति स्वरूपं शिरः स्वाहेति स्वरूपं रव्यर्णो द्वादशार्णो मन्त्रः ऋषिरादौ येषां ते ऋष्यादयो ब्रह्मगायत्रीकृष्णा ऋष्यादय इत्यर्थः । अस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः कृष्णो देवता इत्यर्थः । बीजशक्त्यादिपूर्ववत् ॥५२॥

श्रीं ह्रीं क्लीं बीज के बाद कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा पद बोलने पर श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा, यह द्वादश अक्षर वाला ब्रह्मगायत्री मन्त्र कहाता है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण हैं। विनियोग आदि पूर्व मन्त्र के समान है ॥५२॥

बीजैरित्यादि ।

बीजैस्त्रिवेदयुग्मार्णैरङ्गषट्कमिहोदितम् ।
विंशत्यर्णोदितजपध्यानहोमार्चनक्रियाः ।
मन्त्रोऽयं सकलैश्वर्यकाङ्क्षिभिः सेव्यताम्बुधैः ॥५३॥

इह मन्त्रे अङ्गषट्कं षडङ्गं कथितं कैस्त्रिभिर्बीजैरङ्गत्रयं तथा त्रिवेदयुग्मार्णैः त्रिभिश्चतुर्भिद्वाभ्यां चाऽपराङ्गत्रयमिति ।

विंशेति । अयं मन्त्रः विंशत्यक्षरमन्त्रोक्तजपध्यानहोमपूजासहितः सकलैश्वर्यकामैः पण्डितैरुपास्यताम् ॥५३॥

इस मन्त्र में षडङ्ग न्यास, तीन बीजों से तीन अंगों में, मन्त्र के तीन, चार, दो अक्षरों से अन्य तीन अंगों में न्यास करने से षडङ्ग न्यास पूर्ण होता है। विंशत्यक्षर मन्त्र के प्रसंग में प्रोक्त विधि से जप, ध्यान, हवन करने से सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥५३॥

मन्त्रान्तरमाह –

श्रीति ।

श्रीशक्तिकामपूर्वोऽङ्गजन्मशक्तिरमान्तकः ।
दशाक्षरः सरावादौ स्याच्चेच्छक्तिरमायुतः ।
मन्त्रौ विकृतिरव्यर्णावाचक्राद्यङ्गिनाविमौ ॥५४॥

श्रीबीजं भुवनेश्वरबीजं कामबीजं च, एते पूर्वे यस्य दशाक्षरस्य तथाऽङ्गजन्म कामबीजं शक्तिः भुवनेश्वरीबीजं रमाश्रीबीजम्—एते अन्ते यस्य दशाक्षरस्य । एवं भूताद्यन्तविशिष्टो दशाक्षरो षोडशाक्षरमन्त्रो भवति तथा स एव दशाक्षरो मन्त्रः आदौ शक्तिरमायुतः भुवनेश्वरीबीज-सहितश्चेत्तदा द्वादशाक्षरमन्त्रो भवति । एवं च सति इमौ विकृतिरव्यर्णौ षोडशाक्षरद्वादशाक्षरौ मन्त्रौ आचक्राद्यङ्गिनौ दशाक्षरोक्तानि आचक्र द्यङ्गानि ययोस्तादृशौ ज्ञेयौ ॥५४॥

दशाक्षर मन्त्र के आदि में श्रीं ह्रीं क्लीं और अन्त में क्लीं ह्रीं श्रीं हो तो "श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजन वल्लभाय स्वाहा क्लीं ह्रीं श्रीं" यह षोडशाक्षर मन्त्र होता है । यदि वह दशाक्षर श्रीं ह्रीं दो बीज युक्त हो तो द्वादशाक्षर मन्त्र कहाता है । इस प्रकार द्वादश और षोडश अक्षर वाले मन्त्र हुए । इनको न्यास विधि दशाक्षर प्रकरणोक्त पद्धति अनुसार है, आचक्रादि की योजना लगाई जाती है ॥५४॥

विंशत्यर्णेति ।

विंशत्यर्णोक्त यजनविधौ ध्यायेदथाऽच्युतम् ।
वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यन्तं स्वाङ्कगे प्रिये ।
पद्मोत्पलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रदरोज्ज्वलम् ॥५५॥

विंशत्यक्षरकथितपूजाप्रकारावेतौ अथानन्तरम् अच्युतं चिन्तयेत् । कीदृशम् ? स्वाङ्कगे स्वक्रोडस्थिते प्रिये लक्ष्मीसरस्वत्यौ, यद्वा रुक्मिणी-सत्यभामे श्लिष्यन्तम् आलिङ्गन्तम् । काभ्याम् ? वरदाभयहस्ताभ्याम्, वर ददातीति वरदः, न विद्यते भयं यस्मात्स वरदाभयौ च तौ हस्तौ चेति वरदाभय हस्तौ ताभ्यामित्यर्थः । प्रिये कीदृशे ? पद्मं सामान्य-पङ्कजम् उत्पलं नीलपद्मं ते करयोर्ययोस्ते तादृग्विधे । पुनः कीदृशम् ? ताभ्यां प्रियाभ्यां श्लिष्टम् आलिङ्गितम् । पुनः कीदृशम् ? शङ्खचक्राभ्यामुज्ज्वलम् ॥५५॥

बीस अक्षर वाले मन्त्र के समान ही दशाक्षर और अष्टादशाक्षर की विधि है । तदनुसार ध्यान को भी समझ लेना चाहिए । अपने-अपने करकमलों में कमल पुष्पों को लेने वाली रुक्मिणी सत्यभामा से आलिंगित, श्रीकृष्ण से संश्लिष्ट उन दोनों का वर और अभय मुद्रा युक्त बाहुओं से गाढ आश्लेष करते हुए शंख चक्र से उज्वल श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥५५॥

पुरश्चरणजपादिकमाह -

दशलक्षेत्यादि ।

दशलक्षं जपेदाज्यैस्तावत्सहस्रहोमतः ।
सिद्धाविमौ मनू सर्वसम्पत्सौभाग्यदौ नृणाम् ॥५६॥

दशलक्षसंख्यं जपेत् आज्यैर्घृतैस्तावत्संख्यसहस्रहोमतो दशसहस्र-होमतः सिद्धौ इमौ मन्त्रौ मनुष्याणां सर्वैश्वर्यसर्वजनप्रियप्रदौ भवतः ॥५६॥

उक्त दोनों मन्त्रों का एक लाख जप करके घृत से दश हजार हवन करने से दोनों मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । ये मन्त्र साधकों को सम्पत्ति और सौभाग्य प्रदान करने वाले हैं ॥५६॥

इदानीं क्रमेण मन्त्रमुद्धरति –

मारशक्तीत्यादिना ।

मारशक्तिरमापूर्वः शक्तिश्रीमारपूर्वकः ।
श्रीशक्तिमारपूर्वश्च दशार्णो मनवस्त्रयः ॥५७॥

अत्राद्यः कामभुवनेश्वरीश्रीबीजपूर्वो दशाक्षरः भुवनेश्वरी श्रीर्मारः [श्रा] पूर्वो यस्येति द्वितीयः श्रीभुवनेश्वरीकामबीजपूर्वो दशाक्षर इति तृतीयः ॥५७॥

एक दशाक्षर मन्त्र के आदि में क्लीं ह्रीं श्रीं, लगाकर, दूसरा ह्रीं श्रीं क्लीं लगाकर, तीसरा श्रीं ह्रीं क्लीं लगाकर जपे जाने वाले तीन दशाक्षर मन्त्र हैं ॥५७॥

एतेषां मनुवर्याणामङ्गर्ष्यादिदशार्णवत् ।
शङ्खचक्रधनुर्बाणपाशाङ्कुशधरोऽरुणः ।
वेणुं धमन् धृतं दोर्भ्यां कृष्णो ध्येयो दिवाकरे ॥५८॥
आद्ये मनौ ध्यानमेवं द्वितीये विंशवर्णवत् ।
दशार्णवत् तृतीयेऽङ्गदिक्पालाद्यैः समर्चना ॥५९॥

पञ्चलक्षं जपेत्तावदयुतं पायसैर्हुनेत् ।
ततः सिध्यन्ति मनवो नृणां सम्पत्तिकान्तिदाः ॥६०॥

एतेषामित्यादि सुगमम् दिवाकरे सूर्यमण्डले ॥५८-५९-६०॥

इन मन्त्रों के अंग न्यास, ऋषि, देवता, आदि दशाक्षर मन्त्र के समान हैं। सूर्य मण्डल में शंख चक्र धनु बाण पाश अंकुश धारण करने वाले दोनों कर कमलों से पकड़कर बंशी बजाने वाले अरुण वर्ण श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए। यह ध्यान प्रथम मन्त्र का है। दूसरे का ध्यान विंशत्यक्षर वाले के समान है। तीसरे का ध्यान दशाक्षर मन्त्र के समान है। अंग देव पूजा दशाक्षर के सदृश है। इनका पन्द्रह लाख जप, दस हजार पायस से हवन कर्तव्य है, ऐसा करने पर मन्त्र सिद्ध होते हैं और साधकों को सम्पत्ति और कान्ति प्रदान करते हैं ॥५८॥५९॥६०॥

स्पष्टं मन्त्रान्तरमुद्धरति—

अष्टादशार्णेति ।

अष्टादशार्णो मारान्तो मनुः सुतधनप्रदः ।
ऋष्याद्यष्टादशार्णोक्तं मारारूढस्वरैः क्रमात् ।
अङ्गान्यस्य मनोरङ्ग दिक्पालाद्यैः समर्चना ॥६१॥

कामबीजान्तः पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमन्त्रः सुतधनप्रदः मारारुढैर्न-पुंसकरहितकामबीजसहितैः दीर्घस्वरषट्कैः क्रां क्रीमित्यादि षट्कैः क्रमादस्य मनोः षडङ्गानि ॥६१॥

अष्टादशाक्षर मन्त्र के अन्त में काम बीज लगाकर जपने से पुत्र और धन की प्राप्ति होती है। ऋषि छन्द आदि अष्टादशाक्षर के समान है। काम बीज को आदि में प्रयोग कर छः दीर्घ स्वरों क्लां क्लीं आदि से षडङ्गन्यास करना चाहिए। पूर्वोक्त विधि से अंगदेव भी पूजे जाने चाहिए ॥६१॥

ध्यानमाह—

पाणौ पायसपक्वमाहितरसं बिभ्रन्मुदा दक्षिणे
सव्ये शारदचन्द्रमण्डलनिभं हैयङ्गवीनं दधत् ।
कण्ठे कल्पितपुण्डरीकनखमत्युद्दामदीप्तिं वहन्
देवो दिव्यदिगम्बरो दिशतु वः सौख्यं यशोदाशिशुः ॥६२॥

पाणौपायसपक्वं सुपक्वं पायसं सुस्वाद्वित्यर्थः, अत्युद्दामदीप्तिम् अत्युद्भटकान्ति दिव्य इति दिव्यश्चासौ दिगम्बरश्चेति समासः दिव्य-देवस्वरूप इति ॥६२॥

दक्षिण करकमल में सुपक्व स्वादु पायस को लिए हुए, बाम करकमल में चन्द्र कान्ति के समान श्वेत नवनीत गोल को धारण किए हुए, कण्ठ में संलग्न व्याघ्र नख से सुशोभित, लोकोत्तर कान्ति से उद्दीप्त, दिगम्बर होते हुए भी दिव्य लगने वाले, यशोदा के मूर्तिमान् भाग्य स्वरूप श्रीकृष्ण आप सबको सुख प्रदान करे ॥६२॥

दिनशोऽभ्यर्च्य गोविन्दं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ।
जप्त्वा दशांशं जुहुयात्सिताज्येन पयोऽन्धसा ॥६३॥

सिताज्येन पयोऽन्धसाशर्कराघृतसहितेन परमान्नेन ॥६३॥

प्रति दिन श्रीकृष्ण की पूजा करके उतनी संख्या का जप करे जितने से बत्तीस लाख संख्या निर्धारित समय पर पूरी हो, घृत मिस्री युक्त पायस से दशांश हवन भी करता जाए ॥६३॥

पद्मस्थं देवमभ्यर्च्य तर्पयेत्तन्मुखाम्बुजे ।
क्षीरेण कदलीपक्वैर्दध्ना हैयङ्गवेन च ॥६४॥
सुतार्थी तर्पयेदेवं वत्सराल्लभते सुतम् ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं तर्पणादेव सिद्ध्यति ॥६५॥

क्षीरेणेत्यादिना तर्पणं यदुक्तं तज्जलेनैव क्षीरादिद्रव्यबुद्ध्या कार्यम् ॥६४॥६५॥

कमलाकार दिव्य सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण की पूजा करके दूध, केला, दही, अथवा नवनीत से तर्पण करे ॥६४॥

पुत्रार्थी व्यक्ति को पूर्वोक्त प्रकार से तर्पण करना चाहिए। एक वर्ष के अन्दर पुत्र की प्राप्ति हो सकती है किंवा यौं कहना चाहिए, इस प्रकार के तर्पण से साधक जो चाहे वह सुफल प्राप्त कर सकता है ॥६५॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—

वाग्भवमिति ।

वाग्भवं मारबीजं च कृष्णाय भुवनेश्वरी ।
गोविन्दाय रमा गोपीजनवल्लभङे शिरः ॥६६॥
चतुर्दशस्वरोपेतः शुक्लः सर्गी तदूर्ध्वतः ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वस्य साधकः ॥६७॥

वाग्भवम् ऐम् इति बीजं मारबीजं क्लीं कृष्णायेति स्वरूपं भुवनेश्वरीबीजं ह्रीं गोविन्दायेति स्वरूपं रमाश्रीबीजं गोपीजनवल्लभ इति स्वरूपं ङ॑ चतुर्थ्येकवचनं शिरः स्वाहा शुक्लः शकारश्चतुर्दशस्वरेणोपेतः औकारसहितः शुक्र इति पाठे दन्त्य सकारः सं शुक्रात्मने नम इति. न्यासविधानात् सर्गी विसर्गसहितः तदूद्र्ध्वत इति तस्य उद्र्ध्वम् तस्य एकविंशत्यक्षरस्य उद्र्ध्वतः प्रथमबीजमेतदिति रुद्रधरः ।

तदूद्र्ध्वतः—

स्वाहाकारोद्र्ध्वतः इति लघुदीपिकाकारः ।

अनेन बीजेन सह द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो भवति । कीदृशोऽयम् ? वचनेश्वरत्वदाता ॥६६॥६७॥

वाग्भव = ऐं मारबीज = क्लीं, कृष्णाय, भुवनेश्वरी = ह्रीं, गोविंदाय रमा = श्रीं, गोपीजन वल्लभाय, शिरः = स्वाहा, शुक्ल = शकार, चतुर्दश स्वर = औ, सर्गी = विसर्ग सहित = शौः अर्थात् "ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजन वल्लभाय स्वाहा शौः" यह बाईस अक्षर वाला मन्त्र वागीशत्व को देने वाला है ॥६६॥६७॥

अष्टादशार्णेति ।

अष्टादशार्णवत्सर्वमङ्गर्ष्यादिकमस्य तु ।
पूजा च विंशत्यर्णोक्ता प्रतिपत्तिस्तु कथ्यते ॥६८॥

अस्य ऋषिच्छन्दोधिष्ठातृदेवताबीजशक्त्यङ्गानि सर्वाणि अष्टादशार्णवत् यथाष्टादशाक्षरमन्त्रे तथात्रापीत्यर्थः । पूजा पुनः विंशत्यक्षरकथिता बोद्धव्या प्रतिपत्तिर्ध्यानं कथ्यते पुनः ॥६८॥

इस मन्त्र के षडङ्ग न्यास, ऋषि, छन्द, देवता आदि अष्टादशाक्षर मन्त्र के समान है, ध्यान आगे बताया जाएगा ॥६८॥

वामोद्र्ध्वेति ।

वामोद्र्ध्वहस्ते दधतं विद्यासर्वस्वपुस्तकम् ।
अक्षमालां च दक्षोद्र्ध्वे स्फाटिकीं मातृकामयीम् ॥६९॥
शब्दब्रह्ममयं वेणुमधःपाणिद्वयेरितम् ।
गायन्तं पीतवसनं श्यामलं कोमलच्छविम् ॥७०॥

बर्हिबर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः ।
उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद्धरिं सदा ॥७१॥

श्लोकत्रयेणात्रादिकुलकम् ।

हरिम् उपतिष्ठेत् ध्यायेत् । वामोद्र्ध्वहस्ते विद्यासर्वस्वपुस्तकं वेदान्तपुस्तकं धारयन्तं दक्षोद्र्ध्वे पञ्चाशत्संख्यमातृकाक्षरसंमितां पञ्चशत्स्फटिकबद्धामक्षमालां धारयन्तम् । पुनः कीदृशम् ? अधः स्थितकरद्वयेन ईरितं वादितं शब्दब्रह्ममयं शब्दब्रह्मस्वरूपं वेणुरन्ध्रं दधानम् । पुनः कीदृशम् ? वेणुनैव गायन्तम् । पुनः कीदृशम् ? पीतवस्त्रे यस्य तं श्यामवर्णं च । पुनः कीदृशम् ? कोमला मनोहरा छविर्यस्य स तथा तम् । पुनः कीदृशम् ? बर्हीमयूरस्तस्य बर्हं पिच्छं तेन कृत उत्तंसः शिरोभूषणं येन तम् । पुनः कीदृशम् ? सर्वसाक्षिणं पुनः कीदृशम् ? सर्वदा उपासितं सेवितम् । कैः ? सर्ववेदिभिः अतीतानागतज्ञैः मुनिगणैः सनकादिभिः ॥६९॥७०॥७१॥

ऊपर उठे हुए वाम हस्त कमल में वेदान्त पुस्तक लिए हुए, ऊपर उठे हुए दक्षिण हस्त कमल में पचास मातृका क्षररूपी स्फटिक माला को धारण करने वाले नीचे के दो हस्त कमलों द्वारा शब्द ब्रह्ममय वंशी को बजाते हुए गान ध्वनि करने वाले, पीताम्बर धारी, मयूर पंख को शिरोभूषण के रूप में धारण करने वाले श्याम वर्णशाली मधुर छवि वाले सर्वज्ञ, सर्वतत्वों को समझने वाले मुनियों के द्वारा उपास्य भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥६९॥७०॥७१॥

पुरश्चरणमाह—
ध्यात्वैवमिति ।

ध्यात्वैवं प्रमदावेशविलासं भुवनेश्वरम् ।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रमिमं मन्त्री सुसंयतः ॥७२॥

एवं पूर्वोक्तं भुवनेश्वरं श्रीकृष्णं प्रमदा स्त्री तस्या वेशः संस्थानविशेषः तस्य विलास आल्हादो यस्य तं प्रमदारूपधारिणमित्यर्थः । यद्वा स्त्रीरूपधरं स्त्रीविलासञ्च ध्यात्वा इमं मन्त्रं लक्षचतुष्टयं जपेत्सुसंयतः सन् पूर्वोक्तपुरश्चरणवान् ॥७२॥

प्रमदा विलासी किंवा प्रमदावेशधारी जगदीश्वर श्रीकृष्ण का ध्यान करके पूर्वोक्त मन्त्र का चार लाख जप करे ॥७२॥

होममाह—
पलाशेति ।

पलाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ।

जुहुयात्कर्मणाऽनेन मनुः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ।।७३।।

घृतमधुशर्करान्वितैः पलाशपुष्पैश्चत्वारिंशतसहस्रकं जुहुयात् । अनेन विधिना अवश्यं मन्त्रः सिध्यति ।।७३।।

घृत, मधु शर्करा परिप्लुत पलाश पुष्पों से चालीस हजार हवन करने से मन्त्र सिद्ध होता है ।।७३।।

फलं दर्शयति—

योऽस्मिन्निति ।

योऽस्मिन्निष्णातधीर्मन्त्री वर्तते वक्त्रगह्वरात् ।

गद्यपद्यमयी वाणी तस्य गङ्गाप्रवाहवत् ।।७४।।

यो मन्त्री अस्मिन् मन्त्रे निष्णातधीर्दत्तमतिर्वर्तते तस्य साधकस्य वक्त्रगह्वरात् मुखमध्यतो गद्यपद्यमयीवाणी प्रवर्त्तते गङ्गाप्रवाहवत् विशुद्धानवरतत्वेन गङ्गाप्रवाहेणोपमा ।।७४।।

ऐसे मन्त्र निष्णात् बुद्धिमान् साधक के मुख से सहज से ही गंगा प्रवाह की तरह गद्य-पद्यमयी वाणी निकलती है ।।७४।।

सर्वेति ।

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु सङ्गीतेषु च पण्डितः ।

संविंत्ति परमां लब्ध्वा चाऽन्ते भूयात्परम्पदम् ।।७५।।

सर्वेषु ऋग्वेदादिषु शास्त्रेषु वेदान्तेषु पण्डितो विवेकबुद्धियुक्तः सन् संवित्तिम् उत्कृष्टज्ञानं प्राप्य अन्ते देहावसाने विष्णुलोकं प्राप्नोति ।।७५।।

ऐसा साधक सम्पूर्ण वेदादि शास्त्र तथा संगीत विद्या का पारंगत पण्डित होता है और परम ज्ञान को प्राप्त कर अन्त में वह परम पद को प्राप्त होता है ।।७५।।

मन्त्रान्तरमाह—

तारमिति ।

तारं हृद्भगवान् ङेऽन्तो नन्दपुत्रपदं तथा ।

आनन्दान्ते वपुषेऽस्थ्यग्निमायान्ते दशवर्णकः ।।७६।।

अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ब्रुवे द्वात्रिंशदक्षरम् ।

नन्दपुत्रपदं ङेन्तं श्यामलाङ्गं पद तथा ।

ङेन्ता बालवपुःकृष्णगोविन्दा दशवर्णकः ।।७७।।

तारं प्रणवः हृत् नमः ङेन्तः चतुर्थ्यन्तो भगवान् भगवत इति स्वरूपं नन्दपुत्रं तथा ङेन्तं चतुर्थ्यन्तं नन्दपुत्रायेति पदान्ते आनन्द इति शब्दशेषे वपुषे इति स्वरूपम् । अस्थिशकारः अग्नी रेफः माया दीर्घ ईकारः तथा च श्रीबीजम् अस्याऽन्ते दशार्णकः दशाक्षरमन्त्रः एतेनायं मन्त्रः अष्टाविंशत्यक्षरो भवति ।

अधुना द्वात्रिंशदक्षरमन्त्रान्तरमुद्धरति—

ब्रुवे वच्मीति ।

प्रतिज्ञामन्त्रमुद्धरति—

नन्देति ।

नन्दपुत्रपदं चतुर्थ्यन्तं श्यामलाङ्गं पदमपि चतुर्थ्यन्तं बालवपुः कृष्णगोविन्दशब्दाश्च प्रत्येकं चतुर्थ्यन्ताः । अनन्तरं पूर्वोक्तदशाक्षरमन्त्रः एतेन द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो भवति ।।७६।।७७।।

तार=प्रणव, हृत्=नमः, ङेन्त भगवत्=भगवते, तथा नन्द पुत्र=नन्द पुत्राय, आनन्द शब्द वपुषे=आनन्द वपुषे, अस्थि=शकार, अग्नि=रेफ, माया=ई=श्रीं अर्थात्—"ॐ नमो भगवते नन्द पुत्रायानन्द वपुषे श्री गोपीजन वल्लभाय स्वाहा" यह अट्ठाईस अक्षर वाला मन्त्र है । और "नन्द पुत्राय श्यामलाङ्गाय बाल वपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा" यह बत्तीस अक्षर वाला मन्त्र है ।।७६।।७७।।

ऋष्यादिकं दर्शयति—

अनयोरिति ।

अनयोर्नारदऋषिः छन्दस्त्रिष्टुबनुष्टुभौ ।

आचक्राद्यैरङ्गमङ्गदिक्पालाद्यैश्च पूजनम् ।।७८।।

अनयोर्नारदऋषिः यथाक्रमं त्रिष्टुबनुष्टप्छन्दसी आचक्राद्यैः पूर्वोक्तैरङ्गपञ्चकम् अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरावरणपूजनं पीठपूजा तु पूर्ववत् ।।७८।।

इन दोनों मन्त्रों के ऋषि नारद, छन्द क्रमशः त्रिष्टुप् अनुष्टुप् देवता नन्द पुत्र श्रीकृष्ण हैं। आचकादि विधि से षडङ्ग न्यास, पूर्वोक्त विधि से दिग्देवता पूजन भी करना चाहिए ।।७८।।

ध्यानं दर्शयति —

दक्षिण इति ।

दक्षिणे रत्नचषकं वामे सौवर्णवेत्रकम् ।
करे दधानं देवीभ्यामाश्लिष्टं चिन्तयेद्धरिम् ।।७९।।

हरिं चिन्तयेत् । कीदृशम् ?

दक्षिणहस्ते रत्नपात्रं वामहस्ते सुवर्णघटितवेत्रं दधानम् ? पुनः कीदृशम् ? देवीभ्यां लक्ष्मीसरस्वतीभ्यां रुक्मिणीसत्यभामाभ्यां वा आलिङ्गितम् ।।७९।।

जिनके दक्षिण करकमल में रत्न पात्र, और वाम करकमल में सुवर्ण घटित वेत्र है, ऐसे रुक्मिणी और सत्यभामा द्वारा आश्लिष्ट श्रीकृष्ण का स्मरण करना चाहिए ।।७९।।

जपेदिति ।

जपेल्लक्षं मनुवरो पायसैरयुतं हुनेत् ।
एवं सिद्धमनुमंत्री त्रैलोक्यैश्वर्यभाग् भवेत् ।।८०।।

मन्त्रश्रेष्ठौ प्रत्येकं लक्षं जपेत् ।

अनन्तरं परमान्नेन दशसहस्रं जुहुयात् अनेन सिद्धो मन्त्रो यस्य मन्त्री लोकत्रयैश्वर्यभाजनं भवति । ८०।।

इस प्रकार ध्यान करते हुए उक्त दोनों मन्त्रों को एक-एक लाख जप कर पायस से दस-दस हजार हवन करे, ऐसे करने पर मन्त्र सिद्ध होते हैं, और साधक तीनों लोकों का ऐश्वर्य भागी हो सकता है ।।८०।।

मन्त्रान्तरमाह —

तारेति ।

तारश्रीशक्तिबीजाढ्यं नमो भगवते पदम् ।
नन्दपुत्रपदङेऽन्तं भूधरो मुखवृत्तयुक् ।
मासान्ते वपुषे मन्त्र ऊनविंशतिवर्णकः ।।८१।।

तारं प्रणवः श्रीबीजं भुवनेश्वरीबीजम् एतद्बीजत्रयाढ्यं नमो भगवते इति स्वरूपं ततश्चतुर्थ्यन्तनन्दपुत्रपदं भूधरो वकारः मुखवृत्तमाकारः तद्युक्तः मांसो लकारस्तदन्ते वपुषे इति स्वरूपम् एतेन ऊनविंशतिवर्णको मन्त्र उद्धृतो भवति ।।८१।।

तार=ॐ श्रीं शक्ति=ह्रीं नमो भगवते नन्द पुत्राय, भूधर=वकार, मुखवृत्त=आकार से युक्त=वा मांस=लकार, बपुषे अर्थात् "ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवते नन्द पुत्राय बाल वपुषे" यह उन्नीस अक्षर का मन्त्र है ।।८१।।

ऋषिर्ब्रह्माऽनुष्टुप्छन्दस्तथाऽन्यदुदितं समम् ।
अयं च सर्वसम्पत्तिसिद्धये सेव्यताम्बुधैः ।।८२।।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः छन्दोनुष्टुप् अन्यदुदितम् । अन्यत्सर्वं समानं पूर्वोक्तवद् वेदितव्यमित्यर्थः ।।८२।।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप्, देवता नन्द पुत्र श्रीकृष्ण हैं। यह सर्व सम्पत्ति प्राप्ति के लिए पण्डितों को जपना चाहिए ।।८२।।

मन्त्रान्तरमुद्धरति —

तारमित्यादिना ।

तारं हृत् भगवान् ङेन्तो रुक्मिणीवल्लभस्तथा ।
शिरोऽन्तः षोडशार्णोऽयं रुक्मिणीवल्लभाह्वयः ।।८३।।

तारः प्रणवः हृन्नमः चतुर्थ्यन्तो भगवान् तथा चतुर्थ्यन्तो रुक्मिणीवल्लभशब्दः शिरोन्तः स्वाहाशब्दान्तः एतेन रुक्मिणीवल्लभाख्यः षोडशाक्षरो मन्त्रः कथितः ।।८३ ।

सर्वसम्पत्प्रदो मन्त्रो नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च रुक्मिणीवल्लभो हरिः ।
एकदृग्वेदमुनिदृग्वर्णैरस्याऽङ्गपञ्चकम् ।।८४।।

अस्य ऋषिर्नारदः अनुष्टप्छन्द रुक्मिणीवल्लभो हरिर्देवतेति ।

एकेति । अस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गानि भवन्ति । कैः ? मन्त्रस्य एकद्विचतुः सप्तद्विवर्णैः ।।८४।।

"ॐ नमो भगवते रुक्मिणी वल्लभाय स्वाहा" यह सर्व सम्पत्ति प्रदान करने वाला रुक्मिणी वल्लभ मन्त्र है, इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप्, देवता

रुक्मिणी वल्लभ श्रीकृष्ण हैं। इस मन्त्र के एक, दो, चार, सात और दो वर्णों से पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिए ॥८३॥८४॥

ध्यानमाह—

तापिच्छेति ।

तापिच्छच्छविरङ्कगाम्प्रियतमां स्वर्णप्रभामम्बुज-
प्रोद्यद्वामभुजां स्ववामभुजयाश्लिष्यन् सचिन्ताश्मना ।
श्लिष्यन्तीं स्वयमन्यहस्तविलसत्सौवर्णवेत्रश्चिरं
पायाद्वोऽसनप्रसूनपीतवसनो नानाविभूषो हरिः ॥८५॥

तापिच्छच्छविस्तमालकान्तिर्हरिर्वो युष्मान् पायात् रक्षतु । किं कुर्वन्? अङ्कस्थां गौराङ्गीं प्रियतमां चिन्तामणिरत्नसहितेन हस्तेन आलिङ्गन् । किंभूताम्? पद्मोल्लसत् मनोहरवामकराम् । पुनः किंभूताम्? स्वयमात्मना आत्मानं देवं वा दक्षिणकरेण आश्लिष्यन्तीम् आलिङ्गन्तीम् । कीदृशो हरिः? आलिङ्गनान्यहस्ते शोभमानः काञ्चन-दण्डो यस्य तथा पुनः कीदृशः? असनवृक्षपुष्पवत्पीते वस्त्रे यस्य स, पुनः कीदृशः? नानाप्रकारोऽलङ्कारो यस्य ॥८५॥

जिनकी कान्ति तमाल पत्र के समान है, अपने अंक स्थल पर विद्यमान स्वर्ण वर्ण कमल पुष्प से शोभित है वाम करकमल जिनका, ऐसी प्रियतमा श्री-रुक्मिणी का, चिन्तामणि रत्न विभूषित अपनी बायीं भुजा से आलिंगन करते हुए, और श्रीरुक्मिणी की दक्षिण भुजा से आलिंगित, चम्पा पुष्पवत् पीत वस्त्र धारी जिनके दक्षिण कर में सुवर्ण यष्टि विलसित है, ऐसे नाना आभूषणों से विभूषित श्रीकृष्ण आपकी रक्षा करे ॥८५॥

पुरश्चरणमाह—

ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं रुक्मिणीनाथं जप्याल्लक्षमिमं मनुम् ।
अयुतं जुहुयात्पद्मैररुणैर्मधुराप्लुतैः ॥८६॥

एवं पूर्वोक्तं रुक्मिणीवल्लभं रुक्मिणीनाथं ध्यात्वा इमं मन्त्रं लक्षमेकं जपतु । घृतमधुशर्करासिक्तैः लोहितपद्मैरपि दशसहस्रं जुहुयात् ॥८६॥

श्रीरुक्मिणी वल्लभ श्रीकृष्ण का पूर्वोक्त प्रकार का ध्यान कर उक्त मन्त्र को एक लाख जप करके, घृत मधु शर्करा युक्त लाल कमलों से दस हजार हवन करे ॥८६॥

पूजां दर्शयति—

पूजयेदिति ।

अर्चयेन्नित्यमङ्गैस्तं नारदाद्यैर्दिशाधिपैः ।
वज्राद्यैरपि धर्मार्थकाममोक्षाप्तये नरः ॥८७॥

पीठपूजापूर्ववत् । आवरणपूजा तु कथ्यते– प्रत्यहं तं हरिं पूजयेत् । केरङ्गैराचक्राद्यैः सायाह्नपूजोक्तैः नारदप्रभृतिभिश्च दिशाधिपैरिन्द्राद्यैः तेषामायुधैर्वज्राद्यैः । कीदृशम्? पुरुषार्थचतुष्टयप्रदम् ॥८७॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष प्राप्ति के लिए नारद आदि मुनिगण तथा साङ्ग सायुध इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करे ॥८७॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—

लीलादण्डेति ।

लीलादण्डावधौ गोपीजनसंसक्तदोः पदम् ।
दण्डान्ते बालरूपेति मेघश्यामपदं ततः ॥८८॥
भगवान् विष्णुरित्युक्त्वा वह्निजायान्तको मनुः ।
एकोनत्रिंशदर्णोऽस्य मुनिर्नारद ईरितः ॥८९॥
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च लीलादण्डधरो हरिः ।
मन्वब्धिकरणाग्न्यब्धिवर्णैरङ्गक्रिया मता ॥९०॥

लीलादण्डावधौ लीलादण्डशब्दान्ते गोपीजनसंसक्तदोः पदम् अनन्तरं दण्डशब्दान्ते बालरूपेति पदं तदनु मेघश्यामेति पदं ततः शब्दोऽपि काकाक्षिवत् सम्बध्यते । तदनु भगवान् विष्णुः सम्बोधनान्त-मुक्त्वा स्वाहा शब्दान्त एकोनत्रिंशदक्षरो मन्त्र उद्ध्रियतामित्यर्थः । अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दो लीलादण्डो हरिर्देवतेति ।

मन्वब्धीति । अस्य मन्त्रस्याऽङ्गक्रिया मनुश्चतुर्दशः अब्धिश्चतुष्टयं करणं पञ्च अग्निस्त्रयश्चत्वारोऽब्धिरेतत्संख्याकैर्मन्त्रवर्णैर्मता संमता पञ्चाङ्गानीत्यर्थः ॥८८॥८९॥९०॥

"लीला दण्ड गोपीजन संसक्त दोर्दण्ड बालरूप मेघश्याम भगवन् विष्णो ! स्वाहा" यह उन्तीस अक्षर वाला मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप्, देवता लीला दण्ड श्रीकृष्ण हैं। मन्त्र के चौदह, चार, पांच, तीन, चार अक्षरों के क्रम से पञ्चाङ्ग न्यास किया जाना चाहिए ॥८८॥८९॥९०॥

ध्यानमाह—

संमोहयन्निति ।

संमोहयन्निजकवामकरस्थलीला-
दण्डेन गोपयुवतीः सुरसुन्दरीश्च ।
दिश्यान्निजप्रियतमांसगदक्षहस्तो
देवः श्रियं निहतकंस उरुक्रमो वः ॥९१॥

देव श्रीकृष्णः वो युष्मभ्यं श्रियं लक्ष्मीं दिश्यात् प्रयच्छतु । किं कुर्वन् ? गोपयुवतीः सुरयुवतीश्च संमोहयन् । केन ? स्वीयवामहस्तस्थविलासवेत्रेण । कीदृशो ? निजप्रियांसग दक्षहस्तः स्त्रीयवल्लभाबाहुमूलस्थितदक्षिणकरः प्रियसखांसगदक्षहस्त इति पाठे निजसखांसगतदक्षिणहस्तः । पुनः कीदृशः ? उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स तथा ॥ ९१ ॥

जिनके वाम करकमल में शोभित होने वाली विलास वेत्र यष्टि है उससे गोपाङ्गनाओं तथा देवाङ्गनाओं को जो मोहित करते हैं और जिनके स्कन्ध पर प्रियतमा श्रीरुक्मिणी की दक्षिण भुजलता संश्लिष्ट है, ऐसे कंस को ध्वस्त करने वाले उरुक्रम भगवान् श्रीकृष्ण आपको ऐश्वर्य दें ॥९१॥

पुरश्चरणमाह—

ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षमयुतं तिलतण्डुलैः ।
त्रिमध्वक्तैर्हुनेदङ्गदिक्पालाद्यैः समर्चयेत् ॥९२॥

एवं पूर्वोक्तं कृष्णं ध्यात्वा लक्षमेकं जपेत् । तदनु घृतमधुशर्करासहितैस्तिलतण्डुलैर्दशसहस्रं जुहुयात् ।

अङ्गेति । पीठपूजा पूर्ववदावरणपूजाश्चाङ्गैरिन्द्राद्यैश्चेति ॥ ९२ ॥

पूर्वोक्त गुण विशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे। घृत मधु शर्करा सम्वलित तिल मिश्रित तण्डुलों से दस हजार हवन करे, दिक्पालों की पूजा भी की जानी चाहिए ॥९२॥

प्रात्यह्लिकपूजाफलमाह—

लीलेति ।

लीलादण्डं हरिं यो वै भजते नित्यमादरात् ।
स पूज्यते सर्वलोकैस्तं भजेदिन्दिरा सदा ॥९३॥

यो मनुष्यः प्रत्यहं लीलादण्डधरं हरिं सेवते, स सर्वजनैः पूज्यते । तम् इन्दिरा लक्ष्मीः सर्वदा भजते । ९३॥

जो साधक लीला दण्ड श्रीकृष्ण का सदा ध्यान करता है, वह सर्वलोक पूज्य होता है, तथा लक्ष्मी स्वयं उसकी सेवा करती है ॥९३॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—

त्रयोदशेति ।

त्रयोदशस्वरयुतः शार्ङ्गी मेदः सकेशवः ।
तथा मांसयुगम्भाय शिरः सप्ताक्षरो मनुः ॥९४॥

त्रयोदशस्वरओंकारस्तेन युतः शार्ङ्गी गकारः मेदो वकारः । कीदृशः ? सकेशवः अकारसहितः, तथा मांसयुगं लकारद्वमिति भाय शिरः स्वाहा । अनेन सप्ताक्षरो मन्त्रः उक्तः ।।९४।।

त्रयोदश स्वर युक्त = ॐ कार युक्त, शार्ङ्गी = गकार, मेद = वकार, सकेशव = अकार सहित, मास युग = दो लकार, उसके बाद भाय, उसके बाद स्वाहा, अर्थात् "गों वल्लभाय स्वाहा" यह सप्ताक्षर मन्त्र है ॥९४॥

ऋष्यादिकमाह—

आचक्राद्यैरिति ।

आचक्राद्यैरङ्गक्लृप्तिर्नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः ।
छन्द उष्णिग्देवता च गोवल्लभ उदाहृतः ॥९५॥

आचक्राद्यैः पञ्चाङ्गकरणम् । अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिः उष्णिक्छन्दः गोवल्लभः कृष्णो देवतेति ॥९५॥

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द उष्णिक्, देवता गोवल्लभ श्रीकृष्ण हैं। आचक्रादि न्यास क्रम से अंग न्यास करना चाहिए ॥९५॥

ध्यानमाह—

ध्येय इति ।

ध्येयोऽच्युतः स कपिलागणमध्यसंस्थः
ता आह्वयन् दधददक्षिणदोष्णि वेणुम् ।

पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः
पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥९६॥

अच्युतः कृष्णो ध्येयः। कीदृशः? कपिलागणो गोविशेषसमूह-स्तस्याभ्यन्तरवर्ती। किङ्कुर्वन्? ताः कपिला आह्वयन् अभिमुखी-कुर्वन्। पुनः कीदृशः? अदक्षिणदोष्णि वामहस्तेन सरन्ध्रं वंशं वहन्। अपरत्र दक्षिणहस्ते दण्डसहितगोबन्धनरज्जुं दधत्। पुनः कीदृशः? पयोदनीलो मेघश्यामः पीतवसनः। पुनः कीदृशः? अहिरिपुर्मयूरः, तस्य पिच्छं शिखण्डः, तेन कृतोऽवतंसः कर्णालङ्कारः शिरोभूषणं वा येन स तथा ॥९६॥

कपिला गौओं के मध्य में विराजमान, वाम हस्त कमल में वंशी को लेकर गौओं को बुलाने वाले, यष्टि के साथ पाश को भी लिए हुए, मेघश्याम, पीताम्बरधारी, मयूर पंख को आभूषण के रूप में धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥९६॥

पुरश्चरणमाह—

मुनिलक्षेति।

मुनिलक्षं जपेदेतद् धुनेत्सप्तसहस्रकम्।
गोक्षीरैरङ्गदिक्पालमध्येऽर्च्यं गोगणाष्टकम् ॥९७॥

इमं मन्त्रं मुनिलक्षं सप्तलक्षं जपेत् गोदुग्धैः सप्तसहस्रं जुहुयात्। अङ्गपूजाऽनन्तरं दिक्पालपूजायाः प्राक् गोगणाष्टकं पूजनीयं गोगणाष्टकं च प्रथमादि यथा स्यात्।

सुवर्णवर्णा कपिला द्वितीया गौरपिङ्गला।
तृतीया गौरपिङ्गाक्षी चतुर्थी गुडपिङ्गला॥
पञ्चमी अभ्रवर्णा स्यादेताः स्युरुत्तमा गवाम्।
चतुर्थीपिङ्गला षष्ठी सप्तमी खुरपिङ्गला।
अष्टमी कपिला गोषु विज्ञेयः कपिलागणः॥

इत्यनेनोक्तम् ॥९७॥

इस सप्ताक्षर मन्त्र को सात लाख जपकर गोदुग्ध से सात हजार हवन करना चाहिए। दिक्पालों की पूजा के पूर्व आठ प्रकार की गौओं की अर्चना करनी होगी। आठ प्रकार की गौ, कपिला, आदि भेद से जानना चाहिए ॥९७॥

प्रयोगान्तरमाह—

अष्टोत्तरेति।

अष्टोत्तरसहस्रं यः पयोभिर्दिनशो हुनेत्।
पक्षात्स गोगणैराढ्यो दशार्णेनैष वा विधिः ॥९८॥

गोदुग्धैः प्रतिदिनं योऽष्टाधिकं सहस्रं जुहुयात् स पञ्चदशदिना-भ्यन्तरे गोसमूहेन सम्पन्नो भवति। एष विधिप्रयोगो दशाक्षरमन्त्रेण वा कार्य्य इत्यर्थः ॥९८॥

जो साधक प्रतिदिन गोदुग्ध से १००८ संख्या का हवन करता है, वह पन्द्रह दिनों में गौ धन से भरपूर हो जाता है। यह प्रयोग दशाक्षर मन्त्र से भी किया जा सकता है ॥९८॥

मन्त्रान्तरमाह—

सलवेति।

सलवो वासुदेवो हृत् ङेऽन्तं च भगवत्पदम्।
श्रीगोविन्दपदं तद्वत् द्वादशार्णोऽयमीरितः ॥९९॥

लवो बिन्दुः तत्सहितो वासुदेवः ओंकारः अर्थात् प्रणवः ॐ नमः चतुर्थ्यन्तं भगवत्पदं तथा श्रीगोविन्दपदं चतुर्थ्यन्तम्। एतेन द्वादशाक्षरो मन्त्र उद्धृतः ॥९९॥

सलवो वासुदेव—ॐ कार, हृत्—नमः, भगवते, श्रीगोविन्दाय अर्थात "ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय" यह द्वादशाक्षर गोविन्द मन्त्र है ॥९९॥

ऋष्यादिकमाह—

मनुरिति।

मनुर्नारदगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरथाऽङ्गकम्।
एकाक्षिवेदभूतार्णैः समस्तैरपि कल्पयेत् ॥१००॥

क्वचिन्मुनिरिति पाठो न युक्तः असमन्वयात् पौनरुक्त्याच्च किन्तु मनुरित्येव पाठः। अयमिति पाठो युक्तयालभ्यत इति रुद्रधरः।

अथाऽङ्गपञ्चकं कल्पयेत्। कैः? एकद्विचतुःपञ्चभिः तथा ओं नमो भगवते श्रीगोविन्दाय अस्त्राय फट् इति ॥१००॥

इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण हैं। अंग न्यास एक, दो, चार, पांच, अक्षरों के क्रम से करना चाहिए ॥१००॥

ध्यानमाह—

वन्द इति।

वन्दे कल्पद्रुमूलाश्रितमणिमयसिंहासने सन्निविष्टं
नीलाभं पीतवस्त्रं करकमललसच्छङ्खवेत्रं मुरारिम्।
गोभिः सप्रश्रवाभिर्वृतममरपतिप्रौढहस्तस्थकुम्भ-
प्रच्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम्॥१०१॥

मुरारिं वन्दे। कीदृशम्? कल्पवृक्षमूलावस्थिते पद्मरागमणिघटिते सिंहासने उपविष्टम्, पुनः कीदृशम्? नीलाभं श्यामं तथा पीतवस्त्रं तथा हस्तपद्मे शोभमानौ शङ्खवेत्रौ यस्य. तं तथा सप्रस्रवाभिः क्षीर-स्तनाभिः गोभिर्वृतं वेष्टितम्, तथा अमरपतेरिन्द्रस्य प्रौढो बलिष्ठो यो हस्तस्तदवस्थितो यः कुम्भः घटस्तस्मात् प्रस्रवदमृत धाराभिः स्नपितं तथाऽभिनवं नूतनं यदम्भोजं पद्मं तस्य पत्रवदाभा कान्तिर्नयनयोर्यस्य तम्॥१०१॥

कल्पवृक्ष के मूल में सुशोभित, पद्मरागादिमणि विशेष से संघटित दिव्य सिंहासन पर विराजमान, नील कान्ति वाले पीत वस्त्र धारी, जिनके करकमलों में शंख और स्वर्ण वेत्र सुशोभित हैं, नव प्रसवा दूधारू गौओं से परिवेष्टित हैं, इन्द्र के विशाल हाथ से गृहीत स्वर्णमय अमृत कलश से प्रवाहित होने वाली पीयूष धारा से जो अभिषिञ्चित है ऐसे नव विकसित कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ ॥१०१॥

पुरश्चरणमाह—

ध्यात्वेति।

ध्यात्वैवमच्युतं जप्त्वा रविलक्षं हुनेत्ततः।
दुग्धैर्द्वादशसाहस्रं दिनशोऽमुं समर्चयेत्॥१०२॥

एवं पूर्वोक्तमच्युतं ध्यात्वा द्वादशलक्षं जप्त्वा दुग्धैर्द्वादशसहस्रं जुहुयात्। प्रत्यहं वा अमुं पूजयेत्॥१०२॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का बारह लाख जप कर दूध से बारह हजार हवन करे, प्रतिदिन भगवान् की पूजा भी पूर्वोक्त रीति से करे॥१०२॥

आयतनादिषु पूजाविशेषं दर्शयति—

गोष्ठ इति।

गोष्ठे प्रतिष्ठितं चाऽऽत्मगेहे वा प्रतिमादिषु।
समस्तपरिवारार्चास्ताः पुनर्विष्णुपार्षदाः॥१०३॥
द्वाराग्रे बलिपीठेऽर्च्याः पक्षीन्द्रश्च तदग्रतः।
चण्डप्रचण्डौ प्राक् धातृविधातारौ च दक्षिणे॥१०४॥
जयः सविजयः पश्चाद्बलः प्रबल उत्तरे।
ऊर्द्ध्वे द्वारश्रियं चेष्ट्वा द्वास्थेशान् युग्मशोऽर्चयेत्॥१०५॥
पूज्यो वास्तुपुमांस्तत्र तत्र द्वाःपीठमध्यगः।
द्वारान्तःपार्श्वयोरर्च्या गङ्गा च यमुना निधी॥१०६॥
कोणेषु विघ्नं दुर्गाञ्च वाणीं क्षेत्रेशमर्चयेत्।
अर्चयेद्वस्तुपुरुषं वेश्ममध्ये समाहितः।
देवतार्चानुरोधेन नैर्ऋत्यां वा विचक्षणः॥१०७॥

गोष्ठे गोस्थाने प्रतिष्ठितं स्थापितं तथा आत्मगेहे सुवर्णादिघटित-प्रतिमादिषु प्रतिष्ठितं विष्णुं पूजयेदिति पूर्वेणान्वयः। ताः पूर्वोक्ता एव समस्तपरिवारपूजाः कार्याः, तथा वक्ष्यमाणाश्च विष्णुपार्षदाः पूर्वादि-चतुर्द्वाराग्रभागे बलिदानपीठे द्विशः पूज्याः अत्र त्रिपाठिनः।

द्वादशाक्षरगोविन्दमन्त्रस्य पूजाप्रसङ्गेन पूर्वोक्त दीक्षापूजायां तथा त्रिकालपूजास्वपि पूर्वादिचतुर्द्वारपूजा विशेषत कर्त्तव्यत्वेन ज्ञातव्या समस्तपरिवारायाऽच्युताय नमो नमः, विष्णुपार्षदेभ्यो नमो नमः— अनेन मन्त्रद्वयेन पूर्वादिचतुर्द्वाराग्रभागे बलिदानपीठे पूजयेदित्यर्थः।

पक्षीन्द्रो गरुडः तदग्रतः बलिदानपीठाग्रतः पूज्यः। विष्णुपार्षदान् दर्शयति — प्रागिति।

द्वारपूजामाह—ऊर्द्ध्वे इति। चतुरस्रचतुर्द्वारोर्द्ध्वभागे द्वारश्रियं पूजयित्वा चण्डादीन् द्वौ द्वौ कृत्वा पूजयेत्। अनुक्रमेण पूर्वद्वारमारभ्य द्वारबलिपीठयोर्मध्ये वास्तुपुरुषाय नम इति पूजयेत्। द्वारान्त इति। चतुर्द्वारमध्योभयफलके गंगायमुने पूज्ये तथा शङ्खनिधिपद्मनिधी च पूज्यौ।

तदनु मण्डपे प्रविश्याऽऽग्नेयादिकोणेषु विघ्नदुर्गासरस्वतीक्षेत्रेशाः क्रमेण पूज्याः मण्डपमध्ये ब्रह्मस्थाने पुनर्वास्तुपुरुषं संयतः सन् पूजयेत् ॥१०३-१०७॥

गोष्ठ या अपने घर में प्रतिष्ठित—प्रतिमाओं में अङ्ग देवताओं सहित श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए। चतुष्कोण के रूप में निर्मित द्वार के अग्रभाग की बलि पीठ पर गरुडजी की, इसी क्रम से, विष्णु पार्षदों की पूजा होनी है। अर्थात् बलि पीठ के अग्रभाग में गरुडजी की, पूर्व दिशा में चण्ड, प्रचण्ड की, दक्षिण में धाता, विधाता की, पश्चिम में जय, विजय की, उत्तर में बल, प्रबल को, द्वारोपरि लक्ष्मीजी की पूजा करके चण्ड प्रचण्ड आदि की दो-दो के क्रम से पूजा करे। द्वारपीठ के मध्य में वास्तु पुरुष की पूजा करनी है। द्वार के दोनों बगलों में गंगा, यमुना, शंखनिधि, पद्मनिधि की, और कोणों में श्रीगणेश, दुर्गा, सरस्वती, क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए। गृह मध्य में वास्तु पुरुष की पूजा होनी चाहिए। अथवा यथा सौविध्य वास्तु की पूजा नैऋत्य कोण में भी की जा सकती है ॥१०३॥१०४॥१०५॥१०६॥१०७॥

अस्त्रमुद्धरति –

तारमिति।

तारं शार्ङ्गपदं ङेऽन्तं सपूर्वं च शरासनम्।
हुंफट् नतिरित्युक्त्वाऽस्त्रमुद्रयाऽग्रे स्थिरो हरेः॥१०८।
पुष्पाक्षतं क्षिपेद्दिक्षु समासीताऽऽसने ततः।
विधेयमेतत् सर्वत्र स्थापितेषु विशेषतः॥१०९॥

तारं प्रणवः शार्ङ्गपदं ङेऽन्तं चतुर्थ्यन्तं सपूर्वं सशरासनशब्दं चतुर्थ्यन्तं हुं फट् नमः इति उक्त्वा पुष्पाक्षतं चतुर्दिक्षु अस्त्रमुद्रया छोटिकया निक्षिपेत्। कीदृशः? हरेरग्रे स्थितः ततः आसने स्वोचिते उपविशेत्। एतत्सर्वं सर्वपूजादौ कर्तव्यं स्थापितेषु प्रतिमादिषु पुनर्विशेषतः कर्तव्यमेव॥१०८-१०९॥

तार—ॐ कार, चतुर्थ्यन्त शार्ङ्गि—शार्ङ्गिणे तथा सशरासनाय हुं फट् नमः अर्थात्—"ॐ शार्ङ्गिणे सशरासनाय हुं फट् नमः" यह अस्त्र मन्त्र है। इस मन्त्र को पढते हुए अस्त्र मुद्रा से चारों दिशाओं में पुष्पाक्षत फेंके। इसके बाद आसन पर बैठकर स्थापित देवों की यथोचित अर्चना वन्दना करे॥१०८॥१०९॥

पीठ पूजामाह –

आत्मेति।

आत्मार्चनान्तं कृत्वाऽथ गुरुपङ्क्तिं पुरोक्तवत्
श्रीगुरून् परमाद्यांश्च महास्मत्सर्वपूर्वकान्॥११०॥

स्वदेहे पूर्वोक्तस्वरूपेण पीठमारभ्य सम्पूज्य हृदि भगवन्तमभ्यर्च्याऽनन्तरं बाह्यपीठे पूर्ववत् पूर्वोक्तदीक्षाप्रकरणकथितोत्तरदिग्विभागे इतिवद् गुरुपङ्क्तिं पूजयेत्।

गुरुपङ्क्तिमेवाह श्रीगुरूनिति। श्रीशब्दपूर्वान् गुरून् परमगुरून्।

प्रयोगाश्च –श्रीगुरुभ्यो नमः, श्रीपरमगुरुभ्यो नमः, श्रीमहागुरुभ्यो नमः, श्रीअस्मद्गुरुभ्यो नमः, सर्वगुरुभ्यो नमः॥११०॥

न्यास आदि क्रिया से अपने को अच्युतमय बनाकर श्रीकृष्ण पूजा पर्यन्त की सभी विधि करने के बाद गुरु परम्परा की पूजा करे। प्रयोग—श्रीगुरुभ्यो नमः, श्रीपरम गुरुभ्यो नमः, परात्पर गुरुभ्यो नमः, अस्मद्गुरुभ्यो नमः, सर्वगुरुभ्यो नमः इत्यादि है॥११०॥

तत्पादुकानारदादीन्पूर्वसिद्धाननन्तरम्।
ततो भागवतांश्चेष्ट्वा विघ्नं दक्षिणतोऽर्चयेत्॥१११॥

तत् पादुकाभ्यः नारदादिभ्यः पूर्वसिद्धेभ्यः भागवतेभ्य इति लघुदीपिकाकारः।

श्रीगुरुपादुकाभ्यो नमः श्रीपरमगुरुपादुकाआदिगुरुपादुकामहागुरुपादुकाअस्मद्गुरुपादुकासर्वगुरुपादुकाभ्यो नमः। इति त्रिपाठिनः।

एवं गुरुपङ्क्तिपीठस्योत्तरे समभ्यर्च्य दक्षिणे गणेशं पूजयेत्॥१११॥

नारदादिक ऋषियों की, पूर्व सिद्ध भागवतों की तथा गुरुपादुकाओं की पूजा करके पीठ के उत्तर में गणेशजी का पूजन करना चाहिए॥१११॥

पूर्ववत् इति।

पूर्ववत् पीठमभ्यर्च्य श्रीगोविन्दमथाऽर्चयेत्।
रुक्मिणीं सत्यभामां च पार्श्वयोरिन्द्रमग्रतः॥११२॥
पृष्ठतः सुरभिञ्चेष्ट्वा केशरेष्वङ्गदेवताः।
अर्च्या हृदादिवर्मान्ता दिक्ष्वस्त्रं कोणकेषु च॥११३॥

पूर्वोक्तप्रकारेणाऽऽधारशक्त्यादिपीठमन्त्रान्तं सम्पूज्य देवमावाह्य अर्घ्यादिभिरुपचारैः पूजयेत् ।

आवरणपूजामाह—

रुक्मिणीमिति ।

गोविन्ददक्षिणवामयोः पार्श्वयोः कर्णिकायां रुक्मिणी सत्यभामा च संपूज्या देवाग्रे च इन्द्रं सम्पूज्य देवपृष्ठे तु सुरभिं पूर्वादिचतुर्दिक्कोणेषु केशरेषु हृदादिवर्मान्ता अङ्गदेवताः पूज्याः केशरेषु कोणेषु पुनरस्त्रमङ्गं पूजयेत् ।।११२-११३।।

पूर्वोक्त प्रकार से आधार शक्ति से लेकर पीठ पर्यन्त की अर्चना करके मध्य में श्रीकृष्ण की पूजा करे । श्रीकृष्ण के दक्षिण—वाम भाग में क्रमशः रुक्मिणी, सत्यभामा की, श्रीकृष्ण के आगे इन्द्र की, पीछे सुरभि की, दलों में अंग देवताओं की, तथा हृदय से लेकर कवच पर्यन्त अस्त्रों पूजा यथास्थान करे ।।११२।।११३।।

कालिन्दीति ।

कालिन्दीरोहणीनाग्नजित्याद्याः षट् च शक्तयः ।
दलेषु पीठकोणेषु वह्न्याद्यर्च्याश्च किङ्किणीः ।।११४।।
दामानि यष्टिवेणुश्च पुरः श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
अग्रतो वनमालां च दिक्ष्वष्टासु ततोऽर्चयेत् ।।११५।।
पाञ्चजन्यं गदां चक्रं वसुदेवं च देवकीम् ।
नन्दगोपं यशोदां च सगोगोपालगोपिकाः ।।११६।।

कालिन्द्याद्याः शक्तयो देवपत्न्यः पत्रेषु पूज्याः आदिपदेन सुनन्दा-मित्रविन्दासुलक्ष्मणापरिग्रहः आग्नेयादिपीठकोणेषु किङ्किणीदामादीन् पूजयेत् । तत्र श्रीकृष्णक्षुद्रघण्टिकाम् अग्निकोणे ।।

गोरक्षणार्थं दामानि नैर्ऋते गोप्रेरणार्थं लकुटं वायौ वंशम् ईशान-कोणे देवस्याऽग्रे श्रीवत्सकौस्तुभौ श्रीवत्सकौस्तुभाग्रतः वनमालां तदुपरि अष्टदिक्षु पाञ्चजन्यादय इति ।

पाञ्चजन्याय नमः सगोगोपालगोपिकाभ्यो नमः इत्यन्ताः पूज्याः आदिपदेन गदाचक्रवसुदेवदेवकीनन्दयशोदापरिग्रहः ।।११४-११६।।

कमलाकार पीठ के पत्रों में कालिन्दी, रोहिणी, नाग्नजिती सुनन्दा, और मित्रविन्दा, सुलक्ष्मणा छः शक्तियों की अर्चना करे । अग्नि कोण में किङ्किणी की, नैऋत्य कोण में दाम (रस्सी) वायव्य कोण में यष्टि की ईशान कोण में वंशी, श्रीकृष्ण के आगे श्रीवत्स, और कौस्तुभ की, इनके आगे वनमाला की पूजा की जानी चाहिए । आठ दिशाओं में पाञ्चजन्य, गदा, चक्र, वसुदेव देवकी नन्द, यशोदा, गोपालों के सहित गौ, गोपियों की पूजा करनी चाहिए ।।११४।।११५।।११६।।

इद्राद्या इति ।

इन्द्राद्याः कुमुदाद्याश्च विश्वक्सेनं तथोत्तरे ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ।
शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ।।११७।।

इन्द्राद्याः स्वस्वदिक्षु पूज्याः तदस्त्राणि वज्रादीन्यादिशब्दग्राह्याणि तथा कुमुदाद्याश्चाऽष्टगजाः तदुपरि स्वस्वदिक्षु पूज्या तद्बहिर्देवतोत्तरे विष्वक्सेनं पूजयेत् ।

कुमुदादीनां नामान्याह कुमुदा इति ।।११७।।

इन्द्र आदि दश दिक्पालों की पूजा उनकी दिशाओं में, कुमुद आदि अष्ट दिग्गजों की पूजा भी उनकी अपनी-अपनी दिशा में करनी चाहिए । कुमुद-कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन शङ्कुकर्ण सर्व नेत्र, सुमुख, सुप्रतिष्ठित, ये अष्ट दिग्गजों के नाम हैं । भगवान् की उत्तर दिशा में विश्वक्सेन पूज्य हैं ।।११७।।

पूजाफलमाह—

एकेति ।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं चेति गोष्ठगम् ।
श्री गोविन्दं यजेन्नित्यं गोभ्यश्च यवसप्रदः ।।११८।।
दीर्घजीवी निरातङ्को धेनुधान्यधनादिभिः ।
पुत्रैर्मित्रैरिहाऽढ्योऽन्ते प्रयाति परमं पदम् ।।११९।।

गोष्ठगं व्रजगं कृष्णं प्रत्यहम् एककालं द्विकालं त्रिकालं पूजयेत् । गोभ्यश्च ग्रासप्रदः सन्निह लोके चिरायुर्निर्भयो धेनुधान्यसुवर्णादिभिः पुत्रमित्रादिभिश्च सम्पन्नो भवति देहपातान्ते विष्णुलोकं च गच्छति ।।११८-११९।।

गोष्ठ में विराजमान होने वाले श्रीकृष्ण की प्रातः मध्याह्न सायं कालीन पूजा करनी चाहिए, और गौओं को गोग्रास देकर प्रसन्न करने पर साधक निरातङ्क होकर दीर्घ जीवी होता है, और गौ धन-धान्य पुत्र-पौत्रादि से परिपूर्ण होकर अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करता है ।।११८।।११९।।

मन्त्रान्तरमाह—

ऊद्ध्र्वेति ।

ऊद्ध्र्वदन्तयुतः शार्ङ्गी चक्री दक्षिणकर्णयुक् ।
मांसं नाथाय नत्यन्तो मूलमन्त्रोऽष्टवर्णकः ।।१२०।।

ऊद्ध्र्वदन्तः ओकारः तेन सहितः शार्ङ्गी गकारः चक्री ककारः दक्षिणकर्णयुक् उकारसहितः मांसो लकारः नाथायेति स्वरूपं नत्यन्तो नमः पदान्तः अयमष्टाक्षरो मूलमन्त्रसंज्ञकः ।।१२०।।

ऊर्ध्व दन्त युक्तः ओकार सहित, शार्ङ्गी—गकार, चक्री—ककार दीर्घ कर्ण युक्त—उकार सहित, मांस—लकार, नाथाय, नति—नमः अर्थात् "गोकुल नाथाय नमः" यह अष्टाक्षर गोपाल मन्त्र है ॥१२०॥

ऋष्यादिकमाह—

ऋषिरित्यादि ।

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्रीछन्दः कृष्णस्तु देवता ।
युग्मवर्णैः समस्तेन प्रोक्तं स्यादङ्गपञ्चकम् ।।१२१।।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता चशब्दोऽनुक्तसमुच्चये तेन बीजशक्त्यधिष्टातृदेवता दशाक्षरवत् तथा अस्य मन्त्रस्य मन्त्रोत्थवर्णानां चतुर्भिर्युग्मवर्णैश्चतुरङ्गं समग्रेण च मन्त्रेणाऽङ्गपञ्चकं ज्ञेयम् ।।१२१।।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण हैं। दो-दो अक्षरों के क्रम से चतुरङ्ग, समग्र मन्त्र से पांचवां अंग न्यास करना चाहिए ॥१२१॥

ध्यानमाह—

पञ्चवर्षमिति ।

पञ्चवर्षमतिदृप्तमङ्गणे धावमानमलकाकुलेक्षणम् ।
किङ्किणीवलयहारनूपुरैरञ्जितं स्मरत गोपबालकम् ।।१२२।।

गोपशिशुं नमत । कीदृशम् ? पञ्चवर्षवयस्थं तथा अतिबलिष्ठं तथा प्राङ्गणे धावमानं तथा चातिचञ्चलेक्षणं तथा किङ्किणीक्षुद्रघण्टिका वलयः कङ्कणः हारो मुक्ताहारः नूपुरस्तुलाकोटिरेतैरञ्जितं भूषितम् ।। १२२ ।।

जिनकी पांच वर्ष की अवस्था है, किन्तु अति बलवान् हैं, प्राङ्गण पर धावन करने वाले, और जिनके नेत्र कमल अति चञ्चल और सुन्दर हैं, किङ्किणी, वलय, मुक्ताहार नूपुरों से जो अति शोभित हैं, ऐसे गोपबाल कृष्ण का ध्यान करे ॥१२२॥

पुरश्चरणमाह –

ध्यात्वैवमिति ।

ध्यात्वैवं प्रजपेदष्टलक्षं तावत्सहस्रकम् ।
जुहुयात् ब्रह्मवृक्षोत्थसमिद्भिः पायसेन वा ।।१२३।।

एवं पूर्वोक्तं ध्यात्वा अष्टलक्षं मन्त्रं जपेत् । तदनु पलाशवृक्षसमिद्भिः परमान्नेन वाऽष्टसहस्रं जुहुयात् ।।१२३ ।

पूर्वोक्त गुण विशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उक्त गोपाल अष्टाक्षर मन्त्र का आठ लाख जप करके पलाश वृक्ष की समिधाओं से अथवा पायस से आठ हजार हवन करे ॥१२३॥

पूजाप्रकारमाह—

प्रासादे इति ।

प्रासादे स्थापितं कृष्णममुना नित्यशोऽर्चयेत् ।
द्वारपूजादि पीठार्चनान्तं कृत्वोक्तमार्गतः ।।१२४।।

धवलगृहे स्थापितं कृष्णम् अमुना वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रत्यहं पूजयेत् । द्वारपूजामारभ्य पीठपूजापर्यन्तं पूर्वोक्तमन्त्रवर्त्मना कुर्यात् ।।१२४।।

दिव्य मन्दिर में संस्थापित (आवाहित) श्रीकृष्ण की द्वार पूजा से लेकर पीठ पर्यन्त की पूजा के साथ पूजा करनी चाहिए ॥१२४॥

मध्य इति ।

मध्येऽर्चपद्धरिं दिक्षु विदिक्ष्वङ्गानि च क्रमात् ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः ।।१२५।।

रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा जाम्बवन्त्यपि ।
दिग्विदिक्ष्वर्चयेदेतान् इन्द्रवज्राद्विकान् बहिः ।।१२६।।

पद्ममध्ये हरिं पूजयेत् । पूर्वादिदिक्केशरेषु हृदाद्यङ्गचतुष्टयम्, आग्नेयादिविदिक्केशरेषु अस्त्रमङ्गं पूजयेत् ।

वासुदेव इति । पूर्वादिदिक्पत्रेषु वासुदेवादीन् पूजयेत् । आग्नेयादिविदिक्पत्रेषु रुक्मिण्याद्याः पूजयेत् । तद्बाह्ये स्वस्वदिक्षु इन्द्रादीन्, तदनु वज्रादीन् पूजयेदित्यर्थः ।।१२५-१२६।।

पद्माकार पीठ के मध्य में श्रीकृष्ण का पूजन करे। पूर्वादि दिव्य केसरों में हृदयादि चतुष्टय का, अग्नेयादि विदिशाओं में अस्त्र आदि का, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, जाम्बवती आदि का यथास्थान पूजन करे। अर्थात् पूर्वादि दिक् पत्रों में वासुवादि का अग्नेयादि में रुक्मिणी आदि का पूर्वादि दिशाओं के बाहर इन्द्रादि दिक्पालों को पूजे ।।१२५।।१२६।।

फलमाह -

योऽमुमिति ।

योऽमुं मन्त्रं जपेन्नित्यं विधिनेत्यर्चयेद्धरिम् ।
स सर्वसम्पत्संपूर्णो नित्यं शुद्धं पदं व्रजेत् ।।१२७।।

यः पुमान् उक्तविधिना हरिमर्चयेत् अमुं मन्त्रं जपेत् स सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सन्नित्यमविनाशि शुद्धम् अविद्या तत्कार्यरहितं पदं ब्रह्माख्यं प्राप्नोति ।।१२७।।

जो पुरुष उक्त मन्त्र को जपता है, और पूर्वोक्त विधि से भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करता है, वह सर्व सम्पत्ति से भरपूर होकर अन्त में भगद्धाम प्राप्त करता है ।।१२७।।

मन्त्रान्तरमाह—

तारेति ।

तारश्रीशक्तिमारान्ते श्रीकृष्णायपदं वदेत् ।
श्रीगोविन्दाय तस्योर्द्ध्वं श्रीगोपीजन इत्यपि ।।१२८।।
वल्लभाय ततस्त्रिः श्रीः सिद्धिगोपालको मनुः ।
माधवीमण्डपासीनौ गरुडेनाऽभिपालितौ ।।१२९।।
दिव्यक्रीडासुनिरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत् ।
चक्री वसुस्वरयुतः सर्ग्येकार्णो मनुर्मतः ।।१३०।।

तार प्रणवः श्रीः श्रीबीजं शक्तिबीजं कामबीजान्ते श्रीकृष्णायेति स्वरूपं तदनु श्रीगोविन्दायेति स्वरूपं तदनु श्रीगोपीजनवल्लभायेति स्वरूपं श्रीबीजत्रयमि त सिद्धिगोपालको मन्त्र उद्धृतः ।।

ध्यानमाह—

माधवीति ।

रामकृष्णौ स्मरन् जपेत् । कीदृशौ ? माधवीलतामण्डपसमुपस्थितौ तथा गरुडेन सेवितौ ।।

एकाक्षरादिगोपालमन्त्रान् दर्शयति—

चक्रीति ।

ककारो वसुस्वरः अष्टमस्वरः ॠकारस्तेनसहित इति लघुदीपिकाकारः । मुनिस्वरः सप्तस्वरस्तेनसहित इति रुद्रधरः सर्गी विसर्गसहितः इत्येकाक्षरो मन्त्रः ।।१२८-१३०।।

तार—ॐ कार, श्रीं—श्रीं, शक्ति—ह्रीं, मार—क्लीं, के अन्त में श्रीकृष्णाय, इसके बाद श्रीगोविन्दाय, इसके आगे श्रीगोपीजन, वल्लभाय, इसके बाद त्रिः श्री—श्रीं श्रीं श्रीं अर्थात्—"ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय श्रीगोविन्दाय श्रीगोपीजन वल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं" यह सिद्धि गोपाल मन्त्र है। माधवीलता से मण्डित मण्डप पर समासीन गरुड़ से संसेवित, नित्य क्रीड़ारत श्रीबलराम श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र को जपना चाहिए। चक्री—ककार, वसु स्वर युत—ॠसहित सर्गी—विसर्ग सहित, क्लः यह एकाक्षर मन्त्र है ।।१२८।।१२९।।१३०।।

कृष्णेति द्व्यक्षरः कामपूर्वस्त्र्यर्णः स एव तु ।
स एव चतुरर्णः स्यात् ङेऽन्तोऽन्यश्चतुरक्षरः ।।१३१।।
वक्ष्यते पञ्चवर्णः स्यात्कृष्णाय नम इत्यपि ।
कृष्णायेति स्मरद्वन्द्वमध्ये पञ्चाक्षरोऽपरः ।।१३२।।

कृष्णेति स्वरूपं द्व्यक्षरो मन्त्रः । स एवद्व्यक्षरः कामबीजपूर्वश्चेत् तदा त्र्यक्षरो मन्त्रो भवति—

स एव त्र्यक्षरः चतुर्थीविभक्त्यन्तश्चेत्तदा चतुरक्षरो मन्त्रः अन्यः चतुरक्षरः सद्यफलप्रदम् इत्यनेनाग्रे वक्ष्यते कृष्णाय नम इति पञ्चाक्षरः कृष्णायेति स्वरूपं स्मरद्वन्द्वकामबीजद्वयस्य मध्ये यदा भवति तदा अपरः पञ्चाक्षरो मन्त्रो भवति ।।१३१-१३२।।

"कृष्ण" यह दो अक्षर वाला मन्त्र है। इसके पूर्व काम बीज लगाने पर "क्लीं कृष्णः" तीन अक्षर वाला होता है। और कृष्ण पद में चतुर्थी विभक्ति का योग होने पर "क्लीं कृष्णाय" यह ही चतुरक्षर वाला मन्त्र है। "कृष्णाय नमः"

यह पांच अक्षर वाला है। कृष्ण के पूर्व क्लीं होने पर षडक्षर मन्त्र होता है। और दो काम बीज के मध्य में कृष्ण जब होगा, अर्थात् "क्लीं कृष्ण क्लीं" यह दूसरा पञ्चाक्षर मन्त्र होता है ॥१३१॥१३२॥

गोपालायाऽग्निजायान्तः षडक्षर उदाहृतः ।
कृष्णायकामबीजाढ्यो वह्निजायान्तकोऽपरः ॥१३३॥

षडक्षरः प्रागुदितः कृष्ण गोविन्दकौ पुनः ।
चतुर्थ्यन्तौ सप्तवर्णः सप्तार्णोऽन्यः पुरोदितः ॥१३४॥

गोपालायेति स्वरूपं वह्निजाया स्वाहेति पदद्वयेन षडक्षरः कथितः। कामबीजसहितकृष्णायेति स्वाहेति पदद्वयेन च षडक्षरो मन्त्र उद्घृतस्तथाऽपरः षडक्षरः प्रागेव कथितः स च क्लीं कृष्णाय नम इति। कृष्णगोविन्दकौ शब्दौ यदि चतुर्थ्यन्तौ भवतस्तदा सप्ताक्षरो मन्त्रोऽपरः सप्ताक्षरः प्रागुदितः स च गोवल्लभाय स्वाहेति ॥१३३-१३४॥

गोपालाय के आगे अग्निजाया—स्वाहा हो तो "गोपालाय स्वाहा" यह षडक्षर मन्त्र होता है। और कृष्णाय के पूर्व क्लीं हो, अन्त में वह्निजाया—स्वाहा हो तो "क्लीं कृष्णाय स्वाहा" यह षडक्षर मन्त्र होता है। "क्लीं कृष्णाय नमः" यह षडक्षर मन्त्र तो पहले ही बता चुके हैं। चतुर्थ्यन्त कृष्ण और गोविन्द पद से "कृष्णाय गोन्विदाय" यह सप्ताक्षर मन्त्र हो जाता है। एक सप्ताक्षर "गोवल्लभाय स्वाहा" तो पहले कह चुके हैं ॥१३३॥१३४॥

श्रीशक्तिमारः कृष्णाय मारः सप्ताक्षरोऽपरः ।
कृष्णगोविन्दकौ ङन्तौ स्मराढ्यावष्टवर्णकः ॥१३५॥

श्रीशक्तिमाराः श्रीभुवनेश्वरीमारबीजानि कृष्णायेति मारान्तोऽपरः सप्ताक्षरो मन्त्रः कृष्णगोविन्दशब्दौ ङन्तौ चतुर्थ्यन्तौ। कीदृशौ? कामबीजाढ्यौ इति वसुवर्णः अष्टाक्षरो मन्त्रः ॥१३५॥

श्री—श्रीं शक्ति—ह्रीं, मार—क्लीं, कृष्णाय मार—क्लीं, अर्थात् "श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं" यह और सप्ताक्षर मन्त्र है। चतुर्थ्यन्त कृष्ण गोविन्द शब्द के पूर्व काम बीज होने पर अर्थात् "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय" यह अष्टाक्षर मन्त्र है ॥१३५॥

दधीति।

दधिभक्षणङेवह्निजायाभिरपरोऽष्टकः ।
सुप्रसन्नात्मने प्रोक्त्वा मम इत्यपरोऽष्टकः ॥१३६॥

चतुर्थ्यन्तो दधिभक्षणशब्दः वह्निजाया स्वाहा एतैर्वर्णैरपरोऽष्टाक्षरो मन्त्रः सुप्रसन्नात्मने स्वरूपमुक्त्वा नम इति वदेत् इत्यपरोऽष्टाक्षरो मन्त्रः ॥१३६॥

"दधियक्षणाय स्वाहा", "सुप्रसन्नात्मने नमः" ये-दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं ॥१३६॥

प्राक् प्रोक्तो मूलमन्त्रश्च नवार्णः स्मरसंयुतः ।
कृष्णगोविन्दकौ ङन्तौ नमोऽन्तोऽन्यो नवार्णकः ॥१३७॥

प्रागुक्तश्चाष्टाक्षरो मूलमन्त्रः स्मरसंयुतः कामबीजयुक्तः सन् नवाक्षरो भवति, स च क्लीं गोकुलनाथाय नम इति, कृष्णगोविन्दकौ ङन्तौ चतुर्थ्यन्तौ स्मरसंयुतौ यदि भवतस्तदा नवाक्षरो मन्त्रो भवति, यद्येतावेव नमोन्तकौ नमः शब्दान्तौ भवतस्तदा परोनवाक्षरो मन्त्रः ॥१३७॥

पहले बताया गया अष्टाक्षर "गोकुलनाथाय नमः" इस मन्त्र के आदि में क्लीं जोड़ा जाए तो "क्लीं गोकुलनाथाय नमः" यह नवाक्षर मन्त्र होता है। चतुर्थी विभक्ति युक्त कृष्ण गोविन्द पद के पूर्व काम बीज होने पर अर्थात् "क्लीं कृष्णाय क्लीं गोविन्दाय" यह नवाक्षर हो जाता है। तथा चतुर्थ्यन्त कृष्ण गोविन्द के आगे नमः हो तो भी नवाक्षर ही मन्त्र होता है, अर्थात् "कृष्णाय गोविन्दाय नमः" यह मन्त्र है ॥१३७॥

क्लीँग्लौँक्लीँश्यामलाङ्गाय नमस्तु स्याद्दशार्णकः ।
शिरोन्तो बालवपुषे क्लीँ कृष्णाय स्मृतो बुधैः ।
एकादशाक्षरो मन्त्र एतेषां नारदो मुनिः ॥१३८॥

उक्तं छन्दस्तु गायत्री देवता कृष्ण ईरितः ।
कलाषड्दीर्घकैरङ्गमथाऽमुं चिन्तयेद्धरिम् ॥१३९॥

क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गय नम इति दशवर्णको मन्त्रः शिरोन्तः स्वाहान्तः बालवपुषे इति पदं क्लीं कृष्णायेति एकादशाक्षरो मन्त्रः बुधैः स्मृतः ॥

उक्तानामृष्यादिकमाह एतेषाम् एकाक्षरमारभ्यैकादशाक्षरपर्यन्तानां द्वाविंशति मन्त्राणाम् ऋषिर्नारदः गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता।

अङ्गान्याह क्लेति। ककारलकाराभ्यां षड्दीर्घकैर्नपुंसकरहितषड्दीर्घस्वरैः क्लाँक्लींक्लूँक्लैँक्लौँक्लः एभिरित्यर्थः ।।१३८-१३९।।

"क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः" यह दशाक्षर मन्त्र है। "क्लीं कृष्णाय बाल वपुषे स्वाहा" यह एकादशाक्षर मन्त्र है। इन पूर्वोक्त सभी मन्त्रों के ऋषि नारद, छन्द गायत्री, देवता श्रीकृष्ण है। और क्लां क्लीं क्लू क्लैं क्लौं क्लः इन छः दीर्घकलाओं से न्यास करना चाहिए, श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते रहना चाहिए ।।१३८।।१३९।।

ध्यानमाह—

अव्यादिति।

अव्याद्व्याकोषनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः।
दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधदतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
गोगोपीगोपवीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ।।१४०।।

वो युष्मान् चिरं बहुकालं मुकुन्दोऽव्यात् रक्षतु। कीदृशः? व्याकोशं प्रफुल्लं यल्लीलाम्बुजं तद्वद्दीप्तिर्यस्य स तथा अरुणं रक्तं यदम्भोजं पद्मं तद्वन्नेत्रे यस्त स तथा पद्मोपविष्टः तथा बालः पाञ्चवार्षिकः तथा जङ्घापादयोः संधिः कटीरस्थलं कटी उभयोर्घटिता सम्बद्धा रणन्ती शब्दायमाना किङ्किणीक्षुद्रघण्टिका यस्य स तथा हस्ताभ्यां हैयङ्गवीनं सद्यो जातं घृतं सुपक्वं पायसं दधत् तथा गोगोपाङ्गनागोपालवेष्टितः तथा रुरुः व्याघ्रस्तस्य नखेन विलसन्ती शोभमाना कण्ठभूषाऽलंकारो यस्य स तथा ।।१४०।।

जिनकी प्रफुल्ल नीलकमल की सी कान्ति है, लालकमल के समान सुन्दर जिनके नेत्र हैं, जो कमलासन पर विराजमान है, जो कटिस्थल पर संघटित भुनभुनाने वाली किङ्किणी से शोभित है, जो दोनों करकमलों में नवनीत और अतिमधुर पायस लिए हुए हैं, जो गौ-गोप-गोपियों से परिवेष्टित हैं, रक्षा के लिए धारण किए जाने वाला व्याघ्र नखरूपी भूषण से जिनका कण्ठस्थल विभूषित है ऐसे विश्वबन्द्य भगवान् बालमुकुन्द आपकी रक्षा करे ।।१४०।।

एतेषां पुरश्चरणमाह—

ध्यात्वैवमिति।

ध्यात्वैवमेकमेतेषां लक्षं जप्यान्मनुं ततः।
सर्पिःसितोपलोपेतैः पायसैरयुतं हुनेत् ।।१४१।।

यथोक्त ध्यानं कृत्वा एतेषां मध्ये एकं मन्त्रं लक्षं जपेत्। तदनु घृतखण्डसारयुक्तैः परमान्नैर्दशसहस्रं जुहुयात् ।।१४१।।

इस प्रकार भगवान् बालमुकुन्द का ध्यान कर उपर्युक्त मन्त्रों में किसी एक का एक लाख जप, घृत शर्करा युक्त पायस से दस हजार हवन करे ।।१४१।।

तर्पयेत्तावदन्येषां मनूनां हुतसंख्यया।
तर्पणं विहितं नित्यं योऽर्चयेत्सुसमाहितः ।।१४२।।
वह्न्यादीशान्तमङ्गानि हृदादिकवचान्तकम्।
अर्चयेत्पुरतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु बहिः पुनः ।।१४३।।
इन्द्रवज्रादयः पूज्याः सपर्यैषा समीरिता।
इत्येकमेषां मन्त्राणां भजेद्यो मनुवित्तमः ।।१४४।।
करप्रचेयाः सर्वार्थास्तस्याऽसौ पूज्यतेऽमरैः।
सद्यः फलप्रदं मन्त्रं वक्ष्येऽन्यं चतुरक्षरम् ।।१४५।।
स प्रोक्तो मारयुग्मान्तरस्थकृष्णपदेन तु।
ऋष्याद्यमङ्गषट्कं च प्रागुक्तं प्रोक्तमस्य तु ।।१४६।।

तदनु तावद्दशसहस्रं तर्पयेत्। एवं प्रकारेणैकस्मिन्मन्त्रे सिद्धे जाते तदन्येषां सकृत्पुरश्चरणानाम् एकविंशति मन्त्राणां जपहोमसख्यया बिनैव हुतायुतेन तर्पणमेव पुरश्चरणं विहितं करणीयम्। एतेषां मन्त्राणां होमसंख्यया अयुतेनैव तर्पणं विहितम्।

पूजामाह—नित्यमिति नित्यं सर्वदा सुसमाहितः संयतः सन् पूजयेत्। वह्न्यादीशान्तम् आग्नेयकोणमारभ्य ईशानकोणपर्यन्तहृदादिकवचपर्यन्तमङ्गचतुष्टयं पूजयेत् पुरतोऽग्रे नेत्रमस्त्रं पूजयेत् ।।

पूर्वादिचतुर्दिक्षु इन्द्रादीन् पूजयेत्। तदनु वज्रादीनिति उपसंहरति। एषां मन्त्राणां सपर्या पूजा कथिता ।।

फलमाह—इत्येकमिति। अमुना प्रकारेण यः साधकोत्तम एषां मन्त्राणां मध्ये एकं मन्त्रं भजेत् उपासीत तस्य सर्वे पुरुषार्था हस्तप्राप्याः देवैश्चासौ पूज्यते ।।

मन्त्रान्तरमाह सद्य इति । तात्कालिकफलदायकमपरं चतुरक्षर-मन्त्रं वक्ष्ये सचतुरक्षरः कामबीजद्वयमध्यस्थेन कृष्णपदेन कथितः ॥

ऋष्यादिकमस्य ऋषिश्छन्दो दैवतम् अङ्गषट्कं च प्रागुक्तं पूर्वमन्त्र-समूहे कथितं बोद्धव्यम् ॥१४२-१४६॥

और मन्त्रों की हवन संख्या के अनुरूप पूर्वोक्त मन्त्रों में से किसी एक द्वारा दस हजार तर्पण करना चाहिए। इस प्रकार से एक मन्त्र के सिद्ध होने पर और सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन मन्त्रों के हवन के स्थान पर तर्पण करना चाहिए, उन इक्कीस मन्त्रों में से किसी एक के एक लाख जप करके दस हजार से हवन करने पर वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, उसके सिद्ध होने पर और मन्त्रों के जप हवन की आवश्यकता नहीं होती केवल दस हजार तर्पण से ही सब सिद्ध होकर फलदायी होते हैं। उनका पुरश्चरण ही तर्पण है।

अग्निकोण से ईशानकोण तक हृदय से कवच पर्यंन्त के अंगों का पूजन करना चाहिए। अग्रभाग में नेत्र और अस्त्रों की पूजा करे। पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि देव, वज्रादि आयुधों की यथादिक् अर्चना करनी चाहिए।

इस प्रकार उपर्युक्त इक्कीस मन्त्रों में से एक का अनुष्ठान करने पर सम्पूर्ण सिद्धियां साधक के अधीन हो जाती हैं। वह देवताओं से भी पूजित होता है।

इन पूर्वोक्त सभी मन्त्रों में सद्यः फल देने वाला चतुरक्षर मन्त्र है, जो पहले भी कह चुके हैं। फिर भी उसको हम यहां उद्धृत करते हैं, दो काम बीजों के मध्य में कृष्ण हो। अर्थात "क्लीं कृष्ण क्लीं" यह चतुरक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्वोक्त प्रकार के हैं। अर्थात् इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द, गायत्री देवता श्रीकृष्ण हैं। षट् कला "क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः" इनसे न्यास करना चाहिए ॥१४२॥१४३॥१४४॥१४५॥१४६॥

ध्यानमाह —

श्रीमदिति ।

श्रीमत्कल्पद्रुमूलोद्गतकमललसत्कर्णिकासंस्थितोय-
स्तच्छाखालम्बिपद्मोदरविगलदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः ।
हेमाभः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन् वासुदेवः
पायाद्वः पायसादोऽनवरतनवनीतामृताशी वशी सः ॥१४७॥

वासुदेवः वो युष्मान् पायात् । कीदृशः ? यः श्रीयुक्तकल्पवृक्षमूलो-द्गतपद्मे शोभमाना या कर्णिका तत्रोपविष्टः, तथा कल्पद्रुमशाखालम्बि

यत् पद्मं तस्योदरं ततो विगलन्ति प्रसरन्ति यानि असंख्यातानि रत्नानि तैरभिषिक्तः तथा सुवर्णगौरः तथा स्वकान्तिभिः समस्तं त्रैलोक्यं भासयन् क्षीराब्धाशी तथा अनवरतमनुवेलं नूतनं नवनीतमेवामृतं तदश्नातीति ॥१४७॥

जो अनेक शोभा सम्पन्न कल्पवृक्ष के मूलस्थल पर उद्भासित कमलाकार दिव्य सिंहासन की कर्णिका में विराजमान हैं, जो कल्पवृक्षों की शाखाओं में संलग्न कमल लता के अन्तस्तल से बरसने वाले असंख्य रत्नों की धाराओं से अभिषिक्त हैं, सुवर्ण के समान जिनकी कान्ति है, जो अपनी दिव्य प्रभा से तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं, जो अतिस्वादु पायस भोजन करते हैं, और निरन्तर नवनीत रूपी अमृत को सेवन करने वाले वासुदेव श्रीकृष्ण आपकी रक्षा करें ॥१४७॥

पुरश्चरणमाह —

ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं चतुष्कं जुहुयात्ततः ।
त्रिमध्वक्तैर्बिल्वफलैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥१४८॥

यथोक्तं ध्यानं कृत्वा लक्षचतुष्टयं जपेत् । तदनु घृतमधुशर्करायुतै-र्बिल्वफलैश्चत्वारिंशत्सहस्रं जुहुयात् ॥१४८॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए चतुरक्षर मन्त्र का चार लाख जप करके घृत मधु शर्करा सम्वलित बिल्वफलों से चालीस हजार हवन करे ॥१४८॥

पूजामाह —

अङ्गैरिति ।

अङ्गैर्निधिभिरिन्द्राद्यैर्वज्राद्यैरर्चनोदिता ।
तर्पयेद्दिनशः कृष्णं स्वादुत्रयधिया जलैः ॥१४९॥

षडङ्गैः निधिभिरिन्द्राद्यष्टनिधिभिरिन्द्राद्यैर्वज्राद्यैश्चाऽनीलार्चना पूजा कथिता ।

तर्पणमाह – तर्पयेदिति । प्रतिदिनं स्वादुत्रयधिया घृतमधुशर्करा-बुद्धया जलैः कृष्णं पूजयेत् ॥ ·४९॥

अपने-अपने अङ्गों के सहित अष्टनिधि, इन्द्रादि दश दिक्पाल उनके आयुधों की पूर्वोक्त प्रकार से अर्चना करे। और प्रतिदिन घृत मधु शर्करा बुद्धि से जल द्वारा ही श्रीकृष्ण का तर्पण करे ॥१४९॥

मन्त्रान्तरमाह—

मारयोरिति।

मारयोरस्य मांसाधोरक्तं चेदपरो मनुः।
षडङ्गान्यस्य कलषट्दीर्घैर्मन्त्रशिखामणेः ॥१५०॥

अस्य पूर्वोक्तचतुरक्षरमन्त्रस्य मारयोराद्यन्तकामबीजयोर्मांसाधः लकारस्याधस्तात् चेद्यदि रक्तं रेफो भवति तदाऽपरश्चतुरक्षरः क्लीं कृष्ण क्लीम् इति मन्त्रः। अस्य मन्त्रशिखामणे मन्त्रशिरो रत्नस्य कल-षट्दीर्घैः कला ईकारसहितकामबीजेन षट्दीर्घैः कलसहितैर्नपुंसकरहितैः षाट्दीर्घस्वरैः षडङ्गानि कुर्यादिति शेषः ॥१५०॥

पूर्वोक्त चतुरक्षर मन्त्र क्लीं कृष्ण क्लीं के लकार के नीचे एक रेफ लगाने पर लकार रकार मिश्रित उच्चारण युक्त "क्लीं कृष्ण क्लीं" यह दूसरा चतुरक्षर मन्त्र होता है। यह मन्त्र शिखामणि है। इसका षडङ्ग न्यास षटकलाओं से करना चाहिए ॥१५०॥

ध्यानमाह—

आरक्तेति।

आरक्तोद्यानकल्पद्रुमशिखरलसत्स्वर्णदोलाधिरुढं
गोपाभ्यां प्रेङ्ख्यमानं विकसितनवबन्धूकसिन्दूरभासम्।
बालं नीलालकान्तं कटितटविलुठत् क्षुद्रघण्टाघटाढ्यं
वन्दे शार्दूलकामाङ्कुशललितगलाकल्पदीप्तं मुकुन्दम् ।१५१।

मुकुन्दं वन्दे, कीदृशम्? आरक्तमरुणं यदुद्यानं तत्र यः कल्पवृक्ष-स्तस्य शिखरमग्रं तत्र लसन्ती या शोभमाना सुवर्णमयी दोला तत्रोपविष्टं तथा गोपाङ्गनाभ्यां प्रेख्यमानं दोलायमानं विकसितं प्रफुल्लं नवीनं यद्बन्धुजीवपुष्पं सिन्दूरं तयोरिव भावं यस्य तं तथा बालं शिशुं तथा कृष्णकेशं तथा कटितटे इतस्ततो गच्छन्ती या क्षुद्रघण्टिका समूहस्तेन सम्बद्धं तथा शार्दूलस्य व्याघ्रस्य घंटाक्षुद्रघण्टिका कामाङ्कुशेन शोभमानं यत्कण्ठाभरणं तेन शोभमानम् ॥१५१॥

जो लाल-लाल प्रतीत होने वाले उद्यान में विद्यमान कल्पद्रुम की उच्च शाखाओं में लम्बित स्वर्ण दोला (झूला) पर विराजमान हैं, जिस झूला का दोलन दो गोपों के द्वारा हो रहा हो, प्रफुल्ल बन्धु पुष्प तथा सिन्दूर के समान जिनकी कान्ति है, नीले-नीले घुंघराले जिनके केश हैं, जिनके कटितट पर झुनझुनाने वाली क्षुद्र घण्टिकाएं शोभित हैं व्याघ्र नख जिस तन्तु पर पाया गया है, उससे प्रदीप्त है ग्रीवा जिनकी, ऐसे परम सुन्दर भगवान् बाल मुकुन्द की वन्दना करता हूँ ॥१५१॥

एवं ध्यात्वेति।

ध्यात्वैवं पूर्वक्लृप्त्यैनं जप्त्वा रक्तोत्पलैर्नवैः।
मधुत्रयप्लुतैर्हुत्वाऽप्यर्चयेत् पूर्ववद्धरिम् ॥१५२॥

पूर्वोक्तं मुकुन्दं ध्यात्वा एनं मन्त्रं पूर्वोक्तमन्त्रजपसंख्यमेव जप्त्वा रक्तपद्मैर्नूतनैर्घृतमधुशर्करायुतैः पूर्वोक्तसंख्यमेव हुत्वा पूर्वोक्तप्रकारेण हरिं पूजयेत् ॥१५२॥

पूर्वोक्त स्वरूप विशिष्ट बालमुकुन्द भगवान् का ध्यान करके घृत मधु शर्करा युक्त नवीन लालकमलों से हवन कर श्रीकृष्ण की पूजा करे ॥१५२॥

आरादुक्तं मन्त्रयोः प्रयोगं दर्शयति—

मधुरेति।

मधुरत्रयसंयुक्तामारक्तां शालिमञ्जरीम्।
जुहुयान्नित्यशोष्टोर्द्ध्वं शतमेकेन मन्त्रयोः ॥१५३॥

घृतमधुशर्करामिश्रितां लोहितां हैमन्तिकधान्यमञ्जरीम् अष्टोत्तर-शतमनयोर्मन्त्रयोर्मध्ये एकेन मन्त्रेण प्रत्येकं प्रत्यहं यो जुहुयात् तस्य पुंसः मण्डलतः एकोनपञ्चाशद्दिनादर्वाक् षड्विंशतिदिनादिति लघुदीपिका-कारः। पञ्चचत्वारिंशद्दिनानन्तरमिति रुद्रधरः। महती पृथिवी धान्या-दिसमूहव्याप्ता भवति तथा तद्गृहं शालिधान्यसमूहव्याप्तं शीघ्रं भवति ॥१५३॥

हेमन्त ऋतु में होने वाले लाल-लाल, शाली धान जो त्रिमधुयुक्त हो उसकी मञ्जरियों से प्रतिदिन १०८ बार चतुरक्षर मन्त्रों से हवन करे ॥१५३॥

तस्य मण्डलतः पृथ्वी पृथ्वीसस्यकुलाकुला।
स्याच्छालिपुञ्जपूर्णं च तद्वेश्माऽऽशु प्रजायते ॥१५४॥

उपर्युक्त प्रयोग करने वाले साधक को ४९ दिनों में ही यह विशाल पृथिवी सस्यश्यामला होगी, और साधक का घर धन धान्य से पूर्ण होगा ।।१५४।।

फलमाह—

यस्त्विति ।

यस्त्वेतयोर्नियतमन्यतरं भजेत
मन्वोर्जपार्चनहुतादिभिराप्तभक्तिः ।
श्रीमान्स मन्मथ इव प्रमदासु वाग्मी
भूयात्तनोर्विपदि तच्च महोऽच्युताख्यम् ।।१५५।।

इति श्रीकेशवभट्टाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
सप्तमः पटलः ।।७।।

यः पुमानेतयोरेकं नियतं नियतो भजेत साधयेत् । कैः ? जपपूजाहोमादिभिः । कीदृशः ? प्राप्तभक्तिः स लक्ष्मीयुक्तः स्त्रीषु कामदेववत् उत्कृष्टवचनभाक् भवति । तनोर्विपदि शरीरपातानन्तरं विष्णुलोकं च गच्छति ।।१५५।।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकायांः
विवरणे सप्तमः पटलः ।। ७ ।।

उपर्युक्त दो में एक मन्त्र का जप पूजन आदि से सिद्ध करने से साधक वाग्मी प्रमदाओं के मध्य में कामदेव समान सुन्दर लगने वाला होगा । अन्त में उसे भगवद्धाम की प्राप्ति भी होगी ।।१५५।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत ''दीपिकार्थ प्रकाशिका''
नामक हिन्दी व्याख्या का सप्तम पटल पूर्ण हुआ ।। ७ ।।

अष्टमं पटलम्

अथोच्यते वश्यविधिः पुरोक्त-
दशार्णतोऽष्टादशवर्णतश्च ।
स्मृत्यैव यो सर्वजगत् प्रियत्वं
मनू मनुज्ञस्य सदा विधत्तः ।।१।।

अथाऽनन्तरं वश्यकरः प्रयोगः कथ्यते—पूर्वोक्तदशाक्षरस्याऽष्टादशाक्षरस्य च यौ मन्त्रौ स्मरणमात्रेण साधकस्य सर्वजनवल्लभत्वं सर्वदा कुरुतः ।।१।।

अब यहां दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर मन्त्रों से होनी वाली वशीकरण विधि बताई जाती है । दोनों मन्त्रों के स्मरण मात्र से मन्त्रज्ञ साधक सर्वजन प्रिय होता है ।।१।।

फुल्लैरिति ।

फुल्लैर्वन्यप्रसूनैरमुमरुणतरैरर्चयित्वा दिनादौ
नित्यं नित्यक्रियायां रतमथदिनमध्योक्तक्लृप्त्या मुकुन्दम् ।
अष्टोपेतं सहस्रं दशलिपिमनुवर्यं जपेद् यः स मन्त्री
कुर्याद्वश्यान्यवश्यं मुखरमुखभुवां मण्डलान् मण्डलानि ।।२।।

पुष्पितैः वनोद्भवपुष्पैरतिलोहितममुं मुकुन्दं नित्यं सर्वदा नित्यकर्मानुष्ठाननिष्ठं दिनादौ प्रतिः प्रत्यहं मध्याह्नोक्त पूजाप्रकारेण पूजयित्वा यो मन्त्री दशाक्षरं मन्त्रश्रेष्ठम् अष्टाधिकं सहस्रं जपेत् । मण्डलादेव पञ्चाशद्दिनादर्वाक्मुखरमुखभुवां विद्वद्ब्राह्मणानां मण्डलानि समूहानवश्यं वश्यानि कुर्याद्विशयतीत्यर्थः ।।२।।

प्रतिदिन प्रातःकाल नित्य क्रिया में अनुरत साधक, मध्याह्नोक्त पूजा विधि से लाल-लाल प्रफुल्ल सुगन्धित वन्य पुष्पों से भगवान् मुकुन्द की अर्चना करके अष्टादशाक्षर मन्त्र को १००८ वार जपे तो उनचास दिनों में ही विद्वान् ब्राह्मणों के समूह को अवश्य अपने वश में कर सकता है ।।२।।

क्षत्रियवैश्यशूद्रस्याऽपि प्रयोगत्रयं दर्शयति—

जातीति ।

जातीप्रसूनैर्वरगोपवेषं
क्रीडारतं रक्तहयारिपुष्पैः ।
नीलोत्पलैर्गीतिरतं पुरोव-
दिष्ट्वा नृपादीन् वशयेत् क्रमेण ।।३।।

वरगोपवेषं श्रेष्ठगोपरूपधरं श्रीकृष्णं विचिन्त्य जातीपुष्पैः पूर्वोक्त-प्रकारेण पूजयित्वा दशाक्षरमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जप्त्वा क्षत्रियं वशयेत् क्रीडासक्तं ध्यात्वा रक्तकरवीरपुष्पैः पूर्वोक्तप्रकारेण पूजयित्वा दशाक्षर-मन्त्रमष्टोत्तरं सहस्रं जप्त्वा वैश्यं वशयेत् गीतिरतं गीतासक्तं ध्यात्वा नीलोत्पलैः पूर्वोक्तप्रकारेण पूजयित्वा दशाक्षरमन्त्रमष्टोत्तर सहस्रं जप्त्वा शूद्रं वशयेत् इत्यनेन प्रकारेण नृपादीन् वशयेदित्यर्थः ।।३।।

सुन्दर गोपवेश धारी श्रीकृष्ण का जाती पुष्पों से पूजन करके दशाक्षर अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र को १००८ वार जपकर क्षत्रिय जाति को, वश में किया जाता है। क्रीडासक्त श्रीकृष्ण का लाल करवीर पुष्पों से पूजन कर उक्त संख्या का जप करने पर वैश्य जाति वश में हो जाती है। गीति परायण श्रीकृष्ण का नीलकमलों से पूजन कर उक्त संख्यात्मक जप करने से शूद्र वश में आता है ।।३।।

प्रयोगान्तरमाह—
सितेति ।

सितकुसुमसमेतैस्तण्डुलैराज्यसिक्तै-
र्दशशततमथ हुत्वा नित्यशः सप्तरात्रम् ।
कचभुवि च ललाटे भस्म तद्धारयन्ना
वशयति मनुजस्त्रीं साऽपि नॄं स्तद्वदेव ।।४।।

श्वेतपुष्पसहितैः श्वेततण्डुलैर्घृतमिश्रितदशाक्षरमन्त्रेण दशशतं हुत्वा नित्यशः सप्तदिनपर्यन्तं तदनु तद्धोमभस्म कचभुवि शिरसि ललाटे च धारयन् ना पुरुषः मनुजस्त्रीं मनुष्यनारीमिति रुद्रधरः । तरुणीं स्त्रियं वशयतीति त्रिपाठिनः । साऽपि स्त्री अनेन प्रयोगेण नॄन् वशयेदित्यर्थः ।।४।।

नित्य सात रात्रि पर्यन्त सफेद सुगन्धित पुष्पों, तथा घृत प्लुत तण्डुलों से एक सहस्र हवन करके उसकी भस्म को सिर या ललाट पर धारण करने से पुरुष स्त्री को वश कर सकता है, स्त्री पुरुष को वश में कर सकती है ।।४।।

प्रयोगान्तरमाह—
ताम्बूलेति ।

ताम्बूलवस्त्रकुसुमाञ्जनचन्दनाद्यं
जप्तं सहस्रत्रयमन्यतरेण मन्वोः ।
यस्मै ददाति मनुवित् स जनोऽस्य मङ्क्षु
स्यात् किङ्करो न खलु तत्र विचारणीयम् ।।५।।

ताम्बूलं वस्त्रं पुष्पं कज्जलं चन्दन च एतद्यदन्यद्वस्तु मन्वोर्दशाष्टा-दशाक्षरयोरन्यतरेणैकेन सहस्रत्रयं संजप्तं यस्मै जनाय ददाति साधकः स नरोऽस्य साधकस्य मङ्क्षु शीघ्रं वश्यो भवति । नाऽत्र संशय इत्यर्थः ।।५।।

दशाक्षर अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र के तीन हजार संख्यात्मक जप से अभि-मन्त्रित पान, वस्त्र, फूल, कज्जल, चन्दन आदि लक्ष्य के अनुसार जिस किसी भी व्यक्ति को दे दे तो वह निश्चय ही उसके वश में हो जाता है, इसमें सन्देह की गुञ्जाइश नहीं है ।।५।।

प्रयोगान्तरमाह—
राजद्वारे इति ।

राजद्वारे व्यवहारे सभायां
द्यूते वादे चाऽष्टयुक्तं शतं च ।
जप्त्वा वाचं प्रथमामीरयेद्यो
वर्त्तेताऽसौ तत्र तत्रोपविष्टान् ।।६।।

राजसमीपे क्रयविक्रये सदसि अक्षक्रीडादौ वादे च यो मन्वोरेक-मष्टोत्तरशतं जप्त्वा प्रथमत एव यां वाचं वदति तयैव वाचा तत्र वादादौ उपविष्टानसौ वर्तेत तज्जयी भवतीत्यर्थः ।।६।।

राजभवन, व्यवहार, व्यापार, जनसभा, जुआ (द्यूत) वाद विवाद के अव-सर पर दो में एक मन्त्र को अष्टोत्तर शत जप कर जो भी वाणी बोलेगा, उस वाणी से सभी प्रभावित हो जाते हैं। अर्थात् साधक सबको वश में कर विजयी होता है ।।६।।

प्रयोगान्तरमाह—
आसीनमिति ।

आसीनं मुरमथनं कदम्बमूले
गायन्तं मधुरतरं व्रजाङ्गनाभिः ।
स्मृत्वाऽग्नौ मधुमिलितैर्मयूरकेध्मै-
र्हुत्वा ऽसौ वशयति मन्त्रवित्त्रिलोकीम् ॥७॥

कदम्बमूले उपविष्टं मुरमथनं कृष्णं गोपीभिर्मधुरतरं गायन्तं ध्यात्वा वह्नौ मधुस्न्तैर्मयूरकेध्मैरपामार्गसमिद्भिर्हुत्वा असौ साधको लोकत्रयं वशयति ॥७॥

जो कदम्ब वृक्ष के मूल पर विराजमान हैं, गोपाङ्गनाओं के साथ मधुर गान करते हुए मुरमथन श्रीकृष्ण का ध्यान करके मधुमिलित अपामार्ग की लकडियों से अष्टोत्तर सहस्र हवन करने से तीनों लोक साधक के वश में हो सकते हैं ॥७॥

प्रयोगान्तरमाह—

रासेति ।

रासमध्यगतमच्युतं स्मरन्
यो जपेद्दशशतं दशाक्षरम् ।
नित्यशो झटिति मासतो नरो-
वाञ्छितामभिवहेत्स कन्यकाम् ॥८॥

यो नरः पूर्वोक्तरासमध्यगतं कृष्णं ध्यायन् दशाक्षरं मन्त्रं प्रत्यहं दशशतं जपेत् स मासैकेन शीघ्रमेव वाञ्छितां कन्यां प्राप्नोति ॥८॥

जो साधक रासविहार करने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए एक मास पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार दशाक्षर मन्त्र को जपे तो वह मनोवाञ्छित कन्या विवाह के लिए प्राप्त कर सकता है ॥८॥

प्रयोगान्तरमाह—

तुङ्गेति ।

तुङ्गकुन्दमधिरुढमच्युतं
या विचिन्त्य दिनशः सहस्रकम् ।
साऽष्टकं जपति सा हि मण्डला-
द्वाञ्छितं वरमुपैति कन्यका ॥९॥

उच्चकदम्बवृक्षस्थं विचिन्त्य प्रत्यहम् अष्टोत्तरसहस्रं दशाक्षरं या कन्यका जपति सा हि निश्चयेन मण्डलादेकोनपञ्चाशद्दिनादर्वाक् वाञ्छितवरं प्राप्नोति ॥९॥

जो कन्या उच्च कदम्ब वृक्ष पर बैठे हुए श्रीकृष्ण का स्मरण करती हुई प्रतिदिन अष्टोत्तर सहस्र जप करे तो उनचास दिनों में ही मनोवाञ्छित वर प्राप्त कर सकती है ॥९॥

समानफलं प्रयोगद्वयमाह—

नृत्यन्तमिति ।

नृत्यन्तं व्रजसुन्दरीजनकराम्भोजानि संगृह्य तं
ध्यात्वाऽष्टादशवर्णकं मधुवरं लक्षं जपन्मन्त्रवित् ।
लाजानामथवा मधुप्लुततरैर्हुत्वा ऽयुतं चूर्णकै-
रुद्वोढुं प्रजपेच्च तावदचिरादाकाङ्क्षितां कन्यकाम् ॥१०॥

अचिरात् शीघ्रवाञ्छितां कन्यां परिणेतुं मन्त्रवित्साधकः गोपयुवतीहस्तपद्मानि संगृह्य धृत्वा नृत्यन्तं तं प्रसिद्धं श्रीकृष्णं ध्यात्वा लक्षमात्रपरिमितमष्टादशाक्षरं मन्त्रश्रेष्ठं जपेत् अथवा लाजानां चूर्णैर्मधुद्रुततरैर्घृतमधुशर्कराप्रचुरान्वितैः मधुना द्रवीभूतैरितिरुद्रधरः । दशसहस्रं हुत्वा तावदेव संख्यं जपेदित्यर्थः ॥१०॥

शीघ्र ही अभिवाञ्छित कन्या की प्राप्ति के लिए व्रजाङ्गनाओं के करकमलों को पकड़कर नृत्य करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके अष्टादशाक्षर मन्त्र को एक लाख जपकर घृत मधु शर्करा सम्वलित लाजा (खील) के चूर्णों से दश हजार हवन करना चाहिए ॥१०॥

प्रयोगान्तरमाह—

अष्टादशेति ।

अष्टादशाक्षरेण द्विजतरुजैस्त्रिमधवक्तैरयुतम् ।
कुशैस्तिलैर्वा सतण्डुलैर्वशयितुं द्विजान् जुहुयात् ॥११॥

द्विजान् ब्राह्मणान् वशयितुमष्टादशाक्षरमन्त्रेण द्विजतरुजैः पलाशवृक्षसमुद्भवैः समिद्भिस्त्रिमधुराक्तैः घृतमधुशर्करामिश्रितैरयुतं दशसहस्रं जुहुयात् अथवा त्रिमधवक्तैः कुशैस्तिलैः तण्डुलैर्वा जुहुयात् ॥११॥

ब्राह्मणों को वश में करने के लिए घृत मधु शर्करा मिश्रित पलाश वृक्ष की समिधाओं से अथवा कुश के टुकड़ों, से अथवा तण्डुलों से दश हजार हवन करे ॥११॥

प्रयोगान्तरमाह—

कृतमालभवैर्वशयेन् नृपतीन्
मुकुलैश्च कुरुण्टकजैश्च तथा ।
विशमिक्षुरकैरपि पाटलजै-
रितरानपि तद्वदथो वशयेत् ॥१२॥

कृतमालभवैः राजवृक्षसमुद्भवैः मुकुलैः कलिकाभिः हुत्वा नृपतीन् क्षत्रियान् वशयेत् । कुरुण्टकजैश्च झिंटीसमुद्भवैः मुकुलैर्हुत्वा वैश्यान् वशयेत् । इक्षुरसैः इक्षुरकैरिति पाठे कोकिलाक्षोमथीनथ इत्यर्थः । पाटलसमुद्भवैः मुकुलैर्वा हुत्वा इतरान् शूद्रान् वशयेत् । अनुक्तसंख्या होमस्य बोद्धव्या तस्या एव प्रकरणत्वादिति ॥१२॥

राजवृक्ष की पुष्प कलिकाओं के दश हजार हवन से क्षत्रिय वश में होते हैं। झिटी वृक्ष की कलियों के हवन से वैश्य वश में होते हैं। पाटल पुष्प-कलियों के हवनसे शूद्रों को वश में किया जा सकता है ॥१२॥

प्रयोगान्तरमाह—

अभिनवैरिति ।

अभिनवैः कमलैररुणोत्पलैः
समधुरैरपि चम्पकपाटलैः ।
प्रतिहुनेदयुतं क्रमशोऽचिरा-
द्वशयितुं मुखजादिवराङ्गनाः ॥१३॥

शीघ्रं मुखजादिवराङ्गना ब्राह्मणादिस्त्रियो वशयितुं चतुर्भिर्द्रव्यैः समधुरैर्मधुरत्रयमिलितैः क्रमशः प्रत्येकं सार्द्धसहस्रद्वयं कृत्वा दशसहस्रं प्रतिहुनेत् जुहुयात् द्रव्याण्याह ।

नूतनैः श्वेतपद्मैः रक्तोत्पलैश्चम्पकपुष्पैः पाटलपुष्पैः ॥१३॥

ब्राह्मण आदि जाति की स्त्रियों को वश में करने के लिए घृत मधु शर्करा सम्बलित नवीन कमल पुष्पों से पच्चीस सौ, लाल कमल पुष्पों से पच्चीस सौ, चम्पा

पुष्पों से पच्चीस सौ पाटल पुष्पों से पच्चीस सौ कुल योग में दश हजार हवन करना चाहिए ॥१३॥

प्रयोगान्तरमाह—

हयारीति ।

हयारिकुसुमैर्नवैस्त्रिमधुराप्लुतैर्नित्यशः
सहस्रमृषिवासरं प्रतिहुनेन्निशीथे बुधः ।
सुगर्वितधियं हठात् झटिति वारयोषामसौ
करोति निजकिङ्करीं स्मरशिलीमुखैर्रर्दिताम् ॥१४॥

हयारिकुसुमैः करवीरकुसुमैः नूतनैः त्रिमधुरमिश्रितैः प्रत्यहं सहस्रं ऋषिवासरं सप्तवासरं बुधः साधको निशीथे रात्रौ प्रत्यहं प्रतिदिनं जुहुयात् असौ अहंकारवतीं वारयोषां वेश्याकामबाणैः पीडितां हठात् बलात् झटिति शीघ्रं निजदासीं करोति ॥१४॥

कोई साधक लगातार सात दिन तक घृत मधु शर्करा मिलित करवीर पुष्पों से रात्रि में एक हजार हवन करे तो हठशीला ही क्यों न हो वेश्या कामबाणविद्ध होकर उसके वशीभूत होती है ॥१४॥

प्रयोगान्तरमाह—

पटुसंयुतैरिति ।

पटुसंयुतैस्त्रिमधुरार्द्रतरै-
रपि सर्षपैर्दशशतं त्रितयम् ।
निशि जुह्वतोऽस्य हि शचीदयितोऽ-
प्यवशो वशी भवति किन्वपरे ॥१५॥

लवणसंयुतैः कटुसंयुतैरिति पाठे कटुकसंयुतैरित्यर्थः । मधुरार्द्रतरैघृतमधुशर्करास्निग्धैरपिः समुच्चये सर्षपैर्दशशतं त्रितयं त्रिसहस्रं निशि रात्रौ जुह्वतः पुरुषस्य शचीदयितः इन्द्रोऽपि अवशो वशी भवति किं पुनरन्ये ॥१५॥

घृत मधु शर्करा सरसों जिनमें लवण भी मिला हो, उनसे रात्रि में सात दिन तक तीन हजार के क्रम से हवन करने पर इन्द्र भी साधक के वश में हो जाता है तो दूसरों का कहना ही क्या है ॥१५॥

प्रयोगान्तरमाह—

अथेति ।

अथ बिल्वजैः फलसमित् प्रसव-
च्छदनैर्मधुद्रततरैर्हवनात् ।
कमलैः सिताक्षतयुतैश्च पृथक्
कमलां चिराय वशयेदचिरात् ॥१६॥

बिल्ववृक्षोद्भवैः फलसमितपुष्पपत्रैः श्वेतपद्मै रत्यन्तमधुराप्लुतैः सिताक्षतयुतैः शर्करातण्डुलमिश्रितैः सिताज्यसहितैरिति पाठे सिताशर्करा आज्यं घृतं तत्सहितैः, पृथक् एकैकं वस्तुत्रिसहस्रहोमात् चिरकालम् अचिरात् शीघ्रं कमलां लक्ष्मी वशयेत् अत्र संख्यासमनन्तरोक्ता ॥१६॥

घृत मधु शर्कराओं से संसिक्त बिल्व वृक्ष के फल, समिधा, पुष्प, पत्रों से, शर्करा मिश्रित तण्डुलों से, तथा मधु आदि युक्त श्वेत कमलों से तीन हजार हवन करने से चिरकाल तक लक्ष्मी को वश में किया जा सकता है। यहां इतना और समझना है कि उपर्युक्त तीन चीज, बिल्वाङ्ग, तण्डुल, श्वेत कमलों में प्रत्येक से तीन-तीन हजार हवन करना होगा ॥१६॥

प्रयोगान्तरमाह—

अपहृत्येति ।

अपहृत्य गोपवनिताम्बराण्यमा
हृदयैः कदम्बमधिरूढमच्युतम् ।
प्रजपेत् स्मरन्निशि सहस्रमानयेद्
द्रुतमुर्वशीमपि हठाद्दशाहतः ॥१७॥

हृदयैः अमा सह हठात् गोपयुवतीवस्त्राण्यपहृत्य गृहीत्वा कदम्बवृक्षमधिरूढं कृष्णं स्मरन् निशि रात्रौ सहस्रं जपेत्स दशाहतो दशदिवसमध्ये हठान्मन्त्रस्य बलात् उर्वशीमपि देववेश्यामपि वशमानयेत् निजनिकटमिति शेषः ॥१७॥

गोपाङ्गनाओं के हृदय के साथ वस्त्रों का भी हरण करके कदम्ब वृक्ष पर आरूढ हुए श्रीकृष्ण का स्मरण कर रात्रि में लगातार दस दिन तक एक हजार के क्रम से मन्त्र जपने से मन्त्रवलात् उर्वशी भी वश में आ सकती है तो औरों का तो कहना ही क्या ? ॥१७॥

मन्त्रयोर्माहात्म्यमाह—

बहुनेति ।

बहुना किमत्र कथितेन मन्त्रयो-
रनयोः सदृक् न हि परो वशी कृतौ ।
अभिकृष्टिकर्मणि विदग्धयोषितां
कुसुमायुधास्त्रमयवर्म्मणोरिह ॥१८॥

अत्र ग्रन्थे बहुना कथितेन किं प्रयोजनम् ? अनयोर्दशाष्टादशाक्षरयोः सदृक्समः वशीकरणे इह जगति अपरो नास्ति । किम्भूतयोर्नगरस्त्रीणामाकर्षणकर्मणि कामास्त्रशरीरयोः ॥१८॥

इस सम्बन्ध में अधिक कहने से क्या लाभ, इतना ही पर्याप्त होगा कि वशीकरण के प्रयोग में दशाक्षर और अष्टादशाक्षर मन्त्रों के समान इस जगत् में और कोई मन्त्र ही नहीं है। क्योंकि ये दो मन्त्र काम बाण के सदृश ही वशीकरण प्रयोग में समर्थ हैं ॥१८॥

मोक्षसाधकप्रयोगान्तरमाह—

वन्द इति ।

वन्दे कुन्देन्दुगौरं तरुणमरुणपाथोजपत्राभनेत्रं
चक्रं शङ्खं गदाब्जे निजभुजपरिघैरायतैरादधानम् ।
दिव्यैर्भूषाङ्गरागैर्नवनलिनलसन्मालया च प्रदीप्तं
प्रोद्यत्पीताम्बराढ्यं मुनिभिरभिवृतं पद्मसंस्थं मुकुन्दम् ॥१९॥

मुकुन्दं वन्दे । कीदृशम् ? कुन्दपुष्पं चन्द्रश्च तद्वत् शुक्लं तथा युवानं तथा रक्तपद्मसदृशलोचनं तथा दीर्घैर्निजबाहुपरिघैर्मुद्गराकारस्वबाहुभिः शङ्खं चक्रं गदां पद्मञ्च धारयन्तं तथा देवयोग्यालङ्काराङ्गरागैः नवानि यानि पद्मानि तेषां लसन्ती देदीप्यमाना या माला तया च प्रदीप्तं तथा देदीप्यमानहरिद्राभवस्त्रयुक्तं तथा नारदादिभिर्वेष्टितं तथा पङ्कजासीनम् ॥१९॥

कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान श्वेत कान्ति है जिनकी, तरुण अवस्था वाले, जिनके नेत्रों की आभा लाल-लाल कमलों की सी है, जो अपनी विशाल भुजाओं से शंख, चक्र, गदा पद्मों को धारण किए हुए हैं, जो दिव्य अलंकार तथा अंगरागों से विभूषित हैं, और नवीन कमल माला से शोभित हैं चमकदार

पीताम्बर वस्त्र धारण करने वाले, नारदादि ऋषियों के द्वारा संस्तुत कमलाकार सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ ॥१९॥

एवमिति—

एवं ध्यात्वा पुमांसं स्फुटहृदयसरोजनासीनमाद्यं
सान्द्राम्भोजच्छबिम्बा द्रुतकनकनिभं वा जपेदर्कलक्षम् ।
मन्वोरेकं द्वितारान्तरितमथहुनेदर्कसाहस्रमिद्‌ध्मैः
क्षीरद्रूत्थैः पयोक्तैः समधुघृतसितेनाऽथवा पायसेन ॥२०॥

एवंविधं पूर्वोक्तं मुकुन्दं ध्यात्वा प्रफुल्लहृदयपद्मासनोपविष्टं तथा आद्यं प्रथमं सजलजलदश्यामं सान्द्राभोजच्छविमिति पाठे मसृणपद्म-कान्ति वा ध्यात्वा द्वितारान्तरगं प्रणवद्वयमध्यगतं मन्वोर्दशाष्टादशा-क्षरयोरेकम् अर्कलक्षं द्वादशलक्षं जपेत् । अथ जपानन्तरम् अर्कसहस्रम् इध्मैः समिद्भिः क्षीरद्रूत्थैरश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधान्यतमसमुद्भवैः पयोक्तैः दुग्धप्लुतैः अथवा घृतमधुशर्करासहितेन परमान्नेन जुहुयात् ॥ २० ॥

अपने हृदय कमल रूपी दिव्यासन पर समासीन, मसृण कमल के समान है कान्ति जिनकी ऐसे पिघले हुए सुवर्ण के समान चमकने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करके उक्त दो में एक मन्त्र से जो प्रणव पुटित भी हो, उसका बारह लाख जाप करके दूध वाले वृक्षों की समिधाओं से, अथवा घृत मधु शर्करा युक्त पायस से बारह हजार हवन करे ॥२०॥

ततो लोकाध्यक्षं ध्रुवचितिसदानन्दवपुषं
निजे हृत्पाथोजे भवतिमिरसंभेदमिहिरम् ।
निजैक्येन ध्यायन्मनुममलचेताः प्रतिदिनं
त्रिसाहस्रं जप्यात्प्रयजतु च सायाह्नविधिना ॥२१॥

ततस्तदनन्तरं लोकाध्यक्षं लोकस्वामिनम् ।

अविनाशिज्ञानं तत्सुखस्वरूपशरीरं संसारान्धकारविच्छेदसूर्यममुं कृष्णं निजहृदयपद्मे निजैक्येन स्वाभेदेन भावयन् अमलचेताः निर्मलान्तः करणः प्रतिदिनं त्रिसहस्रं सहस्रत्रयं जुहुयात् तथा पूर्वोक्तसायाह्नपूजा-प्रकारेण पूजयतु होममपि करोतु ॥२१॥

इसके बाद जगत् के स्वामी ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय विग्रहशाली, संसाररूपी अन्धकार का नाश करने वाले सूर्यस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को अपने से अभिन्न समझकर हृदय कमल में ध्यान करते हुए प्रतिदिन तीन हजार जप करे, और सायंकालीन पूजा विधि से अर्चना करे, हवन भी करना चाहिए ॥२१॥

विधिमिति ।

विधिं योऽमुं भक्त्या भजति नियतं सुस्थिरमति-
र्भवाम्भोधिं भीमं विषमविषयग्राहनिकरैः ।
तरङ्गैरुत्तुङ्गैर्जनिमृतिसमाख्यैः प्रविततं
समुत्तीर्याऽनन्तं व्रजति परमं धाम स हरेः ॥२२॥

यः स्थिरमतिः पुमान् अमुं विधिं प्रकारं नियतं सततं भक्त्या भजति सेवते स भवाम्भोधिं संसारसागरं समुत्तीर्य हरेः अनन्यं न विद्यते अन्यो यस्मात्सर्वमयमुत्कृष्टं धाम प्राप्नोति । कीदृशम् ? अम्भोधिरिव भयङ्करं कैर्विषमा दुर्निवाराः ये विषयाः शब्दादयः अथवा स्रक्चन्दनव-निताद्याः त एव ग्राहरूपामकरकच्छपाद्यास्तेषां निकरैः समूहैः तथा जन्ममरणनामधेयैस्तरङ्गैरुत्तुङ्गैर्महद्भिर्विस्तीर्णम् ॥२२॥

जो साधक नित्य पूर्वोक्त विधि के अनुसार ध्यान, पूजन, हवन आदि करता है, वह भयंकर विषय रूपी ग्राह समूहों तथा जन्म मरण रूपी उत्ताल तरंगों से उच्छलित भयंकर समुद्र को पार कर भगवत्पद को प्राप्त होता है ॥२२॥

गृणंस्तस्येति ।

गृणंस्तस्य नामानि शृण्वंस्तदीयाः
कथाः संस्मरंस्तस्य रूपाणि नित्यम् ।
नमंस्तत्पदाम्भोरुहं भक्तिनम्रः
स पूज्यो बुधैर्नित्ययुक्तः स एव ॥२३॥

सपुरुषः बुधैः प्राज्ञैः पूज्यः स एव च नित्ययुक्तः नित्ययोगभाक् । किङ्कुर्वन् सन् ? अस्य श्रीकृष्णस्य नामानि गृणन् वदन् तदीयाः कथा आकल्पयन् तस्य श्रीकृष्णस्य रूपाणि मूर्तीः सर्वदा ध्यायन् तत्पदाम्भोरुहं श्रीकृष्णपादपद्मं नमन् भक्तिनम्रः सेवाऽवनतः अधिकनम्रत्वख्यापनार्थं पौनरुक्त्यम् ॥२३॥

वह साधक जो सदा भगवान् श्रीकृष्ण की नामावली जपता हो, उनकी सुमधुर कथाओं को सुनता हो, श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का स्मरण करता हो, और भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों में सदा प्रणाम करता हो, वह योगी है परम भक्त है, सदा बुधजनों द्वारा पूज्य होता है ॥२३॥

इदानीं परममन्त्रद्वयं कथयति—

वक्ष्य इति ।

वक्ष्ये मनुद्वयमथाऽतिरहस्यमन्यत्
संक्षेपतो भुवनमोहननामधेयम् ।
ब्रह्मेन्द्रवामनयनेन्दुभिरादिमान्य-
स्तत्पूर्वको वियदृषीकयुतेशङेहृत् ॥२४॥

अथाऽनन्तरमन्यत् मन्त्रद्वयमतिगोप्यं जगन्मोहनसंज्ञकं स्वल्पोक्त्या वक्ष्येब्रह्मककार: इन्द्रो लकार: वामनयनं दीर्घ ईकार: इन्दुरनुस्वार: एतै: संयुक्त: कामबीजरूप: प्रथमो मन्त्र उद्धृत: तत्पूर्वक: वियत् हकार: ऋषीक इति स्वरूपं ताभ्यां युक्त ईशशब्द: हृषीकेश इति स्वरूपं ङे चतुर्थ्येकवचनं हृन्नम: क्लीं हृषोकेशाय नम: इति द्वितीयो मन्त्र: । अत्रायं पुरुषोत्तममन्त्र इति भैरवत्रिपाठिन: ॥२४॥

अब यहां पर अति रहस्य पूर्ण दो मन्त्रों का संक्षेपत: उद्धार करता हूँ, जिनको जगन्मोहन मन्त्र कहा जाता है। एक है, काम बीज "क्लीं" दूसरा है "क्लीं हृषीकेशाय नम:" ये अति संक्षिप्त होते हुए सर्वातिशायी हैं ॥२४॥

ऋष्यादिकमाह—
मन्वोरिति ।

मन्वोस्तु संमोहननारदो मुनि:
छन्दस्तु गायत्रमुदीरितं बुधै: ।
त्रैलोक्यसंमोहनविष्णुरेतयो:
स्याद्देवता वच्म्यधुना षडङ्गकम् ॥२५॥

अनयोर्मन्त्रयो: संमोहननारदो मुनि: छन्द: पुनर्गायत्रं मन्त्रज्ञै: कथितं त्रैलोक्यसंमोहनविष्णुर्देवतेति ॥२५॥

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों के ऋषि सम्मोहन नारद, छन्द गायत्री, देवता गैलोक्य सम्मोहन श्रीकृष्ण है षडङ्ग न्यास आगे बताऊँगा ॥२५॥

अधुनाषडङ्गं वदामि—

अक्लीवेति ।

अक्लीवदीर्घै: सलवैस्तदपि च कलासनारूढै: ।
उक्तं पूर्ववदासनविन्यासान्तं समाचरेदथ तु ॥२६॥

ऋॠऌॡवर्जितषट् दोर्घस्वरै: बिन्दुसहितै: कलेत्यक्षरद्वयसंबद्धै: क्लाँ क्लीं क्लूँ क्लैं क्लौं क्ल: एभिस्तत् षडङ्गमुक्तम् । अथानन्तरं पूर्ववद्दशाक्षरकथितपीठपूजापर्यन्तं कार्यम् ॥२६॥

ऋऌ क्लीव संज्ञक हैं। उनको छोड़कर अन्य दीर्घ स्वरों से जो अनुस्वार तथा क्ल् से सम्बद्ध हो अर्थात्—क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्ल: इनसे षडङ्ग न्यास करके पूर्वोक्त विधि से पीठपूजा पर्यन्त के सम्पूर्ण विधान करे ॥२६॥

करयोरिति ।

करयो: शाखासु तले न्यस्य षडङ्गानि चाङ्गुलीषु शरान् ।
मनुपुटितमातृकार्णैर्न्यस्याङ्गेऽङ्गानि विन्यसेच्च शरान् ॥२७॥

करयो: शाखासु अङ्गुलीषु उभयकरतले च षडङ्गानि विन्यस्य पुनरङ्गुलीषु च कामबाणान् विन्यस्य आद्यन्तस्थितमन्त्रमातृकाक्षरै-र्मातृकास्थानेषु विन्यस्य दीर्घयुक्तकामबीजै: षडङ्गानि स्वशरीरे विन्यस्य बाणन्यासं च कुर्यात् ॥२७॥

हाथों की अंगुलियों तथा करतलों में पूर्वोक्त बीजों से न्यास करके अंगुलियों में बाण न्यास भी करे। और एकाक्षर मन्त्र से सम्पुटित मातृकाक्षरों से मातृका-क्षरों के विहित स्थानों में न्यास करके उपर्युक्त दीर्घ बीजों से अंगन्यास तथा बाण न्यास भी करे ॥२७॥

बाणन्यासस्थानान्याह—

कास्येति ।

कास्यहृदयलिङ्गाङ्घ्रिषुकरशाखाभिर्नमोन्तकान् ङेऽन्तान् ।
शोषणमोहनसंदीपनतापनमादनान् क्रमश: ॥२८॥

पञ्चैते संप्रोक्ता ह्रांह्रींक्लींक्लूं सश्रादिकाबाणा: ।
समोहनमथजगतां ध्यायेत् पुरुषोत्तमं समाहितधी: ॥२९॥

शिरोवदनहृदयलिङ्गपादेषु अङ्गुलीभिः अङ्गुष्ठादिकनिष्ठकान्ताभिः एकैकया अङ्गुल्या चतुर्थी नमः पदसहितान् वक्ष्यमाणान् पञ्चबाणान् क्रमेण विन्यसेत् ।

बाणनामान्याह—

शोषणेति ।

ह्रां ह्रीं क्लीं क्लूं सः एतानि पञ्चबीजानि एकैकानि आदौ येषां एवम् एते पञ्च बाणाः शोषणादयः प्रोक्ताः । प्रयोगस्तु—ह्रां शोषणाय नमः इत्यङ्गुष्ठेन शिरसि ह्रीं मोहनाय नमः इति तर्जन्यामुखे इत्यादि अथानन्तरम् । संयतचित्तः त्रिभुवनवश्यकरं पुरुषोत्तमं चिन्तयेत् ।२८-२९।

बाण न्यास के स्थान बताते हैं। "ह्रां ह्रीं क्लीं क्लूं सः" ये पांच बीज पूर्वक "शोषण, मोहन, संदीपन, तापन, मादन" इन पञ्च बाणों से सिर मुख हृदय लिंग अंध्रियों में करांगुलियों से अर्थात्, अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका कनिष्ठिकाओं से नमः शब्दान्त चतुर्थी विभक्ति सहित न्यास करे। प्रयोग—ह्रां शोषणाय नमः शिरसि, अंगुष्ठ से। इन क्रियाओं के साथ-साथ जगत् को मोहित करने वाले लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का भक्ति पूर्वक ध्यान भी करता जाए ॥२८॥२९॥

ध्यानमाह—

दिव्येति ।

दिव्यतरूद्यानोद्यद्रुचिरमहाकल्पपादपाधस्तात् ।
मणिमयभूतलविलसद्रूद्रपयोजन्मपीठनिष्ठस्य ॥३०॥
विश्वप्राणस्योद्यत्प्रद्योतनसमद्युतेः सुपर्णस्य ।
आसीनमुन्नतांसे विद्रुमभद्राङ्गमङ्गजोन्मथितम् ॥३१॥
चक्रदराङ्कुशपाशान्सुमनोबाणेक्षुचापकमलगदाः ।
दधतं स्वदोर्भिररुणायतविपुलविघूर्णिताक्षियुगनलिनम् ॥३२॥
मणिमयकिरीटकुण्डलहाराङ्गदकङ्कणोर्मिरसनाद्यैः ।
अरुणैर्माल्यविलेपैरादीप्तं पीतवस्त्रपरिधानम् ॥३३॥
निजवामोरुनिषण्णां श्लिष्यन्तीं वामहस्तधृतनलिनाम् ।
क्लिद्यद्योनिं कमलां मदनमदव्याकुलोज्ज्वलाङ्गलताम् ॥३४॥

सुरुचिरभूषणमाल्यानुलेपनांसुसितवसनपरिवीताम् ।
निजमुखकमलव्यापृतचटुलासितनयनमधुकरां तरुणीम् ॥३५॥
श्लिष्यन्तं वामभुजादण्डेन दृढं धृतेक्षुचापेन ।
तज्जनितपरनिर्वृतिनिर्भरहृदयं चराचरैकगुरुम् ॥३६॥
सुरदितिजभुजगगुह्यकगन्धर्वाद्यङ्गनाजनसहस्रैः ।
मदमन्मथालसाङ्गैरभिवीतं दिव्यभूषणोल्लसितैः ॥३७॥
आत्माभेदतयेत्थं ध्यात्वैकाक्षरमथाऽष्टवर्णं वा ।
प्रजपेद्दिनकरलक्षं त्रिमधुरसिक्तैस्तु किंशुकप्रसवैः ॥३८॥

नवश्लोकानां कुलकम् ।

इत्थम् एवं वासुदेवं ध्यात्वा एकाक्षरकामबीजम् अथवाष्टाक्षरमन्त्रं दिनकरलक्षं द्वादशलक्षं जपेत् । कीदृशम् ? ध्यात्वा देवसंबन्धिवृक्षोद्याने कल्पवृक्षोद्याने उद्यन् वृद्धिगच्छन् मनोहरो यः पारिजातवृक्षस्तस्य तले गरुडस्योन्नतांसे उपविष्टम् । कीदृशस्य गरुडस्य ? पद्मरागादिघटितभूभागशोभमानश्रेष्ठपद्मपीठोपविष्टस्य तथा सकलजीवभूतस्य परमेश्वरस्यांशत्वात् तथा उदितसूर्यसमकान्तेः । कीदृशं वासुदेवम् ? प्रवालसुन्दराङ्गं, कामव्याकुलितं स्वदोर्भिः स्वबाहुभिर्दक्षिणवामक्रमेण चक्रशङ्खाङ्कुशपाशपुष्पशरेक्षुचापपद्मगदाः बिभ्राणं तथा रक्तं दीर्घं बहद्विघूर्णितं नेत्रद्वयरूपं पद्मं यस्य स तथा तम्, पद्मरागादिमणिघटितशिरोलङ्कारकर्णभूषणमुक्ताहारबाहुभूषणकरमूलभूषणमुद्रिकाक्षुद्रघण्टिकाप्रभृतिभिः रक्तमाल्यगन्धैश्च देदीप्यमानं तथा पीते वाससी परिधानमाच्छादनं यस्य स तथा तं तथा धृतेक्षुचापेन वामबाहुदण्डेन दृढं यथा स्यादेवं श्रियमालिङ्गन्तम् ।

कीदृशीम् ? स्वीयवामोरुदेशे उपविष्टां, तथा आलिङ्गन्तीं, तथा वामहस्तगृहीतपद्मां, तथा सरसीभूतगुह्यां तथा कामेन व्याकुलीकृता अनायत्तीकृता अङ्गलता यस्यास्तां मनोहराणि अलङ्कारमालाचन्दनानि यस्यास्तां तथा श्वेतवस्त्रपरिधानां तथा कृष्णमुखपद्मे व्यापृतं सम्यग्व्यापारयुक्तं चटुलं मनोहरं चञ्चलं वा असितं श्यामं यन्नेत्रं स एव मधुकरो भ्रमरः यस्यास्तां तथा तरुणीं युवतीम् । पुनः कीदृशम् ? प्रिया-

लिङ्गनजनितपरमसुखपूर्णहृदयं तथा जगद्गुरुं तथा देवदैत्यसर्पदेवयोनिदे-
वगायनविद्याधरस्त्रीसहस्त्रैर्मंदतया कामेन च स्तम्भयुक्तम् अङ्गं येषां तैर्दे-
वाहंणभूषणादीप्तैर्वेष्टितं कया युक्त्या आत्मैक्येन ध्यात्वा ।।३०-३८।।

कल्पवृक्ष के उद्यान में विशेष पल्लवित महान् पारिजात वृक्ष के अधस्तल पर विद्यमान पद्मराग आदि मणियों से खचित मणिमय भूतलस्थ कमलाकार सिंहासन के पीठ पर बैठे हुए, विश्व मात्र के उपजीव्य, उदीयमान सूर्य के समान है कान्ति जिनकी, ऐसे गरुडजी के उन्नत पीठ पर समासीन, विद्रुम के समान है सुन्दर अंग जिनके, अपनी भुजाओं के दक्षिण-वाम क्रम से चक्र शंख, अंकुश, पाश, पुष्प बाण, इक्षुधनुओं को धारण करने वाले, जिनके नेत्र विशाल मद घूर्णित और कमल के समान सुन्दर हैं, जो पद्मरागादि मणि संघटित किरीट, कुण्डल, मुक्ता-हार, अंगद (बाहुभूषण) वलय, क्षुद्र घंटिका प्रभृति आभूषणों से विविभूषित हैं, जो लाल पुष्प माला, कस्तूरिका आदि विशेष चन्दनों से देदीप्यमान हैं, तथा पीताम्बर वस्त्र को धारण किए हुए हैं, भगवान् श्रीकृष्ण के वामोरुस्थल पर बैठी हुई जो श्रीकृष्ण का आलिगन कर रही हैं, जिनके वाम करकमल में दिव्य कमल शोभित है, कामदेव के उद्दीपन से व्याकुलित है उत्साहित है अंग प्रत्यङ्ग लताएं जिनकी, जो सुन्दर आभूषणों, सुन्दर माला, सुन्दर अनुलेप विशेष से देदीप्यमान हैं, जो श्वेत वस्त्र धारण किए हुई हैं, भगवान् श्रीकृष्ण के मुख कमल सौरभ के आस्वादन की लालसा से तल्लीन हैं नेत्ररूपी भ्रमर जिनके, ऐसी तरुण अवस्था वाली रुक्मिणी का गाढ आलिंगन करते हुए, प्रियालिंगन जन्य-परमानन्द से जिनका हृदय निरतिशय आल्हादित है, जो दिव्य आभूषणों से सुशोभित कामदेव की तीव्रता से जिनके अंग अलसता को प्राप्त हुए हैं ऐसे देव दानव नाग गुह्यक, यक्ष गन्धर्वों की अंगनाओं से परिवेष्टित हैं, ऐसे चराचर विश्व के एक मात्र गुरु भगवान् श्रीकृष्ण का तदधीन स्थिति प्रवृत्ति की भावना से ध्यान करके एकाक्षर काम बीज क्लीं अथवा अष्टाक्षर "क्लीं हृषीकेशाय नमः" का बारह लाख जप करके घृत मधु शर्करा सिक्त किंशुक (पलाश) पुष्पों से बारह हजार हवन करे ।।३०।।३१।।३२।।३३।।३४।।३५।।३६।।३७।।३८।।

जुहुयात्तरणिसहस्त्रं विमलैः सलिलैश्च तर्पयेत्तावत् ।
विंशत्यर्णे प्रोक्ते यन्त्रे दिनशोऽमुमर्चयेत् भक्त्या ।।३९।।

ध्यानजपानन्तरं घृतमधुशर्करासहितैः पलाशपुष्पैर्द्वादशसहस्त्रं जुहु-यात् । होमानन्तरं निर्मलैर्जलैर्द्वादशसहस्त्रं तर्पणं कुर्यात् ।

विंशत्यर्णेति । पूर्वोक्तविंशत्यक्षरोदितपीठविधानेन तन्मन्त्रोद्धृत-यन्त्रे अमुं कृष्णं भक्त्या प्रतिदिनं पूजयेत् ।।३९।।

पूर्वोक्त प्रकार से ध्यान जप करने के अनन्तर पलाश पुष्पों से जो घृत मधु शर्कराओं से परिप्लुत हो, उनसे बारह हजार हवन करके निर्मल जल से बारह हजार तर्पण करे । और बीस अक्षर के मन्त्र के प्रसंग में कथित विधि से प्रतिदिन श्रीकृष्ण की भक्तिपूर्वक पूजा करे ।।३९।।

पूजाप्रकारमाह—
सार्द्ध चतुःश्लोकेन गरुडमन्त्रमाह—
पीठेति ।

पीठविधौ पक्ष्यन्ते राजायशिरोऽमुनाऽभिपूज्याऽहिरिपुम् ।
हरिमावाह्य स्कन्धे तस्यार्घाद्यैः समर्च्य भूषान्तैः ।।४०।।
अङ्गानि च बाणांश्च न्यासक्रमतः किरीटमपि शिरसि ।
श्रवसोश्च कुण्डलेऽरिप्रमुखानि प्रहरणानि पाणिषु च ।।४१।।
श्रीवत्सकौस्तुभौ च स्तनयोरूद्ध्र्वे गले च वनमालाम् ।
पीतवसनं नितम्बे वामाङ्के श्रियमपि स्वबीजेन ।।४२।।
इष्ट्वाऽथ कर्णिकायामङ्गानि विदिग्दिशासु दिक्षुशरान् ।
कोणेषु पञ्चमं पुनरग्न्यादिदलेषु शक्तयः पूज्याः ।।४३।।

पूजाविधौ पक्षिशब्दान्ते राजायेति स्वरूपं शिरः स्वाहा अनेन प्रकारेण पीठमध्ये अहिरिपुं गरुडं सम्पूज्य तस्य गरुडस्य पृष्ठे श्रीकृष्ण-मावाह्याऽऽवाहनादि यथावत् कृत्वाऽर्घाद्यैर्भूषान्तैरुपचारैश्च सम्पूज्य अङ्गानिच सम्पूज्य पञ्चबाणांश्च सम्पूज्य भूषणानि च सम्पूज्य दिग्दलेषु शक्तयः पूज्या इति अनेनान्वयः ।

एतदेव स्पष्टयति—
न्यासक्रमत इत्यादिना ।

यत्र परमेश्वराङ्गे यस्य न्यासः तस्य पूजा बोद्धव्या तत्र शिरसि किरीटं अपिपादपूरणे श्रोत्रयोः कुण्डले अरिमुखानि चक्रादीनि प्रहरणानि आयुधानि हस्तेषु स्तनयो ऊद्ध्र्वे हृदि श्रीवत्सकौस्तुभौ गले वनमालाम् आपादलम्बिनीं पद्ममालां नितम्बे कट्यां हरिद्राभवस्त्रं वामाङ्गे वाम-भागे लक्ष्मीं च स्वबीजेन श्रीबीजेन इष्ट्वा सम्पूज्य कर्णिकायां दिग्वि-दिशासु कोणेषु दिक्षु च अङ्गानि पूर्ववत्सम्पूज्य दिक्षुशरान् अग्न्यादि-कोणेषु च पञ्चमं बाणं पूजयेत् पुनरग्न्यादिदलेषु अष्टौ शक्तय पूज्याः ।।४०-४३।।

पूजा पीठ के मध्य में "पक्षिराजाय स्वाहा" इस गरुड़ मन्त्र से श्रीगरुड़जी की पूजा करके, श्रीरुड़जी के स्कन्ध पर भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करके अर्घ्य से लेकर आभूषण पर्यन्त के उपचारों से उनकी पूजा करे। तथा श्रीकृष्ण के अंगों एवं बाणों की पूजा करे। न्यास क्रम से आभूषणों की पूजा करनी चाहिए। अंगों के अनुसार आभूषणों की अर्चना होगी। किरीट की पूजा सिर में, कुण्डलों की कानों में, शंख चक्र आदि आयुधों की करकमलों में, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ की हृदय में, वनमाला की गले में, पीताम्बर की नितम्ब में, लक्ष्मी की श्रीं बीज से वामाङ्ग में, पूजा करनी चाहिए। कर्णिका तथा कर्णिका की दिशा विदिशाओं में यथाक्रम अंगों की तथा बाणों की एवं अग्नि आदि कोणों में अष्ट शक्तियों की पूजा करनी होगी ॥४०॥४१॥४२॥४३॥

शक्तिवर्णानाह—

लक्ष्मीरिति।

लक्ष्मीः सरस्वती स्वर्णाभे अरुणतरे रतिप्रीत्यौ।

कीर्तिः कान्तिश्च सिते तुष्टिः पुष्टिश्च मरकतप्रतिमे ॥४४॥

स्वर्णाभे पीतवर्णे अरुणतरे अतिरक्ते सिते शुक्ले मरकतप्रतिमे हरिद्रावर्णे ॥४४॥

अष्ट शक्तियों के नाम तथा वर्ण इस प्रकार हैं। लक्ष्मी और सरस्वती सुवर्ण के समान पीत वर्ण वाली, रति और प्रीति लाल वर्ण वाली, कीर्ति और कान्ति श्वेत वर्ण वाली, तुष्टि और पुष्टि मरकत मणि के समान पीत प्रधान वर्ण वाली हैं ॥४४॥

एताः शक्तयः किम्भूताः ?

दिव्याङ्गरागभूषामाल्यदुकूलैरलङ्कृताङ्गलताः।

स्मेराननाः स्मरार्त्ताधृतचामरचारुकरतला एताः ॥४५॥

देवयोग्यानुलेपनालङ्कारग्रन्थितपुष्पसूक्ष्मवस्त्रैर्भूषितदेहाः अङ्गलताशब्दः स्वरूपवाची तथा ईषद्धास्यवदना तथा कामबाणपीडिताः तथा गृहीतचामरमनोहरहस्ताः ॥४५॥

शक्तियों का स्वरूप इस प्रकार है। जिनकी अंग लताएं, देव योग्य अंगराग, देव योग्य आभूषण, तथा पुष्प निर्मित वस्त्रों से अलंकृत है। सभी के करकमलों में अतिसुन्दर चामर हैं, कुछ हस मुख और काम बाण पीडित सी दिखाई पडती हैं ॥४५॥

लोकेशा इति।

लोकेशा बहिरर्च्याः कथितेत्यर्चा मनुद्वयोद्भूता।

प्रायः पुरुषोत्तमविधिरेवं हि स नोच्यतेऽत्र बहुलत्वात् ॥४६॥

तद्बहिरिन्द्रादयः वज्रादयश्च पूज्याः इत्येवं पूजा मन्त्रद्वयसम्भवा कथिता प्रायो बाहुल्येन पुरुषोत्तममन्त्रकथितप्रकारोप्येवं परं स इह स्पष्टीकृत्य नोच्यते बहुवक्तव्यत्वात् प्रायः पुरुषोत्तमविधिरेवमिहाऽन्यतोऽवगन्तव्यमिति टीकान्तरसम्मतं पाठान्तरम् ॥४६॥

उक्त शक्ति मण्डल के बाहर सांग सायुध सपरिवार इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए। यहां की पूजा विधि प्रायः पुरुषोत्तम पूजा विधि के समान है, अति विस्तृत होने के कारण उसको हम यहां विस्तृत रूप नहीं दे रहे हैं ॥४६॥

संमोहनगायत्रीमाह—

त्रैलोक्येति।

त्रैलोक्यमोहनायेत्युक्त्वा विद्मह इति स्मरायेति।

तत् धीमहीति तन्नोऽन्ते विष्णुस्तदनु प्रचोदयात् ॥४७॥

त्रैलोक्यमोहनायेति स्वरूपमुक्त्वा तदनन्तरं विद्महे इति स्मरायेति तदनु धीमहीति तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति स्वरूपं वदेत् ॥४७॥

"त्रैलोक्य मोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्" यह सम्मोहन गायत्री मन्त्र है ॥४७॥

प्रभावमाह।

जप्यैषा हि जपादौ दुरितहरी श्रीकरी जपार्चनहवनैः।

प्रोक्षयतु शुद्धिविधयेऽर्चायामनयात्मयागभूद्रव्याणि ॥४८॥

एषा गायत्रीजपात् पूर्वं जपनीया स्वमन्त्रजपपूजाहोमैः पुनः पापनाशनी लक्ष्मीप्रदा च भवति। अनया गायत्र्या च पूजायां शुद्ध्यर्थम् आत्मयागभूद्रव्याणि आत्मानं यागभुवम् द्रव्याणि च प्रोक्षयतु ॥४८॥

इस सम्मोहन गायत्री मन्त्र को मूल मन्त्र जप के पहले जपना चाहिए। यह जप हवन पूजन से सिद्ध होती है तो पापनाशिनी लक्ष्मीप्रदा होती। इस गायत्री को जपते हुए समस्त पूजा सामग्री का प्रोक्षण करना चाहिए। यज्ञ भूमि का पवित्रीकरण भी इसी से करना चाहिए ॥४८॥

मन्त्रद्वयसाधारणतर्पणमाह—

मन्वोरिति ।

मन्वोरेकेन शतं तर्पयेन्मोहनीप्रसूनयुतैर्यः ।
तोयैर्दिनशः प्रातः स तु लभते वाञ्छितानयत्नतः कामान् ।४९।

यः पूर्वोक्तमन्त्रयोः एकेन मोहिनीपुष्पमिश्रितैः शक्रासनपद्मासनपुष्पसहितैर्जलैः प्रति प्रत्यहं शतं तर्पयेत् । स वाञ्छितान् कामान् अनयासेन प्राप्नोति ।।४९।।

एकाक्षर काम बीज तथा अष्टाक्षर हृषीकेश मन्त्रों में किसी एक मन्त्र से कमल पुष्प युक्त जल से प्रतिदिन १०० बार तर्पण करने से अनायास मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं ।।४९।।

मन्त्रद्वयसम्बन्धिप्रयोगान्तरमाह—

हुत्वेति ।

हुत्वायुतं हुतशेष संपाताज्येन तावदभिजप्तेन ।
भोजयतु स्वाभीकं रमणीरमणोऽपि तां स्ववशतां नेतुम् ।५०।

घृतेन वह्न्ययुतं हुत्वा आहुतिशेषघृतेन मन्त्रजप्तेन रमणीं स्ववशतां नेतुं प्रापयितुम् आत्मीयं कामुकं भोजयतु कामुकः स्त्रियं भोजयतु ।।५०।।

उक्त दो मन्त्रों में किसी एक से दस हजार घृत हवन करके हुतशेष घी को पुनः दस हजार मन्त्र जप से अभिमन्त्रित कर अभीप्सित व्यक्ति को खवाने से वह वश में हो जाता है । पुरुष स्त्री को वश कर सकता है, स्त्री पुरुष को वश कर सकती है ।।५०।।

अष्टादशार्णेति ।

अष्टादशार्णविहिताविधयः कार्या वश्यत आभ्याम् ।
मन्वोरनयोः सदृगन्यो वै न मनुस्त्रैलोक्यवश्यकर्मणि जगति ।५१।

अष्टादशाक्षरमन्त्रकथिता वश्यकारिणः प्रयोगा आभ्यां मन्त्राभ्यां कार्याः हि निश्चयेन जगति सकलजगदायत्तताकार्ये अनयोः समानोऽन्यो मन्त्रो नास्ति ।।५१।।

अष्टादशाक्षर मन्त्र से किए जाने वाले वशीकरण प्रयोग इन्हीं दो मन्त्रों से किए जा सकते हैं । इन दो मन्त्रों के समान जगत् में कोई ऐसा अन्य मन्त्र नहीं है, जो तीनों लोकों को वश कर सके ।।५१।।

अत्रैकार्णेति ।

अत्रैकार्णजपादावथवा कृष्णः सवेणुगतिर्ध्येयः ।
अरुणरुचिराङ्गवेशः कन्दर्पो वा सपाशसृणिचापेषुः ।।५२।।

अत्र समनन्तरोक्तद्वयमध्ये एकाक्षरमन्त्रस्य जपपूजाहोमादौ कृष्णो भावनीयः । कीदृक् ? सवेणुगीतिरिति वंशोत्थगानपरः, तथा लोहितमनोहरशरीराभरणः, अथवा अत्रैव मन्त्रजपादौ पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरः कामदेवो ध्येयः, मन्त्रस्यादिदेवात्मकत्वादिति भावः ।।५२।।

एकाक्षर मन्त्र काम बीज को जपते समय लाल-लाल श्रृंगार सामग्री से अलंकृत वंशी ध्वनि जन्य गीत परायण श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए । अथवा पाश, अंकुश पुष्प बाण युक्त धनु को धारण करने वाले कामदेव का स्मरण भी किया जा सकता है, क्योंकि एकाक्षर का अधिष्ठातृदेव कामदेव ही है ।।५२।।

प्रकृतमुपसंहरति—

यस्त्विति ।

यस्त्वेकतरं मनुमेतयोर्विमलधीः सदा भजति मन्त्री ।
सोऽमुत्राऽपि च सिद्धिं विपुलामिहातितरामेति ।।५३।।

यो मन्त्री अनयोः मन्त्रयोरेकं मन्त्रश्रेष्ठं सदा जपादिभिः सेवते स इह लोकेऽमुत्र च अत्यर्थं विपुलां सिद्धिं प्राप्नोति ।।५३।।

जो साधक उक्त दो मन्त्रों में किसी एक को सदा जपता है तो वह इहलोक, परलोक दोनों लोकों में विपुल सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।।५३।।

अथ रुक्मिणीवल्लभमन्त्रमुद्धरति—

अथेति ।

अथ सह्यशौरि च तृतीयतुर्यकाः
शिखिवामनेत्रशशिखण्डमण्डिताः ।
अयकृष्णयुग्मकनिरन्तरात्मभू-
शिखिशक्तिडास्यवृतसक्तवर्णकाः ।।५४।।

अनिमध्यतो मुदितचेतसे तत-
स्त्यपरक्तहृग्यगुरुमारुताक्षराः ।

सचतुर्थिकृष्णपदमिक्षुकार्मुको
दशवर्णकश्च मनुवर्यकस्त्वसौ ॥५५॥
सलवाधराचलसुतारमाक्षरैः
पुटितः क्रमो क्रमगतैः समुद्गवत् ।
इति दन्तसूर्यवसुवर्ण उद्धृतः
कवितानुरञ्जनरमाकरोऽघहृत् ॥५६॥

सत्यो दकारः शौरिर्नकारः च तृतीयतुर्येति जकारः झकारश्च एते चत्वारो वर्णाः प्रत्येकं शिखी रेफः वामनेत्रमीकारः शशिखण्डो बिन्दुः एतैः शोभनाः संबद्धा इत्यर्थः । तथा च द्रीं न्रीं ज्रीं झ्रीं इति । तदनु जय कृष्णेति त्रिपाठि गोविन्दमिश्रप्रभृतयः । वस्तुतः जयकृष्णेति पदस्य युग्मं तदनु निरन्तरेति स्वरूपम् आत्मभूः ककारः शिखी रेफः शक्तिरीकारः तथा क्री स्वरूपम् तदनु डस्वरूपं आस्यवृतमाकारः डास्वरूपं सक्त इति स्वरूपं प्रनिमध्यतः प्रनीति अक्षरयोर्मध्ये मुदितचेतसे इति ततो निशब्दान्ते त्येति स्वरूपं तदनु पस्वरूपं रक्तो रेफः दृक् इकारः प्रथमातिक्रमे कारणाभावात् ह्रस्व इकारो लभ्येत । तथा च प्रि इति स्वरूपं ततो य इति स्वरूपं गुरुराकारःय इति स्वरूपं तदनु मारुतो यकारः तदनु सचतुर्थिकृष्णपदं कृष्णायेति स्वरूपं तदनु इक्षुकार्मुकः कामबीजं तदनु पूर्वोक्तदशाक्षरमन्त्रः तदनु लवो बिन्दुः तत्सहिता धरा ऐकार ऐं इति स्वरूपम् अचलः पर्वतः तत्सुता पार्वती भुवनेश्वरीबीजमित्यर्थः, रमा श्रीबीजम्, एभिस्त्रिभिर्बीजैर्मन्त्रान्ते प्रतिलोमपठितैः ऐं ह्रीं श्रीं अन्ते श्रीं ह्रीं ऐं इति समुद्गवत् सम्पुटवत् पुटितोऽयं द्विपञ्चाशद्वर्णो मन्त्रः सिद्धो भवति ।

मन्त्रवर्णसंख्यामाह—

इतीति ।

दन्त=३२, सूर्य=१२, वसु=८ एभिर्मिलितैः संख्या द्विपञ्चाशद्वर्णात्मको (५२) मन्त्रो भवतीत्यर्थः । कीदृशः ? कवितालोकानुरागलक्ष्मी सम्पादकः तथाऽघहृत् पापहर्त्ता ॥५४-५५-५६॥

रुक्मिणी वल्लभ मन्त्र का उद्धार किया जाता है । सत्य=दकार, शौरि=नकार, तृतीय=जकार, तुर्य=झकार, ये चार, वर्ण, शिखी=रेफ, वामनेत्रा=ईकार, शिखण्ड=अनुस्वार इनसे युक्त हो, जय कृष्ण जय-जय कृष्ण निरन्तर,

आत्मभू=ककार, शिखी=रेफ, शक्ति=ईकार, अर्थात् क्री, ड, आस्यवृत्त=आकार सहित डा, सक्त, प्रमुदित चेत से, (प्र मुदित चेत से नि) नित्य, इसके बाद प, रक्त=रेफ, दृक्=इकार,=प्रि, य, गुरु=आकार,=या, मारुत=य, चतुर्थी विभक्ति=कृष्ण=कृष्णाय, इक्षु कार्मुक=क्लीं, इसके बाद दशाक्षर मन्त्र, सलव=बिन्दु सहित धरा=एकार=ऐं, अचलसुता=ह्रीं, रमा=श्रीं, इन बीजों से लोम प्रतिलोम क्रम से संपुटित=अर्थात् द्रीं न्रीं ज्रीं झ्रीं जय कृष्ण जय कृष्ण निरन्तर क्रीडासक्त प्रमुदित चेत से नित्य प्रियाय कृष्णाय क्लीं गोपीजन वल्लभाय स्वाहा ऐं ह्रीं श्रीं—श्रीं ह्रीं ऐं, यह बावन अक्षरों का काव्यकला, और लक्ष्मी प्रद पापहर्ता रुक्मिणीवल्लभ मन्त्र है ॥५४॥५५॥५६॥

अस्य मन्त्रस्य ऋष्यादिकमाह—

मुखवृत्तेति ।

मुखवृत्तनन्दयुतनारदो मुनिः
छन्द उक्तममृतादिकं विराट् ।
त्रिजगद्विमोहनसमाह्वयो हरिः
खलु देवताऽस्य मुनिभिः समीरिता ॥५७॥

मुखवृत्तमाकारः नन्देति स्वरूपम् आभ्यां युतो नारदः, तथा च आनन्दनारदऋषिः अमृतादिकं विराट् छन्दस्त्रैलोक्यमोहनो हरिर्देवता नारदादिभिर्मुनिभिः कथिता ॥५७॥

इस मन्त्र के ऋषि आनन्द नारद, छन्द अमृतविराट्, देवता त्रैलोक्य मोहन श्रीकृष्ण हैं ॥५७॥

अङ्गविधि दर्शयति—

वसुमित्रेति ।

वसुमित्रभूधरगजात्मदिङ्मयै-
र्मनुवर्णकैस्त्रिपुटसंस्थितैः पृथक् ।
निजजातियुङ्निगदितं षडङ्गकम्
क्रिययैव तत् खलु जनानुरञ्जनम् ॥५८॥

वसुः=८, मित्रः=१२, भूधरः=७, गजः=८, आत्मा=१, दिक्=१० एतत् सङ्ख्याकैर्मन्त्राक्षरैस्त्रिपुटसंस्थितैः, तथा च ऐं ह्रीं श्रीं

द्रीं त्रीं ज्रीं भ्रीं जयकृष्ण ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं जयकृष्ण-निरन्तरक्रीडासक्त ऐं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा —इत्यादि क्रिययैव षडङ्ग-क्रिययैव सर्वजनानुरागं जनयति ।।५८।।

आठ, बारह, सात, आठ, एक, दस, संख्या के मन्त्राक्षरों से जो तीन बीजों से संपुटित हो इनसे षडङ्गन्यास करना चाहिए। प्रयोग—ऐं ह्रीं श्रीं द्रीं त्रीं ज्रीं झ्रीं जय कृष्ण ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, यह आठ अक्षरों का है, इसी प्रकार उपर्युक्त संख्या के अक्षरों को संपुटित करते हुए न्यास करना चाहिए। इस विधि से न्यास पूजन जपादि से सिद्ध करने पर सर्वानुराग प्राप्त होता है ।।५८।।

न्यासमाह—

अथेति ।

अथ संविशोध्य तनुमुक्तमार्गतः
विरचय्य पीठमपि च स्ववर्ष्मणा ।
करयोर्दशाक्षरविधिक्रमान् न्यसेत्
स षडङ्गसायकमनङ्गपञ्चकम् ।।५९।।

अथानन्तरं तनुं शरीरम् उक्तमार्गतः पूर्वोक्त भूतशुद्धयाः प्रकारेण संशोध्यानन्तरं स्ववर्ष्मणा स्वशरीरेण पीठमारचय्य करयोः करयुगले दशाक्षरोक्तप्रकारेण षडङ्गम् अङ्गषट्कं सायकान् च शोषणादीन् बाणान् अनङ्गपञ्चकं कामबीजमन्मथकन्दर्पमकरध्वजमनोभूतसंज्ञकं कामपञ्चकं न्यसेत् ।।५९।।

पूर्वोक्त विधि से भूत शुद्धि द्वारा शरीर का शोधन करके अपने शरीर में पीठ की कल्पना कर दोनों हाथ में दशाक्षर मन्त्र के अनुसार षडङ्ग न्यास, और शोषण आदि पञ्च बाण न्यास, तथा काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज, मनोभूत पांच काम नामों का न्यास भी करे ।।५९।।

इममेवार्थं विविच्य दर्शयति—

मनुनेति ।

मनुना त्रिशो न्यसतु सर्वतस्तनौ
स्मरसम्पुटैस्तदनु मातृकाक्षरैः ।
दशतत्वकादिदशवर्णकीर्त्तितं
त्वथ मूर्त्तिपञ्जरवसानमाचरेत् ।।६०।।

मनुना मूलमन्त्रेण पूर्वं शरीरे त्रिव्यापकङ्कुर्यात् तदनन्तरं प्रतिवर्णं कामबीजपुटितैर्मातृकाक्षरैः त्रिशो न्यसतु, दशवर्णकीर्तितं दशाक्षरोक्त दशतत्वादिकान् न्यसेत्, तत्त्वन्यासादि मूर्त्तिपञ्जरान्तं विन्यस्य ।।६०।।

मूलमन्त्र से तीन बार सर्वशरीर में व्यापक न्यास करके काम बीज से संपुटित मातृकाक्षरों से भी तीन बार न्यास करे। दशाक्षर मन्त्र के न्यास प्रसंग में वर्णित दस तत्व, न्यास तथा मूर्तिपञ्जर न्यास में करे ।।६०।।

सृजतिस्थिती दशषडङ्गसायकान्
न्यसतात्ततोऽन्यदखिलं पुरोक्तवत् ।
प्रविधाय सर्वभुवनैकसाक्षिणं
स्मरतान्मुकुन्दमनवद्यधीरधीः ।।६१।।

सृष्टिस्थिती समाचरेत् दशाङ्गानि षडङ्गानि बाणांश्च देहे विन्यसेत्। तदनन्तरम् आत्मार्चनाद्यखिलं पूर्ववत् कृत्वा सकललोकद्रष्टारं श्रीकृष्णं स्मरतात् चिन्तयतु, निर्मलास्थिराबुद्धिर्यस्य स तथा तादृशः साधकः ।।६१।।

निर्मल बुद्धि वाले साधक को चाहिए कि वह सृष्टि-स्थिति न्यास, दशाङ्ग, षडङ्ग न्यास, बाण न्यास, करे। अन्य सभी विधियों का पूर्वोक्त रीति से सम्पादन करके सर्वभुवन के एक मात्र साक्षी श्रीकृष्ण का स्मरण करे ।।६१।।

ध्यानमाह—

अथेति ।

अथ भूधरोदधिपरिष्कृते महो-
न्नतशालगोपुरविशालवीथिके ।
घनचुम्ब्युदग्रसितसौधसङ्कुले
मणिहर्म्यविस्तृतकपाटवेदिके ।।६२।।

अथानन्तरं स्वके पुरे मणिमण्डपे सुरपादपस्य कल्पवृक्षस्याऽधो मणिमयभूतले परिस्फुरत् पृथुसिंहवक्त्रचरणाम्बुजासने स्थूलसिंहमुखाकारपादान्वितपीठपद्मासने समुपविष्टमच्युतम् अभिचिन्तयेत्। कीदृशे पुरे? भूधराः पर्वताः उदधिः समुद्रः एतैः परिष्कृते वेष्टिते तथा महोन्नतः अत्युच्चः शालः प्राकारो गोपुरं बहिर्द्वारं च यत्र तस्मिन् तथा विशाला

महती वीथिका पन्थाः यत्र तत्र कर्मधारयः तथा मेघस्पर्शि अतिशुद्ध-धवल गृहव्याप्ते तथा मणिमयगृहे विस्तीर्णाः कपाटाः तथा वेदिका परिष्कृतभूमिर्यत्र तत्र ॥६२॥

इसके बाद कल्पवृक्ष के अधोभाग में देदीप्यमान मणिमय भूतल पर चमकने वाले विशाल सिंहाकार दिव्य सिंहासन पीठ पर विराजमान श्रीकृष्ण का चिन्तन करे।

वह दिव्य सिंहासन पीठ कैसा है उसकी विशेषताएं बताते हैं। वह पर्वत और समुद्र से घिरा है, जहां उच्च प्राकार गोपुर और विशाल विथियाँ हैं, जो गगन चुम्बी अत्युच्च भवनों से शोभित हैं, जहां मणिमय प्रासाद, विशाल कपाट तथा परिष्कृत भूमि है, ऐसे मनोरम पीठ पर समासीन श्रीकृष्ण का चिन्तन करे ॥६२॥

पुनः कीदृशे पुरे ?

द्विजभूपविट्चरणजन्मनां गृहै-
र्विविधैश्च शिल्पिजनवेश्मभिस्तथा ।
इभसप्त्युरभ्रखरधेनुसैरिभ-
च्छगलालयैश्च लसितैः सहस्रशः ॥६३॥

सहस्रशो लोकैर्ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां नानाप्रकारगृहैः तथा शिल्पिजनानां गृहैस्तथा हस्त्यश्वमेषगर्दभधेनुमहिषच्छगलानां गृहैः शोभिते ॥६३॥

परसहस्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों शूद्रों, शिल्पीजनों के विविध शैली से निर्मित भवनों तथा हाथी, अश्व, मेष, गौ भैंस अजाओं के लिए बनाए गए आवास गृहों से शोभित सिंहासन पर समासीन श्रीकृष्ण का चिन्तन करे ॥६३॥

पुनः कीदृशे ?

विविधापणाश्रितमहाजनाहृत-
क्रयविक्रयद्रविणसञ्चयाञ्चिते ।
जनमानसाहृतिविदग्धसुन्दरी-
जनमन्दिरैः सुरुचिरैश्च मण्डिते ॥६४॥

नानाप्रकारविपणिसमाश्रिते महाजनाहृतक्रयविक्रयद्रविणसंचय-व्याप्ते। पुनः कीदृशे ? जनानां वित्तापहरणे चतुराः ये वेश्याजनास्तेषां गृहैः शोभमानैरलंकृते ॥६४॥

विभिन्न प्रकार के व्यापारों का आश्रय करने वाले धनिकों द्वारा एकत्रित की गई क्रय-विक्रय की वस्तु तथा तदर्थ संगृहीत विपुल धन से विलसित, तथा जनमानस को बलात् आकृष्ट करने वाली अति चतुर नगर सुन्दरियों के सुन्दर भवनों से मण्डित सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का चिन्तन करे ॥६४॥

पुनः कीदृशे पुरे—

पृथुदीर्घिकेति ।

पृथुदीर्घिकाविमलपाथसिस्फुर-
द्विकचारविन्दमकरन्दलम्पटैः ।
वरहंससारसरथाङ्गनामभि-
र्विहगैर्विघुष्टककुभि स्वके पुरे ॥६५॥

स्थलसरोवरनिर्मलोदके देदीप्यमानविकसितकमलमकरन्दास्य रसलोलुपैः श्रेष्ठहंससारसचक्रवाकसंज्ञकैः पक्षिभिर्ध्वनिता दिशा यस्मिन् ॥ ६५ ॥

शोभा के लिए बनाए गए विशाल सरोवर के निर्मल जलों में देदीप्यमान प्रफुल्ल लाल कमलों के मकरन्द पान करने के लिए लालायित, मधुकर, हंस, सारस, चक्र वाक नामक पक्षियों की ध्वनियों से गुञ्जित हैं दिशाएं जिसमें ऐसे दिव्य सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥६५॥

पुनः कीदृशे मणिमण्डपे ?

सुरपादपैः सुरभिपुष्पलोलुप
भ्रमराकुलैर्विविधकामदैर्नृणाम् ।
शिवमन्दमारुतचलच्छिखैर्वृते
मणिमण्डपे रविसहस्रसप्रभे ॥६६॥

कल्पवृक्षैः सुगन्धिपुष्पलुब्धभ्रमरव्याप्तैः मनुष्याणां विविधकामदैः शुभमन्दमारुतचलदग्रभागैः तैर्वेष्टिते। सूर्यसहस्रसमानप्रभे ॥६६॥

जो सुगन्धित पुष्प रस पान के लिए लोलुप भ्रमरों से सेवित है मनुष्यों को मनोवाञ्छित फल देने वाले, मन्द सुगन्ध शीतल वायु के स्पर्श से मन्द-मन्द हिल रहे हैं शाखाओं के अग्रभाग जिनके ऐसे कल्पवृक्षों से परिवेष्टित सिंहासन पर विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥६६॥

पुनः कीदृशे—

मणीति ।

मणिदीपिकानिकरदीपितान्तरे
तनुचित्रविस्तृतवितानशालिनि ।
ललिते पिकस्वरविचित्रदामभिः
सुसुगन्धि गन्धसलिलोक्षितस्थले ॥६७॥

मणिरेवदीपिका तस्याः नमूहैः प्रकाशितमध्यभागे । पुनः कीदृशे ? सूक्ष्मविचित्रविस्तीर्णचन्द्रातपयुक्ते । पुनः कीदृशे ? विकसितनानाप्रकार-पुष्पमालाभिः शोभिते अतिसुरभिसलिलसिक्तस्थाने ॥६७॥

मणिरूपी दीपावलियों से प्रकाशित है मध्यभाग जिसका, अतिसूक्ष्म तन्तुओं से निर्मित विचित्र शोभा को विस्तार करने वाले दुशालों से चमत्कृत, कोयलों के दिव्य स्वरों, विचित्र तोरण मालाओं, से शोभित, तथा अति सुगन्ध जल से संसिक्त भूमि पर विद्यमान सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का चिन्तन करना चाहिए ॥६७॥

पुनः कीदृशे—

प्रमदेति ?

प्रमदाशतैर्मदविघूर्णितेक्षणै-
र्मदजालसैः करविलोलचामरैः ।
अभिसेविते स्खलितमञ्जुभाषितैः
स्तनभारभङ्गुरकृशावलग्नकैः ॥६८॥

स्त्रीशतैर्मदविघूर्णितनेत्रैर्मदजनितालस्यसहितैः हस्तस्थितचञ्चल-चामरैः ईषत्स्खलितमनोहरवचनैः स्तनभारनम्रसूक्ष्ममध्यप्रदेशैः परितः सेविते ॥६८॥

मद से लाल-लाल हैं नेत्र जिनके, मद जन्य आलस्य से शिथिल सी, हाथों में चामर लेकर डुलाने वाली, काममद विह्वलता वश थोड़ा सा लडखडा कर बोलने वाली—स्तनभार के गौरव से झुका सा है कटि प्रदेश जिनके ऐसी परशत प्रमदाओं से संसेवित श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥६८॥

कथंभूतस्य सुरपादपस्य ?

अविरामधारमणिवर्य्यवर्षिणः
श्रमहानिदामृतरसच्युतोऽप्यधः ।
सुरपादपस्य मणिभूतलोल्लसत्
पृथुसिंहवक्त्रचरणाम्बुजासने ॥६९॥

अविश्रान्तमणिश्रेष्ठधारावर्षिणः । पुनः कीदृशस्य ? श्रमहानिक-रामृतरसश्राविनः ॥६९॥

निरन्तर पद्मरागादि मणियों की वर्षा करने वाले, परिश्रम को दूर करने के लिए सुधारस प्रवाहित करने वाले, कल्पवृक्ष के अधोभाग में मणिमय भूतल पर उल्लसित विशाल सिंह के मुख तथा पादाकार सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥६९॥

कीदृशमच्युतम् ?

अभिचिन्तयेत्सुखनिविष्टमच्युतं
नवनीलनीरुहकोमलच्छविम् ।
कुटिलाग्रकुन्तललसत्किरीटकं
स्मितपुष्परत्नरचितावतंसकम् ॥७०॥

नूतननीलोत्पलरम्यकान्तिम् । पुनः कीदृशम् ? कुटिलाग्रकेशेषु स्फुरत् किरीटं यस्य तम् । पुनः कीदृशम् ? स्मितम् ईषद्विकसित पुष्परत्नानि च तैः रचितोऽवतंसो येन तम् ॥७०॥

पूर्वोक्त गुण विशिष्ट मणिमय भूतल पर विद्यमान दिव्य सिंहासन पर विराजमान, नवीन नील कमल की सी है कान्ति जिनकी, जिनके घुंघराले नील केश पर किरीट शोभा पा रहा, ईषद् विकसित पुष्परूपी रत्नों को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥७०॥

सुललाटमुन्नसमुदञ्चितभ्रुवं
विपुलारुणायतविलोललोचनम् ।
मणिकुण्डलास्त्रपरिदीप्तगण्डकं
नवबन्धुजीवकुसुमारुणाधरम् ॥७१॥

तथा शोभमानललाटम् तथा उच्चनासिकम् उद्गच्छद् भ्रूलता-कम् तथा स्थूलारुणवर्णदीर्घचञ्चलनयनं तथा मणिमयकुण्डलकिरण-परिशोभितगण्डस्थलं यथा नूतनबन्धुजीवपुष्पसदृशाऽरुणाधरम् ॥७१॥

जिनका ललाट सुन्दर है, नासिका जिनकी उच्च है, जिनकी भ्रू लता विस्तृत हैं जिनके नेत्र विशाल अरुणिमायुक्त चञ्चल हैं, जिनका गण्डस्थल मणिमय कुण्डलों की कान्ति से प्रदीप्त है, जिनका अधर बन्धुजीव पुष्प के समान लाल-लाल है, ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥७१॥

पुनः कीदृशम् ?
स्मितेति ।

स्मितचन्द्रिकोज्ज्वलितदिङ्मुखं स्फुर-
त्पुलकश्रमाम्बुकणमण्डिताननम् ।
स्फुरदंशुरत्नगणदीप्तभूषणो-
त्तमहारदामभिरुपस्कृतांसकम् ॥७२॥

हासचन्द्रकिरणधवलीकृतदिङ्मुखं तथा स्फुरद्रोमाञ्चजन्यप्रस्वेद-विन्दु शोभितवदनम् । पुनः कीदृशम् ? स्फुरद्देदीप्यमानकिरणरत्नसमूह-प्रकाशमानभूषणश्रेष्ठहारमालाभिः शोभितस्कन्धम् ॥७२॥

पूर्णचन्द्र की किरणों के समान उज्ज्वल कान्ति से धवलित की हैं, दिग् विभागों को जिन्होंने, प्रस्फुट रोमाञ्च जन्य श्रम बिन्दुओं से शोभित मुखारविन्द है जिनका, जिनके आभूषण चमकने वाले मणिसमूहों से प्रदीप्त हैं और उसी तरह की हारमालाओं से शोभित स्कन्ध है जिनका ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥७२॥

घनसारकुङ्कुमविलिप्तविग्रहं
पृथुदीर्घषड्द्वयभुजाविराजितम् ।
तरुणाब्जचारुचरणाब्जमङ्गजो-
न्मथिताङ्गमङ्कगकराम्बुजद्वयम् ॥७३॥

पुनश्चन्दनकुङ्कुमाभ्यां परिलिप्तशरीरं पुनः स्थूलदीर्घद्वादशहस्तै-र्विराजितं तथा नूतनारुणवर्णपद्मसदृशचरणपद्मं पुनः कामपीडितदेहं पुनः स्वाङ्के आरोपितहस्तद्वयम् ॥७३॥

जिनके विग्रह में श्रीखण्डचन्दन पंक तथा कुंकुम पंकों का आलेपन है, जो विशाल द्वादश भुजाओं से शोभित हैं, कोमल-कमल के समान सुन्दर हैं, चरण कमल जिनके, काम से उन्मथित हैं अंग जिनके जो अपने अंक में दो भुजाओं को निविष्ट किए हुए हैं ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥७३॥

स्वाङ्कस्थभीष्मकसुतोरुयुगान्तरस्थम्
तां तप्तहेमरुचिमात्मभुजाम्बुजाभ्याम् ।
श्लिष्यन्तमार्द्रजघनामुपगूहमाना-
मात्मानमायतलसत्करपल्लवाभ्याम् ॥७४॥

पुनः स्वाङ्के स्थितताया रुक्मिण्या ऊरुद्वयाभ्यन्तरे विद्यमानं पुनस्तां रुक्मिणीं तप्तसुवर्णकान्ति स्वीयहस्तपद्माभ्यामालिङ्गन्तम् । कीदृशीं ताम् ? आर्द्रजघनां पुनरात्मानं श्रीकृष्णं दीर्घमनोहरपाणिपल्लवाभ्याम् आलिङ्गन्तीम् ॥७४॥

अपने अंक में विराजमान श्रीरुक्मिणी के जंघा द्वय के मध्य में श्रीकृष्ण हैं, ऐसे श्रीकृष्ण का अपनी लम्बी भुजाओं से गाढ आलिंगन करती हुई सुवर्ण के समान पीतवर्णा आर्द्र जघना श्रीरुक्मिणी को भी भगवान् स्वयं अपनी भुजाओं से गाढ आश्लेष करते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥७४॥

आनन्दोद्रेकनिघ्नां मुकुलितनयनेन्दीवरां स्रस्तगात्रीं
प्रोद्यद्रोमाञ्चसान्द्रश्रमजलकणिकामौक्तिकालङ्कृताङ्गीम् ।
आत्मन्यालीनबाह्यान्तरकरणगणामङ्गकैर्निस्तरङ्गै-
र्मज्जन्तीं लीननानामतिमतुलमहानन्दसन्दोहसिन्धौ ॥७५॥

पुनः स्वात्मानन्दोद्रेकव्याप्तां पुनः मुद्रितनयननीलोत्पलां पुनः प्रोद्यत्तनुपुलकजन्यनिविडप्रस्वेदबिन्दुरूपमौक्तिकशोभितदेहां पुनः आत्मनि श्रीकृष्णे सम्यग्विलीनबाह्याभ्यन्तरेन्द्रियसमूहां पुनर्व्यापाररहितैः शरीरा-वयवैरतिशयितमहानन्दसमूहसागरे निमग्नां पुनः विगतचञ्चलमतिम् ॥ ७५ ॥

जो निरतिशय आनन्द विभोर होकर दोनों नेत्र कमलों को बन्द किए हुई हैं, जिनका शरीर समर्पित होने के कारण शिथिलसा है, जो आनन्दातिरेक से रोमाञ्चित है तथा विलास जन्य श्रम से उत्पन्न स्वेद बिन्दु रूपी मोती की माला से अलंकृत है, जिनकी बाह्य इन्द्रियां तथा अन्तरिन्द्रियां श्रीकृष्ण में समर्पित हैं, जो व्यापार रहित शरीरावयवों से निरतिशय महान् आनन्द सिन्धु में निमग्न हैं, ऐसी निश्चलमति श्रीरुक्मिणी का गाढ आलिंगन करने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥७५॥

पुनः कीदृशं परमेश्वरम् ?

सत्याजाम्बवतीभ्यां
दिव्यदुकूलानुलेपनाभरणाभ्याम्
मन्मथशरमथिताभ्यां
मुखकमलचञ्चललोचनभ्रमराभ्याम् ।।७६।।

सत्यभामाजाम्बवतीभ्यामालिङ्गितम् । कथं भूताभ्याम् ? उत्कृष्टानि पट्टवस्त्रानुलेपनाभरणानि ययोस्ताभ्यां पुनः कामशरपीडिताभ्यां पुनः कृष्णमुखविषयकचञ्चलनेत्रभ्रमराभ्याम् ।।७६।।

जो दिव्य वस्त्रों, दिव्य अंग रागों, दिव्य आभूषणों से अलंकृत हैं, तथा काम बाण से पीड़ित हैं, जिनके नेत्र रूपी, चञ्चल भ्रमर, श्रीकृष्ण मुख कमल के मकरन्द पान करने के लिए उत्सुक हैं, ऐसी सत्यभामा तथा जाम्बवती से आलिगित श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।७६।।

भुजयुगलाश्लिष्टाभ्यां
श्यामारुणललितकोमलाङ्गलताभ्याम् ।
आश्लिष्टमात्मदक्षिण
वामगताभ्यां करोल्लसत् कमलाभ्याम् ।।७७।।

पुनः परमेश्वरस्य भुजयुगलेनाऽऽलिङ्गिताभ्याम् । यथाक्रमनीलारुणवर्णे मनोहरे कोमले चाऽङ्गलते ययोस्ताभ्यां पुनः परमेश्वस्य दक्षिणवामगताभ्यां पुनः पाणिस्फुरितपद्माभ्याम् ।।७७।।

जिनका वर्ण क्रमशः नील तथा अरुण है, अति सुन्दर अंगलता है जो भगवान् श्रीकृष्ण की दक्षिण वाम भुजाओं से आलिंगित हैं, जिनके करकमलों में कमल पुष्प हैं, ऐसी क्रमशः दक्षिण-वाम पार्श्ववर्तिनी सत्यभामा तथा जाम्बवती से आश्लिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।७७।।

पुनः कीदृशम् ?

पृष्ठगया कलिन्दसुतया करकमलयुजा
सम्परिरब्धमञ्जनरुचा मदनमथितया ।
पद्मगदारथाङ्गदरभृद्भुजयुगलं
दोर्द्वयसक्तवंशविलसन्मुखसरसिरुहम् ।।७८।।

परमेश्वरपृष्ठदेशवर्त्तिन्या यमुनया हस्तधृतकमलया समालिङ्गितम्; किम्भूताया श्यामया ? पुनः कामपीडितया । पुनः कीदृशं परमेश्वरम् ? पद्मगदाशङ्खचक्रयुक्तहस्तचतुष्टयं हस्तद्वयधृतवंशविलसन्मुखकमलम् ।।७८।

जिनके करकमलों में कमल पुष्प हैं, जो कामदेव से मथित हैं, जो श्याम वर्ण वाली हैं, ऐसी कलिन्दतनयासे आलिंगित, शंख, चक्र गदा पद्म को धारण करने वाले तथा दोनों करकमलों में विलसित वंशी के संयोग से जिनका मुख कमल शोभित है, ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करे ।।७८।।

दिक्ष्विति ।

दिक्षु बहिः सुरर्षियतिभिः खेचरपरिवृढै-
र्भक्तिभरावनम्रतनुभिःस्तुतिमुखरमुखैः ।
सन्ततसेव्यमानममनोवचनविषयक-
मर्थचतुष्टयप्रदममुं त्रिभुवनजनकम् ।।७९।।

तृतीयपटलोक्त क्रमेणेत्यर्थः । पुनः बहिर्दिक्षु देवर्षियतिभिः खेचरमुख्यैर्भक्त्यतिशयनम्रदेहैः । परिवृढैः प्रधानैः स्तुतिभिः वाचालवदनैर्निरन्तरं सेवितं पुनः मनसोवाचामगोचरं पुनर्धर्म्मार्थकाममोक्षफलचतुष्टयप्रदं पुनस्त्रैलोक्यजनकम् ।।७९।।

मण्डप के बाहर विभिन्न दिशाओं में विद्यमान, जिनका शरीर लोकोत्तर भक्तिभाव से विनम्र है, जिनके मुखों से स्तुति प्रार्थना की धारा प्रवाहित है, ऐसे स्वर्गाधिपति देवों, ऋषियों, योगियों से जो सदा संसेवित हैं, वाङ्मनसातीत है, पुरुषार्थ चतुष्टय को देने वाले त्रिलोकीनाथ भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ।।७९।।

सान्द्रानन्दमहाब्धिमग्नममले धाम्नि स्वकेऽवस्थितं
ध्यात्वैवं परमं पुमांसमनघात्संप्राप्य दीक्षां गुरोः ।
लब्ध्वाऽमुं मनुमादरेण सितधीर्लक्षं जपेद्योषिताम्
वार्त्ताकर्णनदर्शनादिरहितो मन्त्री गुरूणामपि ।।८०।।

पुनः निबिडानन्दमहासमुद्रमग्नम् । स्वीये निर्मले तेजसितद्रूपेणाऽवस्थितम् एवमुक्तरूपं परमेश्वरं विचिन्त्य निष्पापात् गुरोर्दीक्षामन्त्रोपदेशविधिं प्राप्याऽमुं मन्त्रं लब्ध्वा तीक्ष्णबुद्धिः आदरात् लक्षमेकं जपेत् ।

कीदृशः साधकः ? स्त्रीणां वृद्धानामपि कथाश्रवणनिरीक्षणपराङ्मुखः ॥ ८० ॥

जिनके दिव्य स्वरूप में निरवधि आनन्द समुद्र लहराता है जो अपते ही स्वरूपभूत अमल धाम (गौर तेज) आल्हादिनी शक्ति श्रीराधा में अवस्थित हैं ऐसे परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए, निष्पाप गुरु से दीक्षा लेकर उक्त मन्त्र को विशुद्ध भक्ति से एक लाख जपे। साधक के लिए शर्त यह है कि तरुण स्त्रियों की बात तो दूर है, किन्तु वृद्धा स्त्रियों के साथ भी बात करना, देखना, अथवा किसी प्रकार का भी सम्बन्ध करना निषिद्ध है ॥८०॥

होमं सेवां चाऽऽह—

जुहुयादिति।

जुहुयाच्च दशांशकं हुताशे
ससिताक्षौद्रघृतेन पायसेन।
प्रथमोदितपीठवर्यकेऽमुं
प्रयजेन्नित्यमनित्यताविमुक्त्यै ॥८१॥

हुताशे वह्नौ दशांशकम्। अयुतमेकं शर्करामधुघृतयुक्तेन परमान्नेन जुहुयात्। किञ्च पूर्वोक्तदशाष्टादशाक्षरकथिते पीठश्रेष्ठे नित्यममुं यजेत्। किमर्थम्? अनित्यः संसारस्तस्य परिहरणाय ॥८१॥

उक्त मन्त्र को एक लाख जपने के बाद अग्नि में उसका दशांश हवन, शर्करा, मधु, घृत युक्त पायस से करे। और पूर्वोक्त दशाक्षर और अष्टादशाक्षर के प्रसंग में वर्णित पीठ पर भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करे। इस क्रिया से साधक को संसार से मुक्ति मिलती है ॥८१॥

आरभ्याऽथ विभूतिन्यासक्रमतः शरान्तमभ्यर्च्य।
मूर्त्याद्यङ्गान्तं चात्मानं विंशत्यर्णोदितयन्त्रवरे ॥८२॥
मध्येबीजं परितो वरुणेन्दुयमेन्द्रदिक्षु संलिख्य।
बीजचतुष्कं तदपि चत्वारिंशद्भिरक्षरैर्व्द्यधिकैः ॥८३॥
शिष्टैः प्रवेष्टच शिवहरिवस्वाद्यग्निष्वथ क्रमाद्विलिखेत्।
वाङ्मायाश्रीमन्त्रास्तद्वद्रक्षोम्बुपानिलाश्रिषु च ॥८४॥

शेषं पूर्वोदितवद्विधाय पीठं यथा वदभ्यर्च्य।
सङ्कल्प्य मूर्त्तिमत्राऽऽवाह्याऽभ्यर्चयतु मध्यबीजे तम् ॥८५॥

आरभ्येत्यादि विभूतिपञ्जरमारभ्य न्यासक्रमेण बाणपर्यन्तं पूजयित्वा मूर्त्तिन्यासमारभ्याऽङ्गन्यासपर्यन्तं चात्मरूपं सम्पूज्य पूर्वोक्त विंशत्यक्षरमन्त्रोक्त यन्त्रश्रेष्ठकर्णिकामध्यस्थितवह्निपुरयुगमध्ये मध्यमबीजमध्ये बीजमिति पाठस्वरसात् हृल्लेखाबीजमिति रुद्रधरगोविन्दमिश्रप्रभृतयः। परस्थमध्यमबीजमिति लगति मध्यबीजं वाग्भवादिबीजत्रयमध्यस्थितं मारबीजमिति पाठे कामबीजं विलिख्य तत्परितश्च पश्चिमोत्तरपूर्वदक्षिणदिक्षु बीजचतुष्कं द्रीं न्रीं ज्रीं भ्रीं इति बीजचतुष्टयं विलिख्य तदपि बीजचतुष्टयं द्विचत्वारिंशत् जपादिस्वाहान्तैः शिष्टैर्मन्त्राक्षरैरुपरि वेष्टयेत्। अनन्तरं शिव ईशानः हरिरिन्द्रः पूर्वादि दिगित्यर्थः, वसुरग्निः आग्नेयादिक एवं नैऋर्तीवारुणीवायवीदिग् एतेषु कोणेषु क्रमेण वाग्भवभुवनेश्वरीश्रीबीजानि त्रिरावृत्य विलिखेत।

अवशिष्टं पीठविधानं पूर्ववत् समाप्य पीठं यथावत् पूजयित्वा तत्र पीठे कर्णिकामध्यस्थितकामबीजे रुक्मिणीवल्लभमूर्त्तिं सङ्कल्प्य ध्यात्वा तमावाह्य पूजयेत् ॥८२-८५॥

विभूति न्यास क्रम से आरम्भ करके बाण न्यास पर्यन्त की विधि से पूजा करके विंशत्यक्षर के प्रसंग में वर्णित यन्त्र पर मूर्तिपञ्जर न्यास से अंग न्यास पर्यन्त का न्यास विधान करे। मन्त्र की षट्कोण कर्णिका में मध्य में काम बीज लिखे। उसकी चारों ओर अर्थात् पश्चिम उत्तर दक्षिण, पूर्व दिशाओं में पूर्वोक्त चारों द्रीं न्रीं ज्रीं भ्रीं बीजों को लिखकर उन बीजों को भी शेष बयालीस अक्षरों (जपादि स्वाहान्त) से वेष्टित करे। उन बीजों को उत्तर, पूर्व, आग्नेय दिशाओं में, और नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य दिशाओं में ऐं ह्रीं श्रीं बीजों को तीन-तीन के क्रम से लिखे। और शेष विधि पूर्वोक्त प्रकार की है। अर्चना क्रम भी वही है। इस प्रकार पीठ पूजा करके कर्णिकास्थ काम बीज में रुक्मिणी वल्लभ श्रीकृष्ण को आवाहित करके पूजा करे ॥८२॥८३॥८४॥८५॥

मुखदक्षसव्यपृष्ठगबीजेष्वर्च्यास्तु शक्तयः क्रमशः।
रुक्मिण्याद्याः षट्स्वथकोणेष्वङ्गानि केशरेषु शरान् ॥८६॥

अनन्तरं देवस्य सन्मुखदक्षिणवामपृष्ठप्रदेशगतेषु बीजचतुष्टयेषु रुक्मिण्याद्याः शक्तयः पूज्याः षट्कोणेषु अङ्गानि केशरेषु शरान् पूजयेत् ॥८६॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण के संमुख दायें बायें पीछे लिखे बीजों पर क्रमशः रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती कालिंदी की पूजा करे। यन्त्र के षट्कोणों में अंगों की, केसरों में बाणों की पूजा करे ॥८६॥

लक्ष्म्याद्या दलमध्येष्वग्न्यादिषु तद्बहिर्ध्वजप्रमुखान् ।
अग्रेकेतुं श्यामं पृष्ठेविपमरुणममलरक्तरुचौ ॥८७॥
पार्श्वद्वये निधीशौसन्ततधाराभिवृष्टधनपुञ्जौ ।
हेरम्बशास्तृदुर्गाविष्वक्सेनान् विदिक्षु वह्न्यादि ॥८८॥
विद्रुममरकतदूर्वास्वर्णाभान् बहिरथेन्द्रवज्राद्यान् ।
यजनविधानमितीरितमावृतिसप्तकयुतं मुकुन्दस्य ॥८९॥

अग्न्यादिपत्रमध्येषु लक्ष्म्याद्याः पूज्याः। तत्रबहिर्भागे ध्वजप्रभृतीन् पूजयेत्। अनन्तरं देवस्य सन्मुखे श्यामवर्णकेतुनामानं गणं पूजयेत्। देवपृष्ठभागे अरुणवर्णं गरुडं पूजयेत्। देवपार्श्वद्वये निर्मलरक्तरुचीनिधीश्वरौ पूज्यौ कीदृशौ? निरन्तरधाराभि वृष्टधनसमूहौ।

वह्न्यादिविदिक्षुहेरम्बादीन् प्रवालादिवर्णान् पूजयेत्। अनन्तरं बहिर्दिक्षु इन्द्रादिलोकपालान् तथा वज्राद्यायुधानि पूजयेत्। इति पूर्वोक्तप्रकारेण मुकुन्दस्य श्रीकृष्णस्याऽऽवरणसप्तकं पूजाविधानं कथितम् इति ॥८७-८९॥

आग्नेय आदि कोणों में लक्ष्मी आदि शक्तियों की, उसके बाहर ध्वज आदियों की, पूजा करे। भगवान् के संमुख भागों में श्याम वर्ण केतु, पृष्ट भाग में अरुण वर्ण के गरुड, और दोनों पार्श्व भागों में निरन्तर धन रत्नों की वृष्टि करने वाले लाल-लाल वर्ण के निधीश्वरों (इन्द्र निधि नील निधि) की पूजा करनी चाहिए। आग्नेय आदि विदिशाओं में क्रमशः—मूँगा, मकरत, दुर्वा, सुवर्ण समान, कान्ति वाले गणेश, शिव, दुर्गा, विष्वक्सेनों की पूजा करे। इसके बाहर साङ्ग सायुध इन्द्रादि दस दिक्पालों की पूजा करे। इस प्रकार सप्तावरण युक्त श्रीकृष्ण की पूजा विधि बताई गई है ॥८७॥८८॥८९॥

इतीति।

इत्यर्चयन्नच्युतमादरेण
योऽमुं भजेन्मन्त्रवरं जितात्मा।

सोऽभ्यर्च्यते दिव्यजनैर्जनानां-
हृन्नेत्रपङ्केरुहतिग्मभानुः ॥९०॥

इति अमुना प्रकारेण यो जितेन्द्रियो अच्युतं कृष्णं भक्त्या पूजयन अमुं मन्त्रश्रेष्ठं सेवते स पुरुषः सुरैरपि पूज्यते। कीदृशः? लोकानां हृदयपद्मलोचनपद्मयोः सूर्यः सर्वजनवशीकरणमन्त्रः समर्थ इत्यपि पाठः ॥९०॥

इस प्रकार आदरपूर्वक जो जितात्मा साधक भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन करते हुए उक्त मन्त्र को जपता है वह देवताओं द्वारा भी पूजित होता है। और वह सर्वजन के हृदय, नेत्र रूपी कमलों के विकासक सूर्य के समान हो जाता है। अर्थात् उसके वश में सब हो जाते हैं ॥९०॥

सितेति।

सितशर्करोत्तरपयःप्रतिपत्त्या
परितर्पयेद्दिनमुखे दिनशस्तम्।
सलिलैः शतं शतमखश्रियमेष
स्वविभूत्युदन्वति करोत्युदबिन्दुम् ॥९१॥

सितशर्कराप्रधानप्रतिपत्त्या दुग्धबुद्ध्या जलैरेव दिनमुखे प्रातःकाले प्रतिदिनं शतकृत्वस्तं तर्पयेत्। अनन्तरं साधकः स्वाधिपत्यसमुद्रे इन्द्रस्य लक्ष्मीं जलबिन्दुवत् करोति ॥९१॥

जो साधक जल में ही मिस्री शर्करा दुग्ध बुद्धि करके प्रतिदिन प्रातःकाल १०० वार तर्पण करे तो उसके अपने ऐश्वर्य – समुद्र के सामने इन्द्र का ऐश्वर्य, बिन्दु के समान दीखने लगता हैं ॥९१॥

विदलदिति।

विदलद्दलैः सुमनसः सुमनोभि–
र्घनसारचन्दनबहुद्रवमग्नैः।
मनुनाऽमुना हवनतोऽयुतसंख्यं
त्रिजगत् प्रियः स मनुवित्कविराट् स्यात् ॥९२॥

अनेन मन्त्रेण सुमनसो जातीमालतीनामधेयस्य सुमनोभिः पुष्पैः विकसि। तैः कर्पूरयुक्तचन्दनस्य बहुद्रवव्याप्तैरयुतसंख्यं हवनतोऽयुतहोमेन सः मन्त्रो त्रैलोक्यस्य प्रियः कविश्रेष्ठश्च भवति ॥९२॥

जो साधक कपूर चन्दन केसर आदि द्रव्यों से युक्त जूहीमालती कमल आदि सौरभशाली पुष्पों के दलों से दस हजार हवन करता है, वह त्रिलोक प्रिय मन्त्रज्ञ, कवि सम्राट होता है ॥९२॥

ध्यानेति ।

ध्यानादेवास्य सद्यस्त्रिदशमृगदृशोवश्यतां यान्त्यवश्यं
कन्दर्पार्त्ता जपाद्यैः किमथ न सुलभं मन्त्रतोऽस्मान्नरस्य ।
स्पर्द्धामुद्धूय चित्रं महदिदमपि नैसर्गिकीं शश्वदेनं
सेवेते मन्त्रिमुख्यं सरसिजनिलया चाऽपि वाचामधीशा ॥९३॥

अस्य रुक्मिणीवल्लभस्य ध्यानात् शीघ्रं त्रिदशमृगदृशः देवाङ्गना अवश्यं वश्यतामायत्ततां प्राप्नुवन्ति । कथं भूताः ? कामपीडिताः । अथानन्तरं जपहोमादिनाऽस्मात् मन्त्रात् साधकस्य किं न सुलभम्, अपितु सर्वमेवसुलभमित्यर्थः । किञ्चेदमपि महच्चित्रं यत्सरसिजनिलया लक्ष्मीः वाचामधीशासरस्वती च स्वाभाविकीमसूयां त्यक्त्वा नित्यमेनं साधकश्रेष्ठं सेवेते ॥९३॥

इस रुक्मिणीवल्लभ मन्त्र के केवल ध्यान से ही देवाङ्गना भी काममोहित होकर साधक के वश में होती हैं। यदि कोई साधक इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है तो उसके लिए कौन वस्तु दुर्लभ हो सकती है अर्थात् सब कुछ प्राप्त कर सकता है। एक और आश्चर्य की बात यह है कि इस मन्त्र के साधक के यहां अपनी स्पर्धा-असूया को त्याग कर लक्ष्मी और सरस्वती एक साथ बैठ सकती हैं। इससे अधिक इसकी महिमा क्या हो सकती है ॥९३॥

आधीति ।

आधिव्याधिजरापमृत्युदुरितैर्भूतैः समस्तैर्विषै-
र्दौर्भाग्येन दरिद्रतादिभिरसौ दूरं विमुक्तश्चिरम् ।
सत्पुत्रैः सुसुतासुमित्रनिबहैर्जुष्टोखिलाभिः सदा
सम्पद्भिः परिजुष्ट ईडितयशा जीवेदनेकाः समाः ॥९४॥

किञ्च मनोदुःखरोगजरापमृत्युशोकशून्यः सकलप्राणिभिर्विषैः तथा दुरदृष्टेन तथा दरिद्रतादिभिरतिशयेन परित्यक्तो बहुकालं व्याप्य विशिष्टपुत्रसमेतः सत्पुत्रीमित्रसमूहेन सेवितः सदा समृद्धः ईडितयशाः स्तुतयशाः असौ साधकः अनेकाः समा हायनानि जीवेत् ॥९४॥

भक्तिपूर्वक मन्त्र को सिद्ध करने वाला साधक, आधि व्याधि बुढापा अकाल मृत्यु अनेक कल्मष, दुष्ट प्राणी विष दुर्भाग्य दरिद्रता, आदि विकारों से सर्वथा मुक्त होता है। सुपुत्र, सुपुत्री, सन्मित्रों से सम्मानित होकर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भरपूर होता हुआ, प्रथित कीर्ति होकर शतंजीवी होता है ॥९४॥

मन्त्रान्तरेभ्योऽस्याऽतिशयित्वमाह—

अखिलेति ।

अखिलमनुषु मन्त्रा वैष्णवा वीर्यवन्तो
महिततरफलाढ्यास्तेषु गोपालमन्त्राः ।
प्रबलतर इहैषोऽमीषु संमोहनाख्यो
मनुरनुपमसम्पत्कल्पनाकल्पशाखी ॥९५॥

सर्वेषु मन्त्रेषु वैष्णवमन्त्रा अतिशयेन सवीर्याः तेष्वपि वैष्णवमन्त्रेषु गोपालमन्त्रा अतिपूजितफलयुक्ताः तेष्वपि गोपालमन्त्रेषु एष संमोहनाख्य मन्त्रः प्रबलतरः प्रकृष्टबलयुक्तः, पुनः निरुपमैश्वर्यदानैककल्पवृक्षः ॥९५॥

सम्पूर्ण देवी देवताओं के मन्त्रों में वैष्णव मन्त्र सशक्त हैं, वैष्णव मन्त्रों में भी गोपाल श्रीकृष्ण मन्त्र अत्यधिक फलदायी हैं, उन गोपाल श्रीकृष्ण मन्त्रों में भी सम्मोहन कामबीजात्मक मन्त्र अथवा श्रीरुक्मिणीवल्लभ मन्त्र प्रबलतर है। यह सम्पत्ति किंवा वाञ्छित फल देने में कल्पवृक्ष के समान हैं ॥९५॥

मन्विति ।

मनुमिममतिहृद्यं यो भजेद्भक्तिनम्रो
जपहुतयजनाद्यैर्ध्यानवान्मन्त्रिमुख्यः ।
त्रुटितसकलकर्मग्रन्थिरुद्बुद्धचेताः
व्रजति स तु पदं तन्नित्यशुद्धं मुरारेः ॥९६॥

यो मन्त्रिमुख्यः साधकश्रेष्ठः ध्यानयुक्तः भक्त्या आराध्यतत्वज्ञानेन इमं मन्त्रं मनोहरं जपध्यानहोमादिभिर्भजेत् स मुरारेस्तत्प्रसिद्धं पदं व्रजति प्राप्नोति मुरा अविद्या तस्या नाशकस्य पदम् । कीदृशं पदम् ? अविनाशि सर्वकालुष्यरहितम्, स कीदृशः ? विनाशितसकलकर्मबन्धनः, पुनः कीदृशः ? उद्बुद्धचेता वस्तुग्रहणोन्मुखचित्तः ॥९६॥

जो ध्यानशील, मन्त्र तत्वविद् साधक भक्तिपूर्वक इस परम पावन मनोहर मन्त्र को जप होम पूजन आदि से सिद्ध करता है, उसके सारे सांसारिक कर्म-

बन्धन नष्ट हो जाते हैं, अन्त में वह भगवान् श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है ॥९६॥

अथ योगमाह—

अङ्गीकृत्येति ।

अङ्गीकृत्यैकमेषां मनुमथ जपहोमार्चनाद्यैर्मनूना-
मष्टाङ्गोत्सारितारिः प्रमुदितपरिशुद्धप्रसन्नान्तरात्मा ।
योगीयुञ्जीतयोगान्समुचितविहृतिस्वप्नबोधाहृतिः स्यात्
प्रागास्यश्चासने स्वे सुमृदुनि ससुखं मीलिताक्षो निविष्टः ॥९७॥

एषां मनूनां मन्त्राणां मध्ये एकं मनुं मन्त्रजपहोमादिभिः स्वीकृत्य वशीकृत्य अष्टाङ्गेन यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणा-समाधिलक्षणेन उत्सारितास्त्यक्ताः कामक्रोधादयोऽरयो येन स तथा हर्षितनिर्मल प्रसन्नचित्तो योगी प्राग्वदनः सन् योगान् चित्तवृत्तिनिरोधा-दीन् करोतु । कीदृशो योगी ? यथोचितविहारनिद्राप्रबोधाहारः, पुनः स्वकीये सुकोमले आसने समुपविष्टः, पुनः कीदृशः ? सुखेनाऽनायासेन संमीलिते मुद्रिते अक्षिणी येन सः ॥९७॥

इन सर्व पूर्वोक्त मन्त्रों में किसी एक को स्वीकार कर यम नियन आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि रूप अष्टांग योगों का अभ्यास करते हुए काम क्रोधादि षट् शत्रुओं को जीतकर प्रसन्न चित्त शुद्धान्त करण होकर पूर्व की ओर मुख करके नेत्रों को मूद कर सुकोमल आसन पर बैठकर जप हवन पूजन आदि से सिद्ध करे। तात्पर्य है कि अधिक जपा गया मन्त्र ही विशेष फलदायी होता है, चुनकर एक मन्त्र का ही अभ्यास करना चाहिए ॥९७॥

विश्वमिति ।

विश्वं भूतेन्द्रियान्तःकरणमयमिनेन्द्वग्निरूपं समस्तं
वर्णात्मैतत् प्रधाने कलनयनमये बीजरूपे ध्रुवेण ।
नीत्वा तत्पुंसि बिन्द्वात्मनि तमपि परात्मन्यथो कालतत्वे
तं वै शक्तो चिदात्मन्यपि नयतु च तां केवले धाम्नि शान्ते ॥९८॥

एतद्वर्णात्मकं समस्तं विश्वं भूतेन्द्रियान्तःकरणरूपं सूर्येन्द्वग्निरूपं प्रधाने प्रकृतिरूपे कलनयनरूपे कामबीजे प्रणवेन नीत्वा तत्र विलीनं विचिन्त्य तत्कामबीजं बिन्द्वात्मनि प्रसिद्धेऽनुस्वाराख्ये तमपि बिन्द्वात्मानं

नादाख्ये कालतत्वे परमात्मनि संहरेत् तमपि कालतत्वं चिद्रूपायां शक्तौ संहरेत्तामपि शक्तिं केवले तेजोमये स्वप्रकाशे धाम्नितेजसि शान्ते सर्वो-पद्रवरहिते नयतु ॥९८॥

इस भूत इन्द्रिय अन्तःकरण रूप तथा सूर्य चन्द्र अग्निरूप अक्षरात्मक जगत् को प्रणव से प्रधान-प्रकृति रूप कलात्मक काम बीज तक पहुंचा कर सम्पूर्ण जगत् को काम बीज में विलीन हुआ समझे। उस काम बीज को भी बिन्दुरूप आत्मा में लीन करे, उस बिन्दु रूप आत्मा को नाद नामक कालतत्वात्मक परमात्मा में समीट दे। उस नाद नामक कालतत्व को चिच्छक्ति में निवेश करे, उस चित् शक्ति को तेजोमय स्वप्रकाश श्रीधाम वृन्दावन में निमग्न करे ॥९८॥

कीदृशे ?

निर्द्वन्द्वे निर्विशेषे निरतिशयमहानन्दसान्द्रेऽवसानाऽ-
पेतेऽर्थे कृष्णपूर्वामलरहितगिरां शाश्वते स्वात्मनीत्थम् ।
संहृत्याऽभ्यस्य बीजोत्तममथशनकैर्लीननिश्वासचेताः
प्रक्षीणापुण्यपुण्यो निरुपमपरसंवित्स्वरूपः स भूयात् ॥९९॥

निर्द्वन्द्वे शीतोष्णादिद्वन्द्वविशेषरहिते विशेषो वैधर्म्यं तद्रहिते अत्य-न्तानन्दघने अनन्ते कृष्णगोविन्दादिनिर्मलशब्दानां प्रतिपाद्ये आत्मस्वरूपे इत्थम् अमुना प्रकारेण संहृत्य संहारं कृत्वा कामबीजं जपन् अथानन्तरं स्वयमेव निश्चलश्वासचित्तो भूत्वा प्रक्षीणपापपुण्यश्च भूत्वा स योगी निरूपमः परमसंविन्मयो भवति ॥९९॥

शीतोष्णादि द्वन्द्व रहित निरतिशय आनन्द घन सर्वोपद्रव रहित श्रीकृष्ण गोविन्दादि निर्मल वाणियों के वाच्य, स्वभावतो ऽपास्त समस्त दोष, शास्वत आत्मरूप श्रीकृष्ण में उक्त चित् शक्ति (उपासक जीव) को पहुंचावे। (इसी का नाम उपासना है, उप समीप भावनया आसना अर्थात् भावना से इष्टदेव के समीप बैठना) क्योंकि धाम धामी का अभेद है, धाम स्वरूप श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण स्वरूप धाम है, इस प्रकार श्वास प्रश्वास क्रम का शनैः शनैः निरोध करते हुए सतत काम बीज का अभ्यास करने से साधक पाप पुण्यों से मुक्त होकर भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष का भागी होता है ॥९९॥

मूलेति ।

मूलाधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभाभास्वरे विभ्रमन्तं
कामं बालार्ककालानलजठरकुरङ्गाङ्ककोटिप्रभाभम् ।

विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिर हसद्बन्धुजीवाभिरामं
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुं जगदुदयलयैकान्तहेतुं विचिन्त्य ।१००।

त्रिकोणात्मके मूलाधारे उद्यदादित्यवत् प्रकाशमाने भ्रममाणं कामबीजं नूतनादित्यप्रलयकालीनवह्निचन्द्रकोटितुल्यकान्ति पुनस्तडिन्मालासहस्रकान्ति पुनः नूतनपुष्पितबन्धूकवन्मनोहरं सत्वादिगुणत्रयेण ध्याप्तोऽनुस्वारसंज्ञको बिन्दुर्येन तं पुनः विश्वोत्पत्तिनाशैककारणम् ।।१००।।

मध्याह्न कालिक सूर्य के समान जाज्वल्य मान त्रिकोणात्मक मूलाधार चक्र पर भ्रमण करने वाले जिसकी सूर्य, प्रलयाग्नि और करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति है, और परसहस्र विद्युन्माला के समान चमक है, जो बन्धु पुष्प के समान लाल है, गुणत्रय से आक्रान्त कर लिया है बिन्दु रूप अनुस्वार को जिसने, ऐसे जगत्त्रय का कारण स्वरूप काम बीज का स्मरण करते हुए तद्वाच्य श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए। किंवा वक्ष्यमाण कुण्डलिनो शक्ति का स्मरण करना चाहिए ।।१००।।

तस्येति ।

तस्योर्द्ध्वे विस्फुरन्तीं स्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभाभास्वराभा-
मुद्गच्छन्तीं सुषुम्णासरणिमनुशिखामाललाटेन्दुबिम्बम् ।
चिन्मात्रां सूक्ष्मरूपां कलितसकलविश्वां कलां नादगम्यां
मूलं या सर्वधाम्नां स्मरतु निरुपमां हुंकृतोदञ्चितेरः ।।१०१।।

तस्य कामबीजस्य उपरि बिन्दुगतकुण्डलिनीं शक्तिं दीप्यमानां चिन्तयतु । किंभूताम् ? प्रव्यक्तमनोहरविद्युत्सहस्रवत् प्रकाशमानकान्ति पुनः ललाटचन्द्रबिम्बान्तं सुषुम्णारन्ध्रं यान्तीं पुनः अनु अनुगता बीजगतबिम्बात्मके वह्निशिखा ज्वाला यस्यां सा तथा तां पुनः किम्भूताम् ? चित्स्वरूपां पुनः दुर्लक्षां पुनराप्तसकलविश्वां पुनः कलारूपां, पुनर्नादानुमेयां पुनः सर्वतेजसां मूलभूतां, कीदृशोऽधिकारी ? हुंकारेण उदञ्चित ऊर्द्वमुत्पाटितइरो वायुरपानाख्यो येन स तथा ।।१०१।।

अपान वायु को हुंकार से ऊर्ध्वगत कराकर साधक, काम बीज के ऊपर विद्यमान बिन्दुगत कुण्डलिनी का चिन्तन करे। जो कुण्डलिनी प्रकट होने वाली विद्युन्माला के समान भास्वर है, बीजगत बिम्ब पर देदीप्यमान है अग्नि ज्वाला है जिसमें ऐसी सुषुम्णा सरणि से लालटस्थ चन्द्रबिम्ब के ऊपर पहुंची हुई है। चित्स्वरूप है, अत्यन्त सूक्ष्म, सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करने वाली, नादमात्र से अनुमेय है। जिसकी उपमा है नहीं, सम्पूर्ण प्रकाश पुञ्ज की मूल भूता है ।।१०१।।

नीवेति ।

नीत्वा तां शनकैरधोमुखसहस्रारारुणाब्जोदर-
द्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बममुतः पीयूषधारामृतिम् ।
रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिस्यन्दरूपां विशेद्
भूयोऽप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा विशेत् ।।१०२।।

तां कुण्डलिनीं शक्तिं शनकैर्यथा स्यादेवमधोमुखसहस्रदलारुणकमलमध्यद्योतमानपूर्णचन्द्रमण्डलं नीत्वा अस्माच्चन्द्रबिम्बात् अमृतधारावृष्टिं रक्तवर्णां वर्णात्मिकाम् अमृतस्रवरूपां पाययित्वा आत्मनिकेतनं मूलाधारे प्रवेशयेत् । भूयोऽनन्तरमपि तथैव तामुत्थाप्य तथा कृत्वा पुनस्तस्या निजस्थानं प्रापयेदिति ।।१०२।।

उस कुण्डलिनी को धीरे-धीरे अधोमुख वाले सहस्रदल अरुण कमल के मध्य प्रकाशित होने वाले चन्द्र मण्डल तक पहुंचाकर वहां से पीयूष धाराभि वर्षक लाल वर्ण मन्त्रमयी, अमृत द्रव पीकर पिलाकर स्वस्थान मूलाधार चक्र में प्रवेश करावे। पुनः मूलाधार से उठाकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचावे, फिर मूलाधार पर लावे, इसका इस प्रकार विनियोजन करे ।।१०२।।

एतादृशाभ्यासस्य फलमाह—
य इति ।

योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवमात्मनोऽन्तं
बीजेशं दुरितजरापमृत्युरोगान् ।
जित्वाऽसौ स्वयमिव मूर्त्तिमाननङ्गः
संजीवेच्चिरमलिनीलकेशपाशः ।।१०३।।

यः प्रत्यहमनेन प्रकारेण शरीरमध्ये कामबीजमभ्यस्यति आत्मनोऽन्तं मनोलयान्तमिदमभ्यस्यतीति क्रियाविशेषणम् असौ साधकः दुरितजरापमृत्युरोगान् पराभूय स्वयमेव देहधारिकन्दर्पो भूत्वा चिरकालं जीवति । कीदृशो ? भ्रमरवर्णवत् श्यामकेशसमूहः ।।१०३।।

जो साधक पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिदिन अपने शरीर के आधार बिन्दु पर मन के लीन होने तक काम बीज का अभ्यास, करता है, वह पाप जरा, अपमृत्यु रोगों को जीतकर स्वयं मूर्तिमान् कामदेव के समान सबको वश करने वाला होता है, भ्रमर के समान श्याम केश सौन्दर्य से दिव्य होकर चिरञ्जीवी होता है ।।१०३।।

स्फुटेति ।

स्फुटमधुरपदार्णश्रेणिरत्यद्भुतार्था
झटितिवदनपद्माद्विस्फुरत्यस्य वाणी ।
अपि च सकलमन्त्रास्तस्य सिध्यन्ति मङ्क्षु
व्युपरमघनसौख्यैकास्पदं वर्तते सः ॥१०४॥

अस्य साधकस्य मुखकमलाच्छीघ्रं सरस्वतीप्रभवति । किम्भूता ? प्रव्यक्तमनोहरपदवर्णसमूहात्मिका अत्याश्चर्य्यविषया किन्तु अस्य साधकस्य मङ्क्षु अन्येपि मन्त्राः सिध्यन्ति किञ्च ससाधकः अविश्रान्तनिविडसुख-मात्रस्थानं भूत्वा तिष्ठति ॥१०४॥

ऐसे साधक के मुख से तुरन्त स्पष्ट मधुर पद वर्ण शालिनी अर्थवती वाणी स्वतः स्फुरित होती है। ऐसे साधक के लिए अन्य मन्त्र स्वतः सिद्ध होते हैं। सर्वविध सुख सौविध्य का वह आस्पद होता है ॥१०४॥

भ्राम्यदिति ।

भ्राम्यन्मूर्त्तिं मूलचक्रादनङ्गं
स्वाभिर्भाभीरक्तपीयूषयुग्भिः ।
विश्वाकाशं पूरयन्तं विचिन्त्य
प्रत्यावेश्यास्तत्र वश्याय साध्याः ॥१०५॥

नार्यो नरो वा नगरी सभापि वा
प्रवेशितास्तत्र निशातचेतसा ।
स्युः किङ्कारास्तस्य झटित्यनारतं
चिराय तन्निघ्नधियो न संशयः ॥१०६॥

मूलचक्रान्मूलाधारे अत्र सप्तम्यर्थे पञ्चमी भ्रमणमूर्त्तिं कामबीजं स्वकीयाभिर्दीप्तिभिर्लोहितामृतयुक्ताभिर्ब्रह्माण्डमध्यप्रदेशं पूर्यमाणं ध्यात्वा निशातचेतसा तीक्ष्णमतिना तत्र नारीप्रभृतयः साध्यावश्यार्थं प्रत्यावेश्याः प्रक्षेप्तव्या अनन्तरं तत्र प्रवेशिताः प्रवेश प्रापिताः स्त्रीप्रभृतयस्तन्नि-मग्नधियस्तेनहृतचित्ताः तस्य साधकस्य शीघ्रं चिरकालमाज्ञाकारिणो भवन्ति, नाऽत्रसन्देहः ॥१०५-१०६॥

मूलाधार चक्र में सदा भ्रमण करने वाला मूर्तिस्वरूप काम बीज अपनी अरुण सुधाशालिनी दिव्य आभाओं से विश्वाकाश व्याप्त करता है। उस बीज

व्याप्त मध्याकाश मण्डल पर तदाकार मति से वशीकरण करने के लिए अपने साध्यों को प्रवेश करावे, चाहे वे साध्य नर हो या नारी हो, नगर हो या सभा हो, शीघ्र ही वशीभूत होकर साधक के सेवक होते हैं, इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥१०५॥१०६॥

तरणीति ।

तरणिदलसनाथे शक्रगोपारुणे यो
रविशशिशिखिबिम्बप्रस्फुरच्चारुमध्ये ।
हृदयसरसिजेऽमुं श्यामलं कोमलाङ्गं
सुसुखमुपनिविष्टं तं स्मरेद्वासुदेवम् ॥१०७॥

तत् द्वादशदलयुक्ते हृदयकमले इन्द्रगोपाख्यो रक्तकीटविशेषः तद्व-दरुणे सूर्यवह्निचन्द्रमण्डलशोभितचारुमध्यप्रदेशे अमुं श्यामवर्णं कोम-लाङ्गं सुकुमाराङ्गं सुखप्रकारेणोपविष्टं वासुदेवं चिन्तयेत् ॥१०७॥

इन्द्र गोपाल नामक लाल कीडे के समान है कान्ति जिनकी सूर्य, अग्नि चन्द्र मण्डल से शोभित द्वादश दल युक्त हृदय कमल पर सुखपूर्वक समासीन कोमल, श्याम वर्ण के श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥१०७॥

पादाम्भोजेति ।

पादाम्भोजद्वयेऽङ्गुल्यमलकिशलयेष्वावलौ सन्नखाना-
सत्कूर्मोदारकान्तौ प्रपदयुजि लसज्जङ्घिकादण्डयोश्च ।
जान्वोरूर्वोः पिशङ्गे नववसनवरे मेखलादाम्निनाभौ
रोमावल्यामुदारोदरभुवि विपुले वक्षसि प्रौढहारे ॥१०८॥

मादिपुंसः श्रीकृष्णस्य पादाम्भोजमारभ्य हसितान्तेषु स्थानेषु वक्ष्यमाणेषु शनैर्यथा स्यात्तथा इति क्रमतः स्थानक्रमतः स्थानक्रमेण स्वीयं मनः स्थापयतु । तथा पादपद्मद्वये प्रथमं मनः स्थापयेत् । तदन-न्तरं पूर्वं पूर्वंमपोह्याऽपरस्थानेषु मनो निदध्यात् अङ्गुल्य एवामलकिश-लया निर्मलपल्लवास्तेषु, तदनु नखानां शोभमानपङ्क्तौ तदनु प्रपदयुजि-पादद्वये । कीदृशे ? कूर्मपृष्ठवदुपरिभागे उन्नते, तदनु देदीप्यमानजङ्घा-द्वये, तदनु जानुद्वये ऊरुद्वयेपीतवर्णे नूतनवस्त्रयोः श्रेष्ठे क्षुद्रघण्टिकामा-लायां नाभिप्रदेशे तन्निष्ठरोमपङ्क्तौ च विपुलोदरस्थाने महाहारयुक्ते विस्तीर्णे वक्षसि ॥१०८॥

पूर्वोक्त हृदय कमल पर विराजमान श्रीकृष्ण के दिव्य विग्रह के प्रत्यङ्गों पर क्रमशः मन को स्थिर करना चाहिए। सर्व प्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के पादारविन्दों में, नव पल्लव के समान कोमल अंगुलियों में, दिव्य नखावलियों में कूर्माङ्ग के समान उन्नत पद कमलों के उपरि भागों में, सुन्दर जंघाओं में, जानुओं, ऊरुस्थलों पीतवस्त्रों किङ्किणी युक्त मेखला नाभि स्थान, दिव्य रोमावलियों, उत्तम उदर भूमि विशाल वक्षः स्थल, हारावलियों में मन को स्थिर करते जाना चाहिए ॥१०८॥

श्रीवत्से कौस्तुभे च स्फुट कमललसद्बद्धहृद्दाम्नि बाह्वो-
र्मूले केयूरदीप्ते जगदवनपटौ दोर्द्वये कङ्कणाढ्ये ।
पाणिद्वन्द्वाङ्गुलिस्थेऽतिमधुररवसंलीनविश्वे च वेणौ
कण्ठे सत्कुण्डलोल्लस्फुटरुचिरकपोलस्थलद्वन्द्वके च ॥१०९॥

श्रीवत्से विप्रपादावघाततर्जन्योद्ध्वरोमात्मके कौस्तुभे हृदयनिविष्टमणिविशेषे विकसितपद्ममालायां केयूरशोभितबाह्वोर्मूले संसाररक्षणदक्षे कङ्कणयुक्ते बाहुद्वये हस्तद्वयाङ्गुलिनिष्ठे अतिमधुरशब्देन मग्नं जगत्त्रयं येन एवंभूते वेणौ तदनु कण्ठे रम्यकुण्डलकिरणप्रकाशितमनोहरकपोलस्थल युगले ॥१०९॥

श्रीवत्स, कौस्तुभ, प्रफुल्ल कमल की माला केयूर से शोभित बाहुमूल, वलय विभूषित जगत् की रक्षा करने वाली दोनों भुजाओं, दोनों करकमलों की अंगुलियों में संस्थित वंशी, जिसकी मधुर ध्वनि में विश्व तल्लीन होता है कण्ठ स्थल, कुण्डलों से चमत्कृत उभय गण्डस्थलों में क्रमशः मन को स्थिर करे ॥१०९॥

कर्णद्वन्द्वे च घोणे नयननलिनयो र्भ्रूविलासे ललाटे
केशेष्वालोलबर्हेष्वतिसुरभिमनोज्ञप्रसूनोज्ज्वलेषु ।
शोणे विन्यस्तवेणावधरकिशलये दन्तपङ्क्त्यांस्मिताख्ये
ज्योत्स्नायामादिपुंसः क्रम इति च शनैः स्वंमनः संनिधत्ताम् ॥११०॥

कर्णद्वये नासायुगले नेत्रपद्मद्वये भ्रूविक्षेपे ललाटे चञ्चलमयूरपुच्छयुक्तेषु अतिसुगन्धितमनोहरपुष्पोज्ज्वलेषु केशेषु शोणवर्णे आरोपितवेणौ अधरपल्लवे दन्तपङ्क्त्यां स्मिताख्यज्योत्स्नायां स्मितमाख्यानाम यस्याः तस्यां ज्योत्स्नायां चन्द्रकान्तौ ज्योत्स्नातुल्ये स्मिते ॥११०॥

भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों कर्णों, नासिकाओं, नेत्र कमलों भ्रूविलास, ललाट, फिरफिराने वाले मयूर पंखों से शोभित, सुन्दर सुगन्ध विभिन्न पुष्पावलियों से

अलंकृत घुंघराली अलकावलियों, वंशी विभूषित लाल-लाल अधर पल्लवों दन्त पंक्तियों, मन्दस्मित मुखारविन्द की ज्योत्स्ना में क्रमशः मन लगावे ॥११०॥

यावदिति ।

यावन्मनोविलयमेति हरेरुदार
मन्दस्मितेऽभ्यसतु तावदनङ्गबीजम् ।
अष्टादशार्णमथवाऽपि दशार्णकं वा
मन्त्री शनैरथ समाहितमातरिश्वा ॥१११॥

हरेरुदारे शोभमाने मन्दस्मिते मनो यावत् विलयं विशेषतो लयमेति तावदनङ्गबीजम् अष्टादशार्णं दशार्णं वा प्रजपतु । किम्भूतः ? समाहितमातरिश्वा प्रत्याहारीकृत प्राणवायुः ॥१११॥

वायु का संयमन करते हुए जब तक मन भगवान् श्रीकृष्ण की विश्व मोहक मन्दस्मित श्री पर स्थिर न हो तब तक, काम बीज, अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र अथवा दशाक्षर मन्त्र का शनैः शनैः अभ्यास करता रहे ॥१११॥

आरोप्येति ।

आरोप्यारोप्य मनः पदारविन्दादिमन्दहसितान्तम् ।
तत्र विलाप्यक्षीणे चेतसि सुखचित्सदात्मको भवति ॥११२॥

मनः पदारविन्दमारभ्य ईषद्धास्यपर्यन्तं समारोप्याऽनन्तरं तत्र विलाप्य लीनं कृत्वा क्षीणे शुद्धे चित्ते सति सुखज्ञानसदात्मको भवति साधकः ॥११२॥

भगवान् श्रीकृष्ण के पादारविन्द से लेकर मन्दस्मितश्री तक मन को बारंबार स्थिर करने का प्रयास करता रहे। जब वहां मन तल्लीन हो जाता है तो साधक सच्चिदात्मक हो जाएगा ॥११२॥

न्यासेति ।

न्यासजपहोमपूजातर्पणमन्त्राभिषेकविनियोगानाम् ।
दीपिकयैव मयोद्भाषितः क्रमः कृत्स्नमन्त्रगणकथितानाम् ॥११३॥

कृष्णमन्त्रसमूहकथितानां न्यासजपादीनां क्रमदीपिकयैव क्रमः प्रकाशितः ॥११३॥

श्रीकृष्ण मन्त्रों के न्यास जप हवन तर्पण पूजन, अभिषेक विनियोग, प्रयोगों का क्रम मैंने इसी क्रमदीपिका के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।।११३।।

संशयेति ।

संशयतिमिरच्छिदुरा सैषा क्रमदीपिका करेण सद्भिः ।
करदीपिकेव धार्या सस्नेहमहर्निशं समस्तसुखाप्त्यै ।।११४।।

सैषा क्रमदीपिका साधुजनैः सस्नेहं यथा स्यात्तथा करदीपिकेव धार्या । किंभूता ? संशयरूपान्धकारच्छेदयित्री अन्यापि तैलादिस्नेहसहितं यथा स्यात्तथा धार्यते अन्धकारनाशिनी भवति । किमर्थं धार्या ? समस्तसुखप्राप्त्यर्थम् ।।११४।।

समस्त सुख की प्राप्ति के लिए संशय रूपी अन्धकार को हटाने वाली यह क्रमदीपिका करदीपिका (टार्च) की तरह सदा साधक के हाथों में होनी चाहिए ।।११४।।

जगदिदमनुविद्धं येन यस्मात्प्रसूते
यदनुततमजस्रं पाति चाऽधिष्ठिता यम् ।
यदुरुमह उदर्चिर्यं विधत्ते च गोपी
तममृतसुखबोधज्योतिषं नौमि कृष्णम् ।।११५।।

जगदिदमनुविद्धमनुस्यूतं येन ज्योतिषा यस्मात्परमेश्वरात् इमं जनलोकं संसाराख्यं प्रसूते प्रसूतिं प्राप्नोतीत्यर्थः । यस्मिन्नित्यपि पाठः । तथा परमेश्वरम् अधिष्ठातारमाश्रिता सती अनुततं विस्तृतं जगत् अजस्रं सर्वदा पाति रक्षति यस्य परमेश्वरस्य उरु विपुलं महः तेजः तत् उदर्चिस्तत्तेजसा उदितदीप्तिः सती यं प्रतिबिम्बरूपेण धत्ते तमुक्तानन्दं स्वप्रकाशं नौमि स्तौमि ।।११५।।

श्रीकृष्ण के जिस प्रकाशात्म स्वरूप में यह जगत् अनुस्यूत है, जिनसे इस संसार की उत्पत्ति होती है, जिनकी सन्धिनी शक्ति, पालिनी शक्ति से जगत् की रक्षा होती है । जिन श्रीकृष्ण के महान् श्याम तेज के अनुरूप गौर तेज को धारण करने वाली गोपी पद वाच्या आल्हादिनी शक्ति श्रीराधा श्रीकृष्ण तेज को धारण करती हैं, ऐसे अमृतमय ज्योति श्रीराधा को धारण करने वाले गौर तेज श्याम तेज के आश्रय श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ ।।११५।।

यश्चक्रमिति ।

यश्चक्रं निजकेलिसाधनमधिष्ठानस्थितोऽपि प्रभु-
र्दत्तं मन्मथशत्रुणाऽवनकृते व्यावृत्तलोकार्तिकम् ।
धत्ते दीप्तनवेन शोभनमघापेतात्तमायं ध्रुवं
वन्दे कायविमर्दनं वधकृतां भुञ्जद्द्युकं यादवम् ।।११६।।

इति श्रीकेशवभट्टाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
अष्टमः पटलः ।।८।।

यः परमेश्वरः श्रीकृष्णः वक्ष्यमाणलक्षणं चक्रं धत्ते तं वन्दे इत्यन्वयः । कथंभूतं चक्रम् ? निजकेलिसाधनं निजयुद्धक्रीडाकरणम् । कीदृशः परमेश्वर ? अधिष्ठानस्थितोऽपि समाधिस्थितोऽपि । यद्वा, बाह्यस्थितोऽपि प्रभुः स्वामी । पुनः कीदृशं चक्रम् ? मन्मथशत्रुणा महादेवेन अवने अवनकृते सर्वलोकरक्षार्थं दत्तं पुनः दूरीकृतातिवृष्टयनावृष्टयाद्युपद्रवं पुनः दीप्तनवेन इवशोभनं देदीप्यमानम् । किंभूतं कृष्णम् ? पापरहितं स्वीकृतमायं पुनध्रुवमविनाशिनं पुनर्वधकृतामुपद्रवकारिणां कायविमर्दनं शरीरनाशकं पुनः भुञ्जद्द्युकं भुञ्जत्स्वर्गलोकं पुनर्जात्यायादवमित्यर्थः । अत्र पद्ये चक्रबन्धे ग्रन्थकर्ता स्वनाम प्रक्षिप्तवानिति बोध्यम् ।।११६।।

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकायाः
विवरणे अष्टमः पटलः ।। ८ ।।

जो श्रीकृष्ण आत्माराम आप्तकाम होकर भी अपने स्वरूप में रहते हुए भी लोक में काल को नाश करके लोगों की रक्षा करने के लिए सूर्य के समान तेजस्वी श्रीशंकरजी के द्वारा प्रदत्त चक्र को धारण करते हैं, जो निष्पाप हैं, जो लोक लीला के लिए माया को स्वीकार करने वाले हैं, उपद्रव करने वाले दुष्टों का मान मर्दन करने वाले हैं, जो स्वर्ग लोक के भी नियन्ता हैं ऐसे यादव कुल भूषण श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ । इस श्लोक में ग्रन्थकार ने चक्र बन्ध में अपने नाम का निवेश किया है ।।११६।।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
व्याकरण-वेदान्ताचार्य श्रीहरिशरण उपाध्याय प्रणीत "दीपिकार्थ प्रकाशिका"
नामक हिन्दी व्याख्या का अष्टम पटल पूर्ण हुआ ।। ८ ।।

य श्च क्रं निज के लिसाध न मधिष्ठा न स्थितो पि प्र मू
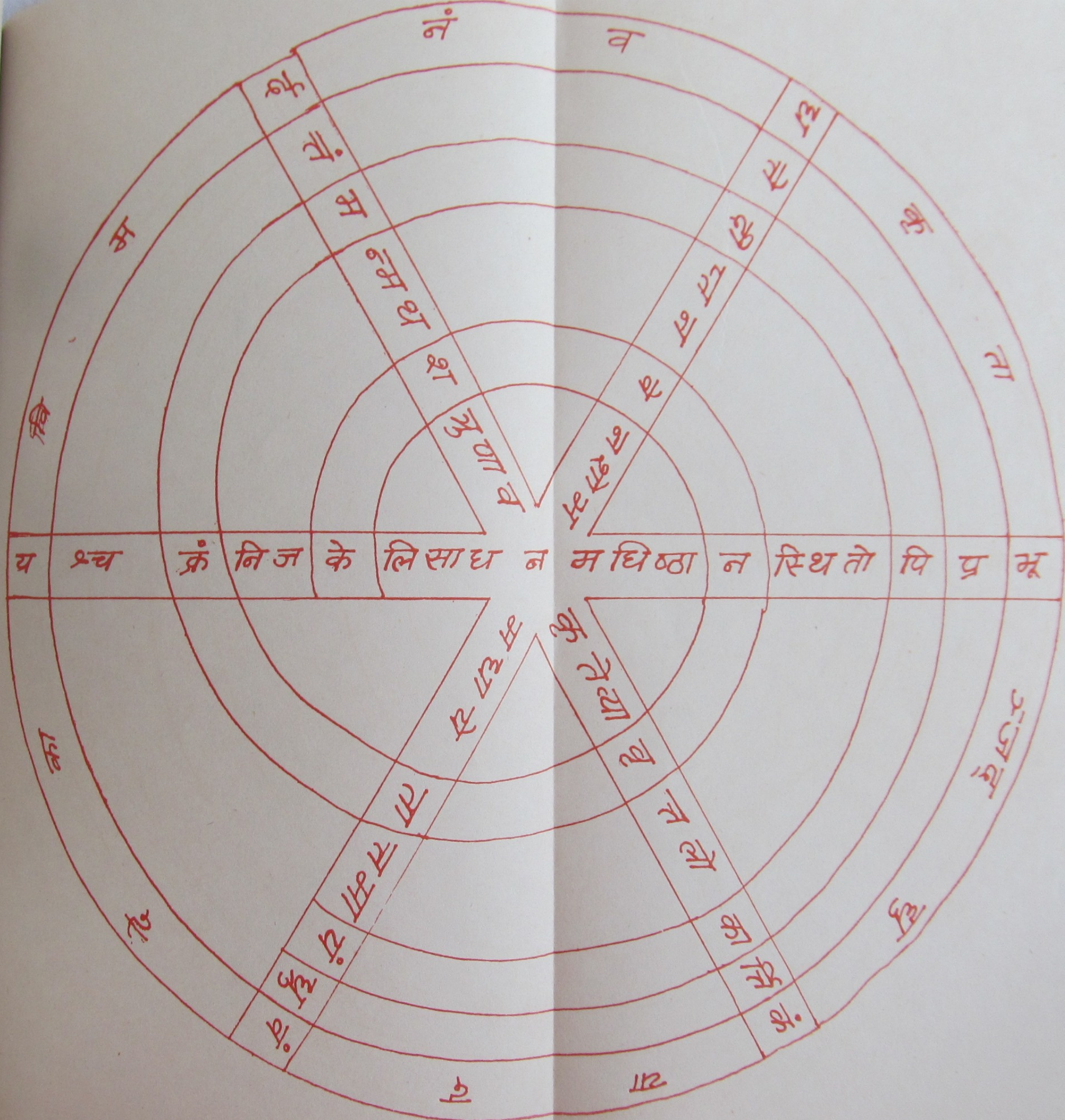
अथ मुद्रालक्षणानि ॥

अङ्गुलीः करयुग्मस्य संप्रसार्य प्रबन्धयेत् ।
मध्यपृष्ठगतानाभे तर्जनीभ्यां निरोधयेत् ॥ १ ॥
मध्यमाग्रे समं कृत्वा कनिष्ठामध्यमोपरि ।
तयोरुपरि चाङ्गुष्ठौ मुद्रायोनिस्तु खेचरी ॥ २ ॥
तर्जनीशेषमाकुञ्च्यशेषाणां च निपीडयेत् ।
अङ्कुशं दर्शयेन्मन्त्री गृहीत्वा दक्षमुष्टिना ॥ ३ ॥

॥ इत्यङ्कुशमुद्रा ॥

आवाहनं स्थापनं संनिधानं सनिरोधनम् ।
संमुखीकरणं सकलीकरणं चावगुण्ठनम् ॥ ४ ॥
धेनुपीयूषकरणं महामुद्रा तथैव च ।
परमीकरणं चैव नवमुद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥

एतेषां लक्षणमाह—

सम्यक् संपूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पिताञ्जलिः ।
आवाहनी समाख्याता कराभ्यां देशिकोत्तमैः ॥ ६ ॥
अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते ।
आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मिका ॥ ७ ॥
सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।
अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधसमीरिता ॥ ८ ॥
मुष्टिद्वयस्थिताङ्गुष्ठौ सन्मुखौ च परस्परम् ।
संश्लिष्टावुच्छ्रितौ कृत्वा सेयं सन्मुखमुद्रिका ॥ ९ ॥
देवाङ्गेषु षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।
हृदयादिशरीरान्ते कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च ॥ १० ॥
हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ।
सव्यहस्तकृतामुष्टिदीर्घाधोमुखतर्जनी ॥ ११ ॥
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ।
अन्योन्यतर्जनीयुग्मं भ्रमणादवगुण्ठनम् ॥ १२ ॥

अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टाकनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्राप्रकीर्त्तिता ॥ १३ ॥
अमृतीकरणं कुर्यात् तया देशिकसत्तमः ।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुलिः ॥ १४ ॥
महामुद्रेयमुदितापरमीकरणं बुधैः ।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं मुसलं शार्ङ्गखड्गको ॥ १५ ॥
पाशाङ्कुशौ वैनतेयं श्रीवत्सकौस्तुभंतथा ।
वेणुं चैवाऽभयवरौ वनमालां प्रदर्शयेत् ॥ १६ ॥

एतेषांलक्षणमाह —

वामाङ्गुष्ठे विधृत्यैव मुष्टिना दक्षिणेन तु ।
तन्मुष्टेः पृष्ठदेशे तु योजयेच्चतुरङ्गुलीः ॥ १७ ॥
दक्षिणे चोन्मुखेऽङ्गुष्ठे तेषामग्राणि याजयेत् ।
कथिता शङ्खमुद्रेयं वैष्णवार्चनकर्मणि ॥ १८ ॥
अन्योन्याभिमुखाङ्गुष्ठकनिष्ठायुगलं पदा ।
विस्तृतीश्चेतराङ्गुल्यस्तदासौ दर्शिनी मता ॥ १९ ॥
अन्योन्यग्रथिताङ्गुल्य उन्नता मध्यमौ नतौ ।
संलग्नौ चेत् तदा मुद्रा गदेयं सप्रकीर्त्तिता ॥ २० ॥
अन्योन्याभिमुखौ पाणी पद्माकारौ च मध्यतः ।
कर्णिकावनताङ्गुष्ठौ पद्ममुद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ २१ ॥
मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कृत्वा मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ २२ ॥
वामस्थतर्जनीप्रान्तं मध्यमान्ते नियोजयेत् ।
प्रसार्य च करं वामं दक्षिणं करमेव च ॥ २३ ॥
नियोज्य दक्षिणस्कन्धे बाणग्रहणवत्ततः ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्योगं कुर्यादेषा प्रकीर्त्तिता ॥ २४ ॥
शार्ङ्गमुद्रेयं मुनिभिर्दर्शयेत्कृष्णपूजने ।
कनिष्ठानामिके द्वे तु दशाङ्गुष्ठनिपीडिते ॥ २५ ॥
शेषं प्रसारितं कृत्वा खड्गमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
पाशाकारं नियोज्यैवं वामाङ्गुष्ठस्य तर्जनीम् ॥ २६ ॥
दक्षिण मुष्टिमास्थाय तर्जनीं च प्रसारयेत् ।
तेनैवं संस्पृशेन्मन्त्री वामाङ्गुष्ठस्य मूलकम् ॥ २७ ॥

पाशमुद्रेयमुद्दिष्टा केशवार्चनकर्मणि ।
तर्जनीमीषदाकुञ्च्य शेषाणां च निपीडयेत् ॥ २८ ॥
अङ्गुष्ठं दर्शयेत् तद्वद्गृहीत्वा दक्षमुष्टिना ।
अन्योन्यपृष्ठे संयोज्य कनिष्ठं च परस्परम् ॥ २९ ॥
तर्जन्यग्रं समं कृत्वाऽङ्गुष्ठाग्रं च तथैव च ।
ईषदालम्बनं कृत्वा मध्यमेन च पक्षवत् ॥ ३० ॥
प्रसार्य गारुडी मुद्रा कृष्णपूजा विधौ स्मृता ।
अन्योन्यं संमुखे तत्र कनिष्ठानर्जनीयुगे ॥ ३१ ॥
मध्यमानामिके तद्वदङ्गुष्ठेन निपीडितम् ।
दर्शयेद्वक्षः स्थले मुद्रा यत्नात् श्रीवत्ससंज्ञकाम् ॥ ३२ ॥
अन्योन्याभिमुखे तद्वत्कनिष्ठे संनियोजयेत् ।
तर्जन्यनामिके तद्वत्करौ त्वन्योन्यपृष्ठगौ ॥ ३३ ॥
उच्छ्रितान्योन्यसंलग्ना दक्षहस्तकराङ्गुलीम् ।
निधाय मध्यदेशे तु वाममध्यमतर्जनीम् ॥ ३४ ॥
संयोज्य मणिबन्धे तु दक्षिणे योजयेत्ततः ।
वामाङ्गुष्ठे तु मुद्रयं प्रसिद्धा कौस्तुभा मता ॥ ३५ ॥
अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्त्वाङ्गुलीरङ्गुलिभिः संयोज्य परिवर्तयेत् ॥ ३६ ॥
एषां संहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ मता ।
अङ्गं प्रसारितं कृत्वा स्पृष्टयाखं वरानने ॥ ३७ ॥
प्राङ्मुखं तु करं कृत्वा अभयं परिकीर्त्तितम् ।
दक्षं भुजं संप्रसार्य जानूपरि निवेशयेत् ॥ ३८ ॥
प्रसृतं दर्शयेद्देवि वरः सर्वार्थसाधिनी ।
स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्यङ्गुष्ठमूलयोः ॥ ३९ ॥
करद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका ॥ ४० ॥

छोटिकालक्षणमाह –

द्वौ करौ पृष्टसंलग्नौ भ्रामयेच्चतुरङ्गुलीः ।
छोटिका सुसमाख्याता प्रणामे तां प्रदर्शयेत् ॥ ४१ ॥

॥ इति मुद्रालक्षणानि ॥